श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला २,

मेरी जीवन गाथा

[द्वितीय भाग]

लेखक

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी

सम्पादक

पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य

सागर

प्रकाशक

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

भदैनीघाट, काशी

ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक,

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रथमावृत्ति

माघ कृष्णा चतुर्दशी २४८६

मूल्य लागत मात्र ४)

मुद्रक

प० शिवनारायण उपाध्याय

नया संसार प्रेस, भदैनी वाराणसी।

पूज्य श्री १०५ वर्णी जी

प्रकाशकीय

पूज्य वर्णी जी द्वारा स्वयं लिखित मेरी जीवन गाथा प्रथम भाग को प्रकाशित हुए काफी समय हो गया है। इस वर्ष उसकी द्वितीय आवृत्ति भी प्रकाशित हो गई है। इसे पूज्य वर्णी जी ने अपने जीवनवृत्तके साथ अनेक रोचक और हृदयग्राही घटनाओं, सामाजिक प्रवृत्तियों और धर्मोपदेशसे समृद्ध बनाया है। पूज्य वर्णी जीकी कलममें ऐसा कुछ आकर्षण है कि जो भी पाठक इसे पढ़ता है उसकी आत्मा उसे पढ़ते हुए तलमला उठती है। वह वीर सं० २४७५ में प्रकाशित हुई थी इसलिए स्वभावतः उसमें उसके पूर्व तक का ही इहवृत्त संकलित हो सका है। उसे समाप्त करनेके बाद प्रत्येक पाठककी इच्छा होती थी कि इसके आगेकी जीवनी भी यदि इसी प्रकार संकलित होकर प्रकाशित हो जाय तो जनताका बड़ा उपकार हो। अनेक बार पूज्य वर्णी जीके समक्ष यह प्रस्ताव रखा भी गया किन्तु सफलता न मिली। सौभाग्यकी बात है कि पिछले वर्ष जयन्तीके समय जब हम लोगोंने पुनः यह प्रश्न उठाया और पूज्य वर्णी जीसे प्रार्थना की तो उन्होंने कहा भैया! उसमें क्या धरा है? फिर भी यदि आप लोग नहीं मानते हो तो हमने जो प्रत्येक वर्ष की डायरियाँ आदि लिखी हैं उनमें अब तककी सब मुख्य घटनाएँ लिपिबद्ध हैं, आप लोग चाहो तो उनके आधारसे यह कार्य हो सकता है। सबको पूज्य वर्णी जी की यह सम्मति जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्काल जो डायरियाँ या दूसरी सामग्री ईसरीमें थी वे वहाँसे ली गईं और जो श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाके कार्यालयमें थी वे वहाँसे ली गईं और सबको एकत्रित करके श्री विद्यार्थी नरेन्द्रकुमार जीके हाथ सागर श्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्यके पास पहुँचाई गई। मेरी जीवन गाथा प्रथम भागको पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य

ने ही अन्तिम रूप दिया था इसलिए यही सोचा गया कि इस कार्यको भी वे ही उत्तम रीतिसे निभा सकेंगे। पहले तो पण्डित जी ने वर्णी ग्रन्थमाला कार्यालयको यह लिखा कि आजकल हमें बिल्कुल अवकाश नहीं है, गर्मीके दिनोंमें हम यह कार्य कर सकेंगे। किन्तु जब उनसे यह कार्य शीघ्र ही करनेकी प्रेरणा की गई तो उन्होंने सागर विद्यालयसे प्रतिदिन कुछ समयके लिए अवकाश ले लिया और अपनी एवजमें दूसरे अध्यापकको नियुक्त कर दिया। प्रसन्नता है कि उन्होंने इस समयके भीतर बड़ी लगनसे इसे सकलित कर दिया। इसके बाद पण्डित जी उक्त सब सामग्री लेकर ईसरी गये और पूज्य वर्णी जीके समक्ष उसका पाठ किया। कुल सामग्री पूज्य वर्णी जीके लिखानका सकलन मात्र तो है ही इसलिए उसमें थोड़े बहुत हेर-फेरके सिवा अधिक कुछ भी संशोधन नहीं करना पड़ा। वही मेरी जीवन गाथाका यह उत्तरार्ध है जिसे श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीकी ओर से प्रकाशित करते हुए हम प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। पण्डित जी ने मनोयोग पूर्वक इस कार्यको सम्पन्न किया इसके लिए तो हम उनके आभारी हैं ही। साथ ही उन्होंने राँची और खरखरी जाकर इस भागकी करीब ८०० प्रतियोंके प्रकाशन खर्च का भार वहन करनेके लिए प्रबन्ध कर दिया इसके लिए हम उनके और भी विशेष आभारी हैं। जिन महानुभावोंने प्रतियाँ लेना स्वीकार किया उनकी नामावलि इस प्रकार है—

१	श्रीमान् लाला फीरोजीलाल जी सा० दिल्ली	५०० प्रति
२	रायबहादुर सेठ हर्षचन्द्र जी सा० राँची	२०० ,,
३	दानवीर स्वर्गीय सेठ चाँदमल जी पाँड्या राँची वालोंकी धर्मपत्नी गुलाबीदेवी जी	२५० प्रति
४	श्रीमान् बाबू शिखरचन्द जी सा० खरखरी	२५० ,,
५.	श्रीमान् सेठ जगन्नाथ जी पाँड्या कोडरमा	१०० ,,
६	श्रीमान् सेठ विमलप्रसाद जी खरखरी	१०० ,,

७ श्री रामप्यारी बाई साहुद्रन एवनिंग हाउस नं० ५२ २५ ,,
८ श्री बहिन कपूरीदेवी गया (चन्देका) २५ ,,

इनमेंसे कुछ महानुभावोंका रुपया पेशगी भी आ गया है। इन सबके इस उदार सहयोग के लिए हम उनके भी अत्यन्त आभारी हैं।

मेरी जीवन गाथा प्रथम भागके समान यह भाग भी अत्यन्त रोचक और आकर्षक बन गया है। इसमें तत्त्वज्ञानकी विशेष प्रचुरता ही इसकी खास विशेषता है। पूज्य वर्णी जीका जीवन प्रारम्भसे लेकर अब तक किस प्रकार व्यतीत हुआ, उनकी सफलताकी कुञ्जी क्या है और उनकी इस जीवन यात्रासे समाज और देश किस प्रकार लाभान्वित हुआ आदि विविध प्रश्नोंका समुचित उत्तर प्राप्त करनेके लिए तथा अपने जीवनको कार्यशील और प्रामाणिक बनानेके लिए प्रत्येक गृहस्थ-को तो मेरी जीवन गाथाके दोनों भागोंका स्वाध्याय करना ही चाहिए। जो वर्तमानमें त्यागी होकर त्यागी जीवन या प्रतिमा जीवन व्यतीत कर रहे हैं उन्हें भी अपने जीवनको कर्तव्यशील और मर्यादानुरूप बनानेके लिए इसके दोनों भागोंका स्वाध्याय करना चाहिए।

इस कालमें जैन समाजके निर्माता जो भी महापुरुष हो गये हैं, या हैं उनमें पूज्य वर्णी जी प्रमुख हैं। संस्कृत विद्याके प्रचारमें तो इनका प्रमुख हाथ रहा ही है। रूढ़िग्रस्त जनताको उसके बन्धनसे मुक्त करनेमें भी इन्होंने अपूर्व योग दिया है। ये अपनी स्फूर्ति, प्रेरणा, सहृदयता, निस्पृहता और परोपकार वृत्तिके कारण जन-जनके मानसमें समाये हुए हैं। हमारी कामना है कि पूज्य वर्णी जी चिर काल तक हम सबको मार्ग दर्शन करते रहें।

श्रद्धावनत

फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री **वंशीधर व्याकरणाचार्य**

ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक मंत्री श्री ग० वर्णी जैन ग्र० वाराणसी

अपनी बात

पिछले वर्ष श्री प० फूलचन्द्र जी शास्त्री वर्णी जयन्ती पर ईसरी गये थे। भाई नरेन्द्रकुमार जी, जो अपनेको विद्यार्थी लिखते हैं पर अब विद्यार्थी नही एम० ए० और साहित्याचार्य हैं, भी गये थे। वहाँसे लौटने पर पण्डितजीने पूज्य वर्णीजीकी पुरानी डायरियो तथा लेख आदिके रजिस्टरोंका एक बडा वस्ता नरेन्द्रकुमारजीके हाथ हमारे पास भिजाया और साथ ही उनका डाकसे एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि मे ईसरीसे लौट रहा हूँ। जीवनगाथा प्रथम भागके आगेकी गाथा इन डायरियो मे पूज्य वर्णीजीने लिखी है। उसे आप शीघ्र ही व्यवस्थित कर दें। नरेन्द्रकुमारजी स्वय तो सागर नही आये पर उनका भी उक्त सामग्रीके साथ इसी आशयका एक पत्र मिला। इनसे इस पुण्य कार्यके लिये प्रेरणा पा मुझे बहुत हर्ष हुआ। पर प्रात ५ बजेसे लेकर रात्रिके १० बजे तक मेरी जो दिनचर्या है उसमे कुछ लिखनेके लिये समय निकालना कठिन ही था। मैंने बनारस लिखा कि 'यह काम ग्रीष्मावकाशमे हो पावेगा।' ग्रीष्मावकाशके लिये पर्याप्त देरी थी और पूज्य बाबाजीके स्वास्थ्यके जो समाचार आ रहे थे उनसे प्रेरणा यही मिलती थी कि यह काम जल्दीसे जल्दी पूर्ण किया जाय। अन्तमे जब कुछ उपाय न दिखा तब विद्यालयसे मैंने प्रतिदिन दो घटेकी सुविधा मागी और विद्यालयके अधिकारियोंने मुझे सुविधा दे दी। फलस्वरूप मेरी शक्ति इस काममे लग गई और ३ माहमें यह महान् कार्य पूर्ण हो गया। पूर्ण होते ही में पूज्य बाबाजीके पास ईसरी गया और उन्हें आद्योपान्त सब सामग्री श्रवण करा दी। आवश्यक हेर-फेरके बाद पाण्डु लिपिको अन्तिम रूप मिल गया और उसे प्रकाशनके लिये

सन्मति मुद्रणालय, जयपुर
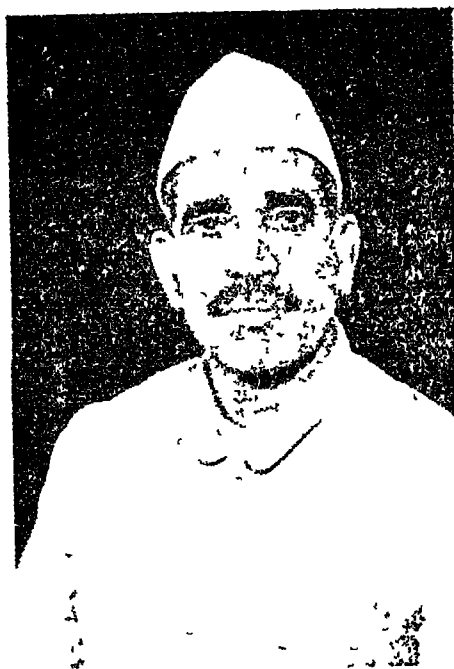
विद्वद्वर्य पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य
जीवनगाथाके सफल संपादक

[मू० पृ० ४]

श्रीवर्णी ग्रन्थमालाको सौप दिया। प्रसन्नता है कि उसका प्रकाशन पूर्ण हो गया है।

मेरो जीवन-गाथाका पूर्व भाग लोकोत्तर घटनाओंसे भरा है तो यह दूसरा भाग लोकोत्तर उपदेशोंसे भरा है। इस भागमे कितनी ही सामाजिक रीति रिवाजों पर चर्चा आई है और खुलकर उनपर विचार हुआ है। आध्यात्मिक प्रवचनोका तो मानों यह भण्डार ही है। इसको पढनेसे पाठककी अन्तरात्मा द्रवीभूत हो जाती है। इस युगमें पूज्य वर्णीजीके समान निर्मल सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न अटल श्रद्धानी एव समाजकी गतिविधिमें पूर्ण जागरूक रहनेवाला व्यक्ति सुलभ नही है। इसलिये श्री जिनेन्द्र भगवानसे हमारी प्रार्थना है कि पूज्य वर्णीजी चिरकाल तक जन-जनको सच्चा पथ प्रदर्शित करते रहें।

सागर
१६-१-१६६०

श्रद्धावनत
पन्नालाल जैन

विषय-सूची

१	मुरारसे आगरा	१
२	मथुरामें जैन संघका अधिवेशन	१७
३	अलीगढका वैभव	३०
४	मेरठकी ओर	३७
५	मेरठ	४८
६	खतौली	५६
७	हस्तिनागपुर	६१
८	मुजफ्फरनगर	६७
९	सहारनपुर-सरसावा	७३
१०	दिल्लीकी ओर (१)	७९
११	दिल्लीकी ओर (२)	९०
१२	दिल्लीका ऐतिहासिक महत्त्व और राजा हरसुखराय	१००
१३	दिल्लीका परिकर	१०७
१४	हरिजन मन्दिर प्रवेश	११५
१५	पावन दशलक्षण पर्व	१२३
१६	नम्र निवेदन	१२७
१७	दिल्लीके शेष दिन	१३२
१८	दिल्लीसे हस्तिनागपुर	१४५
१९	इटावाकी ओर	१४९
२०	इटावा	१६२
२१	इटावाके अञ्चलमें	१६८
२२	अष्टान्हिका पर्व	१७२

२३	उदासीनाश्रम और सस्कृत विद्यालयका उपक्रम	१७६
२४	जैनदर्शनके लेख पर	१७८
२५	अक्षय तृतीया	१८६
२६	विद्यालयका उद्‌घाटन और विद्वत्परिषद्‌की बैठक	१८६
२७	अनेक समस्याओंका हल स्त्रीशिक्षा	१६२
२८	इटावामे चातुर्मासका निश्चय	१६४
२६	सिद्धचक्रविधान	१६७
३०	रक्षाबन्धन और पर्यूषण	२००
३१	इटावासे प्रस्थान	२०६
३२	फिरोजाबादकी ओर	२१२
३३	फिरोजाबादमें विविध समारोह	२२५
३४	स्वर्णगिरिकी ओर	२३८
३५	बरुआसागरमें ग्रीष्मकाल	२५१
३६	श्रुतपञ्चमी	२६१
३७	बरुआसागरसे प्रस्थान	२६६
३८	ललितपुरकी ओर	२७२
३६	क्षेत्रपालमें चातुर्मास	२८१
४०	विविध विद्वानोंका समागम	२८७
४१	इण्टर कालेजका उपक्रम	२६३
४२	तीव्र वेदना	२६६
४३	पपौरा और अहार क्षेत्र	३०४
४४	द्रोणगिरि और रेशन्दीगिर	३११
४५	रेशन्दीगिरिमें पञ्चकल्याणक	३१६
४६	सागर	३२४
४७	समय यापन	३२८
४८	पर्व प्रवचनावली	३३७

मेरी जीवन गाथा

[द्वितीय भाग]

पूज्य वर्णीजीके शरीरकी वर्तमान अवस्था [पृ० १]

मुरार से आगरा

स सत्यविद्यातपसा प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥

इसी ग्वालियर में भट्टारक जी का मन्दिर है। मन्दिरमें प्राचीन शास्त्र भण्डार है परन्तु जो अधिकारी भट्टारक जी का शिष्य है वह किसीको पुस्तक नहीं दिखाता तथा मनमानी गाली देता है। इसका मूल कारण साक्षर नहीं होना है। पासमें जो कुछ द्रव्य है उसीसे निर्वाह करता है। अब जैन-जनता भी साक्षर—विवेकवती हो गई है। वह अब अनक्षरवेषियोंका आदर नहीं करती। हमने बहुत प्रयास किया परन्तु अन्तमें निराश आना पड़ा। हृदयमें कुछ दुःख भी हुआ परन्तु मनमें यह विचार आनेसे वह दूर हो गया कि संसारमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति स्वेच्छानुसार होती है और वे अन्यको अपने रूप परिणमाया चाहते हैं जब कि वे परिणमते नहीं। इस दशामें महा दुःखके पात्र होते हैं। मनुष्य यदि यह मानना छोड़ देवे कि पदार्थोंका परिणमन हम अपने अनुकूल कर सकते हैं तो दुःखी होनेकी कुछ भी बात न रहे। अस्तु।

अगहन वदी ८ संवत् २००५ को एक बजे ग्वालियरसे चलकर ४ मील पर आंगले साहबकी कोठीमें ठहर गये। कोठी राजमहलके समान जान पड़ती है। यहाँ धर्मध्यानके योग्य निर्जन स्थान बहुत हैं। जल यहाँ का अत्यन्त मधुर है, वायु स्वच्छ है तथा बाह्यमें त्रस जीवोंकी संख्या विपुल नहीं है। मकानमें ऋतु के अनुकूल सब सुविधा है। जब बनी होगी तब उसका स्वरूप अति निर्मल होगा

परन्तु अब मालिकके बिना शून्य हो रही है। ऋषि गणोंके योग्य है परन्तु इस कालमें वे महात्मा हैं नहीं। यहाँ से ६ मील चलकर वामौरा आ गये और वामौरा से ४ मील चलकर नूरावाद आ गये। यहाँ पर भी आलीशान कोठी थी, उसी में ठहर गये।

अगहन वदी १२ संवत् २००५ को मोरेनाके अञ्चलमें पहुँचे। पहुँचते ही एक दम स्वर्गीय प० गोपालदास जी का स्मरण आ गया। यह वही महापुरुष हैं जिनके आशिक विभवसे आज जैन जनता में जैन सिद्धान्तका विकास दृश्य हो रहा है। जब मोरेन के समीप पहुँचे तब श्रीमान् पं० मक्खनलाल जी साहब जो कि जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान हैं छात्रवर्गके साथ आये। आपने बहुत ही प्रेमसे नगरमे प्रवेश कराया और सिद्धान्त विद्यालयके भवनमे ठहराया। सुख पूर्वक रात्रि बीत गई। प्रातःकाल श्री जिनेद्र भगवान्के दर्शन करनेके लिये जैन मन्दिरमें गये। दर्शन कर बहुत ही विशुद्धता हुई। इतने मे पं० मक्खनलाल जी आ गये और कहने लगे कि अभिषेक देखने चलिये। हम लोग पण्डित जी के साथ विद्यालयके भवनके ऊपर जहाँ जिन चैत्यालय था गये। वहाँ पर एक प्रतिविम्बको चौकीके ऊपर विराजमान किया और फिर पण्डित जी ने पाठ प्रारम्भ किया। पञ्चामृताभिषेक किया। यह विलक्षणता यहाँ ही देखनेमे आई कि जलाभिषेकके साथ-साथ भगवान्के शिर ऊपर पुष्पोंका भी अभिषेक कराया गया। पुष्पोंका शोधन प्रायः नहीं देखनेमें आया। हमने पण्डित जीसे कुछ नहीं कहा। उनकी जो इच्छा थी वह उन्होंने किया। अनन्तर नीचे प्रवचन हुआ। यहाँकी जनताका बहुभाग इस पूजन प्रक्रियाको नहीं चाहता यह बात प्रसङ्ग वश लिख दी।

प्रवचनके अनन्तर जब चर्याके लिये निकले तब पण्डित जीके घर पर भोजन हुआ। पण्डित जी ने बहुत हर्षके साथ आतिथ्य

सत्कार किया तथा सोलापुरकी मुद्रित भगवती आराधना की एक प्रति स्वाध्यायके अर्थ प्रदान की। यहाँ पर सिद्धान्त विद्यालय बहुत प्राचीन संस्था है। इसकी स्थापना स्वर्गीय श्री गुरु गोपालदास जीने की थी। इसके द्वारा बहुत निष्णात विद्वान् निकले। जिनने भारत वर्ष भरमें कठिनसे कठिन सिद्धान्त शास्त्रोंको सरल रूपसे पठन क्रममें ला दिया। १ बजे दिनसे सार्वजनिक सभा थी, प्रसंग वश यहाँ पर मन्दिरके निमित्तसे लोगोंमे जो परस्पर मनोमालिन्य है उसको मिटानेके लिये परिश्रम किया परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। अगले दिन भी प्रवचनके अनन्तर संगठनकी बात हुई परन्तु कोई तत्त्व नहीं निकला। जब तक हृदयमें कषाय रूप विषके कण विद्यमान हैं तब तक निर्मलताका आना दुर्भर है। मैं तो यह विचार कर तटस्थ रह गया कि संसारकी दशा जो है वही रहेगी, जिन्हे आत्मकल्याण करना हो वे इस चिन्ता को त्यागें, कल्याणके पास स्वयं पहुँच जावेंगे।

मोरेनामे ३ दिन रहनेके बाद धौलपुरकी ओर चल दिये। मार्गमें एक ग्रामके बाह्य धर्मशाला थी उसमें ठहर गये। धर्मशाला का जो स्वामी था उसने सर्व प्रकारसे सत्कार किया। उसकी अन्तरङ्ग भावना भोजन करानेकी थी परन्तु यहांकी प्रक्रिया तो उसके हाथका पानी पीना भी आगम विरुद्ध मानती है। यद्यपि आगम यही तो कहता है कि जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा हो और जो शुद्धता पूर्वक भोजन बनावे ऐसे त्रिवर्णका भोजन मुनि भी कर सकता है। अब विचारो जब उसकी रुचि आपको भोजन कराने की हुई तब आपके धर्ममे स्वयं श्रद्धा हो गई। जब श्रद्धा आपमें हो गई तब जो प्रक्रिया आप बताओगे उसी प्रक्रियासे वह अनायास आपके अनुकूल भोजन बना देगा। परन्तु यहां तो रूढिवाद की इतनी महिमा है कि जैनधर्मका प्रचार होना कठिन है। अस्तु,

फिर भी उस धर्मशालाके स्वामीने संघके लोगोंको दुग्ध दान दिया, ५ सेर चांवल दाल तथा एक भेली गुड की दान की। साथ ही बहुत ही शिष्टाचार का वर्ताव किया।

हम लोग जिस अभिप्रायवाले हैं उसीको उपयोगमे लानेका प्रयत्न करते हैं। हमने धर्मको निजकी पैतृक सम्पत्ति समझ रक्खी है। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। वाह्यमें आचरण ऐसा होना चाहिए जो उसमे सहायक हों। यही कारण है कि जो मानव मद्य, मास, मधुका त्याग कर चुकता है वही चरणानुयोगमें वर्णित धर्मके पालनका अधिकारी होता है। इसका मूल हेतु यही है कि मद्यपायी मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। उन्मत्त होनेसे उसका मन विक्षिप्त हो जाता है। जिसका मन विक्षिप्त हो गया वह धर्मको भूल जाता है। जो धर्मको भूल जाता है वह निःशङ्क हिंसादि पापोंमें अनर्गल प्रवृत्ति करता है। इसी प्रकार मांसादिकी प्रवृत्तिमें भी अनर्थ परम्परा जान लेना। आजकल हम लोग उपदेश देकर जनताका सुधार करनेकी चेष्टा नहीं करते। केवल, 'यह लोग पतित हैं' इसी प्रकारकी कथा कर संतोप कर लेते हैं। और की बात जाने दो हम को ५० वर्ष हो गये, प्रतिदिन यही कथा करते करते समय बीत गया परन्तु एक भी मनुष्यको सुमार्ग पर नहीं ला सके। कहाँ तक लिखें अथवा अन्यकी कथा क्या कहू मैं स्वयं अपनी आत्माको सुमार्ग पर नहीं ला सका। इसका अर्थ यह नहीं कि वाह्य आचरणमें त्रुटि की हो किन्तु जो अन्तरङ्गकी पवित्रता पदके योग्य है उसकी पूर्ति नहीं कर सका। तात्त्विक मर्म तो यही है कि अन्तरङ्गमे मूर्च्छा न हो। जब इसके ऊपर दृष्टि देते हैं तब मनमें यही आता है कि इस सासारिक प्रशंसा को त्याग आत्मदृष्टि करो यही सत्य मार्ग है।

धर्मशालासे चलकर एक छोटे ग्राममें पहुंच गया। इस ग्राममें ठहरनेका कोई स्थान न था तब वहाँ जो गृहस्थ था उसने अपने निवासको खाली कर दिया और कहा कि सानन्द ठहर जाइये, कोई संकोच न करिये तथा दुग्धादि पान करिये। हमने कहा हम लोग रात्रिको दुग्धादि पान नहीं करते। यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। सानन्द ठहराया, धान्यका घास बिछाने को दिया। सुखसे रात्रि बिताई। यहाँसे ६ मील चलकर एक ग्राममें ठहर गये। यहाँका कूप ७० हाथ गहरा था, पानी अति स्वादिष्ट था। यहाँसे भोजन कर चार मील चलनेके बाद चम्बल नदीके तट पर आगये। यहाँ श्रीमान् प्यारेलाल जी भगतके आनेसे बहुत ही प्रमोद हुआ। आपसे संलाप करते करते ४½ बजे धौलपुर पहुँच गये। आगरासे सेठ मटरूमल जी रईस भी आ गये। शिष्टाचारसे सम्मेलन हुआ। मन्दिरमें प्रवचन हुआ जो जनता थी वह आ गई। मनुष्यों की प्रवृत्ति सरल है। जैनी हैं यह अवश्य हैं परन्तु ग्रामवासी हैं, अतः जैनधर्मका स्वरूप नहीं समझते। यहाँके राजा बहुत ही सज्जन हैं। वन मे जाते हैं और रोटी आदि लेकर पशुओंको खिलाते हैं। राजाके पहुँचने पर पशु स्वयमेव उनके पास आ जाते हैं। देखो दयाकी महिमा कि पशु भी अपने हितकारीको समझ लेते हैं। यदि हम लोग दया करना सीख ले तो क्रूरसे क्रूर जीव भी शान्त हो सकता है। परन्तु हमने निजको महान् मान नाना अनर्थ करनेका ही अभ्यास कर रक्खा है। पशु कितनी ही दुष्ट प्रकृतिका होगा परन्तु अपने पुत्रकी रक्षाके लिये प्राण देनेमें पीछा नहीं करेगा। मनुष्योंमे यह बात नहीं देखी जाती। यदि यह मनुष्य अपने स्वरूपका अवलोकन करे तो पशुओंकी अपेक्षा अनन्त प्राणियों का कल्याण कर सकता है। मोक्षमार्गका उदय इसी मनुष्य

पर्यायमें होता है, अतः जिन्हे मनुष्यताकी रक्षा करना है उन्हें अनेक उपद्रवोंको त्याग केवल मोक्षमार्गकी ओर लक्ष्य देना चाहिये और जो समय गल्पवादमें लाते हैं उसे धर्म कार्योंमें लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँके राजाकी प्रवृत्ति देख हमको दयाका पाठ पढना चाहिये।

धौलपुरसे ५ मील चलकर त्रिरौदा पर शयन किया। भगत जी ने रात्रिको उपदेश दिया। जनता अच्छी थी। यदि कोई परोपकारी धर्मात्मा हो तो नगरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें अधिक जीवोंको मोक्षमार्गका लाभ हो सकता है। परन्तु जब दृष्टि स्वपर उपकार की हो तभी यह काम बन सकता है। अब मेरी शारीरिक शक्ति अतिक्षीण हो गई है। शारीरिक शक्तिकी क्षीणतासे वाचनिक कला भी न्यून हो गई है, अतएव जनताको प्रसन्न करना कठिन है। संसारमें वही मनुष्य जगत्का उपकार कर सकता है जो भीतरसे निर्मल हो। जैसे जब सूर्य मेघ पटलसे आच्छादित रहता है तब जगत् का उपकार नहीं कर सकता। उसका उपकार यही है कि वह पदार्थोंको प्रकाशित करता है और यह मनुष्य उन पदार्थोंमें से अपने योग्य पदार्थोंको चुन उनसे अपनी इच्छाएं पूर्ण करता है। सूर्यके समान ही वक्ताकी आत्मा जब तक कषायके पटलसे आच्छादित रहती है तब तक वह जगत्का उपकार नहीं कर सकता। यहासे चलकर मागरौल तथा एक अन्य ग्राममें ठहरते हुए अगहन सुदी ८ को राजाखेड़ा पहुँच गये।

यहा पर श्री भगत प्यारेलाल जी के द्वारा स्थापित एक जैन विद्यालय है। भगत जी के सत्प्रयत्नसे इस विद्यालयका दो लाखका फण्ड है। श्री पं० नन्हेलाल जी इसके मुख्याध्यापक हैं। आप श्रीयुत महानुभाव पं० वंशीधर जी सिद्धान्तशास्त्रीके मुख्य शिष्योंमें प्रथमतम शिष्य हैं। आपकी पठन-पाठनशैली अत्यन्त

प्रशस्त है। यहां पर कई जैन मंदिर हैं, अनेक गृह जैसवाल भाइयों के हैं। सर्व ही धर्म के प्रेमी हैं। वड़े प्रेमसे सवने प्रवचन सुना यथायोग्य नियम भी लिये। पाठशालाका उत्सव हुआ। उसमे यथाशक्ति दान दिया। जैनियोंमें दान देनेकी प्रक्रिया प्रायः उत्तम है। प्रत्येक कार्यमे दान देनेका प्रचार है किन्तु व्यवस्था नहीं। यदि व्यवस्था हो जावे तो धर्मके अनेक कार्य अनायास चल सकते हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्तिका नेतृत्व है—सब अपनेको नेता समझते हैं और अपने अभिप्रायके अनुरूप कार्य करनेका आग्रह करते हैं। यथार्थमे मनुष्य पर्याय पानेका फल यह है कि अपनेको सत्कर्ममे लगावे। सत्कर्मसे तात्पर्य यह है कि विपयेच्छाको त्यागे। विपय लिप्साने जगत्को अन्धा बना दिया। जगत्को अपनाना—अपना समझना ही अपने पातका कारण है। जन्मका पाना उसीका सार्थक है जो शान्तिसे वीते अन्यथा पशुवत् जीवन वधवन्धनका ही कारण है। मनुष्य अपने सुखके लिये परका आघात करता है परन्तु उसका इस प्रकारका व्यवहार महान् कष्टप्रद है। संसारमे जिनको आत्महितकी कामना है उसे उचित है कि परकी समालोचना छोड़े। केवल आत्मामे जो विकार भाव उत्पन्न होते हैं उन्हे त्यागे। परके उपदेशसे कुछ लाभ नहीं और न परको उपदेश देनेसे आत्मलाभ होता है। मोहकी भ्रान्ति छोड़ो।

राजाखेड़ामें तीन दिन ठहरकर आगराके लिये प्रस्थान कर दिया। वीचमे दो दिन ठहरे। जैनियोंके घर मिले। वड़े आदरसे रक्खा तथा संघके मनुष्योंको भोजन दिया, श्रद्धापूर्वक धर्मका श्रवण किया। धर्मके पिपासु जितने ग्रामीण जन होते हैं उतने नागरिक मनुष्य नहीं होते। देहातमे भोजन स्वच्छ तथा दुग्ध घी शुद्ध मिलता है। शाक वहुत स्वादिष्ट तथा पानी हवा सर्व ही उत्तम मिलते हैं। किन्तु शिक्षाकी त्रुटिसे वाचालताकी त्रुटि रहती

है। यदि एक दृष्टिसे देखा जावे तो वर्तमान शिक्षा उनमें न होनेसे उन लोगोंकी आर्षधर्म श्रद्धा है तथा स्त्रीसमाजमें भी इस्कूली और कालेजी शिक्षाके न होनेसे कार्य करनेकी कुशलता है। हाथसे पीसना, रोटी बनाना तथा अतिथिको भोजन दान देने की प्रथा है। फिर भी शिक्षा देनेकी आवश्यकता तो है ही। यह शिक्षा ऐसी हो जिससे मनुष्यमें मनुष्यताका विकास आ जावे। यदि केवल धनोपार्जनकी ही शिक्षा भारतमें रही तो इतर देशों की तरह भारत भी पर को हडपनेके प्रयत्नमें रहेगा और जिन व्यसनोंसे मुक्त होना चाहता है उनहीका पात्र हो जावेगा तथा भारतका जो सिद्धान्त था कि—

> अय परो निजो वेति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह बालकोंके हृदयमें अङ्कित हो जाता था और समय पा कर उसका पूर्ण उपयोग भी होता था। अब तो बालकोंके माँ बाप पहले ही गुरु जी से यह निवेदन कर देते हैं कि हमारे पुत्रको वह शिक्षा देना जिससे वह आनन्दसे दो रोटियाँ खा सके। जिस देशमें ऐसे विचार बालकोंके पिताके हों वहाँ बालक विद्योपार्जन कर परोपकार निष्णात होंगे यह असम्भव है। यहाँ पर मार्गमे जो ग्राम मिले उनमें बहुतसे क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ऐसे मिले जो अपने को गोलापूरब कहते हैं। हमारे प्रान्तमे गोलापूरब जैनधर्म ही पालते हैं परन्तु यहाँ सर्व गोलापूरब शिव, कृष्ण तथा रामके उपासक हैं। सभी लोगोंने सादर धर्मश्रवण किया किन्तु वर्तमानके व्यवहार इस तरह सीमित हैं कि किसीमे अन्यके साथ सहानुभूति दिखानेकी क्षमता नहीं। इसी से सम्प्रदायवादकी वृद्धि हो रही है। इस प्रान्त मे जैसवाल जैनी बहुत हैं, अन्य जातिवाले कुछ कम हैं। यहाँका जलवायु बहुत ही उत्तम है।

राजाखेड़ा से ६ मील चलकर एक नदी आई उसे पार कर निर्जन स्थानमें स्थित एक धर्मशालामें ठहर गये। स्थान बहुत रम्य तथा सुविधाजनक था। एक दहलान में सर्व समुदाय ठहर गया। पौष मास था, इससे सर्दी का प्रकोप था। रात्रिमें निद्रा देवी न जाने कहाँ पलायमान हो गई? प्रयत्न करने पर भी उसका दर्शन नहीं हुआ। अन्तरङ्गकी मूर्च्छासे उसके अभावमें जो लाभ संयमी महानुभाव लेते हैं उसका रञ्च भी हमारे पल्ले न पड़ा। प्रत्युत इसके विपरीत आर्तपरिणामोंका ही उदय रहा। कभी कभी अच्छे विचार भी आते थे परन्तु अधिक देर तक नहीं रहते थे। कभी कभी दिगम्बर मुद्राकी स्मृति आती थी और उससे यह शीतबाधा कुछ समयके लिये श्मशान वैराग्यका काम करती थी। यह देखते थे कि कब प्रातःकाल हो और इस संकटावस्थासे अपने को सुरक्षित करें। इत्यादि कल्पनाओंके अनन्तर प्रातःकाल आ ही गया। सामायिक कार्य समाप्त कर वहाँसे चल दिये। सूर्य की सुनहली धूप सर्वत्र फैल गई और उसकी हलकी ऊष्मा से कुछ संतोषका अनुभव हुआ। एक ग्राममें पहुँच गये। यहाँ पर श्रावकों के घर भी थे। वहीं पर भोजन किया। सबने बहुत आग्रह किया कि एक दिन यहाँ ही निवास करिये। हम लोग भी तो मनुष्य हैं हम को भी हमारी बात बताना चाहिये। केवल ऊपरी बातों से सन्तोष करा कर आप लोगोंका यहाँसे गमन करना न्यायमार्गकी अवहेलना करना है। हम ग्रामीण हैं, सरल हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम कुछ न समझते हों। हममें भी धर्मधारणकी योग्यता है। हाँ, हमने शिक्षा नहीं पाई। शिक्षासे तात्पर्य यह है कि स्कूल-कालेज तथा विद्यालयों में पुस्तक द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया किन्तु वह ज्ञान, जिसके द्वारा यह आत्मा अपना पराया भेद जान कर पापोंसे बचती है तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें प्राकृत रूप

से विद्यमान रहता ही है। यदि वह ज्ञान हममे न होता तो हम आपको अपना साधु न मानते और न आपको आहार दानकी चेष्टा करते। हम यह जानते हैं कि आहार दानसे पुण्यबन्ध होता है, आत्मा में लोभ का निरास होता है और मार्गकी प्रभावना होती है। बिना स्कूली शिक्षाके हममे दया भी है, हिंसासे भयभीत भी रहते हैं। भोजनादिमे निर्जीव अन्न पदार्थोंका भक्षण करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन बातोंमे हम लोग नागरिक मनुष्योंकी अपेक्षा न्यून नहीं हैं। केवल बाह्य आडम्बरोंकी अपेक्षा उनसे जघन्य हैं। यही कारण है कि आप लोग उनके प्रलोभनमे आ कर घण्टों व्याख्यान देकर भी विराम नहीं लेते हैं परन्तु हम लोगों पर आपकी इतनी भी दयादृष्टि नहीं होती कि थोडा भी समय प्रवचनमें लगा कर हमें सुमार्ग पर लानेकी चेष्टा करें। यह आपका दोष नहीं कालकी महिमा है। यदि तथ्य विचारसे इस पर आप परामर्श करेंगे तब हमारा भाव आपके हृदयंगम होगा। ग्रामोंकी अपेक्षा शहरोंमें न तो आपको अन्न ही उत्तम मिलता है और न जल ही। प्रथम तो जिनके द्वारा आपको भोजन मिलता है वे औरतें हाथसे आटा नहीं पीसतीं। बहुतोंके गृहमे तो पीसने की चक्की ही नहीं। पानीकी भी यही दुर्दशा है। घीकी कथा ही छोड़िये। हाँ, यह अवश्य है कि शहरमें धन्यवाद और कुछ अपील करने पर धन मिल जाता है जिससे वर्तमानमें संस्थाएं चल रही हैं। परन्तु हमारा तो यह विश्वास है कि शहरमे जो धन मिलता है उसमे न्यायार्जितका भाग न होनेसे उसका सदुपयोग नहीं होता। यही कारण है कि समाजमे निरपेक्ष धर्मका उद्योग करनेवाले बहुत ही अल्प देखे जाते हैं। अब आप लोगो की इच्छा जहाँ चाहे जाइये हमारा उदय ही हमारा कल्याण करेगा।

ग्रामके लोगोंका लम्वा व्याख्यान सुन हम हतप्रभ से रह गये कुछ भी उत्तर , देनेमे समर्थ नहीं हुए। यहांसे चल कर एक ग्राममे सायंकाल पहुँच गये और प्रात काल ३ मील चल एक दूसरे ग्राममे पहुँच गये। यहाँ पर एक ब्रह्मचारी जी रहते थे उन्हींने भोजनका प्रवन्ध किया। महती भक्तिके साथ संघको भोजन कराया। यहाँ पर आगरासे वहुतसे मनुष्य आ गये। सामायिक करनेके अनन्तर सर्व जन समुदायने आगराके लिये प्रस्थान कर दिया। दो मील जानेके वाद सहस्रों मनुष्योंका समुदाय गाजे वाजेके साथ छीपीटोलाके लिये चला। बाजा वजानेवाले वाजामे मधुर मधुर गाना सुना रहे थे जिसको श्रवण कर मार्गका परिश्रम विस्मृत सा हो गया। समुदायके साथ छीपीटोलाकी धर्मशाला मे पहुँच गये। ½ घण्टा व्याख्यानमें गया। व्याख्यानमे यही अलाप था कि हम लोगोंका महान् भाग्य है जो आपका शुभागमन हमारे यहाँ हुआ। हमने भी शिष्टाचारके नाते जो कुछ वना वक्तव्य दिया। वक्तव्य मे मुख्य वात यह थी कि—

मनुष्यभव पाना अति दुर्लभ है इसका सदुपयोग यही है कि निजको जानकर परका त्याग कर इस संसार बन्धनसे छूटनेका उपाय करना चाहिये। इसका मूल कारण संयम भाव है। यही तात्पर्य है कि सव ओरसे अपनेको हटा कर अपनेमे लीन हो जाना। यही संसारके विनाशका मूल है, अतः सवसे मोह त्यागो हम तो कोई वस्तु नहीं महापुरुषोंने भी तो यही मार्ग दिखाया है। महापुरुष वही है जो मोह-राग-द्वेष को निर्मूलित करनेका प्रयत्न करता है। राग द्वेषके अभावमे मूल कारण मोहका अन्त है। उसका अन्त करनेवाला ही सर्वपूज्य हो जाता है। पूज्यता अपूज्यता स्वाभाविक पर्याय नहीं किन्तु निमित्त पाकर आविर्भूत होती है। जहाँ मोहादिरूप आत्मपरिणति होती है वहीं अपूज्यताका व्यवहार

होने लगता है और जहाँ इनका नाश होता है वहीं पूज्यताका व्यवहार होने लगता है। पूज्यता अपूज्यता किसी जाति विशेषवाले व्यक्तिकी नहीं होती। जहाँ पापो की निवृत्ति होकर आत्मश्रद्धा हो जाती है वहीं पूज्यता आ जाती है और जहाँ पापोंकी प्रवृत्ति होने लगती है वहीं अपूज्यताका व्यवहार होने लगता है। यद्यपि समस्त आत्माओंमे निर्मल होनेकी योग्यता है तथापि अनादि कालसे पर पदार्थोंका सम्बन्ध इस प्रकारका हो रहा है कि कुछ भी सुध बुध नहीं रहती। यह जीव निरन्तर शरीरके अनुकूल ही प्रवृत्ति करता है। आप लोगोंने बाजा बजवा कर बाह्य प्रभावना की। बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाया पर आभ्यन्तर प्रभावनाकी ओर प्रयास नहीं हुआ। यदि आभ्यन्तर प्रभावना हो जाय तो स्वर्णमे सुगन्धि हो जावे। अपनी ओर किसीका लक्ष्य नहीं। प्रायः सर्वत्र यही दृश्य देखा जाता है। हमारी प्रभावनासे अन्य लोग लाभ उठा लेते हैं पर हम तो दर्शकमात्र ही रहनेका प्रयास करते हैं। अन्यको धर्मका स्वरूप आ जावे यही चेष्टा हमारी रहती है।

छीपीटोलाकी धर्मशालामे २ दिन ठहरे। तीसरे दिन श्री महावीर इन्टर कालेजका उत्सव था गाजे बाजेके साथ वहां गये। उत्सवमें अच्छे अच्छे मनुष्योंका समारोह था। व्याख्यानादिका अच्छा प्रबन्ध था। जितने व्याख्यान हुए वे सब प्रायः लौकिक पदार्थोंके पोषक थे। पारमार्थिक दृष्टि लोगों की नहीं। यद्यपि आज शिक्षाका प्रचार अधिक है परन्तु पारमार्थिक दृष्टिकी ओर ध्यान नहीं। पहले समयमें शिक्षाका उद्देश्य आत्महित था परन्तु वर्तमानकी शिक्षाका उद्देश्य अर्थार्जन और कामसेवन है। प्राचीन ऋषियों ने कहा है कि—

दुःखाद्बिभेषि नितरामभिवाञ्छसि सुखमतोऽहमप्यात्मन्।
दुःखापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुमतमेव ॥

अब यह कथा पुराणोंमे रह गई है। इस कथाको जो कहे वह मनुष्योंकी गणनामे गणनीय नहीं। यही नहीं, लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि इस उपदेशने हमारे भारतवर्षका पतन कर दिया। सभ्य वही जो द्रव्यको अर्जन कर सके और अच्छे वस्त्रादिकोंसे सुसज्जित रहे। स्त्री और पुरुषोंमे कोई अन्तर न देखे। जैसे आप भ्रमणको जाता है वैसे ही स्त्रीगण भी जावे। जिस प्रकार तुम्हें सबसे भाषण करनेका अधिकार है उसी तरह स्त्री समाज को भी हो। अस्तु, विषयान्तरको छोड़ो। सभाका काल पूर्ण होने पर कालेज देखा, व्यवस्था बहुत सुन्दर थी, मटरू-मल जी वैनाड़ाका अनुशासन प्रशंसनीय है। यहाँ पर एक छात्रावास भी है तथा छात्रावासमे जो छात्र रहते हैं उनके धर्म-साधनके अर्थ १ सुन्दर मन्दिर भी है। उसमे एक बृहत्मूर्ति है जिसके दर्शनसे चित्त शान्त हो जाता है। यह सर्व कार्य वैनाडा जी के द्वारा सम्यक्रीतिसे चल रहा है। तदनन्तर गाजे बाजेके साथ अन्य जिन मन्दिरोंके दर्शन करते हुए बेलनगञ्जकी जैन धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशालामे ऊपर मन्दिर है। उसमें एक बिम्ब बहुत ही मनोज्ञ है। दर्शन करनेसे अत्यन्त शान्ति आई। यह बिम्ब श्री पद्मचन्द्र जी वैनाड़ा और उनके सुपुत्र मटरूमल्ल जी वैनाड़ा ने शाहपुर-गणेशगंज (सागर) मे पञ्चकल्याण के समय प्रतिष्ठित कराकर यहाँ पधराया है। इसके दर्शन कर भव्योंको जो आनन्द आता है वह वे ही जानें। मन्दिरमे दो वेदिकाएं और भी हैं। धर्मशालाके बगलमे श्री स्वर्गीय मूलचन्द्र सेठकी दुकान है उसमे श्री मगनमल्ल जी पाटनी ३ के स्वामी हैं। आप अत्यन्त सज्जन हैं। आप और आपकी धर्मपत्नी-दोनो प्रातःकाल जिनेन्द्र देव का अर्चन करते हैं। आपके दो सुपुत्र हैं बड़े का नाम श्री कुँवर नेमिचन्द्र है। दोनों ही सुयोग्य हैं। नेमिचन्द्र जीकी अध्यात्म-

शास्त्र में अधिक रुचि है। आपका अभिप्राय श्री कानजी स्वामीके अनुकूल है। विशेष विवेचनकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ पर श्री ताराचन्द्र जी रपरिया रहते हैं। आप आँग्लविद्या के बी ए. हैं। फिर भी जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। आपकी व्याख्यान शैली अति उत्तम है, चारों अनुयोगों के ज्ञाता हैं, आपका व्यवहार अत्यन्त निर्मल है, फैशनकी गन्ध भी आपको नहीं है, आपके मामा विशिष्ट सम्पन्न हैं फिर भी आप स्वतन्त्र व्यापार कर स्वयं सम्पन्न हुए हैं। धार्मिक पुरुष हैं। विद्वानों से प्रेम रखते हैं। आपको मण्डलीमें प्रायः तत्त्वरुचिवाले ही हैं। प्रतिदिन शास्त्र होता है। श्रोताओं में श्री बाबूराम जी शास्त्री भी आते हैं। आप बहुत तार्किक हैं—किसी किसी पदार्थ को सहसा नहीं मान लेते। तर्क भी अनर्गल नहीं करते। यदि यह जीव जैनधर्मके शास्त्रोंका अभ्यास करे तो एक ही हो। परन्तु गृहस्थीके चक्रसे पृथक् हो तब न। इनकी स्त्री सुशीला है। प्रतिदिन दर्शनादि करती है। जब कि इसका जन्म विप्रकुलका है। ताराचन्द्र जी के सम्बन्धसे प० तुलाराम जी व वकील हजारीलाल जी भी अच्छे धर्मज्ञ हो गये हैं। दो मारवाडी भाई तथा ख्यालीराम जी भी इनके शास्त्रमें आते हैं। यहाँ पर एक सभा हुई जिसमे जनताका समारोह अच्छा था। श्वेताम्बर साधु भी अनेक आये थे। साम्यरसके विषयमे व्याख्यान हुआ। विषय रोचक था, अतः सबको रुचिकर हुआ। आत्महित इसीमें है। इससे उच्चतम विषय क्या हो सकता है। यदि इस पर अमल हुआ तो सर्व उपद्रव अनायास ही शान्त हो जावेंगे। परमार्थसे कहनेका नहीं अनुभव गम्य है परन्तु अनुभव तो संसार के विषयोंमें लीन हो रहा है, इसका स्वाद आना ही दुर्लभ है। उपयोग क्रमवर्ती है, अतः एक कालमें एक ही पदार्थ

तो वेदन करेगा। यह ज्ञानमें नहीं आता कि जब ज्ञान स्वसंवेद्य ही होता है तब वह परको वेदन करता है यह असंभव है। फिर जो यह स्थान स्थान पर लिखा है कि संसारी जीवने आज तक अपनेको जाना ही नहीं यह समझमें नहीं आता। इसका उत्तर अमृतचन्द्र स्वामी ने स्वयं लिखा है कि ज्ञान तादात्म्य होने पर आत्मा आत्माकी उपासना करता ही है फिर क्यो उपदेश देते हो कि आत्माकी उपासना करना चाहिये? उत्तर—ज्ञान का आत्माके साथ तादात्म्य होने पर भी क्षणमात्र भी आत्मा की उपासना नहीं करता। तो इसके पहले क्या आत्मा अज्ञानी है? हाँ अज्ञानी है इसमें क्या सन्देह है? अतः इन पर पदार्थोंसे सम्बन्ध त्यागना ही श्रेयोमार्ग है। व्याख्यान समाप्त होने पर सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये। यहाँ पर दो आदमी रोगग्रस्त हो गये। उनकी शुश्रूषा यहाँ वालोंने अच्छी तरहसे की। वैद्य डाक्टर आदिकी पूर्ण व्यवस्था रही। आगरा बहुत भारी नगर है। यहाँ पर बहुत मन्दिर हैं। हम लोग सब मन्दिरोंमें नहीं जा सके। यहाँ निम्नाङ्कित सद्विचार हृदय में उत्पन्न हुए।

'संसार की असारताका निरूपण करना कुछ लाभदायक नहीं प्रत्युत आत्मपुरुषार्थ करना परमावश्यक है। आत्माका पुरुषार्थ यही है कि प्रथम पापोंसे निवृत्ति करे अनन्तर निजतत्त्वकी शुद्धि का प्रयास करे।'

'परिणामों की निर्मलताका कारण पर पदार्थोंसे सम्बन्ध त्याग है। सम्बन्धका मूल कारण आत्मीय बुद्धि ही है'।

'चित्त वृत्ति शमन करने के लिये आत्मश्लाघा त्यागनेकी महती आवश्यकता है। स्वात्मप्रशंसा के लिये ही मनुष्य प्रायः ज्ञानार्जन करते हैं, धनार्जन करते हैं, अन्यकी निन्दा करते हैं, स्वात्मप्रशंसा करते हैं पर मिलता जुलता कुछ नहीं।'

'शिक्षा का उद्देश्य शान्ति है, उसका कारण अध्यात्मशिक्षा है, अध्यात्मशिक्षासे ही मनुष्य ऐहिक तथा पारलौकिक शान्तिका भाजन हो सकता है।'

'धार्मिक शिक्षा किसी सम्प्रदाय की नहीं। वह तो प्रत्येक प्राणी की सम्पत्ति है। उसका आदर पूर्वक प्रचार करना राष्ट्रका मुख्य कर्तव्य है। जिस राष्ट्रमे उसके विना केवल लौकिक शिक्षा दी जाती है वह राष्ट्र न तो स्वयं शान्तिका पात्र है और न अन्यका उपकारी हो सकता है। आगराके जैन कालेज में धार्मिक शिक्षाका जो प्रवन्ध है वह प्रशंसनीय है। धार्मिक जीवन के लिये धार्मिक शिक्षा की मुख्य आवश्यकता है।'

'आजकल भौतिकवादके प्रचारसे संसारका सहार हो रहा है। इसका मूल कारण एकाङ्गी शिक्षा है। यदि इसको अध्यात्म-शिक्षाके साथ मिश्रण किया गया तो अनायास जगत् का कल्याण हो जायगा।'

'वहुत वोलना ही दुःख का मूल है। संसार में वही मनुष्य सुख का भाजन हो सकता है जो निःस्पृह हो। शान्तिका मार्ग वहीं है जहाँ निवृत्ति है। केवल जल्पवादसे कुछ लाभ नहीं। केवल गल्प-कथाके रसिक मनुष्योंसे सम्पर्क रहना ही संसार् वन्धनका मूल कारण है।'

'यहाँ एक दिन स्वप्नमें स्वर्गीय वावा भागीरथ जी की आज्ञा हुई कि हम तो वहुत समयसे स्वर्गमें देव हैं। यदि तू कल्याण चाहता है तो इस संसर्गको छोड़। तेरी आयु अधिक नहीं, शान्ति से जीवन विता। यद्यपि तेरी श्रद्धा दृढ़ है तथापि उसके अनुकूल प्रवृत्ति नहीं। हम तुम्हारे हितैषी हैं। हम चाहते हैं कि तुम्हे कुछ कहें परन्तु आ नहीं सकते। आदरसे त्यागको अपनाओ। आदरसे

अपनी अवज्ञा आप करते हो। अपना अनादर जो करता है उससे अन्यका आदर नहीं हो सकता। मनुष्य जन्म एक महती निधि है। यदि इसका उपयोग यथार्थ किया जावे तो इस जन्म-मरणके रोग से छुटकारा हो सकता है, क्योंकि संसारघातका कारण जो संयम है वह इसी विधिसे मिलता है। परन्तु हम इतनी पामरता करते हैं कि राखके लिये चन्दनको भस्म कर देते हैं। स्वप्नमें ही बाबाजी ने कहा कि तुमसे जन्मान्तरका स्नेह है। अभी एक वार तुम्हारा हमारा सम्बन्ध शायद फिर भी हो। क्षुल्लक पदकी रक्षा करना कोई कठिन कार्य नहीं। मनुष्य संपर्क छोड़ो। यदि कल्याण मार्ग की इच्छा है तो सर्व उपद्रवोंका त्याग कर शान्त होनेका उपाय करो। केवल लोकैषणाके जालमें मत पड़ो। हम तो देखा और अनुभव किया कि अभी कल्याणका मार्ग दूर है। यदि उद्दिष्ट भोजन जानकर करते हो तो क्षुल्लक पद व्यर्थ लिया। लोक प्रतिष्ठा के लिये यह पद नहीं। यह तो कल्याणके लिये है, परकी निन्दा प्रशंसाकी परवाह न करो।'

यहाँ रहनेका लोगोंने आग्रह बहुत किया और रहना लाभदायक भी था तो भी हमने मथुरा जानेका निश्चय कर यहाँसे चल दिया।

मथुरामें जैन संघका अधिवेशन

आगरासे ३ मील चलकर एक महाशयकी धर्मशालामें १५ मिनट आराम किया पश्चात् वहाँसे चलकर सिकन्दराबाद आगये। रात्रि सुखसे बीती, प्रातःकाल शौचादि क्रियासे निवृत्त हो अकबर बादशाहका मकबरा देखने गये। मकबरा क्या है दर्शनीय महल है। उसमें अरबी भाषासे सम्पूर्ण मकबरा लिखा गया है। क्या है यह हमको ज्ञात नहीं हुआ और न किसीने

वताया। मुसलमान वादशाहोंमें यह विशेषता थी कि वे अपनी संस्कृतिके पोषक वाक्योंको ही लिखते थे। जैनियोंमें बड़ी बड़ी लागतके मन्दिर हैं परन्तु उनमें स्वर्णका चित्राम मिलेगा, जैनधर्मके पोषक आगम वाक्योंका लेख न मिलेगा। अस्तु, समयकी बलवत्ता है, धर्म जो आत्माकी शुद्ध परिणति है उसका सम्बन्ध यद्यपि साक्षात् आत्मासे है तथापि निमित्त कारणोंकी अपेक्षा परस्परा बहुतसे कारण हैं। उन कारणोंमें आगम वाक्य बहुत ही प्रबल कारण हैं। यदि इस मकबरामें पठन पाठनका काम किया जावे तो हजारों छात्र अध्ययन कर सकते हैं। इतने कमरोंमें अकारादि वर्णोंकी कक्षासे लेकर 'एम० ए० तककी कक्षा खुल सकती है, परन्तु इतनी विशाल इमारतका कोई उपयोग नहीं और न उत्तर काल में होनेकी संभावना है। जो राज्यसत्ता है वह यह चाहती है कि ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि जिससे किसीको आघात पहुँचे। यह ठीक है परन्तु निरर्थक पड़ी रहे यह भी ठीक नहीं, उसका उपयोग भी तो होना चाहिये।

यहाँसे चलकर सिकन्दराबाद आ गये। यहाँ पर श्रीमान् पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य भी आए। आप बहुत ही शिष्ट और विद्वान् हैं। आपने श्लोकवार्तिक भाष्यका भाषानुवाद किया है। आपके अनेक शिष्य वर्तमानकालीन मुख्य विद्वानोंकी गणना में हैं। यहाँ ५-७ घर जैनियोंके हैं। मकबराका बृहद् भवन निरर्थक पड़ा है इसकी चर्चा मैंने पण्डितजीसे भी की परन्तु सत्ताके बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता यह विचार कर संतोष धारण किया। मनमें विचार आया कि—

मोही जीवों की मान्यता विलक्षण है और इसी मान्यताका फल यह संसार है। जहाँ शुभ परिणामोंकी प्रचुरता है वहाँ वाह्यमें मनुष्योंके प्रति सद्व्यवहार है। परन्तु यहाँ तो धर्मान्धताकी इतनी

प्रचुरता है कि जो इस्लाम धर्मको नहीं मानते वे काफिर हैं। यह लिखना मतकी अपेक्षा प्रत्येक मतवाले लिखते हैं। जैसे वैदिक धर्मवाले कहते हैं कि जो वेदवाक्यों पर श्रद्धा न करे वह नास्तिक है। जैनधर्मवालोंका यह कहना है कि जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा नहीं वह मिथ्यादृष्टि है। यद्यपि ऐसा कहना या लिखना अपनी अपनी मान्यताके अनुकूल है तथापि इसका यह अर्थ तो नहीं कि जो अपने धर्मको न माने उसको कष्ट पहुँचाओ। मुसलिम धर्ममें काफिरके मारनेमें कोई पाप नहीं। बलिहारी है इन विचारोंकी। विचारोंमें विभिन्नता रहना कोई हानिकर नहीं परन्तु किसी प्राणीको बलात् कष्ट देना परम अन्याय है। परन्तु यह संसार है। इसमें मानव अपनी मानवताको भूल दानवताको आत्मीय परिणति मान कर जो न करे अल्प है। अन्यायी जीव क्या क्या अनर्थ नहीं करते यह किसीसे गुप्त नहीं। धर्मकी वास्तविकताको न समझ कर मनुष्य अपने अनुकूल होनेसे ही चाहे वह कैसा ही हो उसे आदर देता है और यदि प्रतिकूल हो तो अनादरका पात्र बना देता है। वास्तवमें धर्म कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं किन्तु जिसमें जो रहता है वही उसका धर्म है। जलमें उष्ण स्पर्श नहीं रहता इसलिये वह उसका धर्म नहीं है। अग्निका सम्बन्ध पाकर जल उष्ण हो जाता है। यद्यपि उष्णस्पर्शका तादात्म्य वर्तमान जलमें है तथापि वह उसमें सर्वथा नहीं रहता अतः उसका स्वभाव नहीं कहा जा सकता। स्वभाव वह है जो पदार्थमें स्वतः रहता है और विभाव वह है जो परके संसर्गसे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीवमें ज्ञान रहता है अतः वह उसका स्वभाव है। यद्यपि ज्ञान वर्तमान पर्यायमें रागादिरूप हो जाता है तथापि परमार्थसे ज्ञानमें राग नहीं। वह तो आत्माका औदयिक परिणाम है। जिस कालमें चारित्रमोहकी राग प्रकृतिका उदय होता है उस कालमें आत्माका श्रीजिनेन्द्र परिणाम

होता है। उस समय यदि तीव्र राग हुआ तो यह आत्मा विषयोंके साधक स्त्री पुत्रादि तथा अन्य अनुकूल पुद्गलोंमे राग करने लगता है और निरन्तर उन्हीं पदार्थोंके साथ रुचि रखता है। यदि मन्द राग हुआ तो पञ्च-परमेष्ठीमे अनुराग करनेका व्यापार करता है तथा प्राणियों पर दया करनेकी परिणति करता है। तीर्थ क्षेत्रादि पर जानेकी चेष्टा करता है, पासमे यदि द्रव्यादि हुआ तो उसे परोपकारमे लगाता है। परमार्थसे पर पदार्थोंने आदान प्रदानकी जो पद्धति है वह सर्व मोहजन्य परिणामोंकी चेष्टा है। क्योंकि जो वस्तु हमारी है ही नहीं उसे दान करनेका हमे अधिकार ही क्या है तथा जो वस्तु हमारी है उसे हम दे ही नहीं सकते। हमारी वस्तु हमसे अभिन्न रहेगी अतः हम उसका त्याग नहीं कर सकते। जैसे वर्तमानमे हमारी आत्मामे क्रोधका परिणमन हुआ उस समय क्षमादिकका तो अभाव है—क्रोधमय हम हो रहे हैं वही हमारा स्वरूप है, क्योंकि द्रव्य विना परिणामके रह नहीं सकता। क्षमाका उस कालमें अभाव है अतः जिसकालमे आत्मा क्रोधरूप होता है उस कालमें क्रोध ही है। एक गुणका एक कालमें एक रूप ही तो परिणमन होगा। परन्तु उस समय भी जो विवेकी मनुष्य हैं वे उसे वैभाविक परिणति मान कर श्रद्धामे उससे विरक्त रहते हैं—यही उसका त्यागना है। देखा जाता है कि गुरु महाराज शिष्यके ऊपर क्रोध भी करते हैं ताड़ना भी करते हैं, परन्तु अभिप्राय ताड़ना का नहीं है। इसी तरह ज्ञानी जीवको कर्मोदयमें नाना प्रकारके भाव होते हैं परन्तु अन्तरङ्गमे श्रद्धा निर्मल होनेसे उसे करना नहीं चाहते जिस प्रकार जब मनुष्य मलेरिया ज्वरसे पीड़ित होता है तब वह वैद्य द्वारा बतलायी हुई कटुकसे कटुक औषधिका सेवन करता है परन्तु अन्तरंगमें उसे सेवन करनेकी रुचि नहीं इसी प्रकार ज्ञानी जीव कर्मोदयसे बाह्य पदार्थोंका संग्रह करता है, सेवन भी करता है

परन्तु अन्तरंगसे सेवन नहीं करना चाहता। अनादि कालीन संस्कारके विद्यमान रहते इसे विना चाहके भी काम करना पड़ता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञाएँ अनादि कालसे जीवके लग रहीं हैं? क्योंकि अनादि कालसे मिथ्यात्वका सम्बन्ध है इसीसे यह जीव परको अपना मान रहा है। इसी माननेके कारण शरीरको भी जो स्पष्ट पर द्रव्य है निज मानता है। जव उसे निज मान लिया तव उसकी रक्षाके अनुकूल भोजन ग्रहण करता है तथा जो प्रतिकूल हैं उन्हे त्यागता है। नाशके कारण आ जावें तो उनसे पलायमान होनेकी इच्छा करता है। जव वेदका उदय आता है तव स्त्री पुरुष परस्पर विषय सेवनकी इच्छा करते हैं तथा मोहके उदयमे पर पदार्थोंको ग्रहण करनेकी इच्छा होती है। इस तरह अनादिसे यह चर्खा चल रहा है। जिस समय दैवात् संसार तट समीप आ जाता है उस समय अनायास इस जीवके इतने निर्मल परिणाम होते हैं कि अपनेको परसे भिन्न माननेका अवसर स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। जहाँ आपसे भिन्न परको माना वहाँ संसार का वन्धन स्वयमेव शिथिल हो जाता है। संसारके मूल कारणके जाने पर शेष कर्म स्वयमेव पृथक् हो जाते हैं। जैसे दशवें गुणस्थान तक ज्ञानावरणादि षट् कर्मोंका वन्ध होता है। वन्धमे कारण सूक्ष्म लोभ है, वँधनेवाले कर्मोंकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही पड़ती है परन्तु जव दशवें गुणस्थानके अन्तमें मोहका सर्वथा नाश हो जाता है तव वारहवें गुणस्थानके उपान्त्य समयमे निद्रा प्रचला और अन्तमें ज्ञानावरणकी ५, अन्तरायकी ५ और दर्शनावरणकी ४ प्रकृतियाँ नाशको प्राप्त हो आत्माको केवलज्ञानका पात्र वना देती हैं। यही प्रक्रिया सर्वत्र है—करणलब्धिके परिणाम होने पर जव सम्यग्दर्शन आत्मामे उत्पन्न हो जाता है तव अनायास ही मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता। शेष प्रकृतियोंका जो

बन्ध होता है वह मिथ्यात्वके साथमें जैसा होता था वैसा नहीं होता। अतः जहाँ तक बने विपरीत अभिप्रायको दूर करनेका बुद्धि-पूर्वक प्रयत्न करो। बिना निर्मल अभिप्रायके कल्याण होना असंभव है। कल्याणका घातक मलिन अभिप्राय ही है। यद्यपि इसका निर्वचन होना कठिन है फिर भी पर पदार्थमें जो निजत्व कल्पना होती है। वही इसका कार्य है वही विपरीत अभिप्राय है। इसीसे असत्कल्पनाएं होती हैं। इसीके रहते आत्मा किसीमें राग, किसीमें द्वेष और किसीमें उपेक्षा करता है। इस कार्यसे इसे पहिचान कर इनके छोड़नेका प्रयत्न करो। समस्त संसारी जीवोंके मन वचन कायके व्यापार स्वयमेव होते रहते हैं। ये ही व्यापार जब मन्द कषायके साथ हों तो शुभ कहलाते हैं और शुभास्रवके हेतु भी हो जाते हैं और तीव्र कषायके साथ हों तो अशुभ शब्दसे कहे जाते हैं और अशुभ आस्रवके कारण होते हैं। इस प्रकार यह परम्परा अनादि कालसे चली आती है। कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो और मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों का मन्द उदय हो तो द्रव्यलिङ्ग हो जाता है परन्तु वह द्रव्यलिङ्ग अनन्त संसारका घातक नहीं। यद्यपि द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्गके बाह्य आचरणमें कोई अन्तर नहीं रहता फिर भी इनके कार्यमें प्रचुर अन्तर हो जाता है। द्रव्यलिङ्गसे पुण्य बन्ध होता है अर्थात् अघातिया कर्मोंमें जो पुण्य प्रकृतियाँ हैं उनका विशेष बन्ध होता है परन्तु घातिया कर्मोंकी जो पाप प्रकृतियाँ हैं उनका बन्ध नहीं रुकता। कर्मोंमें घातिया कर्म जो हैं वे सब पाप रूप ही हैं उनमें सर्व आपत्तियोंकी जड मोह (मिथ्यात्व) है। इसकी सत्ता स्वयं अपने अस्तित्वकी रक्षा करती है और शेष घातिया व अघातिया कर्मोंकी सत्ता रखती है। इसके अभावमें शेष कर्मोंका अस्तित्व सेनापतिके अभावमें सेनाके अस्तित्व तुल्य रह जाता है। वृक्षकी जड़ उखड़ जाने पर उसके हरापनका अस्तित्व कितने काल तक

रहेगा ? अतः जिन जीवोंको संसार वन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलापा हो उन्हें प्राणपन—पूर्ण प्रयत्नसे सर्व प्रथम इसका निर्मूल उच्छेद करना चाहिये। इसके होने पर जो कार्य करोगे वही सफल होगा।

यहाँ पर आगरासे भी अनेक महानुभाव आये थे। यहीं पर एक क्षत्रिय महोदय भी मिले। आपने अपने ग्राम ले जानेका आरम्भ किया। आपका ग्राम वहीं था जहाँ श्री सूरदासजी ने जन्म लिया था। ग्रामका नाम रुनकता था और क्षत्रिय महोदयका नाम ठाकुर अमरसिंह था। आप डाक्टर थे और कवि भी। आपने अपनी कविता सुनाई। रात भर इसी रुनकता ग्राममें रहे। ठाकुर साहबका अभिप्राय था कि एक दिन यहाँ निवास किया जावे तथा हमारे गृह पर आप पधारें, हमारे कुटुम्बीजन आपका दर्शन कर लेवें तथा वहीं पर आपका भोजन हो तब हमारा गृह शुद्ध होवे। परन्तु हृदयकी दुर्वलता और लोगोंकी १४४ धाराने यह न होने दिया। मुख्यतया इसमें हमारी दुर्वलता ही वाधक हुई। यहाँसे चले तो ठाकुर साहब वरावर जिस ग्राममें हमने निवास किया वहाँ तक आये तथा कहने लगे क्या यही जैनधर्म है ? जिस धर्ममें प्राणी मात्रके कल्याणका उपदेश है आप लोगोंने अभी उसके मर्मको समझा नहीं। हमें दृढ़ विश्वास है कि धर्मका अस्तित्व प्रत्येक जीवमें है किन्तु उपचारसे वाह्य कारण माने जाते हैं। आप लोग भी इस वातको जानते हैं कि वाह्य कारणोंमें उलझना अच्छा नहीं। जव आप लोग व्याख्यान करते हैं तव ऐसे ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं कि जिन्हें श्रवण कर अन्य प्राणी मोहित हो जाते हैं। हमने कई स्थानों पर श्रवण किया 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु' अर्थात् प्राणीमात्रमें मैत्री भावना आना चाहिये। मैत्रीका अर्थ है किसी प्राणीको दुःख

न हो ऐसी अभिलाषा रखना। प्राणीमात्रका दुःख दूर हो जावे इसकी अपेक्षा प्राणीमात्रको दुःख न हो यह भावना उत्कृष्ट है। जो आत्मगुण विकासमे ला चुके हैं ऐसे महानुभावोंको देखकर हर्षित हो जाना इस भावनाका नाम प्रमोदभावना है। हम आपके इस अर्थको श्रवण कर गद्गद हो गये। जो जीव क्लेशासे पीड़ित है, दुखी हैं, दीन हैं, दारिद्र्य कर पीडित हैं तथा धनी होकर भी कृपण है उन्हे देखकर करुणा भाव करना तथा जो मोक्षमार्गकी कथा न तो स्वयं श्रवण करते हैं और न श्रवण करनेकी अभिलाषा ही रखते हों ऐसे दुराग्रही लोगोमें माध्यस्थ्य भावना रखना ही उचित है। ऐसा जिस धर्मका अभिप्राय है—कहाँ तक कहे जहाँ उन जीवोंकी भी रक्षाका उपाय बतलाया है कि जो दृष्टिगोचर भी नहीं होते। जैसे अनाजके ऊपर जहाँ फुल्ली आ जावे वहाँ उस अनाजको उपयोगमे मत लाओ, जो रस स्वादसे चलित हो जावे उसे मत भक्षण करो। कहाँ तक लिखें जो जल जिस कूपादिसे लाये हो उसे छानकर जीवानी उसी जलाशयमे निक्षिप्त कर दो। जहाँ ऐसी दयाका वर्णन हो वहाँ पर हमारे साथ जो आपका व्यवहार है क्या वह प्रशंसनीय है? हम इस बातको मानते हैं कि हमारा आचरण आप लोगोंकी अपेक्षा अच्छा नहीं है परन्तु यह सर्वथा मानना अच्छा नहीं, क्योंकि हम लोगोंके यहाँ भी आटा, गेहूँ चुग चुग कर पीसा जाता है, चावल आदि भी चुग कर खाते हैं, शाकादिक देखकर बनाये जाते हैं। हाँ, पानी छानकर नहीं पीते तथा जैन मन्दिर नहीं जाते सो बहुतसे लोग आपमे भी ऐसे हैं जो बिना छना पानी पी जाते हैं तथा नियमपूर्वक मन्दिर नहीं जाते। अस्तु, इन युक्तियोसे हम आपको लज्जित नहीं करना चाहते परन्तु हृदयसे तो कहो कि आप जैनधर्मके प्रचारका कितना उपाय करते हो? आप पैदल यात्रा कर रहे हैं इसलिये उचित तो यह था

कि जहाँ पर जाते वहाँ आम जनतामें धर्मका उपदेश करते। जो मनुष्य उसमें रुचि करते वहाँ १ या २ दिन रहकर उन्हें भोजनादि प्रक्रियाकी शिक्षा देते तथा उनके गृह पर भोजन करते तब जैनधर्मका प्रचार होता या जहाँ ठहरे वहाँ पर साथमें रहनेवालोंने भोजन दिया खाया। रात्रिको जहाँ ठहरे वहाँ पर कुछ काल तो मार्गकी कथामें गया, कुछ गल्पवादमें गया, अन्तमें सो गये। एक त्यागीके भोजनमें बीसों रुपये व्यय हो गये, फल क्या निकला? केवल मार्गकी धूलि छानना ही तो हुआ। यह हम जानते हैं कि एक त्यागी २०) नहीं खा सकता परन्तु उसीके अर्थ तो यह आडम्बर है। कल्पना करो यदि वह एकाकी चलता तो जिस ग्राममें जाता मुझे विश्वास है कि उस ग्राममें एक आध दिन ही व्यवस्था होनेमें कठिनाई होती पश्चात् सब ठीक हो जाता और लोग उसके जानेकी व्यवस्था कर देते। मैं हृदयसे कहता हूँ मथुरा तक तो मैं पहुँचा देता। वर्णीजी! आपसे मेरा अति प्रेम हो गया है इसका कारण आपकी सरलता है परन्तु खेद है कि लोगोंने इसका दुरुपयोग किया तथा आपसे जो हो सकता था वह न हुआ। इसमें मूल कारण आप भीरु प्रकृतिके हैं। आपकी भीरु प्रकृति इतनी है कि मैं इनके यहाँ भोजन करने लगूँगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे? यह आपकी कल्पना निःसार है, लोग क्या कहेंगे? हजारों मनुष्य सुमार्ग पर आजावेंगे। आजकल अहिंसा तत्त्वकी ओर लोगोंकी दृष्टि झुक रही है सो इसका मूल कारण यह है कि अहिंसा आत्माकी स्वच्छ पर्याय है। 'अहिंसा ही धर्म है' इसका अर्थ यह है कि जब आत्मामें मोहादि परिणाम नहीं रहता तब आत्मा तन्मय हो जाता है। अहिसा किसी एक जाति या एक वर्ण विशेषका धर्म नहीं है। जिस आत्मामें जिस काल तथा जिस क्षेत्रमें रागादि परिणाम नहीं होते हैं उसीके पूर्ण अहिसा धर्म होता है। आपने ही तो सुनाया था कि—

आत्मामे रागादि भावोंका उत्पन्न न होना अहिसा है और उन्हींका उत्पन्न होना हिसा है। अस्तु, हमको ऐसी प्रवृत्ति करना चाहिये जो हमारी प्रवृत्ति पर पदार्थोंके संसर्गसे दूषित न हो। आप लोग न तो स्वयं अहिसा धर्म पालते हैं और न पर को उसकी शिक्षा देते हैं। हम लोग भी इतने अज्ञानी हो रहे हैं कि आपसे धर्म चाहते हैं। जो धर्म आप पालते हैं वह हम भी पाल सकते हैं। हमने यह समझ रक्खा है कि आप लोग ही धर्मके उपदेष्टा हैं। आपको दान देनेसे हमें पुण्यबन्ध होता है यह भ्रम निकल गया। आप लोग भयभीत हैं, बड़े आदमियों की हाँ में हाँ मिलानेवाले हैं, उनके विरुद्ध अक्षर भी नहीं बोल सकते। अर्थात् उनकी बात चाहे आगम विरुद्ध हो आप लोग उसका प्रत्युत्तर न देवेंगे अथवा हाँ में हाँ मिला देवेंगे। परन्तु इससे हमे क्या ? जैसा आपको रुचे वैसा करो··· · ······ इतना कह कर वह तो चले गये, हम निरुत्तर रह गये।

पश्चात् वहाँसे गमन कर एक स्थानमें निवास किया। सानन्द रात्रि व्यतीत कर चल दिये। भोजनादिकी व्यवस्था हुई, मध्यान्होपरान्त श्री पं० राजेन्द्रकुमार जी महामंत्री सदलबल आ गये। महान् समारोह हो गया और आनन्दसे श्र जम्बूस्वामीकी निर्वाण भूमि पहुँच गये। पहुँचते ही स्मृति पटलमें पिछली बात याद आ गई कि यह वही भूमि है जहाँ पर श्री जैन महाविद्यालयकी स्थापना हुई थी और मैंने भी जिसमें रह कर अध्ययन किया था। आज कल दि० जैन संघका कार्यालय यहीं पर है। अनेक सुन्दर भवन संघके हैं, एक सरस्वती भवन भी है। एक दिगम्बर जैन गुरुकुल भी है जिसमे इण्टर तक पढ़ाई होती है। हम लोगोंका आतिथ्य सत्कार होनेके बाद सुन्दर भवनोंमे निवास कराया गया। संघका वार्षिकोत्सव था जिसके सभापति श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्रजी

साहब इन्दौरवाले थे। समारोहके साथ आपका स्वागत किया गया। आप अत्यन्त पुण्यशाली जीव हैं। धर्मके रक्षक तथा स्वयं धर्मात्मा हैं। जव कोई आपत्ति धर्म पर आती है तव आप उसे सव प्रकारसे निवारण करनेका प्रयत्न करते हैं। आपने सभापतिका भापण देते हुए कहा है कि वर्तमानमे जैनधर्मका विकास करना इष्ट है तो सर्व प्रथम आत्मविश्वास करो तथा संयम गुणका विकास करो, उदार हृदय वनो, परकी निन्दा तथा आत्मप्रशंसा त्यागो, केवल गल्पवादमें समय न खोओ। भापण देते हुए आपने कहा कि इस समय हम सवको परस्पर मनोमालिन्यका त्याग कर सौजन्यभावसे धर्मकी प्रभावना करना चाहिये। केवल व्याख्यानोंसे कल्याण न होगा, जो वात व्याख्यानोंमे आती है उसे कर्तव्यपथमे आना चाहिये—

वात कहन भू पग धरन करण खडग पद धार।
करनी कर कथनी करें ते विरले संसार॥

अर्थात् वातका कहना कोई कठिन नहीं जो कहा जावे उसे कर्तव्यमें लाना चाहिये। आज हर एक वक्ता होनेकी चेष्टा करता है—प्रत्येक मानव उपदेष्टा वनना चाहता है, श्रोता व शिष्य कोई नहीं वनना चाहता। अस्तु, कालका प्रभाव है, हमको जो कहना था कह दिया। जैनसंघकी रक्षाके लिये आपने २५०००) पच्चीस हजारका दान किया। उपस्थित जनताने भी यथाशक्ति दान दिया। इसी अवसर पर विद्वत्परिपद्की कार्यकारिणीकी वैठक भी थी जिसमे पं० फूलचन्द्रजी वनारस, पं० कैलाशचन्द्रजी वनारस, पं० दयाचन्द्रजी, पं० पन्नालालजी सागर, पं० वावूलालजी इन्दौर, पं० खुशहालचन्द्र जी वनारस, वंशीधरजी वीना, प० नेमीचन्द्रजी आरा, पं० जगन्मोहनलालजी कटनी आदि अनेक विद्वान् पधारे थे। वैठकमें विचारणीय विपय थे मानवमात्रको दर्शनाधिकार,

प्राचीन दस्सा शुद्धि आदि। जिन पर उपस्थित विद्वानोंमें पक्ष विपक्षको लेकर काफी चर्चा हुई परन्तु अन्तमें निर्णय कुछ नहीं हो सका। यदि विद्वान् परस्परका मनोमालिन्य त्याग किसी कार्यको उठावें तो उनमें वह शक्ति है जिसे कोई रोकनेके लिये समर्थ नहीं परन्तु परस्परका मनोमालिन्य उनकी शक्तिको कुण्ठित किये हुए है। 'विश्व शान्ति और जैनधर्म' इस विषय पर निबन्ध लिखानेका विचार स्थिर हुआ। जैन संघमें श्री पं० राजेन्द्रकुमारजी अत्यन्त उत्साही और कर्मठ व्यक्ति हैं। संघका वर्तमान रूप उन्हींके पुरुषार्थका फल है। एक दिन आपके यहाँ भोजन हुआ तब आपने स्याद्वाद विद्यालय बनारसको ५०१) देना स्वीकृत किया। इसी तरह एक दिन सेठ भगवानदासजीके यहाँ आहार हुआ। सेठानी श्री बच्छराजजी लाडनूँवालोंकी पुत्री हैं। इन्होंने भी स्याद्वाद विद्यालयको १०००) देना अंगीकार किया। सेठ भगवानदासजी सौम्य व्यक्ति हैं। आप नवयुवक होते हुए भी सज्जनतासे भरे हुए हैं। टोंग्याजी भी यहाँ पर प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। आपके प्रबन्धसे यहाँ रथयात्रा महती प्रभावनाके साथ हुई। बाहरके भी मनुष्य आये। तीन दिन तक अच्छी चहल पहल रही। अनन्तर मेला विघट गया। यहाँ श्री विनयकुमारजी 'पथिक' संघमें रहते हैं जो जात्या ब्राह्मण हैं तथा कविता अच्छी करते हैं कविता करनेकी पद्धति प्रायः प्रत्येकको नहीं आती, यह भी एक कला है। एकान्त चिन्तनके समय निम्नाङ्कित विचार उत्पन्न हुए—

'लोगोंमें धर्मके प्रति महान् श्रद्धा है किन्तु धर्मात्माओंका अभाव है। लोग प्रतिष्ठा चाहते हैं परन्तु धर्मको आदर नहीं देते। मोहके प्रति आदर है धर्मके प्रति आदर नहीं। धर्म आत्मीय वस्तु है उसका आदर विरला ही करता है। जो आदर करता है वही संसारसे पार होता है।'

'सागरके समान मनुष्यको गम्भीर होना चाहिये। सिंहके सदृश उसकी प्रकृति होना चाहिये। शूरताकी पराकाष्ठा होना ही मनुष्यके लिये लौकिक और पारमार्थिक सुखकी जननी है। पारमार्थिक सुख कहीं नहीं, केवल लौकिक सुखकी आशा त्याग देना ही परमार्थ सुखकी प्राप्तिका उपाय है। सुख शक्तिका विकास आकुलताके अभावसे होता है।'

'भगवन्! तुम अचिन्त्य शक्तिके स्वत्वमें क्यों दर दरके भिक्षुक बन रहे हो? भगवन्‌से तात्पर्य स्वात्मासे है। यदि तुम अपनेको संभालो तो फिर जगत्‌को प्रसन्न करनेकी आवश्यकता नहीं।'

'संसारसे उद्धार करनेके अर्थ तो रागादि निवृत्ति होनी चाहिये परन्तु हमारा लक्ष्य उस पवित्र मार्गकी ओर नहीं जाता। केवल जिससे रागादि पुष्ट हों उसी ओर अग्रेसर होता है। अनादि कालसे पर पदार्थोंको अपना मान रक्खा है उसी ओर दृष्टि जाती है—कल्याण मार्गसे विमुख रहते हैं।'

'सुखका कारण क्या है कुछ समझमें नहीं आता। यदि बाह्य पदार्थोंको माना जावे तब तो अनादिकालसे इन्हीं पदार्थोंको अर्जन करते करते अनन्त भव व्यतीत हो गये परन्तु सुख नहीं पाया। इस पर्यायमें यथायोग्य बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु कुछ भी शान्ति न मिली।'

'संसारमें कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं जो आज है वह कल नहीं रहेगा। संसार क्षणभंगुर है इसमें आश्चर्य की बात नहीं। हमारी आयु ७४ वर्ष की हो गई परन्तु शान्तिका लेश भी नहीं आया और न आनेकी संभावना है, क्योंकि मार्ग जो है उससे हम विरुद्ध चल रहे हैं। यदि सुमार्ग पर चलते तो अवश्य शान्तिका आस्वाद आता परन्तु यहाँ तो उल्टी गङ्गा बहाना चाहते हैं। धिक् इस विचारको जो मनुष्यजन्मकी अनर्थकता कर रहा है। केवल

गल्पवादमें जन्म गमा दिया। वाह्य प्रशंसाका लोभी महान् पापी है।'

'लोगों की अन्तरङ्ग भावना त्यागीके प्रति निर्मल है किन्तु इस समय त्यागीवर्ग उतना निर्मल नहीं।'

'हम बहुत ही दुर्बल प्रकृतिके मनुष्य हैं, हर किसीको निमित्त मान लेते हैं, अपने आप चक्रमें आ जाते हैं, अन्यको व्यर्थ ही उपालम्भ देते हैं, कोई द्रव्य किसीका विगाड़ सुधार करनेवाला नहीं" यह मुखसे कहते हैं परन्तु उस पर अमल नहीं। केवल गल्पवाद है। वड़े बड़े विद्वान् व्याख्यान देते हैं परन्तु उस पर अमल नहीं करते।'

मथुरासे चलते चलते पद्मपुराणमें वर्णित मथुरापुरीका प्राचीन वैभव एक वार पुनः स्मृतिमे आ गया।

यहाँ पर मधु राजाका शत्रुघ्नके साथ युद्ध हुआ। शत्रुघ्नने छलसे उसके शस्त्रागारको स्वाधीन कर लिया। अस्त्रादिके अभावमे राजा मधु शत्रुघ्नसे पराजित हो गया किन्तु गजके ऊपर स्थित जर्जरित शरीरवाले मधुने अनित्यत्वादि अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन कर दिगम्बर वेपका अवलम्बन किया। उसी समय शत्रुघ्नने आत्मीय अपराध की क्षमा माँगी—हे प्रभो! मुझ मोही जीवने जो आपका अपराध किया वह आपके तो क्षम्य है ही मैं मोहसे क्षमा माँग रहा हूँ।

अलीगढ़का वैभव

मथुरासे चलते ही चित्तमे संघसे विरक्तता हो गई। विरक्तताका कारण परको अपना मानना है। वह अपना होता नहीं, केवल परमे निजत्व कल्पना ही दुःखदायी है। चलकर वसुगाँवमे ठहर गये। यहाँके ठाकुर नत्थासिंहजी बहुत ही सज्जन हैं। यहीं पर श्री मनीराम जाट मिलने आया, बहुत ही सज्जन था। उसके यह

नियम था कि हाथसे उपार्जन किया ही मेरा धन है पराया धन न जाने अन्यायोपार्जित हो तथा मैं किसीके प्राण नहीं दुखाना चाहता। हम यहाँ पुरसानकी धर्मशालामें ठहर गये। यह धर्मशाला एक अग्रवाल शाहकी है वहुत ही सज्जन हैं, अतिथि सत्कारमे अच्छी प्रवृत्ति है, मन्दिर भी वना है, रामचन्द्रजी का उपासक है, अनेक भाई दर्शनके लिये आते हैं, यहाँका जमादार भलामानुष है। यहाँसे ८ मील चलकर हाथरस पहुँचे। यहाँ पर ६ मन्दिर हैं। १ मन्दिर वहुत वड़ा है जिसका निर्माण वहुत ही सुन्दर रीतिसे हुआ है इसकी कुरसी वहुत ऊँची है। यहाँ पर मनुष्य वहुत ही सज्जन हैं। यहाँ कन्यापाठशालामे ठहरे किन्तु स्थान संकीर्ण था। लघुशंकाके लिये स्थान ठीक नहीं था, नालीमे पानी जाता था जो आगम विरुद्ध है। भोजनके अर्थ श्रावकोंके घर जाते थे परन्तु मार्ग निर्मल नहीं प्रायः अशुचिका सम्वन्ध मार्गमे वहुत रहता है।

नये मन्दिरमे सभा हुई। वाहरसे आये हुए विद्वानोंके व्याख्यान मनोरञ्जक थे। थोड़ा-सा समय हमने भी दिया। व्याख्यान श्रवण कर मनुष्योंके चित्त द्रवीभूत हो गये तथा मनमे श्रद्धा विशेप हो गई। श्रद्धा कितनी ही दृढ़ क्यों न हो किन्तु आचारणके पालन विना केवल श्रद्धा अर्थकरी नहीं। श्रद्धाके अनुरूप ज्ञान भी हो परन्तु आचरणके विना वह श्रद्धा और ज्ञान स्वकार्य करनेमे समर्थ नहीं।

हाथरससे सासनी ७ मील था। लगातार चलनेसे थक गये, ज्वर आ गया। श्री छेदीलालजीके आग्रहसे सासनी आये थे। इनके पिता वहुत ही धर्मात्मा थे। इनके काँचका कारखाना है, वहाँ पर इनके पिताका निवास रहता था, आप निरन्तर ईसरी आते रहते थे, धार्मिक मनुष्य थे, आपकी धर्मरुचि वहुत ही प्रशस्त थी। ईसरी आश्रममें जितने गेहूँ व्यय होते थे सव आप देते थे। अव आपका स्वर्गवास हो गया है। आपके छेदीलाल और उनके लघुभ्राता इस

प्रकार दो पुत्र हैं। आप लोगोंने वेदी प्रतिष्ठा कराई जिसमे उस प्रान्तके बहुतसे जैनी भाई आये। आपके द्वारा एक हाईस्कूल भी सासनीमे चल रहा है। बहुत ही सुखसे यहाँ रहा। यहाँ पर १ विलक्षण प्रथा देखनेमें आयी कि जिस समय श्री जिनेन्द्रदेवका रथ निकल रहा था उस समय यहाँके प्रत्येक जातिवालोने श्री जिनेन्द्रदेवको भेट की। कोई जाति इससे मुक्त न थी। सर्व ही जनताने श्री महावीर स्वामीकी जय बोली। यवन लोगोंने ४०) भेट किया तथा ब्राह्मण एवं वैश्योंने भगवान्‌की आरती उतारी। कहाँ तक कहे चर्मकारोंने २००) की भेंट की। खेद इस बातका है, हमने मान रक्खा है कि धर्मका अधिकार हमारा है। यह कुछ बुद्धिमें नहीं आता। धर्म वस्तु तो किसीकी नहीं, सर्व आत्मा धर्मके पात्र हैं, बाधक कारण जो हैं उन्हें दूर करना चाहिये।

माघ वदी ४ संवत् २००५ का दिन था। आज वेगसे ज्वर आ गया। मनमें ऐसा लगने लगा कि अब शारीरिक शक्ति क्षीण होती जाती है। सम्भव है आयुका अवसान शीघ्र हो जावे अत. कुछ आत्म-हित करना चाहिये। केवल स्वाध्याय आदिमे चित्तवृत्ति स्थिर करना चाहिये, प्रपञ्चोंमे पड व्यर्थ दिन व्यय करना उचित नहीं। संसारकी दशाका खेद करना लाभदायक नहीं। दूसरे दिन साधारण सभा थी, हमारा व्याख्यान था परन्तु हमसे समय पर यथार्थ व्याख्यान न बन सका। हमारी शारीरिक शक्ति बहुत मन्द हो गई हैं अब हम उतने शक्तिशाली नहीं कि १०:० जनतामे व्याख्यान दे सकें। अब तो केवल १० मनुष्योंमें व्याख्यान दे सकते हैं। शक्ति-ह्रासको देखते हुए उचित तो यह हैं कि अब सर्व विकल्पोंका त्याग कर केवल आत्म-हित पर दृष्टिपात करें। गल्पवादके दिन गये, अब आत्मकथामें रसिक होना चाहिये। आज रात्रिको पुनः बाबा भागीरथजी का दर्शन हुआ। आपने कहा—

'क्या चक्रमे फँस अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हो? आत्माकी शान्ति पर पदार्थोंके सहकारसे वन्धनमे पड़ती है और वन्धनसे ही चतुर्गतिके चक्रमे यह जीव भ्रमण करता है। हम क्या कहें? तुमने श्रद्धाके अनुरूप प्रवृत्ति नहीं की। त्याग वह वस्तु है जो त्यक्त पदार्थका विकल्प न हो तथा त्यक्त पदार्थके अभावमें अन्य वस्तुकी इच्छा न हो। नमकका त्याग मधुरकी इच्छा विना ही सुन्दर है।'

अगले दिन प्रातः नियमसारका प्रवचन हुआ। उसमे श्री कुन्द-कुन्द महाराजने जो आवश्यककी व्याख्या की वह वहुत ही हृदयग्राही व्याख्या है। तथाहि

> जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवास।
> कम्मविणासणजोगो णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो ॥१४१॥

अर्थात् जो जीव अन्यके वश नही होता है उसे अवश कहते हैं और उसका जो कर्म है उसे अवश्य कहते हैं। वही भाव कर्म विनाश करनेके योग्य है। उसीको निवृ ति मार्ग है ऐसा निरूपण किया है। कुन्दकुन्द स्वामीकी वात क्या कहे उनका तो एक एक शब्द ऐसा है मानो अमृतके सागरमें अवगाहन कर वाहर निकला हो। लोग हमारे जीवनचरित्रकी चर्चा करते हैं परन्तु उसमें है क्या? जीवन-चरित्र उसका प्रशंसनीय होता है जिसके द्वारा कुछ आत्महित हुआ हो। हम तो सामान्य पुरुप हैं। केवल जन्म मानुपका पाया परन्तु मानुष जन्म पाकर उसके योग्य कार्य न किया। मानुप जन्म पाकर कुछ हित करना चाहिये।

माघ वदी ६ सं० २००५ को मध्याह्नकी सामायिक पूर्ण होते होते अलीगढ़के महानुभाव आ गये जिससे वहाँके लिये प्रस्थान कर दिया। यहाँसे अलीगढ़ ३ मील था। १ मील चलकर वागमे ठहर

गये। वहाँसे गाजे-बाजेके साथ खिरनीसरायके मन्दिरमें गये। आनन्दसे दर्शन कर मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। स्थान त्यागियोंके ठहरने योग्य नहीं। यदि वास्तवमें धार्मिक बुद्धि है तो त्यागीको गृहस्थके मध्यमें नहीं ठहरना चाहिये। गृहस्थोंके संपर्कसे बुद्धिमें विकार हो जाता है और विकार ही आत्माको पतित करता है अतः जिन्हें आत्महित करना है वे इन उपद्रवोंसे सुरक्षित रहें।

अलीगढ़ वह स्थान है जहाँ पर श्री स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी साहबका जन्मस्थान था। आपका पाण्डित्य बहुत ही प्रशस्त था, आपके भजनोंमें समयसार गोम्मटसार आदि ग्रन्थोंके भाव भरे हुए हैं। छहढाला तो आपकी इतनी सुन्दर रचना है कि उसके अच्छी तरह ज्ञानमें आने पर आदमी पण्डित बन सकता है। पण्डित ही नहीं मोक्षमार्गका पात्र बन सकता है। 'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि' स्तोत्रमें समस्त सिद्धान्तकी कुञ्जी बता दी है। स्तवन करनेका यथार्थ मार्गप्रदर्शन कर दिया है। यहीं पर वर्तमानमें पण्डित श्रीलालजी[1] हैं। आप संस्कृतके प्रौढ़ विद्वान् हैं। आपकी श्रद्धा बीस पन्थके ऊपर दृढ हो गई है। आप पहले खडे होकर पूजा करते थे, अब बैठकर करने लगे हैं तथा अपने पक्षको आगमानुकूल पुष्ट करते हैं। हमारा आपसे प्राचीन परिचय है। आपके पुत्र कमलकुमारजी हैं। आपने मध्यमा तक व्याकरणका अध्ययन किया है। पण्डितजीके पिता पं० प्यारेलालजी धर्मशास्त्रके उत्तम विद्वान् थे। गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके मर्मज्ञ थे। छहढालाके अर्थको घण्टों निरूपण कर सभा को प्रसन्न कर देते थे। आपके तर्क बहुत प्रबल शक्तिमय थे। अच्छे अच्छे वक्ता आपको मानते थे। आपकी श्रद्धा दिगम्बर आम्नायमें तेरापन्थको माननेकी थी। हम तो उनको अपना हितैषी

---

१. अब आपका देहान्त हो गया है।

मानते थे, क्योंकि उन्हींके उपदेशसे जैनधर्मके अध्ययनमें हमारी रुचि हुई थी। आपके द्वारा जैन जनतामे स्वाध्यायका विशेष प्रचार हुआ। आप जैनधर्मकी वृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करते थे। यहीं पर एक छीपीटोला है। वहाँ पर ३ जिन मन्दिर हैं। इसी टोला में श्री हकीम कल्याणराय जी रहते थे। आप महासभाके मुख्य उपदेशक थे। आपके द्वारा महासभाका सातिशय प्रचार हुआ। इस टोलामें १ मन्दिरमें श्री महावीर स्वामीकी पद्मासन प्रतिमा बहुत ही रम्य विराजमान है जिसे अवलोकन कर परम शान्तिका परिचय होता है।

यहाँ बागके मन्दिरमें सार्वजनिक सभा हुई जिसमें बहुत वक्ताओंके भाषण हुए। मेरा भी व्याख्यान हुआ। मैं वृद्धावस्थाके कारण पूर्ण रूपसे व्याख्यान नहीं दे सकता फिर भी जो कुछ कहता हूं हृदयसे कहता हूँ। मेरा अभिप्राय यह है कि आत्मा अपने ही अपराधसे संसारी बना है और अपने ही प्रयत्नसे मुक्त हो जाता है। जब यह आत्मा मोही रागी द्वेषी होता है तब स्वयं संसारी हो जाता है तथा जब राग द्वेष मोहको त्याग देता है तब स्वयं मुक्त हो जाता है, अतः जिन्हे संसार बन्धनसे छूटना है उन्हें उचित है कि राग द्वेष मोह छोड़ें।

आत्मपरिणतिको निर्मल बनानेके जो उपाय हैं उनमे सर्वश्रेष्ठ आत्मावबोध है। परसे भिन्न अपनेको मानो, भेदविज्ञान ही ऐसी वस्तु है जो आत्माका बोध करता है। स्वात्मबोधके विना राग द्वेषका अभाव होना अति कठिन क्या असंभव है अतः आवश्यकता इस बातकी है कि तत्त्वज्ञान सम्पादन किया जाय। तत्त्वज्ञानका कारण आगमज्ञान है। आगमज्ञानके लिये यथाशक्ति व्याकरण न्याय तथा अलंकार शास्त्रका अभ्यास करना चाहिये। मैं बोलनेमें

बहुत दुर्बल होगया हूं, क्योंकि मेरी यह दृढ़ श्रद्धा है कि मैं जो कहता हूं उसका स्वयं तो पालन नहीं करता अन्यसे क्या कहूं ? यही कारण है कि मैं उपदेशमें संकोच करता हू। वास्तवमें वही आत्मा सुखका पात्र हो सकता है जो कथनपर आरूढ़ होता है। न तो हम स्वयं तद्रूप होनेकी चेष्टा करते हैं और न अन्य पर उसका प्रभाव डाल सकते हैं। इसका मूल कारण केवल कषायकी कृशताका अभाव है। उस आत्माको ही उपदेश देनेका अधिकार है जो स्वयं मार्गपर चले। केवल शब्दोंकी मधुरता और सरलता अन्य पर प्रभाव नहीं डाल सकती। उचित तो यह है कि हमें इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि हम प्रथम उस पर अमल करें अनन्तर परको बतानेकी चेष्टा करें तभी सफल हो सकते हैं। प्रतिदिन सुन्दर विचार आत्मामे आते हैं परन्तु उन पर आरूढ़ नहीं होते अतः जैसे आये वैसे न आये, कुछ लाभ नहीं। केवल कथावादसे कोई लाभ नहीं, लाभ तो उस पर हृदयसे अमल करनेमे है। देहलीसे पं० राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री आ गये और पं० चन्द्रमौलि जी हमारे साथ ही थे। आप लोगोंके भी उत्तम व्याख्यान हुए। परन्तु स्वभावमे परिवर्तन होना कठिन है। स्वभावसे तात्पर्य पर निमित्तक भावोंसे है। अनादिकालसे हमारी प्रवृत्ति आहारादि संज्ञाओंमें हो रही है। आत्माका स्वभाव ज्ञायक भाव है। ज्ञायक भावमें ज्ञेयका अनुभव होना ही कष्टकर है।

अलीगढ़से चलकर बागके मन्दिरमे आये। वहां १ घण्टा रहे। हकीम इन्द्रमणि जीने व्याख्यान दिया। यहासे चलने पर विजली-वालोंने बहुत रोका पर हम लोग नहीं रुके। लोगोंमें भक्ति बहुत है परन्तु भक्ति जिसकी की जाती है वह पात्र नहीं, वेषमात्र है। कुछ भी हो, अलीगढ़का पहला वैभव चलते चलते आँखोंके सामने भूलने लगा।

मेरठकी ओर

अलीगढ़से भाकुरी ६ मील है। यहाँ पर ठहर गये। प्रातःकाल यहाँसे ४ मील चलकर नगरियाकी धर्मशालामें भोजन किया। १२½ बजे सामायिक कर चल दिये और ३ बजे गुहानाकी धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर 1 बाग है। बीचमें १ छोटा सा सरोवर है। उसमें शिवजीका मन्दिर है। बाग सुन्दर है। यहाँ पर अलीगढ़से ५ मनुष्य आये। इनसे स्वाध्यायकी बात हुई तो उत्तर मिला करते हैं। हम इतरको उपदेश दानमें चतुर हैं स्वयं करनेमें असमर्थ हैं। केवल वेष बना लिया और परको उपदेश देकर महान् बननेका प्रयत्न है। यह सब मोहका विलास है। गुहानासे ५ मील चलकर एक स्थान पर भोजन किया। यहाँ पर १ अग्रवाल मनुष्य बहुत ही सज्जन था जिसका नाम मुझे स्मृत नहीं रहा। उसने घरसे लाकर ऽ२ सेर गुड़, आटा, नमक, दुग्ध संघके अन्य लोगोंके भोजनके लिये दिया। बहुत ही श्रद्धासे भोजन कराया। जैनी लोगोंकी अपेक्षा इनमें श्रद्धा न्यून नहीं परन्तु जैनी त्यागी इसका प्रचार नहीं करते। यहाँसे चलकर दमारामें १ वैश्यकी दूकानमें ठहर गये। स्थान तो अच्छा था परन्तु मक्षिकाओंकी बहुलतासे खिन्न रहे। हम ६ आदमी यहाँ रह गये। बाकी सब लोग खुरजा चले गये। ग्राम है, जलवायु उत्तम है। यहाँ एक वेदान्ती ठाकुर मिले, शान्तपरिणामी थे।

सं० २००५ माघ सुदी ३ को प्रातः १० बजे खुरजा पहुँच गये। यह वही खुरजा है जहाँ पर राणीवाले प्रसिद्ध सेठ रहते थे। उन्हींके

मुख्य पुत्र सेठ मेवारामजी थे जो सेठ ही नहीं उस समयके प्रमुख विद्वान् थे। उस समय आपकी गणना विद्वानोंमें ही नहीं प्रमुख सेठोंमें भी थी। आप विद्याके रसिक थे। एक संस्कृत विद्यालय भी आपके द्वारा चलता था जिसमें २५ छात्र अध्ययन करते थे। छात्रोंको भोजनाच्छादन आपकी तरफसे था। क्वीन्स कालेज बनारसकी मध्यमा परीक्षा तक व्याकरण न्याय काव्यका अध्ययन होता था। आप स्वयं अध्ययन अध्यापन करते कराते थे। आप विद्वान् ही न थे वक्ता और वाग्मी भी थे तथा आर्यसमाजके विद्वानोंसे शास्त्रार्थ भी करते थे। यहाँ पर पं० तेजपाल जी भी प्रसिद्ध विद्वान् थे, आप विद्वान् ही नहीं धनाढ्य भी थे। यहीं पर पण्डित नैनसुखदासजी थे जो स्त्री सभामे शास्त्र पढ़ते थे। यहीं पर श्रीसेठ मेवाराम जीके चाचा सेठ अमृतलालजी थे जो अत्यन्त धर्मात्मा और शास्त्रके वक्ता थे। आपकी प्रवृत्ति आरम्भसे बहुत भयभीत रहती थी। बहु आरम्भकी आप निरन्तर निन्दा करते थे। मिलके कार्योंसे आपको महती घृणा थी। आप छात्रोंको निरन्तर दान देते थे। आप सात भाई थे, सातों ही सम्पन्न और धार्मिक विचारोंके थे। मैंने भी खुर्जामें विद्याभ्यास किया था। बनारसकी प्रथमा परीक्षा यहींसे दी थी। यहीं पर न्याय पढ़ना प्रारम्भ किया था। पण्डित चण्डीप्रसादजी जो कि व्याकरणके निष्णात विद्वान् थे उनसे पढ़ना शुरू किया था। सेठ मेवारामजी उन दिनों मुक्तावली आदिका अध्ययन कर चुके थे। व्याकरणकी मध्यम परीक्षा उत्तीर्ण हो चुके थे। यहाँ पर १ सुन्दरलाल वैश्य थे जो बहुत व्युत्पन्न थे।

वर्तमानमे सेठ मेवारामजीके सुपुत्र शान्तिप्रसादजी बहुत ही योग्य हैं। उनके घर आहार हुआ, आप बहुत कुशल हैं, धर्ममें आपकी रुचि बहुत है, तत्त्वज्ञानके सम्पादनमे बहुत प्रयत्नशील

हैं। आपके कमरामे सरस्वतीभवन है। सब तरहकी पुस्तकें आपके भण्डारमे विद्यमान हैं। हस्तलिखित शास्त्र भी १०० होंगे। सत्यार्थप्रकाश भी प्रायः जितने प्रकारके मुद्रित हैं सर्व यहाँ पर हैं। प्रायः मुद्रित सभी पुराण इनके पास हैं। आपके कुटुम्बकी लगभग १०० जनसंख्या होगी। प्रमुख व्यक्ति यहीं पर रहते हैं। खुर्जा आते ही पिछले दिन स्मृति पटलमें अङ्कित हो गये। उस ज्योतिषीकी भविष्यवाणी भी याद आ गई जिसने कहा था कि तुम वैशाखके बाद खुर्जा न रहोगे। मोहजन्य संस्कार जब तक आत्मामे विद्यमान रहते हैं तब तक यह चक्र चलता रहता है। जब तक अन्तरङ्गसे मूर्च्छा नहीं जाती तब तक कुछ नहीं होता। केवल विकल्पमाला है। मोहके परिणामोंमें जो जो क्रिया होती है करना पड़ती है। आनन्दका उत्थान तो कषाय भावके अभावमें होता है। गल्पवादसे यथार्थ वस्तुका लाभ नहीं। संसारमे अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ हैं जिन्हें यह जीव मोहवश सहन करता हुआ भी उनसे उदासीन नहीं होता।

खुर्जामें ३ दिन रह कर चल दिये। नहरके बांध पर आये। पानी बड़े वेगसे बरसा और हम लोग मार्ग भूल गये परन्तु श्री चिदानन्दजीके प्रतापसे उस विरुद्ध मार्गको त्याग कर अनायास ही सरल मार्गपर आ गये। रात्रि होते होते एक ग्राममें पहुंच गये। यहां जिसके गृहमें निवास किया था वह क्षत्रियका था। रात्रिमें उनकी मांने मेरे पास एक चद्दर देखकर बड़ी ही दया दिखलाई। बोली—बाबा! शरदी बहुत पड़ती है, रात्रिको नींद न आवेगी, मेरे यहां नवीन सौड (रजाई) रक्खी है, अभी तक हम लोगोंके काममें नहीं आई, आप उसे लेकर रात्रिको सुख पूर्वक सो जाइये और मैं दूध लाती हूं उसे पान कर लीजिये, खुर्जासे आये हो थक गये होंगे, इससे अधिक हम कर ही क्या सकती हैं? आशा है हमारी

प्रार्थनाको आप भङ्ग न करेंगे। मैंने कहा—मां जी! मैं यही वस्त्र ओढ़ता हूं तथा रात्रिको कुछ खान पान नहीं करता हूं। बुढ़िया मां सुन कर बहुत उदासीन हो बोली—मुझको बहुत ही क्लेश हुआ। अब एक प्रार्थना करती हूँ कि प्रातः काल मेरे यहाँ भोजन कर प्रस्थान करें। अनन्तर हम लोग शयन कर गये। प्रातःकाल हुआ सामायिक कर चलने लगे तो बूढ़ी माँ आ गई और बोली कि यह क्या हो रहा है? हमने कहा—माँ जी! जा रहे हैं। वह बोली—यह शिष्टाचारके अनुकूल आचरण नहीं। हमने कहा—माँ! फिर घाम हो जावेगा। उसने कहा—यह उत्तर शिष्टाचारका विघातक है। अच्छा, तुम्हारी जो इच्छा सो करो किन्तु २) ले जाओ इनके फल लेकर सब लोग व्यवहारमें लाना तथा पुत्रसे बोली—बेटा! घरके ताँगामें इनका सामान भेज दो। हम लोग बुढ़िया माँके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो चल दिये और मार्गमें उसीके सौजन्य पूर्ण व्यवहारकी चर्चा करते रहे। उसका बेटा महावीर राजपूत २ मील तक पहुँचाने आया और मेरे बहुत आग्रह करने पर वापिस लौटा। मेरे मनमें आया कि यदि ऐसे जीवोंको जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप दिखाया जाय तो बहुत जनताका कल्याण होवे।

खुर्जासे ४ मील चल कर बुलन्दशहर आगये और वहाँ वालोंने शिष्टाचारके साथ हमें मन्दिरजीकी धर्मशालामें ठहरा दिया। यहाँ पर मन्दिरजीके नीचे भागमें मन्दिरकी दुकानमें एक सज्जन मनिहारीकी दुकान किये थे उन्हींके घर पर भोजन हुआ। आप बहुत ही उदार व्यक्ति थे, आपका व्यापार लाहौरमें होता था, बहुत ही धनाढ्य थे परन्तु लाहौरके पाकिस्तानमें जानेसे आप यहाँ आ गये और आपकी सम्पत्तिका बहुत भाग वहाँ ही रह गया। इसका आपको खेद न था, आपके हृदयसे यही वाक्य निकले कि संसारमें यही होता है। जहाँ पर सहस्रों नरेशोंको

परम्परागत अधिकारोंसे वञ्चित होना पड़ा तथा अंग्रेजोंका अखण्ड प्रताप अस्त हो गया वहाँ हमारी इस दशा पर आश्चर्यकी कौन बात है ? अथवा अन्यकी कथा त्यागो आप स्वयं अपनी दशाको देखो। क्या चालीस वर्ष पहले आप इसी तरह यष्टिके सहारे चलते थे ? अस्तु, इस कथाको छोड़ो और मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन कीजिये। अनुकूल कारणके सद्भावसे चित्तमे शान्तिका परिचय हुआ। आत्मानुशासनका स्वाध्याय किया—

श्री गुणभद्राचार्यका कहना है कि हे आत्मन् ! तुम दुःखसे भयभीत होते हो और सुखकी वाँछा करते हो अतः जो तुम्हें अभीष्ट है उसीका हम अनुशासन करेंगे। देखा जाता है संसारमें प्राणी-मात्र दुःखसे डरते हैं और सुखकी अभिलाषा करते हैं। यदि उनकी अभिलाषाके अनुकूल उन्हे मार्ग मिल जाता है तो उनकी आत्माको शान्ति हो जाती है परन्तु यह संसार है, अनन्त दुःखोका भण्डार है इसमें अनुकूल मार्गदर्शकोंकी अत्यन्त त्रुटि है।

जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रा ये जगदभ्युजिहीर्षवः॥

अर्थात् संसारमें ऐसे मनुष्य और मेघ सुलभ हैं जो वाचाल और वृथा गर्जना करनेवाले हैं। जगत्के मनुष्योंको व्यामोहमे डालनेवाले शब्दोंकी सुन्दर सुन्दर रचना द्वारा अपनेको कृतकृत्य माननेवाले मनुष्योंकी गणनातीत संख्या है इसी प्रकार घटाटोपसे गर्जन करनेवाली अगणित मेघमालाएँ आकाशपथमे प्रकट होकर विलीन हो जातीं हैं परन्तु जलशून्य होनेके कारण जगत्की उप-कारिणी नहीं होतीं। अतः बन्धुवर्ग ! जो वक्ता आत्महितका उपदेश करें मन्दकषायी हों, निर्लोभ, निर्मान, निर्माय तथा क्षमा गुण संयुक्त हों उनके मुखसे शास्त्र श्रवण कर आत्मकल्याणके

मार्गमें लग जाओ। मनुष्य जन्मका लाभ अति कठिन है, संयमका साधन इसी पर्यायमें होता है। सब प्रकारकी योग्यता यहाँ है। नारकी तो अनन्त दुःखके ही पात्र हैं। तिर्यञ्चोंमें भी बहुभाग निरन्तर पर्याय बुद्धिमे ही काल पूर्ण करता है। कुछ अन्य तिर्यञ्च संज्ञी पर्यायके पात्र होते हैं। उनसे अधिकाश तो महाहिंसक क्रूर ही जन्म पाते हैं। कुछ सरल—भद्र भी होते हैं। इन दोनों प्रकारके तिर्यञ्चोंमे जिनके मन है वे सम्यग्दर्शन और देशसंयमके पात्र हैं परन्तु विरले हैं। देवों में शुभोपयोगके कार्योंकी मुख्यता है परन्तु कितना ही प्रयत्न करें संयमसे वञ्चित ही रहते हैं। मन्द कषाय हैं, शुक्ललेश्या तक हो सकती है परन्तु वह लेश्या मनुष्य पर्याप्तमें संभवनीय शुक्ललेश्यासे न्यून ही है। मनुष्य जन्ममें संसार नाशका साक्षात् कारण जो रत्नत्रय है वह हो सकता है। मनुष्य ही महाव्रतका पात्र हो सकता है। ऐसे निर्मल मनुष्य जन्मको पा कर पञ्चेन्द्रियोंके विषयमे लीन हो खो देना बुद्धिका दुरुपयोग है। आप लोग सम्पन्न हैं, नीरोग हैं और साधन अच्छे हैं। यदि इस उत्तम अवसरको पा कर आत्महितसे वञ्चित रहे तो अन्तमें पश्चात्ताप ही रह जावेगा, अतः जहाँ तक बने आत्मतत्त्वकी रक्षा करो। उससे अधिक मैं नहीं जानता। अब हमको जाना है आप लोग आनन्दसे रहिये।

प्रवचनके बाद बुलन्दशहरसे ४ मील चल कर एक कूप पर विश्रामके अर्थ रह गये और १५ मिनटके अनन्तर वहाँसे प्रस्थान कर २ मीलके उपरान्त एक धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशालाके समीप ही एक शिवालय था, उसमे सायंकाल बहुतसे भद्र मनुष्य आये और सन्ध्या वन्दन कर चले गये। अन्तमें १ महाशयने प्रश्न किया कि संसारमें मनुष्यका क्या कर्त्तव्य है? यह तो महादुःखका सागर है? प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा—दुख क्या है? वह महाशय बोले—

जो नाना प्रकारकी अभिलाषाएँ होती हैं वही दुःख है। मैंने कहा— जब यह निश्चय हो गया कि अभिलाषाएँ ही दुःख है तब इन्हे त्यागना ही दु:खनिवृत्तिका उपाय है। किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। इतना ही मार्मिक तत्त्ववेत्ता कहेंगे। दुःख निवृत्तिका उपाय जब यही है तब दुःखके मूल कारणोंसे अपनेको सुरक्षित रखना मनुष्यका कर्तव्य अनायास सिद्ध है। आजकी कथा तो प्रत्यक्ष ही है। संसारमें जिसकी आवश्यकताएँ जितनी अधिक होंगी वह उतना ही अधिक दुःखका पात्र होगा। जितनी कम अभि- लाषाएँ होगीं वह उतना ही कम दुःखका पात्र होगा इससे अधिक उपदेश कल्याणमार्गका है नहीं। दुःखका मूल कारण परमे निजकी कल्पना है। जिसने इस कल्पनाकी उत्पत्तिको रोका उसने संसारका बीज ही उच्छेद कर डाला। देव गुरु और आगमकी उपासनाका भी यही सार है। यदि मोह नष्ट हो गया तो विपाक्त दन्तके विना सर्प जिस प्रकार फण पटकता रहे पर कुछ अहित करनेको समर्थ नही उसी प्रकार अन्य विभाव काम करता रहे पर आत्माका कुछ पदार्थ विगाड़ नहीं सकता इसे हम और आप जानते हैं! यदि विशेष जाननेकी इच्छा हो तो विशिष्ट विद्वानोंके पास जाओ। मेरा उत्तर सुन उसका चित्त गद्गद हो गया।

यहाँ-रात्रिको, ठण्डका वहुत प्रकोप हुआ परन्तु जब निरुपाय कोई उपद्रव आ जाता है तब एक सन्तोष इतना प्रवल उपाय है कि उससे वह उपद्रव विना किसी उपायके स्वयमेव शान्त हो जाता है। यहाँसे प्रातःकाल चले। लगभग ८ मील चले होंगे कि एक वैष्णव धर्मको माननेवाली महिला आई और उसने वहुतसे फल समर्पण किये। वहुत ही आदरसे उसने कहा कि हमारा भारतवर्ष-देश आज जो दुर्दशापन्न हो रहा है उसका मूल कारण साधु लोगोंका अभाव है। प्रथम तो साधुवर्ग ही यथार्थ नहीं और जो कुछ है वह

अपने परिग्रहमें लीन हैं। कोई उपदेश भी देते हैं तो तमाखू छोड़ो, भाँग छोड़ो, रात्रिको मत खाओ" यह उपदेश नहीं देते, क्योंकि वे स्वय इन व्यसनोंके शिकार रहते हैं। यथार्थ उपदेशके अभावमें ही देशका नैतिक चारित्र निर्मल होनेकी जगह मलिन हो रहा है। यद्यपि सम्प्रदाय भेद होनेसे भिन्न भिन्न सम्प्रदायके साधु हैं तथापि आत्माको चैतन्य मानना पञ्च पाप त्यागना यह तो प्राणिमात्रके लिये उपदेश देना चाहिये। इसमें क्या हानि है? अथवा यह तो दूर रहो प्रथम तो उपदेश ही नहीं देते। यदि देते भी हैं तो ऐसा उपदेश देवेंगे जिसका सामान्य मनुष्योंको बोध भी नहीं होगा कि महाराज क्या कह रहे हैं? आप पैदल यात्रा करते हैं यह बहुत ही उत्तम है परन्तु आप जो आपके परिकरमें हैं उन्हे उपदेश देंगे या जहाँ जैन जनता मिल जावेगी वहाँ उपदेश देवेंगे। हम लोगों को आपके पैदल भ्रमणसे क्या लाभ? आपको तो सर्व प्राणिवर्गके साथ धार्मिक प्रेम रखना चाहिये। धर्म तो धर्मीका होता है। हम भी तो धर्मी (आत्मा) हैं अतः हमको भी धर्मका तत्त्व समझाना चाहिये। मेरा तो दृढ़तम विश्वास है कि यदि वक्ता सुबोध और दयालु है तो श्रोतागण उससे अवश्य लाभ उठावेंगे। हम लोग इतने संकुचित विचारके हो गये हैं कि इतरको दीन समझ सदुपदेशसे वंचित रखते हैं। मैं तो इसका अर्थ यह जानती हूं कि जो वक्ता स्वय मोक्षमार्गसे वञ्चित है वह इतरको उससे लाभान्वित कैसे कर सकता है? अतः मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी पैदल यात्राका यथार्थ लाभ उठावें। वह लाभ आप तभी उठा सकेंगे जब धर्मका उपदेश प्राणीमात्रके लिये श्रवण करावेंगे। जो बातें मैंने आपके समक्ष प्रदर्शित कीं यदि उनमें कुछ तथ्यांश दृष्टिमें आवे तो उन्हें स्वीकृत करना अन्यथा त्याग देना। इतना बोलनेका साहस मैंने आज ही किया और आपने सुन लिया

यह आपकी शिष्टाचारता है। अब मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहती .... इतना कह प्रणाम कर वह चली गई।

महिला चली गई और हृदयके अन्दर विचारोंका एक संघर्ष छोड़ गई। उसके चले जाने पर मैंने बहुत कुछ मानसिक परिश्रम किया। मनमें विचार आया कि क्यों तुम्हें एक अबला इतनी शिक्षा दे गई ? क्यों उसका इतना दम्भ साहस हुआ ? मैं तो उसका कथन श्रवण कर आत्मीय दुर्बलता पर ध्यान देने लगा। विचार किया कि ७४ वर्षकी आयु होनेवाली है परन्तु तुमने आज तक शान्ति नहीं पाई। प्रथम तो सम्यग्दर्शन होनेके बाद आत्मामें अनन्त संसारकी विच्छित्ति हो जानेसे अनन्त ही शान्ति आना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण कषाय शान्तिकी घातक नहीं। केवल ईषत् संयम जिसे देशसंयम कहते हैं नहीं होने देती। देशसंयम घातक कषाय आत्मस्वरूपके बोध होनेमें बाधक नहीं। अनन्तानुबन्धी कषायके अभावमें आत्मा हर समय चाहे स्वात्मोपयोगी हो चाहे पर पदार्थोंके ज्ञानमें उपयुक्त हो आत्मश्रद्धासे विचलित नहीं होता। यही कारण है कि यह सर्व संसारके कार्योंमें व्यग्र रहने पर भी व्यग्र नहीं होता। उसकी महिमा अवर्णनीय और अचिन्त्य है। जिस दिन सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया उस दिन आत्मा कर्तृत्वधर्मका स्वामी मिट गया।

अज्ञानके कारण ही यह आत्मा पर पदार्थोंका कर्ता बनता फिरता है, अतः जब अज्ञानभावकी—मोह मिश्रित ज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है तब यह अकर्ता हो जाता है। किसी पदार्थका अपने आपको कर्ता नहीं मानता। जिसे इस तत्त्वकी प्राप्ति हो चुकी उसे अब चिन्ता करनेकी कौन सी बात है ? जिसके पास ९९९९९९९) रुपये ६३ पैसे और २ पाई हो गई उसे कोट्यधीश कहना कुछ अत्युक्ति नहीं परन्तु परमार्थसे अभी १ पाईकी कमी

उसे कोट्यधीश नहीं कहने देती। इसी प्रकार अनन्त संसारका अभाव होने पर भी अभी उस जीवको हम सर्वज्ञ—केवली नहीं कह सकते। कहनेका तात्पर्य यह है कि जब जीवके सम्यग्दर्शन हो जाता है उस समय उसकी आत्मामे जो शान्ति आती है उसका अनुभव उसी आत्माको है अन्य कोई क्या उसका निरूपण करेगा? इतना होने पर भी यदि वह अन्तरङ्गसे खिन्न रहता है तो मेरी बुद्धिमे तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। व्यर्थ ही व्रती बननेका मान करता है। मोक्षमार्गमें जो कुछ कला है इसी सम्यग्दर्शनकी है। विवाहमें मुख्यता वरकी है वरातियोंकी नहीं। यदि वह चगा है तो सर्व परिकर सानन्द है। इसके असद्भावमें सर्व परिकरका कोई मूल्य नहीं अतः हम जो रात्रि दिन शान्तिके अर्थ रुदन करते हैं उस रुदनको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि हम लोगोंकी जैनधर्ममें अकाट्य श्रद्धा है। शेष त्रुटि दूर करनेके अर्थ पुरुषार्थ करना चाहिये। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि धर्ममें हमारी रुचि है तो अवश्य ही हम मोक्षमार्गके पात्र हैं। श्री समन्तभद्रस्वामीने कहा है कि सम्यक्त्वके समान श्रेयस्कर और मिथ्यात्वके समान अश्रेयस्कर अन्य नहीं। अस्तु इस विषयमे विवाद न कर निरन्तर शान्तभावोंका उपार्जन करो। मनमें यही विचार आया कि—गल्पवाद मत करो, सहसा उत्तर मत दो, हठ मत करो किसीको अनिष्ट मत बोलो, जो उचित बात हो उसके कहनेमे संकोच मत करो, आगमके प्रतिकूल मत चलो। न धर्म बाह्य चेष्टामें है और न अधर्म, उसका तो सीधा सम्बन्ध आत्मासे है। आत्माकी सत्ताका अनुमापक सुख दुःखका अनुभव है तथा प्रत्यभिज्ञान भी आत्माकी नित्यतामें कारण है, प्रत्येक मनुष्य सुखकी अभिलाषा करता है।

इसी विचार निमग्नदशामें चल कर बुलन्दशहरसे ८ मील आये और १ धर्मशालामे ठहर गये। यहाँसे ९ मील चल कर

गुलावटीमें श्री मोहन जैसवालकी धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर कई वुढ़ियाँ आईं और केला आदि चढ़ा गईं। उन्होंने समझा कि यह उड़िया बावा हैं। अभी तक भारतमें वेषका आदर है। यहाँ पर मेरठसे बाबू ऋषभदास जी आ गये। उन्हींके यहाँ भोजन किया। आप बहुत ही सज्जन हैं। यहांसे ३ मील चलकर १ धर्मशालामे ठहर गये। एक कोठरी थी उसीमें ५ आदमियोंने गुजर किया। रात्रिको शीतका बहुत प्रकोप था। परन्तु अन्तमे वह प्रकोप गया। प्रातःकाल ७½ बजे जब दिनकरकी सुनहली धूप सर्व ओर फैल गई तब चले। कुछ समय बाद लगा ब्राह्मणोंके ग्राममे पहुँच गये, तगा लोग अपनेको त्यागी कहते हैं, ये लोग दान नहीं लेते हैं देते हैं। त्यागकी महत्ता समझते हैं। जिनके यहाँ ठहरे थे उनका पूर्वज बहुत विद्वान् था। उनके घर बहुतसे ग्रन्थोंका संग्रह था, शिष्ट मानव था। मेरठसे दो चौका आ गये थे उन्हींके यहाँ भोजन किया। पिछले दिनों एक महिलाने प्रेरणा की थी कि जहाँ जाओ सर्व हितके लिये उपदेश दो, धर्मका प्रचार करो पर हमने उस पर कुछ भी चेष्टा न की। आखिर संस्कार भी तो कोई वस्तु है। वास्तवमे यही उपेक्षा हमारे उत्कर्षमें बाधक है। यहाँसे २ कोश चलकर हापुड़ आगये। यह बहुत भारी मण्डी है। यहाँ पर वर्तनोंका महान् व्यापार है तथा यहाँ पर १ वर्षमें करोड़ों रुपयेका सट्टा हो जाता है। सहस्रों मन गुड़ यहाँ पर प्रतिदिन आता है। यहाँ पर मन्दिर बहुत सुन्दर है। प्रतिमाएँ भी अत्यन्त मनोज्ञ हैं। आजकल कारीगर बहुत निपुण हो गये हैं। दर्शन करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीके गृहमे आये। बहुत ही सुन्दर गृह है। आपके ३ सुपुत्र हैं। तीनों ही बुद्धिमान् हैं। आपका कुल धार्मिक है, आपके यहाँ शुद्ध भोजन बनता है तथा आपकी दानमे प्रवृत्ति अच्छी है। कन्याशालामे श्री चौ० रामचरणलाल

सागरकी बहिन है। यहाँके मनुष्य बहुत ही सज्जन हैं। १ खण्डेलवाल भाईके बागमें जो शहरसे आधा मील होगा ठहर गये। आपने सर्व प्रकारकी व्यवस्था कर दी, कोई कष्ट नहीं होने दिया। मन्दिरमें २ दिन प्रवचन हुआ, मनुष्य संख्या अच्छी उपस्थित होती थी। प्रवचन सुन मनुष्य बहुत ही प्रसन्न हुए परन्तु वास्तवमें जो बात होना चाहिये वह नहीं हुई और न होनेकी आशा है, क्योंकि लोग ऊपरी आडम्बरमें प्रसन्न रहते हैं अन्तरङ्गकी दृष्टि पर ध्यान नहीं देते। केवल गल्पवादमें समय व्यय करना जानते हैं। १ धर्मशाला मन्दिरके पास बन रही है। मन्दिरके पास बर्तन बनानेवाले बहुत रहते हैं। इससे प्रवचनमें अतिबाधा उपस्थित रहती है पर कोई उपाय इस विघ्नके दूर करनेका नहीं है। शामको मेरठवाले आये और मेरठ चलनेके लिये प्रार्थना करने लगे जिससे हापुड़वालोंमें और उनमें बहुत विवाद हुआ। हापुड़के मनुष्योंको मेरे जानेका बहुत खेद हुआ परन्तु प्रवास तो प्रवास ही है। प्रवासमें एक स्थान पर कैसे रहा जा सकता है। फलतः माघ सुदी १३ को हापुड़से मेरठकी ओर प्रस्थान कर दिया। यहाँ निम्नांकित भाव मनमें आया—

'किसीकी मायामें न आना' यही बुद्धिमत्ता है। जो कहो उस पर दृढ रहो, व्यर्थ उपदेष्टा मत बनो, किसीसे रुष्ट तथा प्रसन्न मत होओ, किसी संस्थासे सम्बन्ध न रक्खो, अपने स्वरूपका अनुभवन करो, परकी चिन्ता छोडो, कोई किसीका कुछ उपकार नहीं कर सकता।'

मेरठ

हापुड़से ४ मील कैली आये, एक जमींदारके बरण्डामें ठहर गये, अति सज्जन था। सत्कारसे रक्खा, दुग्धादि पान करानेकी

वहुत चेष्टा की परन्तु किसीने नहीं पिया। यहाँसे ३ मील चलकर खरखौंदा आ गये। यहाँ पर एक तगा ब्राह्मणके घर पर ठहर गये जो वहुत ही सज्जन था। इनके वावा तुलसीराम वहुत प्रसिद्ध पुरुप थे। निरन्तर दानमे प्रवृत्ति रखते थे। यहाँ तक दयालु थे कि निज उपयोगके पदार्थ भी परजनहिताय दे देते थे। ऐसे पुरुप वहुत कम होते हैं। यहाँ पर मेरठसे एक चौका आया था। उसीमें भोजन किया। यह ग्राम ६००० मनुष्योंकी वस्ती है। यहाँ पर अनिवार्य शिक्षा है। संस्कृतशाला तथा हाईस्कूल है। सव प्रकारकी सुविधा है। व्यापारकी मण्डी है। यहाँसे ११½ वजे चल दिये और १ मील चलकर मार्गमे सामायिक की। नगरके कोलाहलसे दूर निर्जन स्थान पर सामायिक करनेसे चित्तमे वहुत शान्ति आई। तदनन्तर चलकर एक वागमें ठहर गये। माघ सुदी पूर्णिमाको प्रातः तीन मील चलकर मेरठसे इसी ओर २ मील दूरी पर १ वाग था उसमें ठहर गये। देहलीसे श्री राजकृष्णके भाई आये, उनके यहाँ भोजन हुआ। वहाँ १½ वजते-वजते मेरठसे वहुत जनसंख्या आकर एकत्र हो गई और गाजे-वाजेके साथ मेरठ ले गई। लोगोंने महान् उत्साह प्रकट किया। अन्तमें श्री जैन वोर्डिगमे पहुँच गये और यहीं ठहर गये। यहाँ पर १ मन्दिर वहुत सुन्दर है, स्वच्छ है। १ भवन शास्त्रप्रवचन-का है जिसमे २०० मनुष्य तथा १०० महिलाएँ आनन्दसे शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। दूसरे दिन प्रात.काल प्रवचन हुआ। श्री वर्णी मनोहरलालजीने प्रवचन किया। आपकी प्रवचनशैली गम्भीर है, आप सस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं, कवि भी हैं, भजनोंकी अच्छी रचना की है, गान विद्यामें भी आपकी गति है, हारमोनियम अच्छा वजाते है, सौम्यमूर्ति हैं। आपने सहारनपुरमे गुरुकुल खोला है उसके अर्थ कुछ संकेत किया तो २०००) वीस हजार

रुपये हो गये। (१००००) दस हजार तो आटेकी मिलवालोंने दिये। आपसे यहाँकी जनता प्रसन्न है। यहाँ बाबू ऋषभदासजी साहब अच्छे विद्वान् हैं। आपके प्रवचनसे हमें बहुत आनन्द आया। आपको चारो अनुयोगोंका ज्ञान है। जनता आपके प्रवचनों-से बहुत प्रसन्न रहती है। आपने व्यापारका त्याग कर दिया है। आपके पुत्र भी बहुत सुशील हैं। आपका कुटुम्ब आपके अनुकूल है। आप विद्वान् भी हैं, सदाचारी भी हैं, त्यागी भी हैं, वक्ता भी हैं। आपके समागमसे अपूर्व शान्ति हुई। आप गृहमें रहकर जलमें कमलके समान अलिप्त हैं। आपके साथ वार्तालाप करनेसे श्री आचार्य समन्तभद्रके रत्नकरण्डश्रावकाचारका श्लोक—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥

याद आ गया और दृढ़तम विश्वास हो गया कि कल्याण मार्गका बाधक अन्य पदार्थ नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि निमित्त कारण कुछ नहीं करता। यदि पदार्थमे योग्यता है तो निमित्त उसके विकासमे सहकारी हो जाता है। चनामे विकास होनेकी योग्यता है, अतः उष्ण बालु पुञ्जका संसर्ग पाकर वह खिल जाता है। बालुका पिण्ड अग्निका निमित्त पाकर उष्ण तो हो जाता है परन्तु विकसित नहीं होता और निजकी योग्यता रहने पर भी अग्नि रूप निमित्तकी सहायताके विना चना विक-सित नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि कार्यकी सिद्धिमें पदार्थकी योग्यता और बाह्य निमित्तका आलम्बन दोनों ही कार्यकारी हैं।

मेरठ पहुँचते ही हमें बाबा लालमनजीका स्मरण हो आया। आपकी कथा बड़ी रोचक है। आपके नेत्रोंकी दृष्टि जाती रही

थी। एक दिन आप मन्दिरमें गये तो आपकी माला टूट गई। तब आपने नियम लिया कि अब तो मन्दिरसे तब ही प्रस्थान करेंगे जब माला पोलेंगे या यहीं संन्यास धारण करेंगे। लोगोंने बहुत समझाया परन्तु आपने किसीकी शिक्षा नहीं मानी। २ दिन हुए कि आपको लघुशंकाकी बाधा हुई। उसके निवृत्त्यर्थ आप मन्दिरसे निकले परन्तु निकलते समय आपके शिरमें पत्थरकी चौखटका आघात लगा और मस्तकसे रुधिरधार बहने लगी। मालीने जलसे धोया शिरका विकृत भाग निकल जानेसे आपको दिखने लगा। इस घटनासे आपने गृह जानेका त्याग कर दिया और क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार कर ली। आप प्रसिद्ध क्षुल्लक हुए। १५—१५ दिन तकके उपवास करनेमें आप समर्थ थे। आप धर्मप्रचारक भी अच्छे थे। बीसों स्थानों पर आपने जिन मन्दिर निर्माण कराये, अनेकोंको माँस भक्षणका त्याग कराया और अनेकोंको मन्दिर-मार्गी बनाया। जिसके पीछे पड़ जाते थे उसे कुछ न कुछ त्याग करना ही पड़ता था। आपकी तपस्याका प्रभाव अनेक व्यक्तियों पर पड़ता था। आप यदि विद्वान् होते तो कई विद्यालय स्थापित करा जाते परन्तु उस ओर आपकी दृष्टि न गई, फिर भी आपने जैनधर्मका महान् उपकार किया, स्वयं निर्दोष चारित्र पालन किया, औरोंको भी पालन करानेका पूर्ण शक्तिसे प्रचार किया। एक बारकी बात है कि आप सिंहपुरीकी यात्राको गये थे और मैं भी वहाँके दर्शनके लिये गया था। आपके दर्शनका आकस्मिक लाभ हो गया। मैंने सविनय आपको प्रणाम किया। फिर क्या था? आप कहते हैं—कौन हो? मैंने उत्तर दिया छात्र हूँ। आपने कहा—कहाँ अध्ययन करते हो? मैंने कहा—स्याद्वाद विद्यालयमें। आपने प्रश्न किया—कुछ त्याग कर सकते हो? मैंने विचार किया—हम छात्र हैं, अतः क्या त्याग कर सकते हैं? हमारे पास कुछ द्रव्य तो

है नहीं। फिर भी जो बनेगा १ आना २ आने किसी गरीबको दे देवेंगे। इस विचारके अनन्तर मैंने सहर्ष स्वीकृत किया कि—कर सकते हैं। अच्छा महाराज बोले—तुमको भोजनमें सबसे प्रिय शाक कौनसा है? मैंने कहा—महाराज! आपने कहा था कुछ त्याग कर सकते हो, मैंने समझा—कुछ पैसेका त्याग महाराज करावेंगे पर आप तो पूछते हैं भोजनमें कौनसा प्रिय शाक है? महाराज! मुझे सबसे प्रिय शाक भिण्डी है। सुन कर महाराज बोले—इसीको त्यागो। मैं बोला—महाराज! यह कैसे होगा? क्योंकि यह तो मुझे अत्यन्त प्रिय है। महाराज बोले—तूने स्वयं कहा था कि त्याग कर सकते हैं। मैंने कहा—महाराज भूल हुई क्षमा करो। महाराज बोले—भूलका फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। मैंने कहा—महाराज! जो आज्ञा, कब तकके लिये छोड़ूं? महाराज बोले—तेरी इच्छा पर निर्भर है। मैं बोला—महाराज! मैं मोही जीव हू, आपही बतावें। महाराजने कहा—जो तेरी इच्छा सो बोल। मैंने कहा— जब तक बनारस भोजनालयमें नहीं पहुँचा तब तक त्याग है। महाराज बोले—बेटा! हम समझ गये परन्तु ऐसी दम्भिता सुखकारी नहीं। ज्ञानार्जनका यह फल नहीं कि छलसे काम निकाल लो। यही दोष वर्तमानके वातावरणमें हो गया है कि हर बातमें कुतर्कसे काम निकालते हैं। हम तुमको छात्र जान तुम्हारे हितकी बात कहते हैं जो मनमें हो सो कहो। देखो, यदि भिण्डीका शाक छोड़ना इष्ट नहीं था तो हमसे कह देते—महाराज, मैं नहीं छोड़ सकता—यही सीधा उत्तर देना था। अस्तु, छलसे काम न करना। मैंने महाराजसे कहा—१२ मासको त्याग दिया। महाराज प्रसन्न हुए, कहने लगे—प्रसन्न रहो, कल्याणके पात्र होओ। महाराजका अन्तिम उपदेश तो यह था कि यदि कल्याण नामका

कोई पदार्थ है तो उसका पात्र त्यागी ही हो सकता है। अन्य कथा छोड़ो जो हिंसक हैं, विषयी हैं, व्यसनी हैं उन्हें भी जो सुख होता है वह त्यागसे ही होता है। जैसे हिंसक मनुष्यके यह भाव हुए कि अमुक प्राणीकी हिंसा करूँ। अब वह जब तक उस प्राणीका घात न करे तबतक निरन्तर खिन्न और दुखी रहता है। अब उसकी खिन्नता जानेके दो ही उपाय हैं—या तो अपनी इच्छाके अनुसार उस प्राणीका घात हो जावे या वह इच्छा त्याग दी जावे। यहाँ फलस्वरूप यही सिद्धान्त तो अन्तमें आया कि सुखका कारण त्याग ही हुआ। हम उस ओर दृष्टि न दें यह अन्य कथा है। विषयी मनुष्य जब विषय कर लेता है तभी तो प्रसन्न होता है। इसका यही अर्थ तो हुआ कि उसे जो विषयेच्छा थी वह निवृत्त हो गई। मेरा ही यह विश्वास है सो नहीं, प्राणीमात्रको ही यही मानना पड़ेगा कि त्यागमें ही कल्याण है।

कल्याणका बाधक कर्म है और यह कर्म उदयमें विकृति देकर ही खिरता है। उस समय जो औदयिक विकृति होती है वही फिर नवीन बंध बाँधनेका कारण हो जाती है। यही संतति हमारी आत्माको आत्मोन्मुख नहीं होने देती। यही हमारी महती अज्ञानता है। जब तक हमारी असंज्ञी अवस्था थी तब तक तो हमको हेयोपादेयका बोध ही न था। पर्याय मात्रको आपा मान पर्याय ही में आहारादि संज्ञाओं द्वारा मग्न रहते थे परन्तु अब तो संज्ञीपनाको प्राप्त हो हेयोपादेयके जाननेके पात्र हुए हैं। अब भी यदि निजकी ओर लक्ष्य न दिया तो हमारा सा अपात्र कौन होगा? हमको यह बोध है कि हम जो हैं वह शरीर नहीं हैं। शरीर पुद्गल परमाणुओंका पिण्ड है। अनादिकालसे विभाव परिणतिके कारण इन दोनोंका बन्ध हो रहा है और

उस वन्धके कारण दोनों द्रव्य आत्मीय स्वरूपसे च्युत हो रहे हैं। जैसे स्वर्ण और रजतको गला कर यदि १ पिण्ड कर दिया जावे तो उस अवस्थामे न वह केवल स्वर्ण है और न रजत है किन्तु दोनोंकी विकृतावस्था है। यद्यपि जिस समय उन दोको गलाया था उस समय उनमे जो चार आना भर स्वर्ण और चार आना भर रजत था वही पिण्डावस्थामे भी विद्यमान है तथापि पर्यायदृष्टिसे न वह केवल स्वर्ण है और न केवल रजत ही है किन्तु स्वर्ण और रजतकी १ मिश्रित अवस्था है। इसी प्रकार आत्मा और पुद्गलकी वन्धावस्थामें एकमेक प्रतीति होती है। यद्यपि दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न हैं तथापि मोहके कारण भिन्नता दृष्टिपथ नहीं होती। भिन्नताका कारण जो भेदज्ञान है वह मद्य-पायी मनुष्यकी विवेकशक्तिके समान अस्तमितके समान हो रहा है। अतः बेटा! हमारा यही उपदेश है कि मोहको त्यागो और आत्मकल्याणमें आओ। केवल जाननेसे कुछ न होगा। अस्तु, महाराजकी यह कथा आनुषङ्गिक आ गई। मेरठमें कई दिन रहे। यहाँका जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। यहाँकी मण्डली भी धार्मिक है—धार्मिक भावोंसे ओत-प्रोत है। सदरमें २ जिन मन्दिर हैं। यहाँ पर भी लोगोंका वर्ताव धार्मिक भावोंसे अनुस्यूत है। इसी तरह तोपखानेमे भी १ सुन्दर जिन मन्दिरका निर्माण कराया गया है। यदि त्रुटि देखी गई तो यही कि समाजमे संघटन नहीं, अन्यथा आज संसारमे आत्माका जो वास्तव धर्म है उसका विकाश होनेमे विलम्ब न होता।

अहिंसा धर्म है और वह आत्माका वह परिणाम है जहाँ मोह राग-द्वेषकी कलुपता नहीं होती। इस तरह आत्माकी जो शुद्ध अवस्था है वही अहिंसा है। विषय लालसासे पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमे जो प्रवृत्ति हो रही है वह अहिंसाके श्रद्धानमात्रसे

विलीन हो जाती है। पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका ज्ञान होना अन्य बात है और रुचिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए जानना अन्य बात है। दोनोंमें महान् अन्तर है। प्रमाद पूर्वक जो हिंसा होती है आन्तरङ्गिक कलुषताके निकल जाने पर वह भी नहीं होती। प्रयत्न पूर्वक निष्प्रमाद रहने पर यदि किसी प्राणीका वध भी हो जावे तो वह हिंसा नहीं, क्योंकि अमृतचन्द्रदेवने कहा है—

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥

अर्थात् जिसका आचरण युक्त—निष्प्रमाद है उसके रागादि जन्य आवेशके बिना यदि बाह्यमें कदाचित् प्राणोंका व्यपरोप भी होता है तो उससे हिंसा नहीं होती। अतः अन्तरङ्गमे जिनका अभिप्राय निर्मल हो गया उन महापुरुषोंकी प्रवृति अलौकिक हो जाती है। किसीके ये भाव बाहरसे आते नहीं किन्तु जिन आत्माओं-के संसार बन्धनसे मुक्त होनेकी आकांक्षा हो जाती है उनके अना-यास ही आभ्यन्तरसे प्रकट हो जाते हैं। प्रत्येक प्राणीकी अहिंसा-रूप परिणति स्वभावतः विद्यमान रहती है, कहीं बाहरसे वह आती नहीं है। जैसे अग्निमें उष्णता किसीने लाकर नहीं दी है। वह तो उसका स्वभावसिद्ध गुण है परन्तु जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणिके संपर्कसे अग्निका उष्णता गुण दाह कार्यसे विमुख हो जाता है उसी प्रकार आत्माका अहिंसक गुण मोहके संपर्कसे स्वकार्यसे विमुख हो रहा है। हे आत्मन्! अब इन पर पदार्थोंके द्वारा अपनी प्रशंसा निन्दा आदिके जो भाव होते हैं उन्हे त्याग सुमार्ग पर आओ।

यहाँ बाबू जुगलकिशोर जी मुख्त्यार तथा उनके साथ पं० दरबारीलालजी न्यायचार्य भी आये। यहाँ आहार आदिके समय लोगोंने सहारनपुर गुरुकुलके लिये यथाशक्य सहायता

दी। गुरुकुल संस्था उत्तम है परन्तु लोगोंकी दृष्टि उस ओर नहीं। उसका स्वाद नहीं, जिन्हें स्वाद है उनके पास द्रव्य नहीं, जिनके पास द्रव्य है उनके परिणाम नहीं होते। संसारी जीव निरन्तर परको अपना मानता है। इसी कारण वह संसारमें भ्रमता है। हमारे मनमें यह विचार आया कि 'स्पष्ट और सरल व्यवहार करो। परको पराधीन बनाना महती अज्ञानता है। आत्मीय कलुषताके विना परकी समालोचना नहीं होती।'

'अन्तरङ्ग वृत्ति निर्मल नहीं। तत्वज्ञानकी रुचि जैसी चाहिये वह नहीं। खेद इस बातका है कि हम स्वयं आत्मपरिणामोंके परिणमन पर ध्यान नहीं देते। स्वकीय आत्मद्रव्यका कल्याण करना मुख्य है परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं है। आत्मन्! तू परपदार्थोंमें कब तक उलझा रहेगा?'

खतौली

फाल्गुन वदी ६ सं० २००५ को मेरठसे चलकर शिवाया पर निवास किया। यहाँ पर जो बंगला था वह ईसाईका था परन्तु उसमें जो रहनेवाला था वह उत्तम विचारका था, जातिका वैश्य था, गांधीजीके आश्रयमें १२ वर्ष रहा था, मुफ्त औषध बाँटता था, योग्य था। उसने यह नियम लिया कि तमाखु न पीवेंगे तथा जहाँ तक बनेगा मनुष्यता सम्पादन करनेकी चेष्टा करेंगे। चेष्टा ही नहीं मनुष्य बनकर ही रहेंगे। बहुत विनयसे १ मील पहुँचा गया। शिवायासे चलकर डौराला आया। यहाँ पर भोजन कर सामायिक क्रिया की और फिर चलकर सायंकाल सकौती पहुँच गये। यहाँ पर ठहरनेके लिये पवित्र स्थान मिला। रात्रिको विचार आया कि 'परके सम्बन्धसे जीव कभी भी सुखी नहीं हो सकता,

क्योंकि जहाँ पर पराधीनता है वही दुःख है अतः जहाँ तक बने परकी पराधीनता त्यागो। यही कल्याणका मार्ग है। स्वतन्त्रता ही सुखकी जननी है, सुखका साधन एकाकी होता है।'

फाल्गुन वदी ८ सं० २००५ के ३ बजे खतौली आये। ग्रामके सर्व मनुष्य आये, स्त्री जन भी अधिक संख्यामें आईं। लोगोंकी स्वागत पद्धतिको देखकर मनमें विकल्प आया कि 'केवल रूढिकी प्रवृत्ति ही चलनेसे लाभ नहीं। मार्गमें चाँदीके फूल बिखेरे। मैं तो इसमें कोई लाभ नहीं मानता। परोपकार करनेकी ओर लक्ष्य नहीं। इसका कारण यह है कि हम लोग आत्मतत्त्वको नहीं जानते अतः अनावश्यक प्रवृत्ति कर अपनेको धर्मात्मा मान लेते हैं। परन्तु धर्मात्मा वही हो सकता है जो धर्मको अंगीकार करें।'

यह वही खतौली है जहाँ पर लाला हरगूलालजी बहुत ही प्रबल विद्वान् और उदार थे। आप केवल संस्कृतके ही विद्वान् न थे किन्तु फारसीके भी पूर्ण विद्वान् थे। आप यहाँसे २ कोस पर मौलवी साहबका गृह था वहाँ पर पढ़ने जाते थे। मौलवी साहबने कहा—हरगू बेटा! तुमको कष्ट होता होगा अतः हम स्वयं खतौली आया करेंगे और यही हुआ। यहाँ पर वर्तमानमें कई सज्जन ऐसे हैं जो धवलाका स्वाध्याय करते हैं। श्री महादेवी बहुत विदुषी है, त्यागकी मूर्ति है, निरन्तर अपना समय ज्ञानार्जनमें लगाती है। यहाँ पर पहले जो कुन्दकुन्द विद्यालय था वह अब अंग्रेजीका कालेज हो गया'। इस युगमें लोकैषणाके कारण अध्यात्मविद्याकी ओरसे लोगोंका झुकाव कम होता जा रहा है परन्तु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि इस जीवका वास्तविक कल्याण अध्यात्मविद्यासे ही हो सकता है। यहाँ पर कई सज्जन हैं—बाबूलालजी साहब महापरोपकारी हैं। लाला त्रिलोकचन्द्रजी तो एक पैरसे कमजोर होकर भी धार्मिक कार्योंमें अपना समय

लगानेमें कृपणता नहीं करते। लाला विश्वम्भरसहायकी क्या कहें सामग्री होते हुए भी उसका उपभोग करनेमें संकोच करनेसे नहीं चूकते। हमारा आपका बहुत प्राचीन सम्बन्ध है। हमारी सुनते तो हैं परन्तु 'हर्रा लगे न फटकरी रंग चोखा हो जाय' ऐसा मधुर भाषण कर टाल देते हैं। टालते रहें पर हमें विश्वास है कि एक दिन अवश्य मार्ग पर चलेंगे। मार्गमें हैं पर चलनेका विलम्ब है। यहीं पर लाला खिचोड़ीमल्ल हैं जो सचमुच एक उदारताका पुतला है। यदि ऐसा मनुष्य विशेष धनिक होता तो न जाने क्या करता? मेरा इनका बहुत दिनसे सम्बन्ध है, निरन्तर इनकी प्रवृत्ति स्वाध्यायमें रहती है। पूजन प्रतिदिन करते हैं। मुरारमें आप ४ मास रहे। निरन्तर त्यागियोंको आहार कराना, संस्थाओंमें दान करना, किसीको कुछ आवश्यकता हो उसकी पूर्ति करना, विद्वानोंका आदर करना आपके प्रकृति सिद्ध कार्य हैं। बनारस तथा सागर विद्यालयकी निरन्तर सहायता करते हैं। आपका अधिक समय मेरे पास ही जाता है। आपने अपने भानजेके पाणिग्रहणमें २५००) का दान किया तथा विवाह नवीन पद्धतिसे किया। कन्यावालेसे कुछ भी आग्रह नहीं किया। आपका व्यवहार इतना निर्मल है कि कोई किसी पक्षका क्यों न हो प्रायः आपसे स्नेह करने लगता है। खतौलीमें प्रायः सर्व सज्जन हैं। यहाँ पर श्री माड़ेलाल जी दस्सा बड़े प्रतापशाली थे। आपने १ जैन मन्दिर भी उत्तम बनवाया है। आपके २ पुत्र बहुत ही योग्य थे। १ अब भी विद्यमान है। उन्हींके बँगलामें मैं ठहरा था।

प्रातःकाल ८½ बजेसे ९½ बजे तक प्रवचन किया परन्तु मेरी बुद्धिमें तो यह आया कि हम लोग रूढ़िके उपासक हैं, धर्मके वास्तविक तत्त्वसे दूर हैं। धर्म तो आत्माकी शान्ति परिणतिके उदयमें होता है अतः उचित तो यह है कि पर पदार्थके साथ जो

आत्मीय सम्बन्ध जोड़ रक्खा है उसे त्यागना चाहिये। जब तक यह नहीं होगा तब तक सर्व क्रियाएँ निःसार हैं। इसका अर्थ यह है कि जब तक अनात्मीय पदार्थोंके साथ निजत्वकी कल्पना है तब तक यह प्राणी धर्मका पात्र नहीं हो सकता। प्रवृत्तिकी निर्मलता उसीकी हो सकती है जिसका आशय पवित्र हो और आशय पवित्र उसीका हो सकता है जिसने अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मबुद्धि त्याग दी। वही संसारके बन्धनोंसे छूट सकता है। फागुन बदी ११ को जैन कालेजमें प्रवचन था। पं० मनोहरलालजी वर्णीका प्रवचन हुआ। अनन्तर मैंने भी कुछ कहा—

आशाका त्याग करना ही सुखका मूल कारण है। जिन्होंने आशा जीत ली उन्होंने करने योग्य जो था वह कर लिया। आशाका विषय इतना प्रबल है कि कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। सांसारिक पदार्थोंकी पूर्तिकर इस आशागर्तको आज तक कोई नहीं भर सका है। संसारमें सुखी वही हो सकता है जो इन आशाओं पर विजय प्राप्त करले। अगले दिन कच्चीवाले मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्योंकी संख्या अच्छी थी। १० बजे चर्याको निकले, परन्तु भीड़ बहुत होनेसे चर्याकी विधि नहीं मिली। परिणामोंमें कुछ अशान्ति हुई। अशान्तिका कारण मोहकी बलवत्ता है। मोही जीव सर्वदा दुःखका पात्र होता है। शारीरिक अवस्था दुःखकी जननी नहीं किन्तु उसके होते उसमें जो आत्मीयताकी कल्पना है वही दुःखकी जननी है। शरीर पर पदार्थ है, परन्तु उसके साथ ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि भिन्नता भासमान नहीं होती। मनमें विचार आया कि यदि यह चाहते हो—हमारे श्रेयोमार्गका विकास हो तो शीघ्रसे शीघ्र इन महापुरुषोंका समागम त्यागो। आजकल जितने महापुरुष मिलते है उनका अभिप्राय तुम्हारे अभिप्रायसे नहीं मिलता है और इससे यह दृढ़ निश्चय करो कि प्रत्येक पदार्थ-

का परिणमन भिन्न भिन्न है। तब यह खेद करना कि यह समागम अच्छा नहीं व्यर्थकी कल्पना है।

एक दिन भैंसी गये, मन्दिरकी दर्शन किये। यहाँ पर ५ घर जैन हैं। मन्दिर बहुत सुन्दर है परन्तु मनुष्योंकी रुचि धार्मिक कार्योंमें थोड़ी है। यहाँ पर २ आदमियोंने प्रतिज्ञा ली कि हमारे जो खर्च होगा उसमें एक पैसा रुपया दानमें दिया करेंगे। यह ग्राम जाट लोगोंका है। यहाँ पर १ चर्मकार है। उसकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर है। पार्श्वनाथका चित्र रक्खे है और उसकी भक्ति करता है। यहाँ जो जैनी हैं वे सज्जन हैं। भोजनके बाद सामायिक की। अनन्तर स्त्रीसमाज आया। उसे कुछ उपदेश दिया परन्तु प्रभाव कुछ नहीं पड़ा। प्रायः स्त्रीपर्याय मोहसे भरी रहती है। इसका सहवास मोही जीव चाहते हैं और उनके संपर्कसे आत्मीय कल्याणसे वञ्चित रहते हैं। संसारमें सबसे कठिन मोह स्त्रीका है।

अगले दिन फिर प्रवचन हुआ। प्रवचन करते करते मुझे लगा कि लोग ऊपरी दृष्टिसे सुनते हैं। पश्चात् उसका कुछ असर नहीं रहता केवल प्रशंसा ही रह जाती है। वक्ता आत्मीय परिणतिसे कार्य नहीं लेता। लौकिक मर्यादा ही में निज प्रतिष्ठा मान प्रसन्न हो जाता है। होता जाता कुछ नहीं। मोक्षमार्गकी सरल पद्धति है परन्तु वक्ताओंने उसे इतनी दुरूह बना दी है कि प्रत्येक प्राणी सुन कर भयभीत हो जाता है। धर्म जब आत्माकी परिणति है तब उसको इतना कठिन दिखाना क्या शुभ है?। मनमें विचार आया कि अपनी दिनचर्या ऐसी बनाओ जो विशेपतया परका सम्पर्क न्यून रहे। पर सम्पर्कसे वही मनुष्य रक्षित रह सकता है जो अपनी परिणतिको मलिन नहीं करना चाहता। मलिनताका कारण परमें मोह द्वेप ही है। अतः स्वीय मोह राग द्वेप छोड़ो।

यहाँसे प्रातः काल ७।। बजे चलकर ८।। बजे गंधारी आ गये। यहाँ पर घूमसिंहके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर ४ घर हैं। चारों ही अच्छे हैं। घसीटामल अत्यन्त दयालु हैं। आयका ½ भाग दानमें लगाते हैं। यहाँसे चलकर तिसना आ गये। तिसना गंधारीसे ५ मील है। यहाँ पर ६ घर जैनी हैं। प्रायः सभी सम्पन्न हैं। यहाँ आनन्दस्वरूपके घर भोजन किया। यहाँसे १२ मील हस्तिनापुर है। हस्तिनापुर पहुँचनेकी भावना हृदयको विशेषरूपसे उत्सुक कर रही थी। अतः यहाँसे चलकर वटावली ठहर गये और अगले दिन प्रातः २ मील चलकर वसूमा आ गये। यहाँ पर बहुत उच्चतम मन्दिर है। मन्दिरमें श्री शान्तिनाथ जीकी मूर्ति है। १२३१ सम्वत्की है। बहुत सुन्दर और देशी पत्थरकी है। यहाँ पर तिसनासे आये हुए आनन्दस्वरूपजीके यहाँ भोजन हुआ। आप हस्तिनागपुर तक बराबर हमारे साथ आये। फागुन सुदी पञ्चमी सं० २००५ को दिनके ३ बजते बजते हम हस्तिनागपुर आ गये। आनन्दसे श्रीजिनराजका दर्शन किया।

हस्तिनागपुर

यह वही हस्तिनागपुर है जहाँ शान्ति, कुन्थु और अरनाथ भगवान्के गर्भ, जन्म तथा तप कल्याणक हुए थे। देवोपनीत जिसकी रचना थी तथा जहाँ भगवान्के गर्भमें आनेसे ६ माह पूर्व ही से रत्नवर्षा होने लगती थी। जगत् प्रसिद्ध कौरव पाण्डवोंकी भी राजधानी यही थी। अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंकी रक्षा भी यहाँ हुई थी तथा रक्षाबन्धनका पुण्य पर्व भी यहींसे प्रचलित हुआ था। यहाँके प्राचीन वैभव और वर्तमानकी निर्जन अवस्था पर दृष्टि डालते हुए जब विचार करते हैं तो अतीत और वर्तमानके बीच भारी अन्तर अनुभवमें आने लगता है।

वर्तमानमें यहाँ पर १ विशाल मन्दिर है, जो देहलीके लाला हरसुखरायजीका बनवाया हुआ है। बहुत ही पुष्ट और सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण किस स्थितिमें किस प्रकार हुआ यह इसके इतिहाससे प्रसिद्ध है। मन्दिरमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीका बिम्ब अतिरम्य है[1]। १२३१ सम्वत्का है। जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। बीचमें एक वेदी है। उसके बाद एक नवीन बिम्ब श्रीमहावीर स्वामीका है। यह सब है परन्तु मनुष्योंकी प्रवृत्ति तो प्रायः इस समय अति कलुषित रहती है। यदि यहाँसे लोग शान्तभावको लेकर जावें तब तो यात्रा करनेका फल है, अन्यथा अन्यथा ही है। संसारबंधनके नाशका यदि यहाँ आकर भी कुछ प्रयास नहीं हुआ तो निमित्त कारणका क्या उपयोग हुआ? दूसरे दिन मन्दिरमें प्रवचन हुआ। प्रवचनमें मैंने कहा कि आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है फिर भी उपयोगमें नहीं आती। जल्पवादसे मुख मीठा नहीं होता। कर्त्तव्यवाद कथनवादसे भिन्न वस्तु है। आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है यह शब्दकी रचना उसमें राग-द्वेषकी कलुपतासे रक्षा करे, यह असंभव है। मनुष्योंकी प्रवृत्तिके हम कर्त्ता धर्ता नहीं, फिर भी बलात्कार स्वामी बनते हैं। मोही जीव कुछ कहे परन्तु उस स्वादको नहीं पहुँचता जो मोहाभावके समय होता है। यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि ज्ञानमें ज्ञेय नहीं जाता, फिर भी हम ज्ञेयोंके व्यवस्थापक बनते ही जाते हैं। लौकिक व्यवहार भी इसी बल पर चल रहा है। लौकिक व्यवहार भी मोही जीवोंकी चेष्टाका विशेष फल है। यह तो लौकिक प्रक्रिया है। परमार्थसे विचारा जाय तब व्यवहार मात्र इसी मोहसे चल रहे हैं। अन्यकी कथा दूर रही, मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति भी इसी कषायके आधीन है। योगोंकी प्रवृत्ति आत्मामें प्रदेश कम्पन करा दे परन्तु बन्ध जनक नहीं। यही कारण

१—यह मूर्ति यहाँ बसूमासे लाई गई है।

है कि उपशान्त मोहसे लेकर त्रयोदश गुणस्थान पर्यन्त योगोंकी प्रवृत्ति स्थितिबन्धकी उत्पादक नहीं, अतः अभिप्रायको निर्मल बनानेकी चेष्टा करो। योगोंकी प्रवृत्तिमें मत उलझे रहो। योगोंमें शुभता और अशुभता तन्मूलक ही है। संसारका मूल कारण कषाय है। इसके बिना योगका कोई महत्त्व नहीं। वृक्षकी जड़ कटनेके बाद हरापन स्थितिका कारण नहीं। अतः हमें आवश्यकता कषाय शत्रुको पराजित करनेकी है। जिन्होंने इस पर विजय पा ली वे सिद्ध पदके अधिकारी हो चुके। ज्ञानमें जो ज्ञेय आता है अर्थात् ज्ञानका जो परिणमन ज्ञेय सदृश होता है उसका कारण ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है तथा ज्ञानमें जो रागादि प्रतिभासता है उसका कारण मोहनीय कर्मका उदय है। उस उदयसे चारित्र गुण विकृत होता है। वही गुण विकृतरूप होकर ज्ञानमें आता है। ज्ञेय, यह दोनों हैं परन्तु एक ज्ञेय बाह्य है। उसके निमित्तसे ज्ञान साक्षात् ज्ञेयाकार हो जाता है। रागमें चारित्र गुणकी विकृति जो होती है वह ज्ञानमें भासती है। परमार्थतः राग भी ज्ञेय है और घट पटादि भी ज्ञेय हैं।

हम तो कुछ विद्वान् नहीं परन्तु विद्वान् भी वक्ता हो तब भी ये भद्रगण—नाम मात्रके जैनी उस वक्ताके प्रवचनका लाभ नहीं उठाते। अब संयमके स्थानमें 'अष्टमूलगुणधारणका' उपदेश रह गया है। बहुतसे बहुत बलका प्रभाव पड़ा तो बाजारकी जलेबी त्याग तक सीमा पहुँच गई है।

प्रवचनके बाद भोजन हुआ। भोजन बहुत ही संकोचसे होता है। कारण उसका यह है कि पदके अनुकूल प्रक्रिया उत्तम नहीं। अनेक घरसे भोजन आता है तथा अति भोजन परोस देते हैं जो कि आगम विरुद्ध है। भोजन थालीमें छूटना नहीं चाहिये पर मेरी थालीसे १ आदमीका भोजन पड़ा रहता है।

भोजन करते समय मुझे लगता है कि यदि मैं पाणिपात्रभोजी होता तो लोग यह अधिक भोजन कहाँ परोस देते? यह मेरी दुर्बलता है, संकोचवश होकर यह अनर्थ होता है। संकोचका कारण भी एक प्रकारसे स्वप्रशंसाका लोभ है—कोई अप्रसन्न न हो जाय यह भावना है। जिस जीवके प्रशंसाकी इच्छा नहीं वही निर्भीक कार्य कर सकता है।

एक दिन स्त्री समाजके सुधारके अर्थ भी व्याख्यान हुआ। मैंने कहा कि यदि मनुष्य चाहे तो स्त्रीसमाजका सहज कल्याण हो सकता है। यदि यह समाज मर्यादासे रहे तो कल्याण पथ दुर्लभ नहीं। सबसे प्रथम तो ब्रह्मचर्य पाले, स्वपतिमें संतोष करे तथा पुरुष वर्गको उचित है कि स्वदारमें सन्तोष करे। जब स्त्रीके उदरमें बालक आ जावे तबसे लेकर ३ वर्ष ब्रह्मचर्य पाले तथा ब्रह्मचर्य पालनेवालोंको आत्मीय वेषभूषाकी चटक-मटक मिटा देना चाहिये, क्योंकि वेषभूषाका प्रभाव मन पर पड़ता है। यदि आजकी जनता ब्रह्मचर्यके इस महत्त्वको हृदयांकित कर सके तो उसकी सन्तान पुष्ट हो तथा जन संख्याकी वृद्धि सीमित रहे। आज मनुष्यकी आयके साधन सीमित हो गये हैं और उसके विरुद्ध सन्तानमें वृद्धि हो रही है जिसके कारण उसे रात-दिन संक्लेशका अनुभव करना पड़ता है। इस संक्लेशसे बचनेका सीधा सच्चा उपाय यही है कि पुरुष तथा स्त्रीवर्ग अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करे।

एक दिन व्रतीसम्मेलन हुआ। व्रती लोगोंने भाषण दिये। प्रायः सफलता अच्छी मिली। लोगोंके हृदयमें व्रतका महत्त्व भर गया यही तो उसकी सफलता थी। लगभग बीस आदमियों ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, छोटे छोटे बालकोंने रात्रि भोजन त्याग किया, अनेकोंने अष्टमी चतुर्दशीके दिन ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

आवश्यकता उपदेशकी है। जैनकुलमे उत्पन्न हुए लोगोंकी त्यागकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति देखी जाती है। फिर उन्हे यदि बार-बार प्रेरणा मिलती रहे तो उनका वह त्यागभाव अधिक विकसित हो सकता है। मैंने देखा कि किसी भी व्यक्तिके ऊपर यदि प्रभाव पड़ता है तो आत्माकी पवित्रताका ही पड़ता है। शब्दोंका नहीं, उनका प्रभाव तो कानो तक ही रहता है। अच्छे शब्द हुए, लोग सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं और कटुक शब्द हुए, नाराज हो जाते हैं। कुछ समय बाद 'लोग वक्ताने क्या कहा' यह भूल जाते हैं। परन्तु एक वीतराग मनुष्यकी आत्मासे यदि कोई शब्द निकलते हैं तो लोगोंके हृदय उन्हे सुनकर द्रवीभूत हो जाते हैं—वे कुछ करनेके लिए विचार करते हैं। यदि ये व्रती लोग अपना आचरण पवित्र रक्खें तथा जन कल्याणकी भावना लेकर भ्रमणके लिये निकल पड़ें तो जनताका कल्याण हो जावे। पूर्व समयमे निर्ग्रन्थ मुनियोंका विहार होता था जिससे उनके उपदेश लोगोंको अनायास ही प्राप्त होते रहते थे, इसलिये जनताका आचार पवित्र रहता था पर आज यह साधन दुर्लभ हो रहे हैं। यही कारण है कि लोगोंका आचरण निर्मल नहीं रहा।

फागुन शुक्ला १२ सं० २००५ को मध्यान्होपरान्त १ बजेसे गुरुकुलका उत्सव हुआ। प्रायः अच्छी सफलता मिली। लोगोंके चित्तमें यह बात आ गई कि गुरुकुलकी महती आवश्यकता है। बच्चोंका हृदय अपक्व घटके समान है। उसमें जो संस्कार भरे जावेंगे वे जीवन भर स्थिर रहेंगे। आजका नागरिक जीवन विलासतापूर्ण हो गया है जिसका प्रभाव छात्र समाज पर भी पड़ा है। मैंने देखा है कि आजका छात्र साधारण गृहस्थकी अपेक्षा कहीं अधिक विलासी हो गया है। यह बात उसके रहन सहन तथा वेषभूषासे स्पष्ट होती है। उसका बहुत समय इसी साज-

सजावटमें निकल जाता है जिससे विद्याका प्रगाढ़ अध्ययन नहीं हो पाता। प्राचीन कालमें लोग थोड़ा पढ़ कर भी अधिक विद्वान् हो जाते थे पर आजके छात्र अधिक पढ़ कर भी अधिक विद्वान् नहीं बन पाते हैं। उसका कारण उनका चित्तविक्षेप ही कहा जा सकता है। गुरुकुलकी आवश्यकता इसलिये है कि वे नागरिक वातावरणसे दूर स्वच्छ वायुमण्डलमें होते हैं और इसीलिये उनमें पढ़नेवाले छात्रोंको चित्तविक्षेपके साधन नहीं जुट पाते। इस दशामें वे अच्छा अध्ययन कर सकते हैं। हस्तिनागपुरका वर्तमान वातावरण अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। यहाँ गुरुकुल जितना अच्छा कार्य कर सकता है उतना अन्यत्र नहीं। इसकी पूर्तिके लिये ५ लाख की योजना की गई। अपील करने पर ५००००) पचास हजारका चन्दा हुआ। चौंतीस हजार ३४०००) पहिलेका था। कुल चौरासी हजार हुआ। यद्यपि इतनेसे उसकी पूर्ति नहीं हो सकती तथापि जो साधन उपलब्ध हों उसीके अनुसार काम हो तो हानि नहीं। यदि सब लोग परस्परका अविश्वास दूर कर दें तथा यह उद्देश्य अपने जीवनका बना लें कि हमारे द्वारा जगत्का कल्याण हो तो बड़ी बड़ी योजनाऐं अनायास ही पूरी हो सकती हैं।

एक दिन प्रातः नसियाजीके दर्शन किये, चित्त प्रसन्न हुआ। हरी भरी झाड़ियोंके बीच जानेवाली पगडंडीसे नसियाजीको जाना पड़ता है। इन स्थानों पर अपने आप चित्तमें शान्ति आ जाती है। मन्दिरसे थोड़ी दूरी पर पाण्डवोंका टीला नामसे प्रसिद्ध स्थान है जहाँ कुछ खुदाईका काम हुआ है। गवर्नमेन्टकी ओरसे यहाँ एक नगर बसाया जा रहा है जिसमें शरणार्थी बसाये जावेंगे। जैनी लोगोंको उचित है कि यहाँ पर १ विद्यालय खोलें जिसमें शरणार्थी लोगोंके बालकोंको अध्ययन कराया जावे तथा १ औषधालय खोला जावे जिसमें आम जनताको औषध बाँटी जावे। अष्टान्हिका पर्व

होनेके कारण आठ दिन तक बहुत चहल पहल रही परन्तु अन्तिम दिन होलीका उत्सव होनेसे अधिकाश लोग चले गये। पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री बनारस, पं० दरबारीलाल जी कोठिया तथा मुख्त्यार साहब भी यहाँ आये थे। एक दिन हमारा भोजन स्वर्गीय महावीर-प्रसाद जी रईस बिजनौरवालोंकी पुत्रीके घर हुआ। आपने वर्णी-ग्रन्थमालाको १०१) दिये। आप बहुत ही धर्मनिष्ठासे रहती हैं। आपके पतिका स्वर्गवास हो गया है। बड़ा ही सज्जन था, निरन्तर दानमे प्रवृत्ति रखता था तथा जैनधर्मकी पुस्तकें वितरण करता था। भीड़-भाड़ कम हो जानेसे २ दिन शान्तिसे बीते।

मुजफ्फरनगर

चैत्र वदी ३ सं० २००५ को हस्तिनागपुरसे चलकर गणेशपुर आये। चलते समय लाला कपूरचन्द्र जी कानपुरवालोंने बड़े आग्रहसे कहा कि यदि कहीं पर कुछ आवश्यकता पड़े तो वह आप मेरेसे मँगा लीजिये। गणेशपुरमें विद्यानन्दीजीने जो कि ब्राह्मण हैं गुरुकुलके लिये ११) दिये। १ बजे चलकर ३ बजे मवाना आ गये। यहाँ बहुत ही शानदार स्वागत किया गया। पं० शीलचन्द्र जी शास्त्री बहुत ही योग्य हैं, इनका सर्व समाज पर प्रभाव है, आप म्युनिसिपलके चेयरमेन हैं तथा ऐंग्लो संस्कृत-कालेजके सभापति भी हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ। मध्यान्हके बाद १ बजे एंग्लो संस्कृत कालेजमें गये। प्रिन्सिपल साहबने बहुत ही आदरसे स्वागत किया। आपने वर्तमान परिस्थितिका स्वरूप सम्यक् रीतिसे बतलाया। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षामें प्रायः चार्वाक मतकी ही पुष्टि होती है। आज कल शिक्षाका प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन और कामसेवन मुख्य

रह गया है। जहाँसे शिक्षाका श्रीगणेश होता है वहाँ पहला पाठ यही होता है कि आजीविका किस प्रकार होगी तथा ऐसा कौनसा उपाय होगा कि जिससे संसार की विभूति हमारे ही पास आ जावे, ससार चाहे किसी आपत्तिमें रहे। प्रिन्सिपल साहबके इन हार्दिक तथ्य उद्‌गारोंसे मुझे वडी प्रसन्नता हुई।

अगले दिन सामायिकके वाद वसूमाके लिये चल दिये। मवानासे वसूमा आठ मील होगा। घाममें चलना पड़ा जिससे महान् कष्ट हुआ। रात्रिको ज्वर आ गया। हम विलकुल निर्विचार आदमी हैं जो विना विवेकके काम करते हैं। ८ मील घाममें चलना वहुत ही कष्टकर हुआ। हमारी शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई है तथा आत्माकी स्फूर्ति जाती रही है। इसका कारण मोहकी सवलता है। कह देते हैं कि मोह शत्रु है परन्तु स्वयं उसके कर्त्ता है, पर पदार्थके शिर दोप मढ़ते हैं। अज्ञानी जीवको अपना दोप नहीं दिखाता, परमें ही नाना कल्पनाएं करता है। देहलीवाले महाशयने यहाँ आहार दिया। यहाँ श्री शान्तिनाथ स्वामीके सदृश चन्द्रप्रभस्वामीका प्रतिविम्व अति मनोज्ञ है, वायु अति प्रशस्त है, मनुष्य सरल हैं परन्तु ज्ञानकी हीनतासे जैन-धर्मका प्रचार जैसा चाहिये वैसा कार्यरूपमें परिणत नहीं होता। यहाँसे ६ मील चलकर मीरापुर आ गये। ग्राम वड़ा है किन्तु मुसलिम जनताका प्रभाव अधिक है। वर्तमानमें यद्यपि कांग्रेसका साम्राज्य होनेसे प्रभाव दव गया है तथापि समय पा कर आगे पुनः आविर्भूत हो सकता है। चैत्यालयमें प्रातः प्रवचन हुआ पर जनता नहीं थी। यहाँ धर्मकी रुचि तो है परन्तु साधन नहीं। यहाँ पर शीतलप्रसाद जी तथा वावूरामजीके घर प्रतिष्ठित हैं। इनका चित्त धर्ममें उपयुक्त है। श्री वावूराम जी वरावर वैयावृत्त्यमें रहे। इनका लड़का धनेशचन्द्र वहुत ही योग्य है। १ वजे सभा

हुई। प्रायः सर्व रुचिमान् थे। गुरुकुल सहारनपुरको ७२८) चन्दा हुआ। एक महानुभावने २००) भेजनेको कहा।

यहाँसे ६ मील चलकर ककरौली आ गये। बड़े समारोहसे स्वागत हुआ। प्रातःकाल प्रवचन हुआ। मनुष्य संख्या ५० के अन्दाज थी। उनमें १ मौलवी साहब थे जो बहुत ही योग्य थे। आपने बहुत प्रसन्नता प्रकट की। यहाँ पर सैयद लोगोंकी जमींदारी थी जो काल पाकर उनके हाथसे निकल गई। वैश्य लोगोंके हाथमें चली गई। सुमतिप्रसाद जी यहाँके प्रमुख व्यक्ति हैं। इन्हींके यहाँ आहार हुआ। आपने सहारनपुर गुरुकुलके लिये हस्तिनागपुरमें १००१) दिये थे। आपकी माँ शुद्ध भोजन करती हैं। यहाँसे चलकर तिस्सा आ गये। प्रातःकाल प्रवचन हुआ। श्री मंगलसेनजीके बहिनोईके घर भोजन किया। मध्यान्हको आमसभा हुई। एक ब्राह्मणने जो कि मद्यपान करता था जीवन पर्यन्तके लिये मद्यपान छोड़ दिया, १ मुसलमान भी जीवघात छोड़ गया तथा एक चमारने मदिरा छोड़ दी। यहाँ पर मुजफ्फरनगर, ककरौली तथा मंसूरपुरसे बहुत आदमी आये। सब कुछ हुआ परन्तु हमारे जैन बन्धुओंकी दृष्टि स्वयं धर्मश्रवण करनेकी नहीं है। अन्य धर्म जान जावें, हमको चाहे ज्ञान हो या न हो। यहाँसे अगले दिन ६½ बजे चलकर ९½ बजे कवाल आ गये। यहाँ पर २० घर जैनियोंके हैं। १ मंदिर है परन्तु उसमें अभी श्रीजीकी स्थापना नहीं हुई। १ चैतन्यालयमें बिम्ब विराजमान हैं। बिम्ब अति मनोज्ञ हैं। भोजन की प्रक्रिया उत्तम है परन्तु लोग आहारदान करनेमें भय करते हैं। उसका कारण कभी दिया नहीं। कवालसे ६ मील चलकर मंसूरपुर आ गये। यहाँसे ४ मील चलकर गङ्गा नहर मिली। यहाँ पर बिजली भी बनती है। बड़े वेगसे पानी चलता है। यहाँ पर आटा पिसता है। मंसूरपुर ग्राम सैयद मुसलमानोंका है। प्रातः ½ घंटा प्रवचन

हुआ। पश्चात् भोजन किया। मध्यान्ह बाद आमसभा हुई। ५०० मनुष्य होंगे। श्री चिदानन्दजी तथा पूर्णसागरजीने परिश्रमके साथ वक्तव्य दिया। वक्तव्यमे मुख्य विषय अष्टमूलगुण था। यहाँ मुजफ्फरनगरसे बहुत मनुष्य आये। उन्होंने बहुत ही आग्रह किया कि कल ही मुजफ्फरनगर आइये। चाहे आपको कष्ट हो इसकी परवाह न कीजिये। हमारा प्रोग्राम है, इसीके अनुकूल आप प्रवृत्ति करिये, इसीमे हमारी प्रतिष्ठा है। चैत्र वदी १४ सं० २००५ को ६½ बजे प्रातःकाल चलकर ६ बजे बहलना पहुँच गये। यहाँ पर १ प्राचीन जिन मन्दिर है। उसमें श्रीपार्श्वनाथ भगवान्का प्रतिबिम्ब बहुत ही मनोज्ञ है। यहाँ पर मुजफ्फरनगरसे १०० जन-संख्या आई। भोजनोपरान्त २½ बजे यहाँसे चलकर कम्पनीबाग आगये। वहाँसे कोई २००० आदमियोंका जुलूस निकला। २ तोला धूल फाँकनेमे आई होगी। ५ बजते बजते जैन स्कूलमें पहुँच गये। यहीं पर जनताका बहुत समारोह हुआ। अगले दिन बाजार बन्द था, इसलिये प्रवचनमे बहुत मनुष्य आये। प्रवचनके लिये प्रवचनसारकी निम्न गाथा थी—

जो जाणदि अरहतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहि।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जो द्रव्य, गुण और पर्यायकी अपेक्षा अरहन्तको जानता है वह आत्माको जानता है और जो आत्माको जानता है उसका मोह विनाशको प्राप्त होता है। अनादि कालीन मोहके कारण यह जीव आत्मस्वभावसे च्युत हो रहा है। मोहकी तीव्रतामें तो इसे यह भी प्रत्यय नहीं होता कि शरीरके अतिरिक्त कोई आत्मा नामका पदार्थ है भी। वह शरीरको ही अहं मानकर उसकी इष्ट अनिष्ट परिणतिमे हर्ष-विषाद कर सुखी-दुखी होता है। यदि

भाग्यवश मोहका पटल कुछ क्षीण होता है तो शरीरसे पृथक् आत्माकी सत्ता अंगीकार करने लगता है, परन्तु कर्मोदयसे आत्माकी जो विकृत दशा है उसे ही शुद्ध दशा या स्वाभाविक दशा मान उसीरूप रहना चाहता है। कर्मोदय भङ्गुर है, इसलिये उसके उदयमें होनेवाली आत्माकी दशा भी भङ्गुर होती है। पर यह मोही प्राणी यथार्थ रहस्य न समझ हर्ष-विषादका पात्र होता है। जब मोहका उदय बिल्कुल दूर होता है तब इसे आत्माकी शुद्ध दशाका अनुभव होने लगता है। पद्मराग मणिके सम्पर्कसे स्फटिकमें जो लालिमा दिखती है उसे अज्ञानी प्राणी स्फटिककी लालिमा समझता है पर विवेकी प्राणी यह समझता है कि स्फटिक तो अत्यन्त स्वच्छ है। यह लालिमा पद्मराग मणिकी है। इसी प्रकार वर्तमानमें हमारी आत्मा रागी द्वेषी हो रही है सो यह मोहजन्य विकृतिका चमत्कार है। अज्ञानी प्राणी इस अन्तरको न समझ आत्माको ही रागी द्वेषी मान बैठता है, परन्तु विवेकी प्राणी यह जानता है कि आत्मा तो सदा स्वच्छ तथा निर्विकार है। उस पर जो वर्तमानमें विकार चढ़ रहा है वह मोहजन्य है। जो द्रव्य, जो गुण और जो पर्याय अरहन्तकी है वही द्रव्य, वही गुण और वही पर्याय मेरी है। जिस प्रकार इनका चेतन द्रव्य केवल ज्ञानादि क्षायिक गुणोंसे उद्भासमान होता हुआ परमात्मपर्यायको प्राप्त हुआ है उसी प्रकार हमारा चेतनद्रव्य भी उक्त गुणोंसे उद्भासमान होता हुआ परमात्मपर्यायको प्राप्त हो सकता है। जब आत्मामें ऐसा विचार उठता है—विवेकरूपी ज्योतिका आविर्भाव होता है तब उसका मोह स्वयं दूर हो जाता है और ज्ञानघन आत्मा निर्द्वन्द्व रह जाता है। यही इस जीवकी सुखमय अवस्था है। इसे ही प्राप्त करनेका निरन्तर प्रयत्न होना चाहिये।

कुन्दकुन्द महाराजके वचन मिश्रीके कण हैं। मिश्रीका जो भी कण खाया जायगा वह मीठा होगा। इसी प्रकार कुन्दकुन्द महाराजका जो भी वचन या गाथा आपके चिन्तनमे आवेगा वह आपको आनन्ददायी होगा।

दिनके दो बजेसे सभा थी। उसमे बहुतसे नर-नारी आये। श्री पूर्णसागर महाराज चिदानन्दजी महाराजका व्याख्यान हुआ। समयकी बलवत्ता है कि अब अष्टमूलगुण पालनका उपदेश दिया जाता है। जैनियोंका जो कौलिक धर्म था उसका अब उपदेश होने लगा है। लोगोंके आचरण अत्यन्त गिर गये हैं। जैनधर्मकी व्यवस्था तो इतनी उत्तम है कि उसका पालन करनेसे सहज ही कल्याणका पथ मिल सकता है। श्री पं० चन्द्रमौलि शास्त्रीने गुरुकुलकी अपील की तथा श्री समगौरयाजीने समर्थन किया। चन्दा प्रारम्भ हो गया। पाँच हजारके अन्दाज चन्दा हो गया। रात्रिमें फिर चन्दा हुआ। सब मिलाकर १८ हजारका चन्दा हो गया। जैनियोंमें दान करनेका गुण नैसर्गिक है। निमित्त मिलने पर वह अनायास ही प्रकट हो जाता है। अगले दिन प्रातःकाल फिर प्रवचन हुआ पर मैं अब प्रवचनका पात्र नहीं। मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। वचन वर्गणा स्पष्ट नहीं। केवल मनुष्योंको रञ्जन करना तात्त्विक मार्ग नहीं। तात्त्विक मार्ग तो वह है जिसमे आत्माको शान्ति मिले। पर शान्ति राग द्वेषकी प्रचुरतासे अत्यन्त दूर है, क्योंकि परपदार्थोंमे जो इष्टानिष्ट कल्पना होती है उसका मूल कारण ही मोह है और मोहसे पर पदार्थोंमें आत्मीय बुद्धि होती है। आत्मीय बुद्धि ही रागका कारण है। आजका जनसमूह गल्पवादका रसिक है। वास्तविक तत्त्वका महत्त्व नहीं समझता। केवल बाह्य आडम्बरमें निज धर्मकी प्रभावना चाहता है। प्रभावनाका मूल कारण ज्ञान

है। उसकी ओर दृष्टि नहीं। ज्ञानके समान अन्य कोई हितकारी नहीं, क्योंकि ज्ञान ही आत्माका मूल असाधारण गुण है। उसीकी महिमा है जो यह व्यवस्था वन रही है। एक दिन नईमण्डी भी गये। लोग वहुत भीडके साथ ले गये जिससे कष्टका अनुभव हुआ। यहाँ प्रवचनमे अजैन जनता वहुत आई और उत्सुकता भी उसे वहुत थी परन्तु मतविभिन्नता वहुत ही वाधक वस्तु है। यथार्थ वस्तुका स्वरूप प्रथम तो जानना कठिन है। फिर अन्यको निरूपण करना और भी कठिन है। वस्तु स्वरूपका परिचय होना ही कल्याणका मार्ग है, परन्तु उसके लिये हमारा प्रयास नहीं। प्रयास केवल वाह्य आडम्वरके अर्थ हैं। मुजफ्फरनगरमें ६-७ दिन रुकना पड़ा।

सहारनपुर-सरसावा

चैत्र सुदी ६ सं० २००६ को मुजफ्फनगरसे ५ मील चलकर जंगलमें ठहरे। यहाँ पर १ पुल वना हुआ है जिसके ५२ दरवाजे हैं। यहाँ पर ८ चौके आये। हमारा श्री मुनीमजीके यहाँ भोजन हुआ। भोजन पवित्र था। इसका मूल कारण था कि वे स्वयं पवित्र भोजन करते हैं, अतएव अतिथिको भोजन देनेमें उन्हे कोई आपत्ति नहीं। सदा मनुष्यको शुद्ध भोजन करना चाहिये, इससे उसकी वुद्धि शुद्ध रहती है, शुद्ध वुद्धिसे तत्त्वज्ञानका उदय होता है, तत्त्वज्ञानसे पर भिन्नताका ज्ञान होता है और पर भिन्नताका ज्ञान ही कल्याणका मार्ग है। ४ मीलके वाद रोहाना आगये, स्थान उत्तम है। १ मन्दिर है, ४ घर जैनियोंके हैं, मकान वहुत उत्तम हैं परन्तु वहुत आदमी प्रायः दर्शन नहीं करते। २ वजे सार्वजनिक सभा हुई। श्रीवर्णी मनोहरलालजीका व्याख्यान हुआ। इनके सिवा अन्य त्यागियोंके भी व्याख्यान हुए। सभीने अच्छा कहा।

श्रीसुमेरुचन्द्रजीका त्याग धर्म पर अच्छा रुचिकर व्याख्यान हुआ। बहुत मनुष्योंने दर्शनकी प्रतिज्ञा ली। दूसरे दिन फुटेसरा पहुँच गये। यह स्थान श्री जीवाराम जी ब्रह्मचारीके जैनधर्म ग्रहण करनेका है। जिनका संसार निकट रह जाता है उन्हें ही जैनधर्म उपलब्ध होता है। जैनधर्मके सिद्धान्त अत्यन्त उदात्त हैं। हृदयका व्यामोह छूट जावे तो यह धर्म सभीको रुचिकर हो जाय, परन्तु इस युगमे यही छूटना कठिन है। श्री समन्तभद्र स्वामीने तो लिखा है—

> कले प्रभाव. कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
> त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्म्याः प्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥

हे भगवन्! आपका शासन—धर्म ऐसा है कि उसका समस्त संसारमे एकाधिपत्य होना चाहिये, परन्तु उसमे निम्नाङ्कित वाधक कारण हैं—१ कलिकालका प्रभाव, श्रोताका कलुपित आशय और २ वक्ताको कथन करने योग्य नयका ज्ञान नहीं होना। यदि यह हुण्डावसर्पिणी काल नहीं होता, श्रोताका आशय निर्मल होता और वक्ता किस समय कौन वात कहना चाहिये इसका ज्ञान रखता तो आपका शासन समस्त संसारमें एकाधिपत्य रूपसे फैलता। यदि आज कोई अजैन जैन धर्मको स्वीकृत भी करना चाहता है तो वर्तमान जैनियोंका व्यवहार इतना संकीर्णतापूर्ण हो गया कि उसका निर्वाह होना कठिन होता हैं। किसी एकाकी ब्रह्मचारीका जैनधर्म धारण करना तथा उसका निर्वाह होना दूसरी बात है पर पूरी गृहस्थीके साथ यदि कोई अजैन जैनधर्म धारण करता है तो उसका वर्तमान जैन समाजमें निर्वाह कहाँ है? वह तो उभयतः भ्रष्ट जैसा हो जाता है। अस्तु, मन्दिरमें दर्शन किये। मन्दिर निर्मल बना हुआ है। दिनको २ वजे सभा हुई। श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी तथा क्षुल्लक चिदानन्दजी साहबका प्रवचन हुआ। यहाँ पर २० घर

जैनोंके हैं। सर्व सम्पन्न हैं। गुरुकुल सहारनपुरको ११०१) प्रदान किया। १०१) वर्णी ग्रन्थमालाको भी दान किया। रात्रिको बागमें शयन किया। बाग बहुत ही रम्य था। आगामी दिन देववन्द आ गये। अच्छा स्वागत हुआ, मध्याह्नके ३ बजेसे सभाका आयोजन हुआ। मनुष्योंका समारोह अच्छा था, परन्तु बात वही थी कि मानना किसीकी नहीं। आज कल मनुष्योंके यह भाव हो गये हैं कि 'अन्य सिद्धान्तवाले हमारा सिद्धान्त स्वीकृत कर लेवें' यह समझमें नहीं आता। प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि हमारा आत्मा उत्कर्ष पदको प्राप्त करे, किन्तु उत्कर्ष प्राप्त करनेका जो मार्ग है उस पर न चलना पड़े। यही विपरीत भाव हमारे उत्कर्षका बाधक है। हमारा विश्वास तो यह है कि यदि हम अपने सिद्धान्त पर आरूढ हो जावें—उसीके अनुसार अपनी सब प्रवृत्ति करने लगें तो अन्य लोग हमारे सिद्धान्तको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेंगे। हम लोग अपने सिद्धान्तोंको अपने आचरण या प्रवृत्तिसे तो दिखाते नहीं, केवल शब्दों द्वारा आपको बतलानेका प्रयत्न करते हैं परन्तु उसका प्रभाव उनपर नहीं पड़ता। यहाँ मुसलिम समाजका विशाल कालेज है जिसमें उनके उच्चतम ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं, २००० छात्र उसमें शिक्षा पाते हैं। बहुत ही सरल इनका व्यवहार है, बहुत मधुरभाषी हैं। एक मौलवी साहबने उक्त सर्व स्थान दिखलाये। इनके यहाँ बाह्य आडम्बरका बिलकुल अभाव है, भोजन बहुत सादगीका है। यहाँसे चलकर ४ मील पर १ ग्राम था उसमें निवास किया। यहाँ जिसके स्थानमें ठहरे वह बहुत ही उदार प्रकृतिका था। उसने बड़े सत्कारके साथ रहनेका प्रबन्ध किया। उसी समय ५ पाँच सेर दूध निकाल लाया। जो पीनेवाले थे उन्हें पान कराया। अनन्तर हम लोग कथोपकथन कर सो गये।

चैत्र सुदी १२ सं० २००६ को सहारनपुर आ गये। टपरी स्टेशनसे ही मनुष्योंका संपर्क होने लगा और सहारनपुरके वाहर तो हजारों मनुष्योंका जमाव हो गया। वडी सजधजके साथ जुलूस निकाला। श्री हुलासरायजी रईसके गृहके पास जो कन्या विद्यालयका मकान था वहीं पर जुलूस समाप्त हुआ। हजारों नरनारियोंका समुदाय होनेसे इतना शब्दमय कोलाहल था कि लाउडस्पीकरके द्वारा भी कार्य सिद्धि नहीं हो सकी। एक भी कार्य नहीं हुआ, केवल श्री जिनमन्दिरके दर्शन कर सके। चैत्र सुदी १३ भगवान् महावीर स्वामीका जन्म दिवस है। इस दिन समस्त भारतवर्षमे जैन वड़ा उत्सव करते हैं। यहाँ भी उत्सवकी वडी वडी तैयारियाँ थीं। प्रात काल ८ वजेसे ९ वजे तक जैन कालेजमें प्रवचन हुआ। वहुत भीड थी, भीड़के अनुकूल ही प्रवचन रहा। प्रवचनसे जनता प्रसन्न भर हो जाती है पर जो वात होनी चाहिए वह नहीं होती। जनतामे वहुत ही आनन्द समाया हुआ था। वनारससे श्री सम्पूर्णानन्दजी आये थे। रात्रिको आपका भाषण होगा। लोगोंने उत्सुकताके साथ दिन व्यतीत किया परन्तु जव रात्रिका समय आया तव अखण्ड पानी वरसा इससे सभा नहीं हो सकी और श्री सम्पूर्णानन्दजीके भाषण श्रवणसे जनता वञ्चित रह गई। अगले दिन जैन वागमें प्रवचन हुआ, मनुष्योंकी भीड़ वहुत थी तदपेक्षा स्त्री समाज वहुत था। समुदाय इतना अधिक था कि प्रवचनका आनन्द मिलना कठिन है। १ घण्टा जिस किसी तरह पूर्णकर छुट्टी मिली। यहाँ स्वाध्यायके रसिक वहुत हैं जिनमें श्री ब्र० रतनचन्द्रजी मुख्त्यार और श्री नेमिचन्द्रजी वकील प्रमुख हैं। ये दोनों भाई आत्म-हितमें जागरूक तथा आगम ग्रन्थोंके परिज्ञानसे युक्त हैं। संस्कृत भाषाका अध्ययन न होने पर भी जिनागमका विशद ज्ञान प्राप्त

हो जाना इनके पूर्व संस्कारका फल है। ज्ञानका संस्कार पर्यान्तरमे साथ जाता है, इसलिये साधन रहते हुए मनुष्यको ज्ञानार्जनमें कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। यहाँ प्रवचनोंमे लोगोंका समुदाय बहुत आता है, परन्तु न तो तात्त्विक लाभ उठाता है और न तात्त्विक धर्मके ऊपर दृष्टि है। केवल बाह्य प्रभावनामे अपना सर्वस्व लगाकर धर्मका उत्कर्ष मानते हैं। प्रभावनाका प्रभाव साधारण जनता पर पड़ता है और साधारण जनता बाह्य वेपको देखकर केवल इतना समझ लेती है कि इन लोगोंके पास द्रव्यकी पुष्कलता है। ये लोग व्यापारी हैं। इन्हे संग्रह करनेकी युक्ति विदित है। वास्तवमे पूछा जाय तो आजका मनुष्य इन बाह्याडम्बरोसे प्रभावित नहीं होता। उसे प्रभावित करनेके लिये तो उसका अज्ञान दूर होना चाहिये। ज्ञानकी महिमा अपरम्पार है। उसका जिसे स्वाद आ गया वह बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षा नहीं करता। यहाँ गुरुकुलकी उघाई करनेका कार्य हुआ। एक महानुभावने २ कमरा गुरुकुलके लिये बनानेका वचन दिया। दो बी. ए. लड़कोंने यह प्रतिज्ञा ली कि विवाहमे रुपया नहीं माँगेंगे। दो ने यह नियम लिया कि जो खर्च होगा उसमें)। पैसा प्रति रुपया विद्यालय को देवेंगे। कई मनुष्योंने विवाहमे कन्या पक्षसे याञ्चा न करनेका नियम लिया। श्री लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईसने गुरुकुल के लिये २६ बीघा जमीन देनेका वचन दिया तथा १०००) स्याद्वाद विद्यालय को भी प्रदान किये। यहाँ १०—११ दिन रहे।

सभी दिनोंमें समागम अच्छा रहा। मोहोदयमे समागम अच्छा लगता है। मोहकी महिमा देखो कि लोग जिस समागमसे बचनेके लिये गृहका त्याग करते हैं, त्यागी होने पर भी उन्हे वही समागम अच्छा लगता है। परमार्थतः मोह गया नहीं है, उसने रूप भर बदल लिया है।

वैशाख वदी ९ को सहारनपुरसे चलकर ८॥ वजे विलखनी पहुँच गये। पं० दरवारीलाल जी कोठियाके यहाँ भोजन हुआ। भद्र पुरुप हैं। सहारनपुरसे कई चौके आये। सर्व मोहका ठाठ है। जिस दिन मोहका अभाव होगा उस दिन यह सर्व प्रक्रिया समाप्त हो जायगी। मोहकी मन्दता और तीव्रतामे शुभ अशुभ मार्गकी सत्ता है। जिस समय मोहका अभाव होता है उस दिन यह प्रक्रिया अनायास मिट जाती है। मोहके नष्ट होते ही ज्ञानावरणादिक तीन घातिया कर्म अन्तर्मुहूर्तमें स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं।

वैशाख वदी १० सं० २००६ को सरसावा आ गये। पं० जुगलकिशोरजीके यहाँ भोजन हुआ। आपका त्याग और जिनवाणीसेवा प्रसिद्ध है। आपने अपना समस्त जीवन तथा समस्त धन जिनवाणीकी सेवाके लिये ही अर्पित कर दिया है। आपका सरस्वती भवन दर्शनीय है। यहाँ १ घटनासे चित्तमें अति क्षोभ हुआ और यह निश्चय किया कि परका समागम आदि सर्व व्यर्थ है। आत्मा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रताका वाधक अपनी अकर्मण्यता है। अकर्मण्यताका यह अर्थ है कि उसकी ओर उन्मुख नहीं होते। परपदार्थोंके रक्षण भक्षणमें ही आत्माको लगा देते हैं। अगले दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ। वक्ता धर्मका स्वरूप वतलानेमें ही अपनी शक्ति लगा देते हैं। निरन्तर प्रत्येक वक्ता अपने परिश्रम द्वारा धर्मके स्वरूपको समझानेकी चेष्टा करता है, धर्मके अन्दर वाह्य आभ्यन्तर रूप दिखलानेकी चेष्टा करता है और जहाँ तक वनता है दिखलानेमें सफल भी होता है। परन्तु आभ्यन्तर रसास्वाद न आनेके कारण न तो आपको लाभ होता है और न जनता को। केवल गल्पवादमें परिणत हो जाता है। वैशाख वदी १२ को वीरसेवामन्दिरका १३ वाँ वार्पिकोत्सव हुआ। सभापतिके पद पर मुझे वैठा दिया। वीरसेवा मन्दिरकी रिपोर्ट, मुख्त्यार साहवकी प्रेरणा पाकर दरवारी-

लालजी कोठियाने सुनाई। इसके अनन्तर श्री जयभगवान्जी वकीलने प्राचीन धर्मोंमें जैनधर्मकी विशेषता बतलाई। आपका तुलनात्मक अध्ययन प्रशंसनीय है। अन्तमें मैंने भी कुछ कहा। आगामी दिन कन्या विद्यालयका वार्षिकोत्सव हुआ। लोगोंकी बहुत भीड़ थी। रिपोर्ट आदि सुनानेके बाद अपील हुई। मन्त्री महोदयने १००१) स्वयं दिये तथा ३०००) और हो गये। लोगोंने विशेष ध्यान नहीं दिया अन्यथा १००००) हो जाते। पुरुषोंकी अपेक्षा महिलावर्गमें धार्मिक रुचि अधिक है। उसका कारण है कि इनका बाह्य सम्पर्क नहीं है। आजका मनुष्य तो बाह्य सम्पर्कके कारण धर्मसे च्युत होता जा रहा है। उसे धर्म आडम्बर मात्र जान पड़ने लगा है। यदि प्रारम्भसे मनुष्य पर अपना रङ्ग चढ़ जावे तो फिर दूसरा रङ्ग नहीं चढ़े, परन्तु लोग प्रारम्भसे ही अपनी सन्तानको निज धर्मके रङ्गसे विमुख रखते हैं। परिणाम उसका जो होता है वह सामने है। अस्तु, समयका प्रवाह और लोगोंकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकार है।

दिल्ली की ओर

(१)

वैशाख वदी १३ सं० २००६ को प्रात काल ५.३ बजे सरसावासे चल पड़े २ मील तक १०० मनुष्य और स्त्री समाज पहुँचानेके लिये आया जिसे बड़े आग्रहसे लौटा पाया। यहाँसे

७ मील चलकर ९ बजते बजते हम लोग अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। स्नानादिसे निवृत्त हो स्वाध्याय किया पश्चात् भोजन किया। भोजनके बाद कथोपकथन हुआ। प्रतिदिन यही चर्चा होती है कि राग-द्वेष-मोह संसारके मूल कारण हैं। इन तीनोंमे मूल मोह है। इसके बिना राग-द्वेपकी प्रधानता नहीं। आगामी दिन प्रातः ८॥ बजे जगाधरी आ गये। सर्व समाजने स्वागत किया। यह ब्र० सुमेरुचन्द्रजी भगतका ग्राम है। ९ बजे श्री मन्दिरजीमे क्षुल्लक पूर्णसागरजीका व्याख्यान हुआ। ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ। जनताको हँसी आ गई। हास्यका कारण वृद्धावस्था है। वृद्धावस्थामें जो कथा मनुष्य कहता है वह प्रायः प्रत्येक विषयमें स्खलित निकलती है। किन्तु उसका अभिप्राय निर्मल रहता है, अतः आदरका स्थान हो जाती है। मध्यान्हके ३ बजे आमसभा हुई। विशेष व्याख्यान हुए। एक शास्त्रीका व्याख्यान बहुत मार्मिक हुआ। अगले दिन ८ से ९ बजे तक प्रवचन हुआ। प्रवचनमें बहुतसे मनुष्य आये। ब्राह्मण भी बहुत आये। १ शास्त्रीजी व १ ज्योतिषीजी भी आये जो जैनधर्मकी पदार्थ निरूपणकी शैलीसे बहुत प्रभावित हुए। अन्य मनुष्य भी आये। उनको भी बहुत हर्ष हुआ। जैनधर्मकी प्रणालीसे सभी प्रभावित हुए। अन्तरङ्गमें निर्मलता हो तो तत्त्व निरूपण रुचिकर होता है तथा जिज्ञासाको वृद्धिगत करता है, अन्यथा उत्तमसे उत्तम तत्त्व निरूपण अरुचिकर हो जाता है तथा द्वेष व मात्सर्यको वृद्धिगत करने लगता है। कई मानवोंने ब्रह्मचर्य व्रत लिये तथा स्त्री समाजने मलीन वस्त्रोंके परिधानका त्याग किया। वैशाख सुदी १ को जगाधरीसे ५ मील चलकर रत्नपुर आ गये। यहाँ सुमतिलालजीके यहाँ भोजन किया। आपके भाईने १००१) स्याद्वाद विद्यालय बनारसको प्रदान किया। ८ चौंके जगाधरीसे भी आये थे। सबने

अपनी अपनी भक्तिके अनुकूल पात्रको दान देनेकी चेष्टा की, परन्तु जो पात्र हैं वे मर्यादातिक्रमण कर दान लेते हैं। चरणानुयोग की पद्धतिको अतिक्रमण कर नई नई पद्धति निकालना उचित नहीं। प्रायः पात्रको देखकर दान देनेवाला व्यक्ति भयसे कम्पायमान हो जाता है। इसमें पात्रकी असरलता ही कारण है।

रत्नपुरसे ३ मील चलकर यमुना नदी पर आ गये। यहाँसे ३ मील चलकर कुतुबपुरी आ पहुँचे। यहीं भोजन हुआ। जिसने भोजन दिया वह बहुत प्रसन्न हुई। आज कल इस पञ्चम कालमें अनेक आपत्तियोंके आने पर भी लोगोंमें धार्मिक प्रेम है तथा त्यागीकी महती प्रतिष्ठा करते हैं। उसका भोजन हो गया मानो उन्हें त्रैलोक्यकी निधि मिल गई। जब तक त्यागी भोजन न करलें तब तक बड़ी सावधानी रखते हैं। यही भावना निरन्तर रखते हैं कि किसी तरह मेरे घर पात्रका भोजन हो जावे। दैवयोगसे पात्र आ जावे तो मेरा धन्यभाग होगा। २ बजे आमसभा हुई। यहाँ पर जो ठाकुर राणा थे आपने शिकार छोड़ दिया तथा मदिरा का भी त्याग कर दिया। ग्रामके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंने भी मांस मदिराका त्याग किया। यहाँसे २ मील चलकर समस्तपुरमें ठहर गये। दूसरे दिन प्रातः ६ मील चलकर नकुड़ आ गये। ग्रामवालोंने स्वागतसे धर्मशालामें ठहराया। मन्दिरमे प्रवचन हुआ पश्चात् भोजन हुआ। दिनके ३ बजेसे सभा हुई। जो सर्वत्र होता है वही यहाँ हुआ, कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ और न होनेकी संभावना है क्योंकि मनुष्योंके भाव प्रायः निर्मल नहीं रहते। अगले दिन मन्दिरमें प्रवचन हुआ। कुछ तत्त्व दृष्टिगोचर नहीं हुआ, केवल रस्म अदा करना पड़ती है। वक्ताको स्वयं अपनेमें आत्मकल्याणकी भावना रखना चाहिये। कल्याणका मूल कारण स्वपर विवेक है। जिनने स्वपर विवेक किया उनका जन्म सार्थक है। मध्यान्होपरान्त २

बजेसे सभा हुई। मनुष्य समुदाय अच्छा था, परन्तु कोई तत्त्व नहीं निकला। प्रायः प्रति दिन यही कथा होती है। यहाँ की समाजने ५०१) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ५०१) गुरुकुलको हो गये। रुपया मिलना है पर सदुपयोग होना अधिकारियोंके हाथकी बात है।

यहाँसे ५½ बजे प्रातः ५ मील चलकर अम्बाड़ा आ गये। बड़े स्वागतसे लोगोने धर्मशालामें ठहराया। पश्चात् मन्दिरमें गया, प्रवचन हुआ। लोगोंने स्वाध्यायका नियम लिया। धर्मशालामें कई महाशयोंने, जो कि हरिजनोंमें थे, मदिराका त्याग किया। कई महाशयोंने माँसका त्याग किया। खेद इस बातका है कि जैनी भाई स्वयं बीचमें बोलने लगते हैं इससे जनतामें प्रभाव नहीं रहता। सायंकाल व्याख्यान हुआ। जैनेतर जनता अति प्रसन्न हुई। यहाँ १५ घर जैनियोंके हैं। मन्दिर बहुत सुन्दर है। शास्त्र प्रवचनका हाल बहुत बडा है। दूसरे दिन प्रातःकाल समयसारका प्रवचन किया। अनन्तर रत्नकरण्डश्रावकाचारके भावना प्रकरणसे ३ भावनाओंका वर्णन किया। पं० सदासुखरायजीने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। सबने प्रेमसे सुना, परन्तु जिनको उनपर विचार करना चाहिये वे कदापि उनका पालन नहीं करते यह महती त्रुटि है।

अम्बाड़ासे ४ मील चलकर इसलामपुर आ गये। यह बस्ती पठान लोगों की है। ३ घर जैनियोंके हैं। मार्गमें १ पठानने ६ आम उपहारमें दिये। १ जैनी भाई लेनेको प्रस्तुत नहीं हुए। मैंने कहा कि अवश्य लेना चाहिये। आखिर यह भी तो मनुष्य हैं। इनके भी धर्मका विकास हो सकता है। बाह्य आचरणके अनुकूल ही मनुष्योंका व्यवहार चलता है। इससे ही हम लोग उनसे घृणा करने लगते हैं, अतः आवश्यकता अन्तरंग आचरणके निर्मल

करनेकी है। उसके अर्थ बाह्य आचरणको भी निर्मल बनानेकी आवश्यकता है। यदि बाह्य आचरण शुद्ध हो जाते तो अन्तरङ्ग आचरणका निर्मल होना कठिन नहीं। अगले दिन इसलामपुरसे ४ मील चल कर रामनगर आये। बीचमे १ नहर मिली। हवा ठण्डी थी। साथ ही हवाकी प्रचुरतासे बालूके कण बहुत उठते थे जिससे आँखोंमे कष्ट प्रतीत होता था। यहाँ वालोंने बहुत ही स्वागत किया। अनेकों स्थानों पर दरवाजे बने हुए थे। जगह जगह सजावट थी। लोगोंमें उत्साह ही उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था। धर्मशालामें ठहराया। ८ बजे प्रवचन हुआ। बहुतसे मनुष्य आये। प्रवचन रुचिकर हुआ, परन्तु विशेप वाचालता (कोलाहल) से चित्त नहीं लगा। पश्चात् भोजन किया। मध्यान्हके बाद २ बजेसे सभा हुई जिसमें मनुष्योंकी भीड़ बहुत आई। क्षुल्लक द्वय तथा अन्य लोगोंके व्याख्यान हुए। अगले दिन प्रातः ७ बजे वाचनालय खुला। समारोह अच्छा था। पश्चात् ८ बजेसे ९ बजे तक प्रवचन हुआ। बहुत मनुष्य एकत्र हुए। सबने प्रवचन सुना। जैनियोंकी अपेक्षा अन्य मनुष्योंने बड़े स्नेहसे धर्मके प्रति जिज्ञासा प्रकट की तथा उनके चित्तमे मार्गका विशेप आदर हुआ। अनन्तर भोजनके लिये गमन किया। बहुत ही भीड़ थी। भोजन करना कठिन हो गया। एकके बाद एक आता ही रहा।

वैशाख सुदी १०-११ संवत् २००६ को ६½ बजे चल कर ७ मील नानौता आ गये। श्री महेन्द्रने बहुत ही आदरसे अपने घरमे स्थान दिया। स्नानान्तर मन्दिरमे गये। आपके घर पर आपकी माँ तथा स्त्रीने आहार दिया। २ बजे बाद उत्सव हुआ। कई सहस्र मनुष्य उत्सवमे आये। कीर्तन करनेवालोंने कीर्तन किया। प्रायः संसारमें मनुष्य जो काम करता है वह अपने उत्सवके लिये करता है। उन्नतिका मार्ग कषाय निवृत्ति है, कषायकी निवृत्ति

ज्ञानसे होती है, ज्ञानका मूल कारण आगमज्ञान है और आगम-ज्ञानका कारण विद्याका अभ्यास है। दूसरे दिन बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्य संख्या पुष्कल थी। परन्तु हमको इतनी योग्यता नहीं कि उन्हे प्रसन्न कर सक्ते। केवल १ घण्टा समय गया। हम रूढिके गुलाम हैं और उसीकी पूर्ति करना चाहते हैं। बहुत आदमी जिसमे प्रसन्न हों उसीमे प्रसन्नता मानना हमारा कार्य है, परन्तु धर्मका स्वरूप तो निर्मल आत्माकी परिणति है। उसकी यथार्थता मोह राग द्वेपके अभावमे ही है। यदि राग-द्वेपकी प्रचुरता है तो आत्माका कल्याण होना असम्भव है। प्रवचनोंमे जैन लोगोंके अतिरिक्त अन्य लोग भी आते हैं। परन्तु उन्हें उनकी भापामे तत्त्वका उपदेश नहीं होता, अतः वे लोग उपदेशके फलसे वञ्चित रह जाते हैं। जैन लोग स्वयं इसकी चेष्टा नहीं करते, केवल ऊपरी व्यवहारमे अपना समय व्यय कर देते हैं। एक दिन प्रकाश-चन्द्रजी रईसके यहाँ भोजन हुआ। आपने स्याद्वाद विद्यालयको १०००) दिये। भोजन भी निरन्तराय हुआ। प्रकाशचन्द्र व उनकी पत्नी दोनों योग्य हैं। एक दिन चतुरसेनके यहाँ भोजन हुआ। आपने भी स्याद्वाद विद्यालयको ५०१) प्रदान किये तथा महेन्द्रने भी १००१) उक्त विद्यालयको दिये। कुछ लोगोंने देनेका वचन दिया। यह सब हुआ, परन्तु यह सुनकर बहुत खेद हुआ कि नानौता ग्राममें कई जैनी भाई मदिरा पान करते हैं तथा कई वेश्यागामी हैं। त्यागी लोगोंको शुद्ध भोजन मिलना प्रायः कठिन है। क्षुल्लक पूर्णसागरजी लोगोंके सुधारका बहुत प्रयास करते हैं। बहुत मनुष्य अष्टमूलगुणका नियम लेते हैं, किन्तु जानते कुछ नहीं। इसमे व्रतका निर्वाह होना कठिनसा प्रतीत होता है। इस प्रान्तमे सदाचारकी त्रुटि महती है। नानौतामे ४ दिन लग गये।

वैशाख सुदी १५ सम्वत् २००६ को नानौतासे ३ मील चल कर यमुनाकी नहर पर आ गये। यहाँसे ४ मील चल कर तीतरों आये। यहाँ जैनियोंके १० घर हैं। मन्दिरमें प्रायः जैन लोग बहुत कम आते हैं। हम जिस घर भोजनके लिये गये, पता चला कि उस घरसे कोई भी दर्शन करनेको नहीं जाता। यहाँ पर ३ बजे सभा हुई जिसमें पं० हुकमचन्द्रजी सलावावालोंने मूर्तिपूजा विषयक व्याख्यान दिया। अगले दिन १२ बजे तीतरोंसे चलकर कच्चीगढ़ी आ गये। यहाँ ८ घर जैनियोंके हैं। १ मन्दिर है। यहाँ पर रामाभाई खतौलीके निवास करते हैं, सज्जन हैं, आँखसे नहीं दिखता, वृद्धावस्था है। यहाँके जैनी आपके साथ अच्छा सलूक करते हैं। मन्दिर स्वच्छ है। सब भाईयोंने पूजा करनेकी प्रतिज्ञा ली। अगले दिन ७ मील चलकर पक्कीगढ़ी आये। यहाँ १ मन्दिर है। १० घर जैनियोंके हैं जो सम्पन्न हैं। मिडिल स्कूलमें प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। लाला जम्बूप्रसादजीके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५१) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। मध्यान्हके बाद क्षुल्लक चिदानन्दजीका उपदेश हुआ। आपको व्याख्यान देनेका बहुत शौक है। अगले दिन पक्कीगढ़ीसे ३ मील चलकर भैंसवाल आये। यहाँ ३ घर जैनोंके हैं। सर्व सम्पन्न हैं। यहाँ जाट लोगोंकी बस्ती है। ग्राममें ईख बहुत उत्पन्न होती है। इससे यहाँके कृषक सम्पन्न हैं। पैसाकी पुष्कलता सबके है, किन्तु वह दुरुपयोगमें जाता है। देहातोंमें धार्मिक विद्याके जाननेवाले नहीं और शहरोंमें ऐश आरामसे लोगोंको अवकाश नहीं। अब तो काम और अर्थ पुरुषार्थ ही मुख्य रह गये हैं।

यहाँसे ६ मील चलकर जेठ बदी ४ को शामली आ गये। यहाँ पर १०० घर जैनियोंके हैं। बड़ी भारी मण्डी है। आज कल इस नगरमें सट्टाकी प्रचुरता है। यहाँ २ मन्दिर हैं, किन्तु पूजन

और स्वाध्यायका प्रचार नहीं। जिसके घर भोजन किये वह भला आदमी है। ३ बजेसे आमसभा हुई, परन्तु फलाश जो सर्वत्र होता है यहाँ भी वही हुआ। वाह वाहमें संसार लुट रहा है। आप स्वयं निज स्वरूपसे च्युत हैं और संसारको उस स्वरूपमें लगाना चाहते हैं. यह सर्वथा उचित नहीं। जो मनुष्य जगत्के कल्याणकी चेष्टा करते हैं उनका स्वय अपनी ओर लक्ष्य नहीं। ऐसे लोगोंका प्रयत्न अन्धेके हाथमें लालटेनके सदृश है। संसारकी विडम्बनाका चित्रण करना संसारीका काम है। जिसको नाना विकल्प उत्पन्न होते हैं वह पदार्थको नाना रूपमें देखता है। वास्तवमें पदार्थ तो अभिन्न है, अखण्डित है, यह उसे क्षयोपशम ज्ञानसे नाना रूपमें देखता है।

आज यहाँ प्रातःकाल होनेके पूर्व एक घटना हुई जो कल्पनामें न आनेके योग्य है। स्वप्नमें बाबा भागीरथजीका दर्शन हुआ। दर्शन होना असंभव नहीं, परन्तु जैसा उनका रूप न था वैसा देखा। उन्हें दिगम्बर मुद्रामें देख मैंने कहा—महाराज ! आप दिगम्बर हो गये ? आप तो यहाँ पञ्चम गुणस्थानवाले श्रावक थे ? यहाँसे स्वर्ग गये, देव पर्याय पाई। फिर यह मुद्रा कहाँ पाई ? उन्होंने कहा—भाई ! गणेशप्रसाद ! तुम बड़े भोले हो। मैं तुम्हारे समझानेके लिये आया हूँ। यद्यपि मैं अभी सागरों पर्यन्त आयु भोग कर मनुष्य होऊँगा तब दिगम्बर पदका पात्र बनूँगा, परन्तु तुमको कहता हूँ कि तुमने जो पद अंगीकार किया है उसकी रक्षा करना। व्रत धारण करना सरल है, परन्तु उसकी रक्षा करना कठिन है। बाह्यमें १ चद्दर और २ लंगोटी रखना। १ बार पानी पीना कठिन नहीं तथा आजन्म निर्वाह करना कोई कठिन नहीं। किन्तु आभ्यन्तर निर्मलता होना अति कठिन है।

आज जेठ वदी ८ सं० २००६ का दिन था। उपवास करना चाहिये, परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे १ बार तो प्रति दिन भोजन होता

ही है. किन्तु जो भोजन प्रतिदिन करते थे उससे कुछ अल्प किया। लोग संसारमें शान्ति चाहते हैं. परन्तु संसारका स्वरूप ही अशान्तिका पुञ्ज है। इसमें शान्ति खोजना रम्भास्तम्भमें सार अन्वेषण करनेके सदृश है। संसारके अभावमें शान्ति है। लौकिक मनुष्य स्थान विशेषको संसार और मोक्ष समझते हैं वह नहीं। संसार असंसार आत्मा की परिणति विशेष है। आत्मा की सकर्म परिणति संसार है और निष्कर्म परिणति असंसार है—मोक्ष है। नवमीके दिन श्री शीतलप्रसादजी शाहपुरवालोंके यहाँ भोजन किया। प्रत्येक मनुष्यकी यह दृष्टि रहती है कि हमारे यहाँ ऐसा भोजन बने जो सर्वश्रेष्ठ हो तथा पात्र हमारी इच्छानुसार उतना भोजन कर लेवें। चाहे पात्रको लाभ हो चाहे अलाभ हो। भोजनकी इच्छाका ही नाम आहार है। आहार संज्ञाके कारण संसारमें महान अनर्थ होते हैं। अनर्थकी जड़ भोजनकी लिप्सा है। अच्छे अच्छे महान् पुरुष इसके वशीभूत हो कर जो जो क्रिया करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं। भोजनकी लालसा अच्छे अच्छे पुरुषोंका तिरस्कार करनेमें कारण हो जाती है।

एक दिन लोगोंने सभामें निर्णय किया कि लड़कीवालेसे रुपया नहीं लेना। समयकी बलवत्ता देखो कि लोग लड़कीवालेसे ठहराव कर रुपया मॉंगने लगे हैं। कितनी अकर्मण्यता लोगोंमें आ गई है और लोभकी कितनी सीमा बढ़ गई है? वास्तवमें लोभ ही पापका मूल कारण है। बहुतसे मनुष्य लोभके वशीभूत हो कर नाना अनर्थ करते हैं। आज संसार दुखी है इसका लोभ ही मूल हेतु है। हजारों मनुष्योंके प्राण लोभके वशीभूत होनेसे चले गये। आज संसारमें जो संग्राम हो रहा है उसका कारण राज्य-लिप्सा है। आज जितने यन्त्रोंका संचालन हो रहा है उसका अन्तरङ्ग कारण लोभ है। और यन्त्रोंमें जो असंख्य प्राणियोंका

घात हो रहा है उसका मूल कारण यह लोभ ही है। आजकल तत्त्वज्ञानका आदर नहीं, केवल ऊपरी बातोंसे लोकको रञ्जन करना ही व्याख्यानका विषय रहता है। मैंने बहुत विचार किया कि अब इन विषयोंमें न पड़ूँ तथा आत्मकल्याणकी ओर दृष्टिपात करूँ, परन्तु पुरातन संस्कार भावनाके अनुसार कार्य नहीं होने देते। व्याख्यान देना तभी उपयोगी होगा जिस दिन आत्मप्रवृत्ति निर्मल हो जावेगी। उसी दिन अनायास संवर हो जायेगा, संवर ही मोक्षमार्ग है। इसके बिना मोक्षमार्गका लाभ होना अति कठिन नहीं असंभव है। मनुष्योंके साथ विशेष संपर्क नहीं करना चाहिये, क्योंकि संपर्क ही रागका कारण है। रागके विषयको त्यागनेमे भी राग की निवृत्ति होती है। निर्विषय राग कहाँ तक रहेगा ? सर्वथा ऐसा सिद्धान्त नहीं कि पहले राग छोडो पश्चात् विषय त्यागो। ...यदि क्षयोपशम ज्ञानको पाया है तो उसे पराधीन जान उसका अभिमान छोड़ो। भोजनकी लिप्सा छोडो। उदयानुकूल कार्य होते हैं। परने हमारा उपकार किया हमने परका उपकार किया यह अहंकार त्यागो। न तो कोई देनेवाला है और न कोई हरण करनेवाला है। सर्व कार्य सामग्रीसे होते हैं। केवल दैव भी कुछ नहीं कर सकता और न केवल पुरुषार्थ ही कार्यजनक है, किन्तु सामग्री कार्यजननी है। बाह्याभ्यन्तर निमित्तकी उपस्थिति ही सामग्री कहलाती है।

सामलीके बाद विशेष आवास काँदलामे हुआ। यहाँ प्रवचनमें मनुष्योका समुदाय अच्छा रहा, किन्तु समुदायसे ही तो कुछ नहीं होता। शास्त्र प्रवचन केवल पद्धति मात्र रह गया है। वास्तवमें तो न कोई वक्ता है और न श्रोता है। मोहकी बलवत्तामे ही यह सब ठाठ हो रहा है। जहाँतक मोहकी सत्ता है वहाँ तक यह सब प्रपञ्च है। संसारके मूल कारण रागादिक हैं। इनके सद्भावमें ही यह सर्व हो रहा है। रागकी प्रबलता षष्ठ गुणस्थान तक ही

है, इसलिये यह लीला वहीं तक सीमित है" यह भाव वक्ता तथा श्रोताके हृदयमें आ जावे तो प्रवचनकी सार्थकता है। महावीरसे पं० धरणेन्द्रकुमारजी आये। उन्हींके यहाँ भोजन हुआ। आपने १ कषायप्राभृत भेंट किया तथा स्याद्वाद विद्यालय को ११) प्रदान किये। आपकी श्रद्धा धर्ममें उत्तम है। वास्तवमें श्रद्धा आत्माका अपूर्व गुण है। इसके होने पर सर्व गुण स्वयमेव सम्यक् हो जाते हैं। इसकी महिमा अचिन्त्य है। इसके होने पर ज्ञान सम्यक् और मिथ्याचारित्र अविरत शब्दसे व्यवहृत होने लगता है। जेठ सुदी २ का प्रवचन बहुत शान्तिसे समाप्त हुआ। प्रकरण ब्रह्मचर्य व्रतका था। पर पदार्थसे भिन्न आत्माका निश्चय कर जो पर पदार्थोंमें राग द्वेषका त्याग कर देता है वही पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला होता है। लौकिक मनुष्य केवल जननेन्द्रिय द्वारा विषयसेवनको ही ब्रह्मचर्यका घातक मानते हैं, परन्तु परमार्थसे सर्व इन्द्रिय द्वारा जो विषय सेवनकी इच्छा है वह सब ब्रह्मचर्यका घातक है। आज देहलीसे २० मनुष्य आये। सबका यही आग्रह था कि दिल्ली चलिये। चातुर्मासका अवसर निकट था तथा उसके उपयुक्त दिल्ली ही स्थान था, इसलिये हमने कह दिया कि दिल्लीकी ओर ही तो चल रहे हैं।

कांदलामें एक दिन पल्टूरामजीके यहाँ भोजन हुआ। आप बहुत ही सज्जन तथा तत्त्वज्ञानी हैं। आप स्थानकवासी सम्प्रदायके हैं। आपका हृदय विशाल है, परन्तु साथमें कुछ आग्रह भी है। स्थानकवासी सम्प्रदायका कुछ व्यामोह है। यद्यपि आप निर्ग्रन्थ पदको ही मुख्य मानते हैं फिर भी वस्त्रधारीको भी मुनि माननेमें संकोच नहीं करते। दिगम्बर संप्रदायमें तो यह अकाट्य मान्यता है कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका जहाँ त्याग है वहीं मुनि पद हो सकता है। एक दिन यहाँ ग्रामके सबसे बड़े

प्रसिद्ध मौलवीने २ आम भोजनके लिये दिये। लोगोंने बहुत टिप्पणी की, परन्तु मैंने उन्हें आहारमें ले लिया, खेद इसका है कि लोग बिना शिर-पैरकी टीका-टिप्पणी करते हैं। यदि ये ही आम किसी मुसलमानकी दुकानसे लाये होते तो ये लोग टीका-टिप्पणी न करते। अस्तु, लोग अपने अभिप्रायके अनुसार टीका-टिप्पणी करते हैं। हमको उचित है कि उनसे भय न करें। पापसे भयभीत रहें। किसीके प्रति अन्यथा न विचारें। जो होना है होगा इसमें खेद किस बात का? मेरा तो बार-बार यही लक्ष्य रहता है कि आत्माकी निर्मलता ही सुखका कारण है और सुख ही शान्तिका उपाय है। उपाय क्या? सुख ही शान्ति है। इधर प्रवचनमें अजैन लोग भी बहुत आते हैं और जैनधर्मके मर्मको श्रवण कर प्रसन्न भी होते हैं। आत्मा अनादि अनन्त है यह सबको मान्य है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आत्मा कूटस्थ रहे परिणाम बिना परिणामी नहीं और परिणामी बिना परिणाम नहीं, अत यह मानना सर्वथा उचित है कि आत्मा न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है, किन्तु नित्या-नित्यात्मक है।

(२)

जेठ सुदी १० स० २००६ को ५ बजे प्रात कादलासे चलकर गंगेरु आ गये। यहाँ पर १ मन्दिर है। ४० घर जैनियोंके हैं। मन्दिरमार्गी हैं। इनके अतिरिक्त ४० घर स्थानकवासियोंके हैं। ये लोग मूर्तिको नहीं मानते हैं। आलम्बनके बिना धर्मका कोई आचार इनमें नहीं है और न धर्मका स्वरूप ही समझते हैं।

नाममात्रके जैन हैं। सायंकालको सभा हुई जिसमे अष्टमूल गुण आदिके व्याख्यान हुए। यहाँसे ६ मील चलकर कैराना आये। यहाँ पर ४० घर जैनियोंके हैं। प्रायः सम्पन्न हैं, सरल हैं, स्वाध्याय और पूजनका अच्छा प्रबन्ध है। यहाँ जैनियोंके अनेक बालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघमें हैं, परन्तु संघका उद्देश्य क्या है किसीको पता नहीं। देशमें सर्वत्र इनका प्रचार है। कुछ इनसे पूछो बताते नहीं। केवल देशका भला हो यह कह देते हैं। वास्तव बात कुछ बताते नहीं। भारतवर्ष ऋषिभूमि रही, परन्तु अब तो यहाँके मनुष्य कामलोलुप हो गये। प्रवचनमें बहुत लोग आये। प्रवचनका सार यही था कि ज्ञानका विपरीत अभिप्राय-से मुक्त हो जाना सम्यग्दर्शन है, पदार्थको जानना सो सम्यग्ज्ञान है और कर्मघात करना चारित्र है। इस तरह ज्ञान ही सम्यग्दर्शनादि तीन रूप है—विद्यानन्द स्वामीने यही बात श्लोकवार्तिकमें कही है—

मिथ्याभिप्रायनिर्मुक्तिर्ज्ञानस्येष्टं हि दर्शनम्।
ज्ञानत्वमर्थविज्ञप्तिश्चर्यात्वं कर्म्महन्तृता॥

भोजनमें अन्तराय तथा पैरमें मोच आ जानेके कारण एक दिन यहाँ और रुकना पड़ा। शरीरकी दशा पतनोन्मुख है फिर भी हम बाह्य आडम्बरमें उलझ रहे हैं यह दुःखकी बात है। उचित तो यह है कि धर्म साधनमें सावधान रहें। धर्म साधनका अर्थ यह है कि परिणामोंकी व्यग्रतासे रक्षा हो। धर्म मानें बाह्य क्रिया नहीं। किन्तु हम अज्ञानी लोगोंने बाह्य क्रियामें धर्म मान रक्खा है। आज यहाँसे जाना था, परन्तु किङ्गलके मनुष्योंमें परस्पर रात्रिको वैमनस्य हो गया। वैमनस्यका कारण पाठशालाके अर्थ चन्दा था। परमार्थसे पूछा जावे तो संसारमें दुःखादिका कारण परिग्रह पिशाच है। यह जहाँ आया वहाँ अच्छे-अच्छे

महापुरुषोंकी मति भ्रष्ट कर देता है। परिग्रहकी मूर्च्छा इतनी प्रबल है कि आत्माको आत्मीय ज्ञानसे वञ्चित कर देती है। कहाँ तक लिखा जावे ? जब तक इसका सद्भाव है तब तक आत्मा यथाख्यातचारित्रसे वञ्चित रहती है। अविरत अवस्थासे पार होना कठिन है।

आषाढ़ वदी १ सं० २००६ को किठ्ठलसे ५ मील चलकर छपरौली आ गये। यहाँ पर १०० घर जैनधर्मवालोंके हैं जिनमे ५० घर मन्दिरमार्गी दिगम्बर आम्नायवालोंके हैं और शेष स्थानकवासियोंके हैं। पञ्चम कालका माहात्म्य है कि इस निर्मल धर्ममे भी पन्थोंकी उत्पत्ति हो गई। शान्तिका मार्ग तो मिथ्याभिप्रायके त्यागनेसे होता है, परन्तु उस ओर दृष्टि नहीं। दृष्टिको शुद्ध बनाना ही आत्माके कल्याणका मूल मार्ग है। हमारी भूल ही हमारे संसार परिभ्रमणका कारण है। बहुत विचार करनेके बाद हमने तो यह निश्चय किया कि अपनी अन्तरङ्ग की परिणति निर्मल करना चाहिये। पर पदार्थोंके गुण दोषोंकी समालोचनाकी अपेक्षा आत्मीय परिणतिको निर्मल करना बहुत लाभदायक है। देवपूजा करनेका तात्पर्य यह है कि आत्माकी परिणति निर्मल होनेसे यह दशा आत्माकी हो जाती है। अर्थात् आत्मा देव पदको प्राप्त हो जाता है। मेरी आत्मा भी यदि इनके कथित मार्गपर चलनेकी चेष्टा करे तो कालान्तरमे हम भी तत्तुल्य हो सकते हैं, परन्तु हमारी प्रवृत्ति अत्यन्त निन्द्य है।

छपरोलीसे ४ मील चलकर नगला आये। यहाँ १५ घर जैनियोंके हैं। सब दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। १ मन्दिर है, स्वच्छ है, २ वेदिकाएँ हैं, १ काली मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यहाँ जाट लोग बहुत हैं, प्रायः सम्पन्न हैं। प्रवचनमें सब लोग आये। आज कल लोगोंके हृदयमे धार्मिक संघर्षका जोर प्रायः कम हो गया है और लोग प्रेमसे एक दूसरेकी बात सुननेको तैयार हैं" यह प्रसन्नताकी

बात है। धर्म जीवका स्वच्छ स्वभाव है जिसका उदय होते ही आत्मा कैवल्यावस्थाका पात्र हो जाती है। मोक्ष, आत्माकी केवल परिणतिको कहते हैं। उसके अर्थ ही यावत् प्रयास है। यदि उसका लाभ न हुआ तो सर्व प्रयास विफल है। अगले दिन यहाँसे ४ मील चलकर बावली आ गये। यह ग्राम बहुत बड़ा है। मन्दिर भी यहाँका विशाल है। यहाँ श्री शान्तिनाथकी मूर्ति अत्यन्त मनोहर और आकर्षक है, परन्तु मूर्तिके अनुरूप स्थान नहीं। यहाँ पर परस्पर मनोमालिन्य बहुत है और वह इतना विकृत हो गया है कि जिसमें हानिकी सम्भावना है। बहुतसे मनुष्य ऐसे होते हैं जिन्हें कलह ही प्रिय होता है। जनता उनके पक्षमे आजाती है। सद्सद्विवेक होना अत्यन्त कठिन है। शास्त्रका अध्ययन करनेवाले जब इस विषयमें निष्णात नहीं तब अज्ञानी मनुष्य तो अज्ञानी ही हैं।

अषाढ़ बदी ५ सं० २००६ को बावलीसे चलकर बड़ौत आ गये। यह नगर अच्छा है, व्यापारका केन्द्र है। ५०० घर दिगम्बर जैनोंके हैं। २ मन्दिर हैं। बड़ी शानसे स्वागत किया। कालेज भवनमें बहुत भीड़ थी। व्याख्यानका प्रयास बहुत लोगोंने किया, परन्तु कोलाहलके कारण कुछ असर नहीं हुआ। हमने भी कुछ बोलना चाहा, परन्तु कुछ बोल न सके। लोगोंका कोलाहल और हमारी वृद्धावस्था इसके प्रमुख कारण थे। कालेजकी बिल्डिंग बहुत बड़ी है। किराया अच्छा आता है। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ, भीड़ बहुत थी। अब शास्त्रकी प्रणालीसे शास्त्र होता नहीं, क्योंकि जनता अधिक आती है और शोरगुल बहुत होता है। इस स्थितिमें यथार्थ बात तो कहनेमें आती नहीं, केवल सामाजिक बातोंमें शास्त्रका प्रवचन होने लगता है। समाजमें विद्वान् बहुत हैं तथा व्याख्याता भी उत्तम हैं, किन्तु वे स्वयं अपने ज्ञानका

आदर नहीं करते। यदि वे अपने ज्ञानका आदर स्वयं करें तो संसार स्वय मार्ग पर आ जावे अथवा न आवे, स्वयं तो कल्याण पर आ जावेगे। ज्ञानके आदरसे अभिप्राय तदनुकूल आचरण है। तदनुकूल आचरणके विना ज्ञानकी प्रतिष्ठा ही क्या है? मुझे तो अन्तरङ्गसे लगता है कि बोलना न पड़े, अपनी परिणतिको निर्मल बनानेका प्रयत्न करूँ इसीमें सार दिखता है। संसारमें ऐसा कोई शक्ति-शालि पुरुष नहीं जो जगत्की सुधारणा कर सके। बड़े बड़े पुरुष हो गये। वे भी संसारकी गुत्थी सुलझा न सके तब अल्प-ज्ञानी इसकी चेष्टा करे यह महती दुर्बोधता है। यदि कल्याणकी इच्छा है तो अपने भावोंको सुधारा जाय। इच्छाको रोकना ही सुखका कारण है। सुख कोई अन्य पदार्थ नहीं जिसके अर्थ किसीसे याचना की जावे। जैसे कुम्भकार घटको चाहता है और यह जानता है कि घटकी पर्याय मिट्टीमें होती है। वह निरन्तर १ ढेर मिट्टी का घरमें रखता है। यदि वह मिट्टीकी पूजा करने लगे तथा जप करने लगे कि घट बन जावे तथा घटानुकूल व्यापार न करे तो क्या घट बन जावेगा? इसी प्रकार सुख आत्माका गुण है और आत्मामें सदा विद्यमान है, परन्तु वर्तमानमें मोहके कारण उसमें दुःखरूप परिणमन हो रहा है। यदि यह प्राणी सुख प्राप्तिके अनुकूल चेष्टा न करे—आत्मासे मोह परिणतिको विघटित न करे तो क्या अपने आप सुख गुण प्रकट हो जावेगा?

अषाढ़ वदी ९ सं० २००६ को श्रीक्षुल्लक चिदानन्दजी तथा क्षु० पूर्णसागरजीके केशलुञ्च हुए। दृश्य देखनेके लिये अपार भीड़ एकत्रित हुई। यद्यपि केशलुञ्च एक क्रिया है और इसको मुनि तथा ऐलक करते हैं एवं यह एकान्तमें होता है, किन्तु अब इसे प्रभावनाका अंग बना दिया है, सहस्रों मनुष्य इसमें इकट्ठे हो जाते हैं तथा जयकारके नारे लगाते हैं। पञ्चम काल है, मनुष्य

स्वेच्छाचारी हैं जो मनमें आता है वह करते हैं। आगमकी अव-हेलना भले ही हो जावे, परन्तु जो असत्कल्पना मनमें आ जावे उसकी सिद्धि होना ही चाहिये। मनुष्य आवेगमें आकर अनेक अनर्थ करता है। यद्यपि केशलुञ्च करना कोई धर्म नहीं। केश हैं, पास-में पैसा नहीं। यदि उन्हें रक्खा जावे तो कौन सँभाले, यूका आदि हो जावें, अतः हाथसे उपाड़ना ही धर्म है। उसे जनता वीत-रागताका द्योतक समझती है तथा जय-जयकारके नारे लगाती है और उसीमें हमारे जो त्यागी हैं वे द्वादशानुप्रेक्षाका पाठ पढते हैं तथा नाना नारे लगाते हैं। मेरी समझसे व्रतीको आगमकी अवहेलना करना उचित नहीं। बड़ौतमें ६ दिन लग गये। अष्टाह्निकाके पूर्व दिल्ली पहुँचना था, इसलिये बीचमें अधिक रुकना रुचिकर नहीं होता था।

आषाढ वदी ११ सं० २००६ को प्रातःकाल ५ बजे बड़ौतसे चलकर ७ बजे बड़ौली आये। यहाँ पर १ मन्दिर तथा १० घर जैनोंके हैं, साधारण स्थितिके हैं, सरल हैं। परिणामोंकी सरलता जो छोटे ग्रामवासियोंमें होती है वह बड़े ग्रामोंके मनुष्योंमें नहीं होती। बड़े ग्रामोंके मनुष्योंमें विषयकी लोलुपता अधिक रहती है, क्योंकि छोटे ग्रामोंकी अपेक्षा उनमें विषय सेवनकी सामग्री अधिक रहती है और यह जीव अनादिसे विषय लोलुप बन रहा है। इसी दिन मध्याह्नके बाद चलकर मसूरपुर आ गये। यहाँ १ मन्दिर और २० घर जैनियोंके हैं। मसूरपुरसे ६ मील बागपत आये। यहाँ पर २० घर जैनियोंके तथा १ मन्दिर है। १ हाई-स्कूल भी है। मनुष्य सज्जन हैं, परन्तु यहाँ पर कोई समागम नहीं। इससे जैनत्वका विशेष परिचय नहीं। कहाँ तक लिखें? न जाननेके कारण प्रायः जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंकी विरलता होती जाती है। लोगोंकी बुद्धिकी बलिहारी है कि वे स्वकीय द्रव्य

मन्दिरोंके सजाने तथा सोने चाँदीके उपकरणोंके एकत्रित करनेमें तो व्यय करते हैं पर जिनसे जैन सिद्धान्तोंका ज्ञान वढे, हमारी सन्तान सुवोध हो इस ओर उनका लक्ष्य नहीं। त्रयोदशीके दिन वागपतसे ३ मील चलकर टटेरीमण्डी आ गये। यहाँ पर १० घर जैनियोंके तथा १ चैत्यालय है। चैत्यालय वहुत ही सुन्दर है। आज वहुत ही गर्मी रही। तृषाने वहुत सताया, परन्तु स्वप्नमें भी यह ध्यान न आया कि यह व्रत धारण करना उपयोगी नहीं। प्रत्युत यही विचार चित्तमें आया कि परिषह सहन करना ही तप है। आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। परिणामोंकी निर्मलतासे यह आत्मा अनायास ही संसारके वन्धनसे विमुक्त हो सकता है। जहाँ तक वने अभिप्राय शुद्ध करनेकी महती आवश्यकता है।

चतुर्दशीको टटेरीमण्डीसे ५½ मील चलकर खेखड़ा आ गये। यह ग्राम वहुत प्रसिद्ध है। इसमें वावा भागीरथजी प्रायः निवास करते थे। यहाँ लगभग २०० घर जैनियोंके हैं। लोगोंने वहुत स्वागतसे लाकर लाला उग्रसेनजीकी कोठीमें ठहराया था। ९ वजे मन्दिर गये। वहाँ पर वहुत जनता थी। मुझे लगा कि जनता धर्मकी पिपासु है, परन्तु धर्मका स्वरूप वतलानेवाले विरले हैं। मैं तो अपने आत्माको इस विषयमें प्रायः वहुत ही दुर्वल देख रहा हूँ। जहाँ तक वने परकी वञ्चना मत करो। परकी वञ्चना हो व मत हो, आपकी वञ्चना तो हो ही जाती है। आपकी वञ्चनाका यही अर्थ है कि आप वर्तमानमे जिस कषायसे दुखी होता है उसीका वीज फिर वो लेता है। आत्माको दुख देनेवाली वस्तु इच्छा है। वह जिस किसी विषयकी हो जव तक उसकी पूर्ति नहीं होती, यह जीव दुखी रहता है तथा आत्मा भी आगामी दुःखका पात्र हो जाता है। यह सव होने पर भी मनुष्य निज हित करनेमें संकुचित रहते हैं। केवल संसारकी वासनाएँ इन्हे सताती रहती हैं।
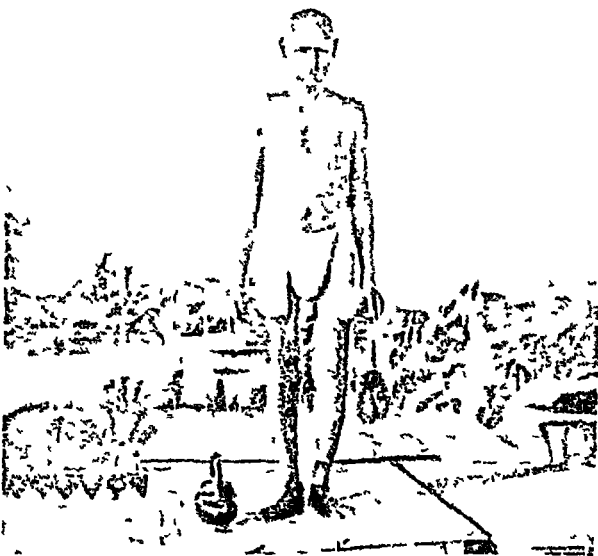
पूज्य वर्णीजी खड्गासन मुद्रा मे। [पृ० ६७]

वासनाओंमें सबसे बड़ी वासना लोकैषणा है जिसमें सिवाय संक्लेश के कुछ नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल कन्या पाठशालाका निरीक्षण किया। द्रव्य की पुष्कलताके अभावमे यथायोग्य व्यवस्था नहीं। यहाँ पर २०० घर जैनियोंके हैं, परन्तु उनमे परस्पर प्रेम नहीं और संघटन होना भी असंभव सा है। मान कषायकी तीव्रताके कारण लोग एक दूसरेको कुछ नहीं समझते। दूसरेके साथ नम्रताका भाव आनेमें अपना अपमान समझते हैं यही सर्वत्र पारस्परिक वैमनस्य-का कारण होता है। यदि हृदयसे मानकी तीव्रता निकल जावे और एक दूसरेके प्रति आत्मीयभाव हो जाय तो वैमनस्य मिटनेमें क्या देर लगेगी? जहाँ वैमनस्य नहीं, एक दूसरेके प्रति मत्सर-भाव नहीं वहाँ बड़ेसे बड़े काम अनायास सिद्ध हो जाते हैं वा द्रव्यकी कभी कमी नहीं रहती। यह वैमनस्यका रोग सर्वत्र है और सर्वत्र ही इसका यही एक निदान है। इसे मिटानेकी क्षमता सबमें नहीं। वही मिटा सकता है जो स्वयं कषायजन्य कलुषतासे परे हो।

आषाढ़ सुदि २ सं० २००६ को प्रातः ५ बजे चलकर बड़ेगाँव क्षेत्र पर आ गये। यहाँ पर १ विशाल मन्दिर है और मन्दिरके चारों कोनों पर ४ छोटे मन्दिर हैं। उनमे भी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ पर श्री पारसदासजी ब्रह्मचारी रहते हैं। पण्डित श्याम-लालजीका भी यहाँ निवास है। आज बाहरसे १८० यात्री आ गये दिल्लीसे राजकृष्णजी, उनकी पत्नी तथा श्रीमान् जुगलकिशोरजी और बड़ीवालोंके बालक भी आये। मध्यान्ह बाद बाबाजीका प्रवचन हुआ। श्री पं० जुगलकिशोरजीसे बातचीत हुई। १० लाख रुपयेके सद्भावमें प्राचीन संस्कृत साहित्यका उद्धार प्रारम्भ हो सकता है। दूसरे दिन बड़ेगाँवसे १ मील चलकर नहर पर आये

और वहाँसे ५½ मील चलकर नहरके ऊपर १ बंगला सरकारी था उसमें निवास किया। यहाँ पर लाला रघुवीरसिंहजी व श्री जैनेन्द्रकिशोरजी दिल्लीवालोंके चौकामें भोजन किया। श्री ब्र० कृष्णाबाईजी भी आई थीं। इनकी त्यागचर्या बड़ी ही कठिन है। स्त्रीजाति स्वभावतः कष्टसहिष्णु होती है।

आषाढ सुदी ४ सं० २००६ को बंगलासे ५½ मीलका मार्ग तय कर टीलाके बागमें निवास किया। यह बाग श्री लाला उलफतरायजी दिल्लीवालोंका है। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्याय नहीं हुआ। वैसे उपयोगकी स्थिरताके लिये स्थान सुन्दर है, परन्तु बाह्य कारण कूटके अभावमें कुछ नहीं हुआ। मेरी अवस्था ७५ वर्षकी हो गई, परन्तु उसका लाभ न लिया और न लेने की चेष्टा है। इसका मूल कारण मोहकी प्रबलता है। जिसने मोहकी प्रभुता पर विजय नहीं पाई उसने मनुष्य जीवनका सार नहीं पाया। पञ्चमीको प्रातः टीलासे ५ मील चलकर शाहदरा आ गये। यहाँ पर ५० घर जैनोंके तथा १ मन्दिर है। स्थान भद्र है। जलवायु उत्तम है। हम लोग धर्मशालामें सानन्द ठहर गये। यहाँके लोगोंकी प्रवृत्ति ग्रामवासियोंके सदृश है, परन्तु दिल्लीके समीपवर्ती होनेसे यहाँके मनुष्य प्रायः उसी विचारके हैं। यहाँ दिल्लीसे बहुत मनुष्य आये थे, किन्तु सबकी प्रवृत्ति वही है जो होना चाहिये। निवृत्तिमार्गकी ओर दृष्टि बहुत ही कम है। मुझे लगा कि कल्याणके अर्थ लोग इतस्ततः भ्रमण करते हैं। किन्तु कल्याणका मार्ग संसारमें कहीं भी नहीं। आभ्यन्तर आत्माकी निर्मल परिणतिमें ही है। शाहदरा-से ३ मील चलकर राजकृष्णके बागमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। दोपहरको १ मिनट भी विश्राम नहीं मिला, १ मनुष्यके बाद १ मनुष्यका आगमन बना रहा और संकोचवश मैं बैठा रहा।

वास्तवमें आभ्यन्तर मोहकी परिणति इतनी प्रवल है कि इसके प्रभावमें आकर कुछ भी रागांशका त्यागना कठिन है। वाह्य रूपादि विषयोंका त्याग तो प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, किन्तु आभ्यन्तर त्याग करना अति कठिन है।

आषाढ़ सुदी ८ सं० २००६ को राजकृष्णजीके वागसे ३ मील चलकर यमुना पुलके १ फर्लाङ्ग वाद लोगोंने विश्राम लिवाया। तदनन्तर एक विशाल जुलूसके साथ १ मील चलकर लाल मन्दिरमें आ गये। जनता वहुत थी फिर भी प्रवन्ध सराहनीय था। यहीं पर लाल मन्दिरकी पञ्चायतने अभिनन्दन पत्र श्रीमान् पं० मक्खन-लालजीके द्वारा समर्पित किया। मैंने भी अपना अभिप्राय जनताके समक्ष व्यक्त किया। मेरा अभिप्राय यह था कि त्यागसे ही कल्याणमार्ग सुलभ है। त्यागके विना यह जीव चतुर्गतिरूप संसारमें अनादिकालसे भ्रमण कर रहा है आदि। यहाँसे १ मील चलकर अनाथाश्रमके भवनमें ठहर गया। मुरारसे लेकर यहाँ तक ७ माहके निरन्तर परिभ्रमणसे शरीर शान्त हो गया था तथा चित्त भी क्लान्त हो चुका था, इसलिये यहाँ इस मञ्जिल पर आते ही ऐसा जान पड़ा मानों भार उतर गया हो। पं० चन्द्रमौलिने मुरारसे लेकर देहली तक साथ रहकर सव प्रकारकी व्यवस्था वनाये रक्खी।

दिल्लीका ऐतिहासिक महत्त्व और राजा हरसुखराय

भारतीय इतिहासमे दिल्लीका महत्त्वपूर्ण स्थान है, रहा है और आगे रहेगा। इसका प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है। यह वर्तमान-मे भारतकी राजधानी है और पहले भी इसे राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त रहा है। दिल्लीको उजाड़ने, पुनः बसाने और कत्ले आम करने कराने आदिके ऐसे भीषणतम दृश्य इतिहास प्रसिद्ध हैं कि जिनका स्मरण भी शरीरमे रोमाञ्च ला देता है। दिल्लीपर तुंवर (तोमर) चौहान, पठानों, मुगलो तथा अंग्रेजों आदिने शासन किया है। वर्तमानमें स्वतन्त्र भारतकी राजधानी होनेसे दिल्लीकी शोभा अनूठी है। यहाँकी जनसंख्या २२ लाखसे कम नहीं है जिसमें जैनियोंकी जनसंख्या पचीस हजारसे कम नहीं ज्ञात होती। रात्रिमे विजलीकी चमचमाहट और कारोंकी दौड़ देख साधारण जनता विस्मित हो उठती है। दिल्लीमे प्राचीन समयसे ही जैनोंका गौरव रहा है। यहाँ अनेक जैन श्रीमन्त, राजमन्त्री तथा कोपाध्यक्ष हो गये हैं। जैन संस्कृतिके संरक्षक अनेक जैन मन्दिर समय-समय पर यहाँ बनते रहे हैं। वर्तमानमे जैनियोंके २६ मन्दिर और ४-५ चैत्यालय हैं। ३-४ मन्दिरोंमे अच्छा विशाल शास्त्रभण्डार भी है। वर्तमान मन्दिरोंमें चाँदनी चौककी नुक्कडपर बना लाल मन्दिर सबसे प्राचीन है, क्योंकि उसका निर्माण शाहजहाँके राज्यकाल-मे हुआ था। दूसरा दर्शनीय ऐतिहासिक मन्दिर राजा हरसुखराय का है जो 'नया मन्दिर' के नामसे लोकमें ख्यात है। इस मन्दिरमें पचीकारीका बहुत बारीक और अनूठा काम है जो कि ताजमहलमें भी उपलब्ध नहीं होता।

दिल्लीका यह ऐतिहासिक मन्दिर जो अपनी कलाके लिये प्रसिद्ध है, दर्शनीय है। उसकी अनूठी कारीगरी अपूर्व और आश्चर्य कारक है। दिल्लीके वर्तमान ऐतिहासिक स्थानोंमें इसकी गणना की जाती है। भारत पर्यटनके लिये आनेवाले विदेशी जन दिल्लीके पुरातन स्थानोंके साथ इस मन्दिरकी कलात्मक पच्चीकारी और सुवर्णाङ्कित चित्रकारीको देखकर हर्षित तथा विस्मित होते हैं। इस मन्दिरके निर्माता जैनसमाजके प्रसिद्ध राज्यश्रेष्ठी लाला हरसुखराय हैं जो राजाकी उपाधिसे अलंकृत थे। उन्होंने वि० सं० १८५७ मे इसे वनवाना शुरू किया था और सात वर्षके कठोर परिश्रमके वाद वि० सं० १८६४ मे यह वनकर तैयार हुआ था। इसका प्रतिष्ठा महोत्सव सं० १८६४ वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया) को सूर्य मन्त्रपूर्वक हुआ था। उस समय इस मन्दिरकी लागत लगभग सात लाख रुपया आई थी जव कि कारीगरको चार आना और मजदूरीको दो आना प्रतिदिन मजदूरीके मिलते थे।

मन्दिरके वाहर प्रवेशद्वारके ऊपर वनी हुई कलात्मक छतरी सांचीके तोरणद्वारोंके समान सुन्दर तोरणद्वारोंसे अलंकृत है। उसमे पाषाणका कोई भी ऐसा हिस्सा नहीं दीखता जिसमें सुन्दर वेलवूटा, गमला अथवा अन्य चित्ताकर्षक चीजें उत्कीर्ण न की गई हों। यह छतरी दर्शकको अपनी ओर आकर्षित किये विना नहीं रहती। मन्दिरमें प्रवेश करते ही दर्शकको मुगलकालीन १५० वर्ष पुरानी चित्रकलाके दर्शन होते हैं। मन्दिरकी छतें लाल पाषाण-की हैं और उनपर वारीक घुटाईवाला पलस्तर कर उसके ऊपर चित्र-कारी अङ्कित की गई है। चित्रकारी इतनी सधी हुई कलमसे वनाई गई है कि जिसे देखकर दर्शक आनन्द विभोर हो उठता है। ज्यों ज्यों दर्शककी दृष्टि सभी दहलानों, दरवाजों और गोल डाटों आदि मे अंकित चित्रकला देखती है त्यों त्यों उसकी अतृप्ति वढ़ती जाती

है। मन्दिरका प्राङ्गण विशाल और मनोरम है। इतना विशाल प्राङ्गण अन्य मन्दिरोंमें कम देखनेको मिलता है। जब दर्शक चौकमेंसे मूलवेदीका निरीक्षण करता है, साथ ही वेदीके चारों ओर लगे हुए जंगलोंकी बारीक जालीकी कटाईका अवलोकन करता है तो आनन्दविभोर हो उठता है। जब वह वेदीकी बारीक कलात्मक पच्चीकारी वेदीके चारों ओर चारों दिशाओंमें बने हुए सिंहके युगलोंको तथा उनकी मूछोंके बारीक बालोंको देखता है तब उसे उस शिल्पीके चातुर्यपर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। उसके बाद जब दर्शक वेदीके ऊपरी भागमें बने हुए कमलका अवलोकन करता है जिसपर आदिनाथ भगवान्‌की सं० १६६४ की प्रतिष्ठित प्रशान्त मूर्ति विराजमान है। साथ ह जब उसे ज्ञान होता है कि जब मन्दिर बना था तब इस कमलकी लागत दश हजार रुपया थी और वेदीकी सवा लाख रुपया तब वह और भी अधिक आश्चर्यमें पड़ जाता है। यह वेदी मकरानेके सुन्दर सफेद संगमर्मर पाषाणसे बनाई गई है। इसमें कहीं कहीं तो पच्चीकारीका इतना बारीक काम है कि जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। गर्भालयके चारों ओर दीवारोंपर सुवर्णाङ्कित अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक भावोंको चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है। जैसे गजकुमार मुनिका अग्नि उपसर्ग, सेठ सुदर्शनके शील प्रभावसे शूलीका सिंहासन होना, सीताका सतीत्व परिचयके लिये अग्निकुण्डमें प्रवेश करना, रावणका कैलाशगिरिको उठाना और बाली मुनिका तपश्चरण, भरत और बाहुबलीके दृष्टि, जल और मल्ल नामक तीन युद्ध, राजा मधुका वैराग्य, सनत्कुमार चक्रवर्तीकी देवोके द्वारा परीक्षा, अवन्तीसेठ सुकुमालका वैराग्य, मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे स्वप्नोंका फल पूछना, यादववंशी भगवान् नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई श्रीकृष्णके बलकी परीक्षा, अकलंक

देवका वौद्धाचार्यके साथ राजसभामें शास्त्रार्थ तथा भगवान् जिनेन्द्रके समवसरणका दृश्य। ऊपर मानतुङ्गाचार्यके भक्तामर स्तोत्रके ४८ काव्योंको सुवर्णाक्षरोंमे अंकित किया गया है। साथ ही उनकी सिद्धि तथा ऋद्धिमन्त्रोंको भी स्पष्ट रूपसे चित्रित किया है। तीर्थोंमें पावापुरी, चम्पापुरी, मन्दारगिरि और मुक्तागिरिके चित्र अंकित हैं। ऊपर अनेक देवगण अपने अपने वाद्योंको लिये हुए दिखलाये गये हैं। मूल वेदीके अतिरिक्त अन्य ३ वेदियाँ भी पीछे चलकर यहाँ वनवाई गई हैं जिनपर प्राचीन एवं नवीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन मूर्तियोंमें स्फटिक, नीलम और मरकतकी मूर्तियाँ भी विद्यमान हैं। कुछ मूर्तियाँ तो ११११ तथा ११५३ वि० सं० तककी प्रतिष्ठित हैं। चौकके वांई ओर दहलानमे चारों ओर सुवर्णाक्षरोंमे आचार्य कुमुदचन्द्रका कल्याणमन्दिर स्तोत्र अङ्कित है और वगलवाले कमरामें विशाल सरस्वती भवन है। सरस्वती भवनमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी आदिके १८०० के लगभग हस्त लिखित ग्रन्थ हैं तथा २०० के लगभग हिन्दी संस्कृतके गुटकोंका भी सकलन है। इन ग्रन्थोंमें सवसे प्राचीन ग्रन्थ १४८६ वि० सं० का लिखा हुआ है। ५०० से अधिक मुद्रित ग्रन्थ भी संगृहीत हैं।

यहाँ चौकके सामनेवाली दहलानमें शास्त्रसभा होती है। यह सभा अपने ढंगकी एक ही है। यही सभा लाला हरसुखराय तथा लाला सगुनचन्द्रके समय सगुनचन्द्रशैलीके नामसे प्रसिद्ध थी। संवत् १८८१ मे जयपुरके विद्वान् पं० मन्नालाल जी, अमर चन्द्रजी दीवानके साथ हस्तिनागपुरकी यात्राको गये थे। यात्रा कर जव वापिस दिल्ली आये तव लाला सगुनचन्द्रजीने चातुर्मासमे दिल्ली ठहरा लिया और उनसे शास्त्र प्रवचन सुना। साथ ही लालाजीने उनसे राजा चामुण्डरायके चारित्रसारकी हिन्दी टीका करनेकी प्रेरणा की जिसे उन्होंने वि० सं० १८८१ में वनाकर पूर्ण की

थी। छहढालाके कर्ता पं० दौलतरायजीने भी अपना अन्तिम जीवन यहीं बिताया और तत्त्वचर्चा तथा स्वाध्यायकारस लिया एवं अनेक आध्यात्मिक पद बनाये। प्रसन्नता है कि शास्त्रसभाकी परम्परा अभीतक चली आ रही है।

मन्दिरके निर्माता राजा हरसुखरायजीके पिता लाला हुकूमत सिंह हिसारके रहनेवाले थे। दिल्लीके बादशाहके आग्रहसे दिल्ली आकर रहने लगे थे। बादशाहने उन्हें शाही मकान प्रदान किया था। लाला हुकूमतसिंहके पाँच पुत्र थे—१ हरसुखराय, २ मोहनलाल, ३ संगमलाल, ४ मेवाराम और ५ तनसुखराय। इनमें हरसुखराय ज्येष्ठ थे। आप बहुत ही गंभीर तथा समयानुकूल काय करनेमें अत्यन्त पटु थे। बादशाहने इन्हें अपना खजांची बना दिया तथा इनके कार्यसे वह इतना खुश हुआ कि इन्हे 'राजा' पदसे अलंकृत कर दिया। इन्हें सरकारी सेवाओंके उपलक्ष्यमे तीन जागीरें सनदें तथा सार्टिफिकेट आदि भी प्राप्त हुए थे जो उनके कुटुम्बियोंके पास आज भी सुरक्षित हैं। ये स्वभावतः दानी और दयालु थे। इनके पास जा कर कोई गरीब मनुष्य असहाय नहीं रहा। वि० सं० १८५८ को रात्रिके समय विस्तर पर पड़े पड़े राजा साहबके मनमें मन्दिर बनवानेका विचार उठा और दूसरे दिन प्रातःकाल ही उस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये आपने अपने मकानके पास ही विशाल जमीन खरीद ली तथा बादशाहसे मन्दिर निर्माणकी आज्ञा ले ली। शुभ मुहूर्तमे मन्दिरकी नींव डाली गई और मन्दिर बनना आरम्भ हो गया। सात वर्ष तक बराबर काम चलता रहा, परन्तु जब शिखरमे थोड़ा काम बाकी रह गया तब आपने काम बन्द कर दिया। काम बन्द देख लोगोंमें तरह तरहकी चर्चाएं उठीं। कोई कहता कि बादशाहने शिखर नहीं बनने दी, इसलिये काम बन्द हो गया है तो कोई कहता

कि राजा साहबने मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर हम जैनियोंकी प्रतिष्ठा कम करा दी आदि। कुछ लोग राजा साहबके पास पहुँचे और काम बन्द करनेका कारण पूछने लगे। उन्होंने उत्तर दिया कि भाईयो! अपनी स्थिति छिपाना बुरा है, अतः आप लोगोंसे कहता हूँ कि मेरी जितनी पूँजी थी वह सब इसमे लग गयी। अब आप लोग चंदा एकत्रितकर बाकी कार्य पूरा करा लीजिये। राजा साहबके इतना कहते ही उनके इष्ट-मित्रोंने असर्फियोंके ढेर उनके सामने लगा दिये। उन्होंने कहा कि नहीं, इतने धनका अब काम बाकी नहीं है, बहुत थोड़ा ही काम बाकी रह गया है सो उसे आप एक दो नहीं किन्तु समस्त जैनियोंसे थोड़ा थोड़ा इकट्ठा लाइये। आज्ञानुसार समस्त जैनियोंके घरसे चन्दा इकट्ठा हुआ, उससे मन्दिर पूरा हुआ।

जब वि० सं० १८६४ में मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई और कलशारोहणका समय आया तब सब लोगोंने राजा साहबसे प्रार्थना की कि आप कलशारोहण कीजिये। इसके उत्तरमे राजासाहबने पगड़ी उतारकर कहा कि भाइयो! मन्दिर मेरा नहीं है समस्त जैन भाइयोंके चन्दासे इसका निर्माण हुआ है, इसलिए पञ्चायत इसका कलशारोहण करे और वही उसका प्रबन्ध करे। उस समय लोगोंकी समझमें आया कि राजा साहबने काम बन्दकर इसलिये चन्दा कराया था। वे लोग गद्गद हो गये। राजा साहबने कहा भाइयो! यदि मैं इसमें आप लोगोंका सहयोग न लेता तो सदा मेरे मनमें यह अहंकार उठता रहता कि यह मन्दिर मेरा है अथवा मेरी बात जाने दो, हमारी जो संतान आगे होगी उसके मनमे भी यह अहंकार उठता रहेगा कि यह मेरे पूर्वजोंका बनवाया हुआ है। आप सबके चन्दासे इसका काम पूरा हुआ है, इसलिये यह आप सबका मन्दिर है। रा इसके ऊपर कुछ भी स्वत्त्व आजसे नहीं है। उसी समयसे

मन्दिरका नाम 'पंचायती मन्दिर' प्रचलित हुआ। दिल्लीके अतिरिक्त आपने हस्तिनापुर, अलीगढ़, करनाल, सोनपत, हिसार, सांगानेर और पानीपत आदि स्थानोंपर भी मन्दिर निर्माण कराये हैं।

हस्तिनागपुरके मन्दिर बनवानेकी तो विचित्र कथा है। वहाँके राजाको सरकारी खजानेका २ लाख रुपया भरना था पर भरनेका समय निकट आने पर वह रुपयोंका प्रबन्ध न कर पाया। इतना रुपया कौन देगा ? इस चिन्तामें राजा निमग्न था। कुछ लोगोंने राजा हरसुखरायका नाम सुझाया। राजाने अपना आदमी हरसुखरायजीके पास भेजा। उन्होंने आश्वासन दिया कि व्यग्र न हों, समय पर आपका रुपया खजानेमें जमा हो जायगा। समयके पूर्व ही उन्होंने दो लाख रुपया खजानेमें जमा कर दिया और अपने यहाँ वहीमें वह रुपया राजाके नाम न लिखकर हस्तिनागपुरमें मन्दिर बनवानेके लिये राजाके पास भेजे, यह लिखा दिया। समयने पलटा खाया। हस्तिनागपुरके राजाकी स्थिति सुधरी और उन्होंने २ लाख रुपया राजा हरसुखरायजीके पास पहुँचाया। हरसुखरायजीने कागज पत्र दिखाकर कहा कि हमारे यहाँ आपके राजाके नाम कोई रुपया नहीं निकलता। लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े कि दो लाख रुपयेकी रकम इनके यहाँ नामे नहीं पड़ी। जब इस ओरसे अधिक आग्रह हुआ तब उस वर्षकी वही निकलवाई गई तथा उसमें लिखा राजासाहबको बताया गया कि यह रुपया तो उन्होंने हस्तिनागपुरमें मन्दिर बनवानेके लिये आपके पास भेजा था। राजा उनके व्यवहारसे गद्गद हो गया और उसने अपनी देखरेखमें हस्तिनागपुरका मन्दिर बनवा दिया।

आप अपने व्यवहारसे समाजके गरीबसे गरीब व्यक्तिको अपमानित नहीं करते थे तथा सबको साथ लेकर चलते थे। वि० सं० १८६७ में आपके प्रयत्नसे शाही लवाजमाके साथ रथोत्सव

हुआ था और जैनधर्मकी अद्भुत प्रभावना हुई थी। वि० सं० १८८० मे आपका देहावसान हुआ था। आपका एक ही पुत्र था जिसका सुगुनचन्द्र नाम था। यह भी अपने पिताके समान ही प्रतापी, धर्मनिष्ट तथा पुण्यशाली था।

वर्तमानमे भी यहाँ भारतवर्षीय दि० जैन अनाथालय नामकी संस्था चलती है जिसका विशाल भवन तथा साथमे स्कूल है। समाजमे कई उत्साही व्यक्ति हैं जो निरन्तर समाजको आगे बढ़ाते रहते हैं। लाला राजाकृष्ण भी एक दक्ष व्यक्ति हैं। इन्होने अपने पुरुषार्थसे अच्छीसे अच्छी संपत्ति संचित की है तथा अहिंसा मन्दिरका निर्माण करा कर समाजसेवाके लिये उसका ट्रष्ट करा दिया है। इनके सिवा लाला फिरांजीलालजीका नाम भी उल्लेखनीय है। ये अधिकतर अपनी सम्पत्तिका उपयोग धार्मिक कार्योंमे करते रहते हैं।

दिल्लीका परिकर

मेरे साथ श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी, क्षुल्लक चिदानन्दजी, ब्र० सुमेरुचन्द्रजी भगत तथा एक दो त्यागी और थे। श्री कर्मानन्दजी जिनका आधुनिक नाम ब्र० निजानन्द था यहाँ थे ही। ब्र० चाँदमलजी भी उदयपुरसे आगये थे, इसलिये यहाँ समय सम्यक् रीतिके व्यतीत होता था। दिल्ली बड़ा शहर है। अनेक मोहल्लोंमे दूर दूर पर जिन मन्दिर तथा जैनियोंके घर हैं। वृद्धावस्थाके कारण मेरी प्रवचनकी शक्ति प्रायः क्षीण हो गई थी, अतः इन सबके प्रवचनों और भाषणोंसे जनताको लाभ मिलता

रहता था। प्रवचनके बाद मैं भी जो बनता था कह देता था। पहले दिन कण्ठ रुद्ध होनेके कारण मैं कुछ नहीं कह सका, इसलिये सभा विसर्जन हो गई। श्री रघुवीरसिंहजी रईसके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५०१) दानमें दिये। आज मनमें विचार आया कि जगत्को प्रसन्न करनेका भाव त्याग दो। जो कुछ बने स्वात्महित की ओर दृष्टिपात करो। ससारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जो सबका कल्याण कर सके। कल्याणका मार्ग स्वतन्त्र है। अन्तर्गत रागद्वेपका त्याग करना ही आत्मशान्तिका साधक है। अन्तरङ्ग रागादिक आत्माके शत्रु हैं, उनसे आत्मामें अशान्ति पैदा होती है और अशान्ति आकुलता की जननी है, आकुलता ही दुःख है, दुःख किसीको इष्ट नहीं, सर्व संसार दुःखसे भयभीत है। अपाढ सुदी १२ के दिन कण्ठ ठीक हो जानेके कारण मैंने कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि—

आत्मा मोहोदयके कारण पर पदार्थोंमें आत्मबुद्धि कर दुःखी हो रहा है। एक प्रज्ञा ही ऐसी प्रबल छैनी है कि जिसके पड़ते ही बन्ध और आत्मा जुदे जुदे हो जाते हैं। आत्मा और अनात्माका ज्ञान कराना प्रज्ञाके आधीन है। जब आत्मा और अनात्माका ज्ञान होगा तब ही तो मोक्ष हो सकेगा। परन्तु इस प्रज्ञारूपी छैनीका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये। बुद्धिमे निजका अंश छूट कर परमें न मिल जाय और परका अंश निजमें न रह जाय यही सावधानीका मतलब है।

धन धान्यादिक जुदे हैं, स्त्री-पुत्रादिक जुदे हैं, शरीर जुदा है, रागादिक भावकर्म जुदे हैं, द्रव्यकर्म जुदे हैं, मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिक ज्ञान जुदे हैं। यहाँ तक कि ज्ञानमे प्रतिबिम्बित होनेवाले ज्ञेयके आकार भी जुदे हैं। इस प्रकार स्वलक्षणके बलसे भेद करते करते अन्तमें जो शुद्ध चैतन्य भाव बाकी रह जाता है वही

निजका अंश है। वही उपादेय है। उसीमे स्थिर हो जाना मोक्ष है। प्रज्ञाके द्वारा जिसका ग्रहण होता है वही चैतन्य रूप 'मैं' हूँ। इसके शिवाय अन्य जितने भाव हैं निश्चयसे वे पर द्रव्य हैं—पर पदार्थ हैं। प्रज्ञाके द्वारा जाना जाता है कि आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है। वास्तवमे ज्ञाता द्रष्टा होना ही आत्माका स्वभाव है पर इसके साथ जो मोहकी पुट लग जाती है वही समस्त दु खोंका मूल है। अन्य कर्मके उदयसे तो आत्माका गुण रुक जाता है पर मोहका उदय इसे विपरीत परिणमा देता है। अभी केवलज्ञाना-वरणका उदय है। उसके फल स्वरूप केवलज्ञान प्रकट नहीं हो रहा है, परन्तु मिथ्यात्वके उदयसे आत्माका आस्तिक्य गुण अन्यथा रूप परिणाम रहा है। आत्माका गुण रुक जाय इसमे हानि नहीं पर मिथ्यारूप हो जानेमें महती हानि है। एक आदमीको पश्चिमकी ओर जाना था, कुछ दूर चलने पर उसे दिशा भ्रान्ति हो गई। वह पूर्वको पश्चिम समझ कर चलता जा रहा है, उसके चलनेमे वाधा नहीं आई पर ज्यों ज्यों चलता जाता है त्यों त्यों अपने लक्ष्यसे दूर होता जाता है। दूसरे आदमीको दिशा भ्रान्ति तो नहीं हुई पर पैरमें लकवा मार गया इससे चलते नहीं बनता। वह अचल होकर एक स्थान पर बैठा रहता है पर अपने लक्ष्यका वोध होनेसे वह उससे दूर तो नहीं हुआ, कालान्तरमें ठीक होनेसे शीघ्र ही ठिकानेपर पहुँच जावेगा।

एकको आँखमे कमला रोग हो गया जिससे उसका देखना वन्द तो नहीं हुआ, देखता है, पर सभी वस्तुएं पीली पीली दिखती हैं। उससे वर्णका वास्तविक वोध नहीं हो पाता। एक आदमी परदेश गया। वहाँ उसे कामला रोग हो गया। घरपर स्त्री थी, उसका रङ्ग काला था। जव वह परदेशसे लौटा और घर आया

तो उसे स्त्री पीली पीली दिखी। उसने उसे भगा दिया। कहा कि मेरी स्त्री तो काली थी तू यहाँ कहाँसे आई ? वह कामला रोग होनेसे अपनी ही स्त्रीको पराई समझने लगा। इसी प्रकार मोहके उदयमें यह जीव कभी कभी अपनी चीजको पराई समझने लगता है और कभी कभी पराईको अपनी। यही विभ्रम संसारका कारण है, इसलिये ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे पापका पाप यह मोह आत्मासे निकल जाय। हिंसादिक पाँच पाप हैं अवश्य पर ये मोहके समान अहितकर नहीं हैं। पापका बाप यही मोह कर्म है। यही दुनियाको नाच नचाता है। मोह दूर हो जाय और आत्माके परिणाम निर्मल हो जाँय तो संसारसे आज छुट्टी मिल जाय। पर हो तब न। संस्कार तो अनादि कालसे इस जातिके बना रक्खे हैं कि जिससे उसका छूटना कठिन दिखने लगता है।

ज्ञानके भीतर जो अनेक विकल्प उठते हैं उसका कारण मोह ही है। किसी व्यक्तिको आपने देखा, यदि आपके हृदयमे उसके प्रति मोह नहीं है तो कुछ भी विकल्प उठनेका नहीं। आपको उसका ज्ञान भर हो जायगा। पर जिसके हृदयमें उसके प्रति मोह है उसके हृदयमें अनेक विकल्प उठते हैं—यह विद्वान् है, यह अमुक कार्य करता है, इसने अभी भोजन किया है या नहीं ? आदि। विना मोहके कौन पूछने चला कि इसने अभी खाया है या नहीं ? मोहके निमित्तसे ही आत्मामें एक पदार्थको जानकर दूसरा पदार्थ जाननेकी इच्छा होती है। जिसके मोह निकल जाता है उसे एक आत्मा ही आत्माका बोध होने लगता है। उसकी दृष्टि बाह्य ज्ञेयकी ओर जाती नहीं है। ऐसी दशामें आत्मा आत्माके द्वारा आत्माके लिये आत्मासे आत्मामें ही जानने लगता है। एक आत्मा ही षट्कारक रूप हो जाता है। सीधी बात यह है कि उसके सामनेसे कर्ता, कर्म, करणादिका विकल्प हट जाता है।

चेतना यद्यपि एकरूप है फिर भी वह सामान्य विशेषके भेदसे दर्शन और ज्ञान रूप हो जाती है। जब कि सामान्य और विशेष पदार्थमात्रका स्वरूप है तब चेतना उसका त्याग कैसे कर सकती है? यदि वह उसे भी छोड़ दे तब तो अपना अस्तित्व भी खो बैठे और इस रूपमें वह जड़रूप होकर आत्माका भी अन्त कर दे सकती है, इसलिये चेतनाका द्विविध परिणाम होता ही है। हाँ, चेतनाके अतिरिक्त अन्य भाव आत्माके नहीं हैं। इसका यह अर्थ नहीं समझने लगना कि आत्मामे सुख वीर्य आदि गुण नहीं हैं। उसमें तो अनन्त गुण विद्यमान हैं और हमेशा रहेंगे, परन्तु अपना और उन सबका परिचायक होनेसे मुख्यता चेतना-को ही दी जाती है। जिस प्रकार पुद्गलमें रूप रसादि गुण अपनी अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार आत्मामे भी ज्ञान दर्शन आदि अनेक गुण अपनी अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार चेतनातिरिक्त पदार्थोंको पर रूप जानता हुआ ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो कहे कि ये मेरे हैं। शुद्ध आत्माको जाननेवालेके ये भाव तो कदापि नहीं हो सकते।

जो चोरी आदि अपराध करता है वह शंकित होकर घूमता है। उसे हमेशा शङ्का रहती है कि कोई मुझे चोर जान कर बांध न ले, पर जो अपराध नहीं करता है वह सर्वत्र निःशङ्क होकर घूमता है। 'मैं बाँधा न जाऊँ' इस प्रकारकी चिन्ता ही उसे उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार जो आत्मा परभावोंको ग्रहणकर चोर बनता है वह हमेशा शङ्कित ही रहेगा और संसारके बन्धनमे बँधे गा। सिद्धिका न होना अपराध है। अपराधी मनुष्य सदा शङ्कित रहता है, अतः यदि निरपराधी बनना है तो आत्माकी सिद्धि करो। आत्मासे परभावोंको जुदा करो। अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि मोक्षार्थी पुरुषोंको सदा इस सिद्धान्तकी सेवा करना

चाहिये कि मैं शुद्ध चैतन्यज्योतिरूप हूँ और जो ये अनेक भाव प्रतिक्षण उल्लसित होते हैं वे सब मेरे नहीं हैं स्पष्ट ही पर द्रव्य हैं।

एक दिन (अषाढ़ सुदी १३) को श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्त्यारने जैनधर्मके सिद्धान्तपर अच्छा प्रकाश डाला। अन्तमे आपने यह भाव प्रदर्शित किया कि हमे जैनशासनको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये। आज लोगोंमे जैनधर्मके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। परस्परका तनाव भी लोगोंका न्यून हो गया है, इसलिये यह अवसर है कि हम जैनधर्मके प्राचीन ग्रन्थ जनताके सामने लावें और अच्छे रूपमे लावें। जैनधर्मके पवित्र सिद्धान्त मन्दिरकी चहार दीवालोंके अन्दर सदियोंसे कैद चले आ रहे हैं उन्हें हमें बाहर प्रकाशमें लाना चाहिये। मुख्त्यार साहबने यह बात इस ढँगसे कही कि सबको पसंद आ गई। आपका वीरसेवा मन्दिर सरसावामे है। लोगोंने प्रेरणा दी कि वह स्थान आपकी संस्थाके लिये उपयुक्त नहीं है। यहाँ राजधानीमें उसका संचालन होना चाहिये। जनताने स्थानकी व्यवस्था करनेका आश्वासन दिया। जैन समाजमे रुपयेके व्ययकी त्रुटि नहीं, परन्तु उसका उपयोग कुछ विवेकके साथ नहीं होता। यदि इसीका उपयोग यथार्थ हो तो मानवजातिका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। मानवजातिकी कथा छोड़ो, जैनधर्म तो संसार मात्रके प्राणियोंका संरक्षक है।

श्रीकर्मानन्दजी (निजानन्दजी) के प्रवचन रोचक होते हैं। जनतामें धर्म श्रवणकी उत्सुकता बहुत है, परन्तु एकत्रित होकर इतना कलरव करते हैं कि सब आनन्द किरकिरा हो जाता है। सावन वदी ७ सं० २००६ को रविवार था, इसलिये जनताकी भारी भीड़ उपस्थित हुई। श्री क्षु० चिदानन्दजी महाराजने मनुष्योंको समझानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु उनका सब प्रयत्न जनताके कलरव-

श्री लाला फिरोजीलाल जी (दिल्ली) पूज्य श्री वर्णी जी की वैयावृत्य कर रहे हैं।
[पृ० २१३]
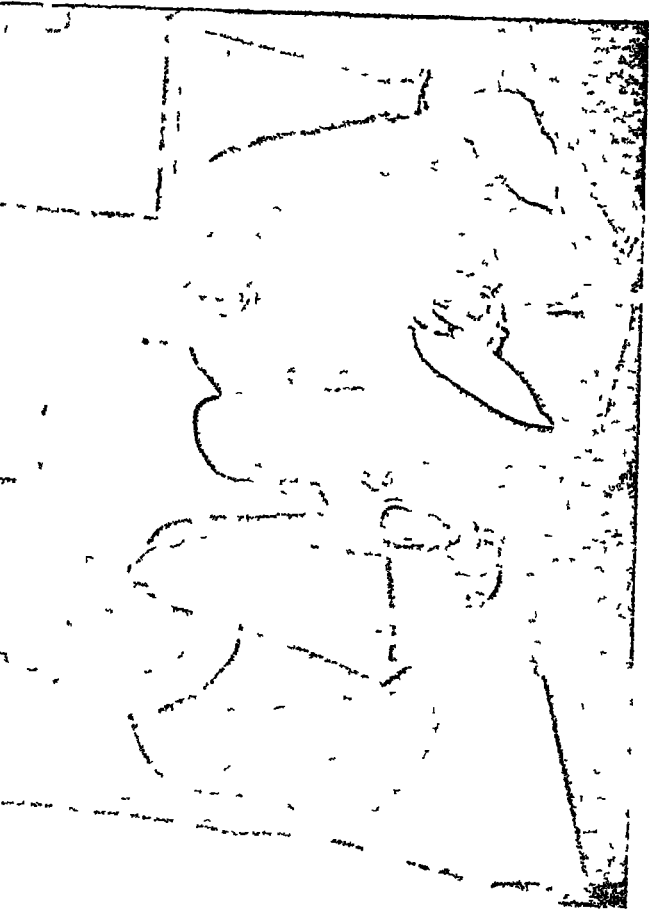
मे विलीन हो गया। पं० मक्खनलालजीने भी प्रयत्न किया पर कोई प्रभाव जनतापर न पड़ा। इसके अनन्तर आरासे पधारी हुई चन्दाबाईने भी अपनी मधुर ध्वनिसे उपदेश दिया, परन्तु जनतामें सर्व प्रयत्न विलीन हो गये। अन्तमें हमारा प्रयत्न भी असफल ही रहा। लोग जिस भावनाको लेकर धर्मायतनोंमें उपस्थित होते हैं उसकी पूर्तिकी बात तो भूल जाते हैं और बाह्य वातावरणमे इतने निमग्न हो जाते हैं कि सारकी कोई वस्तु उनके हाथ नहीं पड़ती। श्रीराजकृष्णके भाई हरिचन्द्रजीके यहाँ एक दिन आहार करनेके लिये गये। यहींपर श्रीलाला सरदारीमल्लजी भी आये। आपने महिलाश्रम बननेपर पूर्ण बल दिया। मैंने कहा कि भैया! दिल्लीमे कमी किस बातकी है? महिलाश्रम बन जाय तो महिलाओंका भला ही होगा।

वस्तुतः धर्मका तत्त्व सरल है, किन्तु अन्तरङ्गमे माया न होना चाहिये। क्षयोपशमज्ञानका होना कठिन बात नहीं, किन्तु सम्यग्ज्ञान होना अति कठिन है। इसका मूल कारण यह है जो हम अनात्मीय पदार्थोंमे आत्मीय बुद्धि मान रहे हैं। आज तक न कोई किसीका हुआ, न है और न होगा। फिर भी बलात् माननेमें हम त्रुटि नहीं करते। एक दिन नये मन्दिरमे गये। यह मन्दिर धर्मपुरामें है। इसमे स्फटिक मणिकी कई मूर्तियाँ रम्य हैं। बाहुबली स्वामीकी मूर्ति अति सुन्दर है। दर्शन करनेसे चित्तमे शान्ति आ जाती है। यथार्थमे शान्तिका कारण तो आभ्यन्तरमे है, बाह्य तो निमित्तमात्र है। निमित्त कारण बलात् कार्य नहीं कराता, किन्तु यदि तुम करना चाहो तो वह सहकारी हो जाता है।

धर्मपुराके मन्दिरमें क्षु० पूर्णसागरजीका प्रवचन हुआ। अष्ट मूलगुणधारण और सप्त व्यसनके त्यागपर बल था। नगरोंकी अपेक्षा महान् नगरमें विशेष प्रभावना होती है, परन्तु उस प्रभावना-

में मुख्यता वाह वाहकी रहती है। मार्मिक सिद्धान्तका विवेचन नहीं होता। मनुष्योंका कल्याण, तत्त्व विवेकमूलक रागद्वेष निवृत्तिमें ही होता है। केवल तत्त्व विवेकके परामर्शसे शान्तिका लाभ नहीं। एक दिन सेठके कूचामें बनारससे आगत पं० कैलाशचन्द्रजीका उत्तम व्याख्यान हुआ। पश्चात् हमने भी कुछ अस्पष्ट भाषामें कहा। सावन सुदी पूर्णिमा रक्षाबन्धनके दिन श्री ब्र० निजानन्द (कर्मानन्द) की समारोहके साथ क्षुल्लक दीक्षा हुई। ७००० हजार मनुष्योंका समुदाय था। समारोहमें पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य फिरोजाबाद, पं० कैलाशचन्द्रजी बनारस तथा पं० राजेन्द्रकुमारजीके भाषण हुए। श्रीनिजानन्दजी पहले आर्य समाजी थे, परन्तु बादमें आप जैन सिद्धान्तसे प्रभावित हो जैन हो गये। कुछ समय पहले आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की थी और आज क्षुल्लक दीक्षा लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा धारण की। लोकैषणाकी चाह न हो तो आदमी अच्छा है–प्रभावक है।

एक दिन बैजवाड़ाके मन्दिर भी गया। वहाँ प्रवचन हुआ। समुदाय अच्छा था, परन्तु वास्तविक लाभ कुछ नहीं। यथार्थमें प्राणीमात्रका कल्याण उसीके आधीन है। जिस कालमें वह अपनी ओर दृष्टिपात करता है उस कालमें अनायास बाह्य पदार्थोंसे विरक्त हो कर आत्मकल्याणके मार्गमें लग जाता है। अतः सर्व विकल्पोंको त्याग कर आत्महित करना व्यर्थको झंझटोंमें पड़ना अच्छा नहीं। एक दिन धीरजपहाडीके लोगोंने पहाडी पर ले जाने की चेष्टा की। फल स्वरूप हमलोग ३ मीलका लम्बा मार्ग तयकर सदर पार पहाड़ी पर पहुँच गये। यहाँ पर हीरालाल हाईस्कूलमें व्याख्यान हुआ। बहुत ही भीड़ थी, परन्तु प्रबन्ध अच्छा था। इसी प्रकार एक दिन डिप्टीगंजमें भी गये। वहाँ भी प्रवचन और व्याख्यान सभाएँ हुईं, परन्तु सार कुछ नहीं निकला। यदि प्रवचनों

और व्याख्यानसभाओंसे लाभ लेकर एक भी आदमी सुमार्गपर आता तो मैं इन सब आयोजनोंको सारपूर्ण समझता। लोगोंका ख्याल तो ऐसा हो गया है कि ये सुनानेवाले हैं, कुछ देना लेना तो है नहीं। एक तरहका सिनेमा है पर सिनेमामें तो पैसाका व्यय है, यह अमूल्य दृश्य है। मेरे हृदयसे तो यह ध्वनि निकल पड़ी कि—

जो सुख चाहो मित्र तुम तन दो पर की आस।
सुख नाहीं संसारमें सदा तुम्हारे पास॥
गल्पवादमें दिन गया विषय भोगमें रात।
भोंदू के भोंदू रहे रात दिना विललात॥

हरिजन मन्दिर प्रवेश

इसी समय समाजमें हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। अस्पृश्योंके उद्धारकी भावना तो भारतमें बहुत पहलेसे चली आ रही थी पर अब स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद भारतका जो विधान बना उसमें मनुष्यमात्रको समानाधिकार घोषित किया गया। उसीका आलम्बन लेकर बम्बई प्रान्तकी सरकारने एक कानून ऐसा बनाया कि जिसमें अस्पृश्य लोग भी मन्दिरोंमें जानेसे न रोके जावें। हिन्दू भाईयोंके साथ ही साथ यह कानून जैनधर्मावलम्बियों पर भी लागू होता था, अतः वे भी अपने मन्दिरोंमें अस्पृश्य लोगोंको जानेसे नहीं रोक सकते थे। यदि रोकते तो दण्डके पात्र होते। इस कानूनकी प्रतिक्रिया करनेके लिये श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने अन्नके आहारका

त्याग कर दिया। केवल सिघाड़ा, दूध तथा फल ही लेने लगे। इस समाचारसे समाजमें इस आन्दोलनने जोर पकड लिया। कुछ लोग यह कहने लगे कि हरिजनोंको मन्दिर प्रवेशकी आज्ञा मिलनेसे धर्म विरुद्ध काम हो जायगा, क्योंकि जब हरिजनोंको हम अपने घरोंमे नहीं आने देते तब मन्दिरोंमे कैसे आने देंगे? उनके आनेसे मन्दिर अशुद्ध हो जावेंगे तथा हमारे धर्मायतनोंमे हमारी जो स्वतन्त्रता है उसमे वाधा आने लगेगी एव अव्यवस्था हो जायगी। हरिजन जब हमारे धर्मके माननेवाले नहीं तब वलात् हमारे मन्दिरोंमें सरकार उन्हे क्यों प्रविष्ट कराना चाहती है? इसके विरुद्ध कुछ लोगोंका यह कहना रहा कि यदि हरिजन शुद्ध और स्वच्छ होकर धार्मिक भावनासे मन्दिर आना चाहते हैं तो उन्हें वाधा नहीं होना चाहिये। मन्दिर कल्याणके स्थान हैं और कल्याणकी भावना लेकर यदि कोई आता है तो उसे रोका क्यों जाय? इस चर्चाको लेकर एक दिन मैंने कह दिया कि हरिजन संज्ञी पञ्चेद्रिय पर्याप्तक मनुष्य हैं। उनमे सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है, सम्यग्दर्शन ही नहीं व्रत धारण करनेकी भी योग्यता है। यदि कदाचित् काललब्धि वश उन्हे सम्यग्दर्शन या व्रतकी प्राप्ति हो जाय तब भी क्या वे भगवान्के दर्शनसे वञ्चित रहे आवेंगे? समन्तभद्राचार्यने तो सम्यग्दर्शन सम्पन्न चाण्डालको भी देव संज्ञा दी है पर आजके मनुष्य धर्मकी भावना जागृत होने पर भी उसे जिन दर्शन–मन्दिर प्रवेशके अनधिकारी मानते हैं। …मेरे इस वक्तव्यको लेकर समाचार पत्रोंमे लेख प्रतिलेख लिखे गये। अनेकोंको हमारा वक्तव्य पसन्द आया। अनेकोंकी समालोचनाका पात्र हुआ पर अपने हृदयका अभिप्राय मैंने प्रकट कर दिया। मेरी तो श्रद्धा है कि संज्ञी पञ्चेद्रिय जीव सम्यग्दर्शनके अधिकारी हैं यह आगम कहता है। सम्यग्दर्शनके

होनेमें वर्ण और जातिविशेषकी आवश्यकता नहीं। देव और नारकी तो कितना ही प्रयास करें उन्हें सम्यग्दर्शनके सिवाय व्रत धारण नहीं हो सकता, क्योंकि वैक्रियिक शरीरवालोंके चतुर्थ गुणस्थान तक ही हो सकता है। मनुष्य और तिर्यञ्चोंके पञ्चम गुणस्थान भी होता है। मनुष्योंके महाव्रत भी होता है और यही एक पर्याय ऐसी है कि जिससे यह जीव कर्म बन्धन काट मोक्षका पात्र हो जाता है। मनुष्योंका वर्णविभाग आगममें देखा जाता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें प्रारम्भके तीन वर्णवाले उच्चगोत्री हैं और अन्तिम वर्णवाले अर्थात् शूद्र नीचगोत्री हैं। उच्च गोत्रमें ही मुनिव्रत होता है। शूद्रोंमें उच्चगोत्र नहीं, अतएव उनके मुनिधर्म नहीं होता। श्रावकके ही व्रत हो सकते हैं। उनमें भी जो स्पृश्य शूद्र हैं वे क्षुल्लक व्रत धारण कर सकते हैं, अस्पृश्य शूद्र व्रती हो सकते हैं। इसमें बहुतसे महाशय उन्हें द्वितीय प्रतिमा तक मानते हैं। अस्तु जो आगममें कहा सो ठीक है।

आज कल हरिजनोंके मन्दिर प्रवेश पर बहुत विवाद चल रहा है। बड़े बड़े धर्मात्माओंका व बड़े बड़े पण्डितोंका कहना है कि वे मन्दिर नहीं जा सकते, क्योंकि उनमें चाण्डाल, चर्मकार, भंगी आदि अनेक बहुत ही घृणित रहते हैं तथा आचार विचारसे शून्य हैं। ये मन्दिरमें आकर दर्शन नहीं कर सकते यह चरणानुयोगकी पद्धति है परन्तु करणानुयोगमें उनके भी सम्यग्दर्शन तथा व्रत हो सकता है। चाण्डालके भी इतने निर्मल परिणाम हो सकते हैं कि वह अनन्त संसारका कारण जो मिथ्यात्व है उसका अभाव कर सकता है। अब विचार करो कि जो आत्मा सबसे बड़े पापको नाश कर दे वह फिर भी चाण्डाल बना रहे। चाण्डालका सम्बन्ध यदि शरीरसे ही है तब तो हमें कोई विवाद नहीं। रहो परन्तु आत्मा तो जब सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब पुण्य जीवोंकी गणनामें हो जाता है।

आगममें मिथ्यादृष्टि जीवोंको पापी जीव कहा है। चाहे वह किसी वर्णका हो। हाँ, चरणानुयोगकी अपेक्षा जो देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा रखता है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। बाह्यमें जिसके चरणानुयोगके अनुकूल व्रत हैं उसे व्रती कहते हैं। चरणानुयोगके सिद्धान्तका व्यवहारमें उपयोग नहीं। व्यवहारमें उपयोग न हो, परन्तु अन्तरङ्गकी निर्मलताका बाह्यमें नियमसे असर पड़ता है। जिस व्याघ्रीने सुकोशल स्वामीके उदरको विदारण किया उस समय उसका परिणाम अति मलिन था—आर्तरौद्र परिणामके वशीभूत हो वह दया का भाव बिलकुल भूल गई। उसके उदर विदारणमें स्वामीके किञ्चित् भी अन्यथा वृत्ति नहीं हुई। उन्होंने तो क्षपकश्रेणी द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न किया। उसी समय देव लोग उनकी पूजा करने आये तथा कीर्तिधर स्वामी जो उनके पिता थे, दैवयोगसे वहाँ आ गये। उन्होंने उस व्याघ्रीको समझाया कि जिस पुत्रके वियोगमें मरकर व्याघ्री हुई उसीका उदर विदारण किया यह सब मोहका माहात्म्य है। मुनिके वाक्य श्रवणकर व्याघ्री एकदम शिर धुनने लगी। यह देख मुनिने कहा कि व्यर्थ शोकको त्याग। संसारकी यही दशा है, यही भवितव्य था, शान्तभाव धारण-कर आत्मकल्याणके मार्गमें अपनेको तन्मय कर दे। उसने मुनि मुखारविन्दसे अनुपम उपदेश सुन एकदम संन्यासमरणकी प्रतिज्ञा कर ली और अन्तमें स्वर्ग गई। ऐसे अनेक उदाहरण आगममें मिलते हैं परन्तु हम लोग इतने स्वार्थी हो गये कि विरले तो यहाँ तक कह देते हैं कि यदि इनका सुधार हो जायगा तो हमारा कार्य कौन करेगा? लोकमें अव्यवस्था हो जायगी, अतः इनको उच्च धर्मका उपदेश ही नहीं देना चाहिये। जगत्‌में इतना स्वार्थ फैल गया है कि जिनके द्वारा हमारा सर्व व्यवहार बन रहा है उन्हींसे हम घृणा करते हैं। कबीरदास एक साधु हो गया।

अध्यात्मकी ओर उसकी दृष्टि थी। यदि वह व्यवहारकी तरफ कुछ
भी दृष्टि देता तो अच्छे अच्छे उसके अनुयायी हो जाते। फिर भी
उसने लाखो मनुष्योंको मद्य मांस छुड़वा दिया और लाखों
आदमियोंको सरल वना दिया। आज हम लोग धर्म जो कि प्राणी-
मात्रका है उसके विकाशमे बाधक वन रहे हैं। यद्यपि धर्मका विकाश
आत्मामें ही होता है और आत्मा ही उसका उत्पादक है तथा
आत्मा ही उसका घातक है। जिस समय आत्मा परसे भिन्न
अपने स्वरूपको जानता है उसी समय परमे निजत्वकी कल्पनाको
त्याग देता है और उसके त्यागसे उसकी रक्षाके लिये अनुकूल
पदार्थोंके संचयका उद्यम स्वयमेव नहीं होता तथा प्रतिकूल पदार्थोंके
निग्रह करनेकी चेष्टा स्वयमेव शान्त हो जाती है। किन्तु व्यवहार
में जिन महात्माओंने आत्मज्ञानकी पूर्णता प्राप्त की उनके स्मरणके
अर्थ जो मन्दिर आदि आयतन हैं उनकी आवश्यकता जघन्य
अवस्थामें आवश्यक है, अतः मानवजाति मन्दिर आदिका निर्माण
करती है। उस मन्दिरमें वही जा सकता है जो स्वच्छ हो, क्योंकि
मन्दिर एक पवित्र स्थान है और उसमें पवित्र आत्माकी स्थापना
रहती है। अब यहाँ पर यह विचारना है कि पवित्रता उभयविध
है—एक तो यह कि आत्मा पञ्च पापोंका परित्यागी हो तथा जिसके
दर्शन करने जावे उसमे श्रद्धा हो। यह तो अन्तःकरणकी शुद्धता
होनी चाहिये और दूसरी वाह्यमे शरीर शुद्ध हो, स्वच्छ वस्त्रादिक
हो। जिसके यह उभयविध शुद्धता हो वह मनुष्य उस मन्दिरमें
प्रतिष्ठापित देवके दर्शनका अधिकारी हो। मूर्तिपूजाका अधिकारी
वही हो जो उस मन्दिरके अधिकारियों द्वारा निर्मित नियमोंका
पालन करे।

यथार्थमें जो प्रतिमा है उसमे जिस देवकी स्थापना है वह तो
साक्षात् है नहीं, केवल स्थापना है। उस देवपर किसी जातिविशेष-

का अधिकार नहीं। प्रत्येक मनुष्य यदि उस देवमें उसकी श्रद्धा है तो उसकी आराधना कर सकता है, केवल उच्चगोत्रवाले ही उसके आराधक हो सकते हैं यह नियम नहीं। आजकल उच्चवर्ण-वालोंने यह नियम बना रक्खा है कि ये हमारे ही भगवान हैं। उनकी जो मूर्ति हमने बना रक्खी है उसे अन्य विधर्मियोंको पूजनेका अधिकार नहीं है। तत्त्वसे विचारकर देखो, तुमने मूर्तिमें भगवानकी स्थापना ही तो की है। स्थापना २ प्रकारकी होती है—एक तदाकार और दूसरी अतदाकार। तदाकार स्थापनामें पञ्चकल्याणकी आवश्यकता होती है और अतदाकार स्थापनामें विशेष आडम्बरकी आवश्यकता नहीं। केवल विशुद्ध परिणामोंकी आवश्यकता है। मन ही में भगवान्की स्थापना कर प्रत्येक प्राणी पूजन कर सकता है। उस पूजाको आप नहीं रोक सकते। उससे भी मनुष्य लाभ उठा सकते हैं। अरहन्त नामका स्मरण प्राणीमात्र कर सकता है। उसमें आपके निषेध एक काममें न आवेंगे, क्योंकि वर्णसमाम्नाय अनादिसिद्ध है और वह प्रत्येक मनुष्यके उपयोगमें आ सकता है। इसी तरह जैसे आपको श्रीतीर्थंकरदेवकी मूर्ति बनानेका अधिकार है वैसे यदि अन्य भी बनावें और पूजें तो आप रोकनेवाले कौन? हाँ, लोकमें जिन वस्तुओंपर जिनका अधिकार है वे उनकी कहलाती हैं। अन्य उसे बिना स्वामीकी आज्ञाके उपयोगमें नहीं ला सकता। अथवा यह भी कोई नियम नहीं, क्योंकि संसारमें नीति प्रसिद्ध है 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' देखिये चक्रवर्ती जब उत्पन्न होते हैं तब क्या लाते हैं पर वे षट्खण्डके राजा बन जाते हैं। इसी प्रकार जब उन्हें राज्यसे विरक्तता आती है तथा विरक्तताके आनेपर जब दिगम्बर पद धारण करते हैं तब चक्रादि शस्त्र स्वयमेव चले जाते हैं। उनके पुत्र सामान्य राजा रह जाते हैं, अतः यह कोई नियम नहीं कि जो वस्तु आज हमारी है वह कल भी हमारी ही रहे।

देखो, विचारो, जो मनुष्य संज्ञी है यदि उसे संसारसे अरुचि हो तथा धर्म साधन करनेकी उसकी भावना जागृत हो तो उसे कोई मार्ग भी तो होना चाहिये। मन्दिर एक आलम्बन है। उससे वञ्चित रहा, आप स्वयं उससे बोलना नहीं चाहते, वाङ्मय आगम है उससे पढ़नेका अधिकारी नहीं, अत स्वाध्याय नहीं कर सकता, आप सुनाना नहीं चाहते तब यह तत्त्वज्ञानसे वञ्चित रहेगा, तत्त्वज्ञानके विना संयमका पात्र कैसे होगा और संयमके विना आत्माका कल्याण कैसे कर सकेगा? इस तरह आपने भगवान्का जो सार्वधर्म है उसकी अवहेलना की। धर्म प्राणीमात्रका है उसका पूर्ण विकाश मनुष्य पर्यायमें ही होता है, अतः चाहे चाण्डाल हो अथवा महान् दयालु हो, धर्मश्रवणके अधिकारी दोनों ही हैं। आपको यदि धर्मका रहस्य मिला है तो पक्षपातको तिलाञ्जलि दो और उस धर्मका विकाश करो, अन्यथा उसका लोप करोगे तो तुम स्वयं ऐसे कर्मचक्रमें आओगे और अनन्त कालतक भवभ्रमणके पात्र होओगे। अतः जाति अभिमानका परित्यागकर प्राणी मात्र पर दया करो, जिनके आचरण मलिन हैं उन्हे सदाचारकी शिक्षा दो। वह भी तो मनुष्य हैं। हम जो वड़े वनते हैं, अपनेको पुण्यवान् मानते हैं उन्होंने अपने आरामके लिये शूद्रोंको सेवावृत्ति दी और आप स्वयं राजा वन बैठे। सबसे जघन्य काम जिसे आप न कर सके भंगियोंके सुपुर्द किया और उनको चाण्डाल शब्दसे पुकारने लगे। प्रायः मनुष्य जो कार्य करता है उसीके अनुरूप उसका परिमाण वन जाता है यही संस्कार कहलाता है। आत्मामें ज्ञान-दर्शन गुण हैं। प्रत्येक आत्मामें यह वात है। यही जव विकृत अवस्थाको धारण करता है तव अनन्त संसारका पात्र होता है और नाना यातनाएं सहता है। प्रत्येक आत्मा ज्ञानादि गुणोंका आश्रय है। अनादि कालसे इसके साथ पर द्रव्यका एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध

है। एक क्षेत्रमें ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये षट्द्रव्य स्वकीय स्वकीय सत्ता लिये निवास कर रहे हैं। उनमें जीव और पुद्गलको छोड़कर चार द्रव्य तो अपने अपने स्वभावमें लीन हैं। उनमें कोई प्रकारकी विकृति नहीं आती। २ द्रव्य—जीव और पुद्गल इनमे विभाव नामक शक्ति है, इससे उनका परस्परमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो रहा है। जीवके रागादिक परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गलमे ज्ञानावरणादिरूप परिणाम होता है और कर्मके उदयको पाकर जीवमे रागादि परिणाम होते हैं। उन रागादिकके द्वारा जीव नाना प्रकारके कार्य करता है? जो पदार्थ अपने अनुकूल होते हैं उन्हे इष्ट मान लेता है और जो प्रतिकूल होते हैं उन्हे अनिष्ट मानता है। यदि इष्ट पदार्थ मिले तो उनके साधकों से राग और अनिष्ट पदार्थ मिले तो उनके साधकोंसे द्वेष करने लगता है। इस प्रकार निरन्तर राग-द्वेषकी कल्पनासे मुक्त नहीं होता और मुक्त होनेका कारण जो उपेक्षाभाव (रागद्वेष रहित परिणाम) है उस ओर इस जीवकी दृष्टि नहीं। उपयोग आत्माका एक कालमें एक ही होता है।

इस प्रकार हम तो अपना भाव प्रकट कर दिया। यद्यपि यह निश्चय है कि जो होना है वही होगा। संसारकी दशाको बदलनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं। परन्तु अभिप्रायके विरुद्ध बात कहना और करना दम्भ है, इसलिये यह लिखकर मैं निर्द्वन्द्व हो गया।

पावन दशलक्षण पर्व

दशलक्षण पर्व आ गया। कटनीसे श्री पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री आ गये। लाल मन्दिरमें विशाल मण्डपका आयोजन हुआ। प्रति दिन १ बजेसे मण्डपमें पं० जगन्मोहनलालजीका प्रवचन होता था। अनन्तर कुछ हम भी कह देते थे। जैन समाजमें दशलक्षण पर्वका महत्त्व अनुपम है। भारतमें सर्वत्र जहाँ जैन रहते हैं वहाँ इस समय यह पर्व समारोहके साथ मनाया जाता है। पर्वका अर्थ तो यह है कि इस समय आत्मामें समाई हुई कलुषित परिणतिको दूरकर उसे निर्मल बनाया जाय पर लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। बाह्य प्रभावनामें ही अपनी सारी शक्ति व्यय कर देते हैं।

प्रारम्भके दिन जब मेरा विवेचनका अवसर आया तब मैंने कहा कि यद्यपि आज उत्तम क्षमाका दिन है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आज मार्दव धर्म धारण नहीं करना चाहिये। धर्म तो प्रत्येक दिन सभी धारण करनेके योग्य हैं। फिर क्षमा आदिका जो क्रम बताया है वह केवल निरूपणकी अपेक्षासे बताया है। क्षमाधर्म क्रोध कषायपर विजय प्राप्त करनेसे होता है। क्रोध कषायके उदयमें यह आत्मा स्वात्मनिष्ठ रत्नत्रयके विकाशको रोक देता है। देखो, उपशमसम्यग्दृष्टिका काल जब जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे ६ आवलि प्रमाण बाकी रह जाता है तब यदि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया या लोभमेंसे किसी एकका उदय आ जावे

तो यह जीव उपरितन गुणस्थानोंसे गिरकर द्वितीय सासादन गुणस्थानमें आ जाता है और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नमय पर्वतकी शिखरसे नीचे गिर जाता है। इससे जान पड़ता है कि कषायका उदय अच्छा नहीं।

द्वितीय दिन मार्दव धर्मका व्याख्यान हुआ। मृदुका भाव मार्दव होता है और मृदुका अर्थ कोमल है। इसकी व्याख्या करना पण्डितोंका कार्य है, परन्तु इतना हर कोई जानता है कि मन, वचन और कायके व्यापारमें कठोरता न आना चाहिये। कठोरताका व्यवहार बहुत ही अनुचित होता है। जिसका व्यवहार मृदुताको लिये हुए होता है उसको जगत् प्रिय मानता है, वह जगत्में प्रत्येक समय आदरका पात्र होता है। कोई भी उसके साथ असद्व्यवहार नहीं करता।

तृतीय दिन आर्जवधर्मका विवेचन हुआ। आर्जव धर्म सरल परिणामोंसे होता है यह कह देना कौन कठिन है? परन्तु जीवनमें उतर जाय यह कठिन है। मायारूप पिशाचीके वशीभूत हुआ यह प्राणी नाना स्वांग बनाता है। आज तो लोगोकी बात-बातमें मायाचारका व्यवहार भरा हुआ है। मायाचारका व्यवहार रहते परिणामोंमें निःशल्यता नहीं आती और निःशल्यताके अभावमें शान्ति कहाँसे प्राप्त हो सकती है? अतः शान्तिके यदि इच्छुक हो तो माया रहित व्यवहार करो।

चतुर्थ दिन शौचधर्मका व्याख्यान था। शौचधर्म कहीं बाहरसे नहीं आता किन्तु आत्माकी निर्मल परिणति हो जानेसे आत्मामें ही प्रकट होता है। आत्माकी परिणति लोभ कषायके कारण कलुषित हो रही है, अतः कलुषितताका अपहरण करनेके लिये लोभका संवरण करना आवश्यक है। शौचधर्म आत्माकी स्वकीय परिणति है

और लोभ उसकी विकृत परिणति है। जब कि एक गुणकी एक समयमें एक ही पर्याय होती है तब लोभके रहते हुए शौच रूप परिणति नहीं हो सकती।

पञ्चम दिन सत्यधर्मका व्याख्यान था। वास्तवमें सत्यधर्म तो वह है जहाँ परका लेश नहीं। जहाँ परमें आत्मबुद्धि है वहां धर्मका लेश नहीं। आत्माका स्वभाव भगवान्ने ज्ञान और दर्शन कहा है। अर्थात् उसका स्वभाव जानना और देखना बतलाया है। चेतना आत्माका लक्षण है। चेतनाका द्विविध परिणाम होता है। उनमेंसे स्वपर व्यवसायात्मक परिणामको ज्ञान कहते हैं और केवल स्वव्यवसायात्मक परिणामको दर्शन कहते हैं। मोहके वशीभूत हुआ प्राणी अपने ज्ञान दर्शन रूप स्वभावसे विमुख हो जाता है यही असत्य धर्म है। स्वभाव विमुख प्राणीके वचन ही अन्यथा निकलते हैं।

षष्ठ दिन संयम धर्मका दिवस था। संयम धर्म यह शिक्षा देता है कि सर्व तरफसे वृत्तिको संकोच करो। जहाँ पर पदार्थोंमें दृष्टि गई उनको अपनाया वहाँ संयम गुणका घात हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि हम केवल संयमको जानते हैं पर उसके अनुभवसे शून्य हैं, अन्यथा जैसी हमारी विषयोंमे प्रवृत्ति है वैसी संयममें क्यों न होती? बाह्यमें संयम धर लेनेपर भी अन्तरङ्ग उन्हीं विषय कषायोंकी ओर आकृष्ट क्यों होता?

सप्तम दिन तपका व्याख्यान था। अनादिसे आत्मामें जो पर पदार्थोंकी इच्छा उत्पन्न हो रही है वही तप धर्ममें बाधक है। आत्माका स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, परन्तु मोहजन्य इच्छाके कारण इसके सामने जो आता है उसे यह अपना मान लेता है। जहाँ किसी पदार्थमें अपनत्व बुद्धि हुई वहीं उसकी रक्षाका भाव उत्पन्न हो जाता

है। जहाँ रक्षाका भाव उत्पन्न हुआ वहाँ उसके साधक-बाधक कारणोंमे राग द्वेष-इष्ट अनिष्टकी कल्पना अनायास हो जाती है।

अष्टम दिन त्याग धर्मका मार्मिक विवेचन था। अनादिसे यह आत्मा पर वस्तुको अपना मान रहा है। यद्यपि पर अपना होता नहीं और न एक अंश उसका हममे आता है। वस्तु जिस मर्यादामें है उसीमे रहेगी, परन्तु हम मोहके वशीभूत हो वस्तु स्वरूपको अन्यथा मान रहे हैं। जिस तरह कामला रोगवाला श्वेत शङ्खको पीत मानता है उसी तरह मैं अनात्मपदार्थको स्वात्मा मान रहा हूं। जब तक किसी पदार्थसे अपनत्व बुद्धि नहीं हटती तब तक उसका त्याग होना संभव नहीं।

नवम दिन आकिञ्चन्य धर्मका अवसर था। आत्मासे मूर्च्छा भाव निकल जाने पर आकिञ्चन्य धर्म प्रकट होता है। मूर्च्छाका अर्थ परमें ममताभाव है। यद्यपि संसारका कोई पदार्थ किसीका नहीं। सब अपने अस्तित्व गुणसे परिपूर्ण हैं तो भी यह मोही प्राणी उन्हे अपने अस्तित्वमें मिलाना चाहता है और जब वे इसके अस्तित्वमे नहीं मिलते तब दुःखी होता है। व्यर्थ ही पर पदार्थोंका भार अपने ऊपर ले संक्लेशका अनुभव करता है। 'काजी दुर्बल क्यों ? नगरकी चिन्तासे' यह कहावत हमारी प्रवृत्तिमें आ रही है।

दशम दिन ब्रह्मचर्यका प्रकरण था। परमार्थसे ब्रह्मचर्यका अर्थ ब्रह्म अर्थात् आत्मस्वरूपमे लीन होना है। योग और कषाय ये दोनों ही आत्माको आत्मलीनतासे विमुख कर रहे हैं, अतः इनका अभाव करनेसे ही ब्रह्मचर्यमें पूर्णता आती है। बाह्यमे स्त्री-त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। प्रारम्भमें स्वदार संतोप ब्रह्मचर्य कहलाता है, परन्तु सप्तम प्रतिमासे स्वदारका भी त्याग हो जाता है।

चतुर्दशीके दिन अनन्तनाथ महाप्रभुका निर्वाणोत्सव हुआ था। इसलिये वह लोकमे अनन्त चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। आजके दिन नगरमें गाजे वाजेके साथ सर्व समूहका विशाल जुलूस निकला तदनन्तर श्री जिनेन्द्रदेवका कलशाभिषेक हुआ। आश्विन कृष्ण प्रतिपदाके दिन क्षमावर्णीका आयोजन हुआ। कलशाभिषेकके बाद सबका सम्मेलन हुआ।

नम्र निवेदन

भादों सुदी पूर्णिमाके दिन, दिल्लीसे निकलनेवाले हिन्दुस्तान दैनिक पत्रमे यह लेख छपा हुआ दृष्टिगोचर हुआ कि वर्णी गणेशप्रसाद शूद्र लोगोंके मन्दिर प्रवेशके पक्षमे हैं ...... अस्तु, हम किसी पक्षमें नहीं, किन्तु यह अवश्य कहते हैं कि धर्म आत्माकी परिणति विशेष है और उसका विकास संज्ञी पञ्चेन्द्रियमे प्रारम्भ हो जाता है। देव नारकीके तो अविरत अवस्था ही तक होती है। अर्थात् उनके सम्यग्दर्शन तक ही होता है, व्रत नहीं हो सकता। तिर्यगवस्थामे अणुव्रत हो सकता है। अर्थात् तिर्यञ्चके पञ्चम गुणस्थान हो सकता है और मनुष्यके चतुर्दश गुणस्थान हो सकते हैं, वह मोक्षका पात्र हो सकता है। मनुष्योंमे विशेष शक्ति तथा ज्ञानके प्रकट होनेकी योग्यता है। मनुष्योंमे गोत्रके दोनों भेद होते हैं। अर्थात् नीचगोत्र भी होता है और उच्चगोत्र भी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये उच्चगोत्रवाले हैं और शूद्र नीचगोत्रवाला है। शूद्रके दो भेद हैं— एक स्पृश्य शूद्र और दूसरा अस्पृश्य शूद्र। स्पृश्य शूद्र क्षुल्लक तकका पद ग्रहणकर

सकते हैं, उच्चगोत्रवाले उन्हे भक्ति पूर्वक दान देते हैं, उन्हे मन्दिर जानेका प्रतिवन्ध नहीं। रहे अस्पृश्य शूद्र, जिन्हे हरिजन कहते हैं सो इनके भी व्रत प्रतिमा हो सकती है। ये १२ व्रत पाल सकते हैं धर्म की भी अकाट्य श्रद्धा इन्हे हो सकती है फिर इनको भी देवदर्शनसे क्यों रोका जावे? चरणानुयोग क्या आज्ञा देता है इसका तो हमे विशेष ज्ञान नहीं, परन्तु हृदय हमारा यह कहता है कि इनके साथ इतना वैमनस्य रखना अनुचित है। यह भी आखिर मनुष्य हैं, उन्हें भी धर्मका मर्म समझाना चाहिये। यह भी धर्म समझकर हिंसादि पापके त्यागी हो सकते हैं। ज्ञानके उपार्जनसे ही धर्मका श्रद्धान हो सकता है।

श्रीमान् आचार्य शान्तिसागरजी महाराज वर्तमान कालमें अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उनके आदेशानुसार सम्पूर्ण दि०जैन जनता चलनेको प्रस्तुत है। आपने हरिजन मन्दिर प्रवेश बिलके कारण आजीवन अन्न त्याग दिया है इससे सम्पूर्ण समाज बहुत ही खिन्न है। होना ही चाहिये।

इसी अवसरपर मैंने महाराजसे निम्नाङ्कित निवेदन किया कि महाराज! मैं आपसे कुछ निवेदन करूँ, साहस नहीं होता किन्तु एक नम्र निवेदन है कि जब चतुर्गतिके जीवोंको सम्यक्त्व होता है तब मनुष्य गतिमें जन्म पानेवाले हरिजन भी उसके पात्र हैं तथा मनुष्य और तिर्यंगतिमें जन्म लेनेवाले पञ्चम गुणस्थनवर्ती भी होते हैं तब क्या हरिजन इस गुणस्थानके पात्र नहीं हो सकते? यह तो करणानुयोगकी कथा रही, परन्तु व्यवहारमे चरणानुयोगके अनुसार मनुष्य पर्यायमें जिसे देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा हो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। जब यह व्यवस्था है तब हरिजन भी इस श्रद्धाके पात्र हो सकते हैं, जब देव, शास्त्र और गुरु की श्रद्धाके पात्र हैं तब देव दर्शनके अधिकारी क्यों नहीं हो सकते? जब

देवदर्शनके अधिकारी हैं तब फिर हरिजन मन्दिर प्रवेश बिलपर इतनी आपत्ति क्यों? चरणानुयोगके अनुकूल मद्य मांस मधुका त्याग होना चाहिये तब वे भी इस त्यागके पात्र हैं तथा जब गुरुकी श्रद्धाके पात्र हैं तब क्या वे हरिजन आपकी भी वन्दनाके पात्र नहीं हो सकते हैं? यदि वे श्रद्धालु जहाँपर आप तत्त्वोपदेश कर रहे हैं आकर उपदेशको श्रवण करें तथा आपकी वन्दना करें तो क्या नहीं आने देंगे? अतः यह सिद्ध होता है कि हरिजन भी देवदर्शनके पात्र हो सकते हैं तब हरिजन मन्दिर प्रवेश बिलपर इतनी आपत्ति क्यों?

धर्म तो जीवकी निज परिणति है। उसका विकास संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें होता है। वह चारों गतिवाला जीव हो सकता है। यहाँ पर यह नहीं है कि अमुक व्यक्ति ही उसका पात्र है। यह अवश्य है कि भव्य, पर्याप्तक, संज्ञी जागृदवस्थावाला जीव होना चाहिये। हरिजनोंमे भी ऐसे जीव हो सकते हैं। हरिजनोंमें उत्पत्ति होनेसे वह इसका पात्र नहीं यह कोई नहीं कह सकता। वे निन्द्य कार्य करते हैं इससे सम्यग्दर्शनके पात्र न हों यह कोई नियामक कारण नहीं? क्यों कि उच्च गोत्रवाले भी प्रातःकाल शौचादि क्रिया करते हैं तथा यह कहो कि उस कार्यमें हिंसा बहुत होती है इससे वे सम्यग्दर्शनादिके पात्र नहीं तब मिलवालोंके जो हिंसा होती है—हजारों मन चमड़ा और चर्बीका उपयोग होता है तदपेक्षा तो उनकी हिंसा अल्प ही है, अतः हिंसाके कारण वे दर्शनके पात्र नहीं यह कहना उचित नहीं। यदि यह कहा जाय कि भोजनादिकी अशुद्धताके कारण वे दर्शनके पात्र नहीं तो प्रायः इस समय बहुत ही कम ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो शुद्ध भोजन करते हैं, अतः यह निर्णय समुचित प्रतीत होता है कि जो मनुष्य धर्मकी श्रद्धा रखता हो वह भी जिनदेवके दर्शनका पात्र हो सकता है। यह

ठीक है कि उसके व्यवहारमें शुद्ध वस्त्रादि होना चाहिये तथा मद्य मांस मधुका त्यागी होना चाहिये। व्यवहारधर्मकी यह बात है।

निश्चयधर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। उसका तो यहाँपर विवाद ही नहीं है, क्योंकि उसके पालनके प्रत्येक संज्ञी जीव पात्र हो सकते हैं। धर्म प्रत्येक प्राणीका प्राण है। उसके बिना आत्मा जीवित नहीं रह सकता। त्रिकालमें उसका सद्भाव है। जैसे पुद्गलमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण रहते हैं, उनके बिना पुद्गलका अस्तित्व नहीं इसी प्रकार आत्माका धर्म दर्शन-ज्ञान है। इनसे शून्य आत्मा नहीं रह सकता हाँ, यह अवश्य है कि स्पर्शादिका परिणमन किसी रूपमें हो किन्तु सामान्य स्पर्शादिगुणके बिना जैसे उसके विशेष नहीं रह सकते इसी प्रकार दर्शन-ज्ञानका परिणमन कोई रूपमें हो उनके बिना यह परिणमन विशेष नहीं रह सकता। जब यह व्यवस्था है तब सर्व जीव दर्शन-ज्ञानके पात्र हैं। उनके अन्दर जो विकृति आगई उसका अभाव करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। जब यह बात है तब जैसे हम संज्ञी हैं और आत्महित चाहते हैं ऐसे ही और मनुष्य भी चाहे किसी जातिविशेषके हों उन्हें भी आत्महित करनेका अधिकार है। इसके सिवाय जब उनके वज्रर्षभनाराच संहनन हो सकता है और वे सप्तम नरक जानेका पापोपार्जन कर सकते हैं तब उत्तम पुण्य उपार्जन करलें इसमें क्या क्षति है ? पशुओंमें मत्स्य सप्तम नरक जाता है उसके दृष्टान्तसे यह बाधित नहीं, क्योंकि मनुष्य पर्याय तिर्यक् पर्यायसे भिन्न है। आगममें शूद्रके क्षुल्लक पर्याय हो सकती है ऐसा विधान है तब क्या शूद्र लोग उसे आहार नहीं दे सकते ? यह समझमें नहीं आता। यदि आहार दे सकते हैं तो श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनके अधिकारी न हों यह बुद्धिमें नहीं आता। केवल हठवादको छोड़कर अन्य युक्ति नहीं। धर्म तो आत्माकी उस निर्मल परिणतिको कहते हैं

जिसमें अधर्मका लेश न हो। उस परिणतिमें तो पुण्यको भी हेय माना है, क्योंकि पुण्यसे केवल स्वर्गकी प्राप्ति होती है और स्वर्गमें केवल भोगोंकी मुख्यता है—वे चतुर्थ गुणस्थानसे ऊपर नहीं जा सकते। आजन्म उसी गुणस्थानमें रहते हैं। मनुष्य पर्याय ही संयमका मूल कारण है। संयमके उदयमें ही यह जीव पर वस्तुके त्यागका पात्र हो सकता है। सम्यग्दर्शनके होते ही अभिप्राय निर्मल हो जाता है। पर वस्तुसे भिन्न आत्माको उसी समय जान जाता है। केवल चारित्रमोहके उदयसे ऐसा संस्कार बैठा हुआ है जिससे परको भिन्न जानकर भी यह जीव उसे त्यागनेमें असमर्थ रहता है। अस्तु,

समाचार पत्रोंमें बहुत विवाद चला। दोनों पक्षके लोगोंने अपनी अपनी बात लिखी। किसीने किसीको बुरा लिखा और किसीने किसीको। पदार्थका स्वरूप जैसा है वैसा है। लोग अपनी-अपनी कषायसे प्रेरित हो उसे विवादकी भूमि बनाकर दुःखी होते हैं।

दिल्लीके शेष दिन

आसौज वदी ४ सं० २००६ को मेरा जयन्ति उत्सव था जिसमें उद्योगमन्त्री भी पधारे थे। आपने समयानुकूल अच्छा भाषण दिया। अनेक लोगोंने श्रद्धाञ्जलियाँ दी जिन्हें सुनकर मुझे बहुत संकोच उत्पन्न हुआ। श्री शान्तिप्रसाद जी साहु प्रसिद्ध नर रत्न हैं। आप बहुत ही नम्र तथा शान्त हैं। आपने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको देकर अमर कीर्तिका अर्जन किया। अब बहुत अशोंमें विद्यालयकी त्रुटि दूर हो गई। आशा है इनके दानसे समाज भी चेतेगी। महाविद्यालय समाजका महोपकार कर रहा है। श्रीयुत रतनलालजी मादेपुरियाने भी २१००) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ११) मासिक व्याज देते जावेंगे और रुपये अपने यहाँ ही जमा रक्खेंगे। जब विद्यालयको आवश्यकता पड़ेगी, वापिस दे देवेंगे। परन्तु मेरी बुद्धिसे यह बात यथार्थ नहीं, क्योंकि दानका रुपया दे देना ही श्रेयस्कर है। इसमें काल पाकर नकारा भी हो सकता है, क्योंकि द्रव्य अपने ही पास तो है। काल पाकर लोग बड़े बड़े वायदे भी तबदील कर देते हैं। मैं इस दानको दान नहीं मानता। दानके मायने दत्त द्रव्यमे ममत्व त्याग देना है। दान देकर उससे ममता रखना दानके परिणामोंका विघात है। मनुष्य आवेगमें आकर दान तो कर बैठता है और लोगोंसे धन्यवाद भी ले लेता है। पश्चात् जब अन्तरङ्गमे विचार करता है तब व्यग्र होने लगता है। वह विचारता है कि मैंने बड़ी गलती की जो रुपया दे आया। रुपयेसे संसारमें मेरी प्रति ा है। इसके प्रसादसे बड़े बडे महान् पुरुष मेरे द्वारपर

चक्कर लगाते हैं। कहाँ तक कहें, बड़े बड़े विद्वान् भी इसकी प्रतिष्ठा करते हैं। प्रायः प्राचीन राजाओंकी प्रशंसामें जो काव्य बने हैं वे अधिकांश इसी द्रव्यकी लालचमें पड़कर बने हैं। अस्तु,

मैंने तो उत्सवमें यही कहा कि संसारके प्राणिमात्रपर दया करो। हम लोग आवेगमें आकर संसारके प्राणियोंको नाना प्रकारसे निग्रह करते हैं। हमारे प्रतिकूल हुआ उसे अपना शत्रु और अनुकूल हुआ उसे मित्र मान लेते हैं। वास्तवमें न तो कोई मित्र है और न कोई शत्रु है। यही भावना निरन्तर आना चाहिये। वह भी इस उद्देश्यसे कि आत्मा बन्धनसे विनिर्मुक्त हो जावे। मनुष्य जन्मकी सार्थकता संयमके पालनेमें है। संयमका अर्थ कषायसे आत्माकी रक्षा करना है। इसके लिये पर पदार्थोंसे संपर्क त्यागो। यद्यपि पर पदार्थ सदा विद्यमान रहेंगे, क्योंकि लोकमें सर्व पदार्थ व्याप्त हैं। इस तरह उनका त्यागना किस प्रकार बनेगा यह प्रश्न उठता है तथापि उनमें जो हमारी आत्मीय कल्पना है उसके त्यागनेसे पर पदार्थोंका त्यागना बन जाता है। वे यथार्थमें दुःखदायी नहीं, किन्तु उनमें जो ममत्वभाव है वही दुःखदायी है। राग-द्वेष आत्माके सबसे प्रबल शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। 'जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे' इस वाक्यसे संतोषकर लेना अन्य बात है और पुरुषार्थकर रागद्वेषका निपात करना अन्य बात है। राग-द्वेष कोई ऐसे वज्र नहीं जो भेदे न जा सकें। अपनी भूलसे ये होते और अपनी बुद्धिमत्तासे विलीन हो सकते हैं। कायरतासे इनकी सत्ता नहीं जाती। ये वैभाविकभाव हैं—आत्माके क्लेशकारक हैं। इनके सद्भावमें आत्माको बेचैनी रहती है। उसके अर्थ यह नाना प्रकारके उपाय करता है। उससे बेचैनीका ह्रास नहीं होता प्रत्युत वृद्धि होती है।

स्पृश्यास्पृश्यकी चर्चा लोग करते हैं पर जैनधर्म कब कहता है कि तुम अस्पृश्योंको नीच समझो। तुम्हीं लोग तो अस्पृश्योंको जूंठन खिलाते हो और यहाँ बड़ी बड़ी बातें बनाते हो। नियम करो कि हम अस्पृश्योंको अपने जैसा भोजन देंगे फिर देखो अपने प्रति उनका हृदय कितना पवित्र और ईमानदार रहता है। मैं अन्यकी बात नहीं कहता पर बाईजीकी कहता हूँ। सागरकी बात है, सावन दीपावली आदि पर्वोंके दिन बाईजी जो पेड़ा या पुड़ी मुझे खिलाती थीं वही अपनी मेहतरानीको खिलाती थीं। जब उनसे कोई कहता कि आप इसे पीछेका बचा हुआ रद्दी पेड़ा क्यों नहीं दे देतीं? तो वे उसे घुडककर उत्तर देती थीं कि क्या मैं इसे रोज देती हूँ? इसे अच्छा भोजन कब मिलेगा? एक बार संडासमें बाईजीकी सोनेकी चूड़ी गिर गई पर बाईजीको पता नहीं। दूसरे दिन वह मेहतरानी अपने आप चूड़ी घर दे गई। हम सबको उसकी ईमानदारी पर आश्चर्य हुआ। मैं स्वयं एक बार रेशन्दीगिरिके मेलेमें तांगासे गया, साथमें और भी बहुतसे तांगे थे। बाईजीने मुझे चार पेड़े रख दिये, रास्तेमें मैंने दो पेड़े तांगावालेको दिये और दो मैंने खाये। कच्ची रास्तामें धूल उड़ने लगी, मुझे कष्ट हुआ। मैंने नाकपर कपडा लगा लिया। तांगावालेने ज्यों ही देखा, झटसे तागा आगे ले गया। इससे साथवालेने तागेवालोंसे आगे ले जानेको कहा और साथमें इस बातकी धमकी दी कि हमने भी तो तुम्हे उतना ही किराया दिया है। तागेवालेने कहा कि आपने किराया दिया सो तो ठीक है पर स्वयं भूखा रह कर दो पेड़े तो नहीं दिये? हृदयपर हृदयका असर पडता है। आप धोबीका धुला कपड़ा उठानेमें दोष समझते हैं पर शरीरपर चर्बीसे सने कपड़े बडे शौकसे धारण करते हैं। क्या यही जैनधर्म है? जैनधर्म पवित्रताका विरोधी नहीं पर घृणाको वह

कषाय अतएव हेय समझता है। क्या कहें लोग बाह्य आचारमें तो बाघकी खाल निकालते हैं पर अन्तरङ्गको शुद्ध करनेकी ओर ध्यान ही नहीं देते। दिल्लीमें हरिजन विषयक चर्चा हमारे अन्तरङ्गकी परीक्षा रही। पर मेरे मनमे जो बात थी वह व्यक्त कर दी। मैं तो इस पक्षका हूँ कि प्राणीमात्रको धर्म-साधनका अधिकार है। पञ्च पाप त्यागनेका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको है, क्योंकि जब उसकी आत्मा बुद्धिपूर्वक पाप करती है तब उसे छोड़ भी सकती है। मन्दिरमें आना न आना इसमें बाधक नहीं। आज कल सर्वत्र यही चर्चा हो रही है कि हरिजनोंको मन्दिर नहीं जाने देना चाहिये, क्योंकि वे हरिजन हैं। अपवित्र हैं, पूर्वाचार्योंने उन्हें अस्पृश्य बतलाया है। अस्पृश्यका अर्थ यह है कि उनको स्पर्श कर स्नान करना पड़ता है। यहां प्रश्न होता है कि वे आखिर अस्पृश्य क्यों हैं? ये मदिरापान करते हैं इससे अस्पृश्य हैं या हम लोगोंके द्वारा की हुई गन्दगीको स्वच्छ करते हैं इसलिये अस्पृश्य हैं या शरीरसे मलिन रहते हैं इससे अस्पृश्य हैं या परम्परासे हम उन्हें अस्पृश्य मानते आ रहे हैं इससे अस्पृश्य हैं? यदि वे मदिरा पानसे अस्पृश्य हैं तो लोकमें बहुतसे उच्चकुलीन भी मदिरा पान आदि करते हैं वे भी अस्पृश्य होना चाहिये। यदि गन्दगीको स्वच्छ करनेसे अस्पृश्य हैं तो प्रत्येक मनुष्य गन्दगी साफ करता है, वह भी अस्पृश्य हो जावेगा। यदि शरीरकी मलिनता अस्पृश्यता-का कारण है तो बहुतसे उत्तम कुलवाले भी शरीरकी मलिनतासे अस्पृश्य हो जावेंगे। यदि उनमें मलिनाचारकी बहुलता उनकी अस्पृश्यतामें साधक है तो यह बहुत उत्तम कुलोंमें भी पाई जाती है। विरले विरले उत्तम कुलवाले तो इतना पापाचार करते हैं जितना नीच कुलवाले भी नहीं कर सकते। इससे सिद्ध होता है कि चाहे ऊँच हो या नीच जिसमें पापाचारमय प्रवृत्ति है वही

कल्याणके मार्गसे दूर है। यदि आज शूद्र पञ्च पापका त्याग कर देवें तो वह भी अणुव्रती हो सकते हैं तथा अन्तरङ्गसे जिनेन्द्रदेवकी भक्तिके पात्र हो सकते हैं। ब्राह्मण मर कर नरक जा सकता है और चाण्डाल मर कर स्वर्गमें देव हो सकता है। यह तो अपनी अन्तरङ्ग परिणतिकी निर्मलताके ऊपर निर्भर है। इस निर्मलताको रोकनेका किसीको अधिकार नहीं। खेद इस बातका है कि जो अपनेको उच्च वर्णवाले मानते हैं उन्होंने नीच कहे जानेवाले लोगोंकी पवित्रताका अपहरण किया है। इसीका फल है कि उच्च वर्णवाले ऊपरसे उच्च वर्ण है पर भीतरसे उनमे उच्चताके दर्शन नहीं होते। अस्तु, अप्रासङ्गिक चर्चा आ गई, परमार्थकी बात तो यह है कि शुद्ध चित्तके लिये शुद्ध आत्माको जानो। शुद्ध ज्ञान वह है जिसमें रागादिभावकी कलुपता न हो। शत्रु रागादिक ही हैं अन्य कोई नहीं। रागादिके अनुकूल पर पदार्थ होता है तब तो उसकी रक्षाका प्रयत्न होता है और रागादिके प्रतिकूल होनेसे उसके नाशके लिये प्रयत्न करनेकी सूझती है। इस परणतिको धिक्कार ही देना चाहिये।

जयन्तीका उत्सव समाप्त हुआ, लोग अपने अपने घर गये। एक दिन साहु शान्तिप्रसादजीने भारतीय ज्ञानपीठ बनारसके लिये दश लाख रुपयेके शेयर प्रदान किये और उससे सम्बद्ध कागजोंपर मैंने हस्ताक्षर कर दिये। हस्ताक्षर तो कर दिये पर जब विचार किया तब मुझे लगा कि मैंने महती भूल की। उचित यही था कि चाहे कुछ हो परिग्रहके विषयमें कुछ भी नहीं करना चाहिये। अस्तु, जो हुआ सो ठीक है अब ऐसे कार्योंमें उपयोग नहीं लगाना चाहिये -- यह विचार स्थिर किया। यथार्थमें कल्याणका मार्ग तो निराकुलतामें है। जहाँ आकुलता है वहाँ शान्ति नहीं। हमारी प्रवृत्ति आजन्म प्रवृत्तिमार्गमें लग रही है, अतः निरीहमार्गकी

ओर जाना अति कठिन है। धन्य हैं उन महापुरुषोंको जिनकी प्रवृत्ति निर्दोष रहती है।

चित्तवृत्ति निरन्तर कलुषित रहे यह महान् पापका उदय है। जब परिग्रहका सम्बन्ध नहीं तब कलुषित होनेका कोई कारण ही नहीं। वास्तवमें देखा जावे तो हमने परिग्रह त्यागा ही नहीं। जिसको त्यागा है वह तो परिग्रह ही नहीं। वे तो पर पदार्थ हैं, उनको त्यागना ही भूल है, क्यों कि उनका आत्मासे सम्बन्ध ही नहीं। आत्मा तो दर्शन-ज्ञान-चारित्रका पिण्ड है। उसमें मोहके विपाकसे कलुषितता आती है जो कि चारित्रगुणकी विपरिणति—विरुद्ध परिणति है उसे ही त्यागना चाहिये। उसका त्याग यही है कि वह होवे इसका विषाद मत करो तथा उसमें निजत्व कल्पना न करो।

चित्तमें न जाने कितने विकल्प आते हैं जिनका कोई भी प्रयोजन नहीं। प्रत्येक मनुष्यके यह भाव होते हैं कि लोकमें मेरी प्रतिष्ठा हो। यद्यपि इससे कोई लाभ नहीं फिर भी न जाने लोकैषणा क्यों होती है? सर्व विद्वान् निरन्तर यह घोषणा करते हैं कि संसार असार है। इसमें एक दिन मृत्युका पात्र होना पड़ेगा। पर असारका कुछ अर्थ ही समझमें नहीं आता। मृत्यु होगी इसमें क्या विशेषता है? इससे वीतराग तत्त्वको क्या सहायता मिलती है, कुछ ध्यानमें नहीं आता। मुझे तो लगने लगा है कि बहुत बोलना जिस प्रकार आत्मशक्तिको दुर्बल करनेका कारण है उसी प्रकार बहुत सुनना भी आत्मशक्तिके ह्रासका कारण है। आगमाभ्यास भी उतना सुखद है जितना आत्मा धारण कर सके। बहुत अभ्यास यदि धारणासे रिक्त है तो जैसे उदराग्निके बिना गरिष्ठ भोजन लाभदायक नहीं वैसे ही वेद अभ्यास भी लाभ दायक नहीं प्रत्युत हानिकारक है। यद्वा तद्वा

मनुष्योंसे वार्तालाप करना उचित नहीं। धर्मके अर्थ शरीर दण्डन की आवश्यकता नहीं। शरीर न तो धर्मका कारण है और न अधर्मका। इससे उपेक्षा रखना ही श्रेयस्कर है। संसार आज नाना प्रकारके संकटोंमें जा रहा है, इसका मूल कारण परिग्रह है। सर्व पापोंका मूल कारण परिग्रह ही है। 'मूर्च्छा परिग्रहः—'ममेदंबुद्धिलक्षणम्' यही परिग्रहका स्वरूप है। संसारका कारण परिग्रह ही है। परिग्रहका अर्थ मोह-राग-द्वेष है। यही संसार है और यही दुःखका मूल कारण है।

आसौज सुदी ८ का दिन था। दरियागंजमे शान्तिसे स्वाध्याय कर रहा था कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सुनाया कि—'आचार्य शान्तिसागरजीने कहा है कि यदि वर्णीका मत हरिजनके विषयमें हमारे मन्तव्यानुकूल नहीं तब वे इसमे मौन धारण करें। यदि कुछ बोलेंगे तब उनके हकमे अच्छा न होगा अर्थात् उनको जैन दिगम्बर मतानुयायी अपने सम्प्रदायबलसे पृथक् कर देवेंगे'।

इसका तात्पर्य यह है कि दिगम्बर जैन उन्हें आदरकी दृष्टिसे न देखेंगे। मैंने यह विचार किया कि मनुष्योंकी दृष्टिसे कुछ कल्याण तो होता नहीं और न मनुष्योंकी दृष्टिमें आदर पानेके लिये मैंने वीतराग जिनेन्द्रका धर्म स्वीकार किया है। मेरा तो विश्वास है कि जैनधर्म किसीकी पैतृक सम्पत्ति नहीं तब धर्म साधनके जो अङ्ग हैं वे क्यों सर्वसाधारणके लिये उपयोगमें आनेसे रोके जाते हैं? कल्पना करो, कोई हरिजन जैनधर्मका श्रद्धालु बन गया तब उसे क्या ये लोग श्रावकके अनुकूल क्रिया नहीं करने देंगे? यदि नहीं करने देंगे तो निश्चय ही उन्होंने उसे धर्मसे वञ्चित किया यह समझना चाहिये। धर्म तो आत्मा की परिणति है, उसे कोई रोक नहीं सकता। एक दो नहीं सब मिलकर

भी मेरी वीतराग धर्मसे श्रद्धा को दूर नहीं कर सकते। लोकैषणाकी मुझे अभिलाषा नहीं है। मैंने विचार किया कि अच्छा हुआ एक अभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हुए।

आसौज सुदीमें प्रातःकाल ७ बजे चलकर ८ बजे न्यू दिल्ली गये। नसियाजीमें ठहरे। स्थान रम्य है। यहाँसे एक फलांग दूर पर श्री मन्दिरजी हैं। बहुत ही रम्य मन्दिर है। बीचमें एक वेदिका है। उसमें श्रीजिनेन्द्रदेवका बिम्ब है। इसके अतिरिक्त लगभग १०० गजपर दूसरा जिन मन्दिर है जो खण्डेलवालोंका है। बहुत ही रम्य है। चौकमें नीमका वृक्ष है। बहुत ही ठंडा है। स्थान उत्तम है-परन्तु धर्म साधन करनेवाला कोई नहीं। यहाँ पर यदि अनुसन्धान विभाग खोला जावे तो उन्नति हो सकती है, परन्तु न तो कोई महापुरुष ऐसा है जो इस कार्यमें उत्साह दिखावे और न कोई करनेवाला है। एक दिन फिर भी यहाँ आये, प्रवचन हुआ, जनता अच्छी थी, प्रायः सवे अंग्रेजी विद्यामें पटु हैं, साथ ही धार्मिक रुचि अच्छी रखते हैं। हमारे साथ खुले भावोंसे व्यवहार किया तथा यह प्रतिज्ञा ली कि सायंकाल शास्त्र प्रवचन करेंगे।

एक दिन क्षुल्लक पूर्णसागरजी रुष्ट होकर चले गये। यहाँपर खलबली मच गई कि वर्णीजीसे रुष्ट होकर चले गये। वर्णीजीने कुछ कहा होगा ऐसा अनुमान लोगोंने लगाया। परन्तु मैंने तो कुछ कहा भी नहीं। संसारकी गति विचित्र है, जो चाहे सो आरोप करे। इतना अवश्य था कि इनके समागमसे निरन्तर क्लेश रहता था। आप आहारके बाद श्रावकोंसे केन्द्रीय समितिके नामपर प्रेरणा कर दान कराते जिसकी लम्बी चौड़ी स्कीम कुछ समझमें नहीं आती। क्षुल्लककी वृत्ति तो निःस्पृह है। उसे दान आदि कराकर उसके व्यवस्थापक बनना शोभास्पद नहीं है। वास्तवमें

इनकी प्रकृति अपनेसे मिलती नहीं। २ घण्टा बाद पं० चन्द्रमौलिजी आये तब चित्तको संतोष हुआ।

आसौज समाप्त हुआ। कार्तिक वदी १ को सागरसे सिंघई कुन्दनलालजी आये। बहुत ही स्नेह जनाया। अन्ततो गत्वा नेत्रोंसे अश्रुपात आ गये। प्राचीन स्मृति करते-करते कई घण्टा बिता दिये। आपका निरन्तर यही कहना था कि सागर चलिये। वहाँ आपको सर्व प्रकारसे शान्ति मिलेगी। मुझे उनकी स्नेह दशा देख ऐसा लगा जैसे इस व्यक्तिके साथ जन्मान्तरका स्नेह हो। मैंने उनसे यही कहा कि अब सर्व उपद्रवोंका त्याग कर आत्महितमें लगो। स्नेह ही संसार बन्धनका कारण है। हमारा और आपका जीवन भर स्नेह रहा। अब अन्तिम समय है, अतः स्नेह बन्धन तोड़ कर आत्महितकी ओर दृष्टि देना ही श्रेयस्कर है।

कार्तिक वदी ३, २००६ को लालमन्दिरमें शास्त्रप्रवचन हुआ। श्री पं० शीतलप्रसादजीका भाषण बहुत रोचक हुआ। कुछ हो, जो आनन्द वक्ताको आता है वह श्रोताओंको नहीं आता। वह तो अपनेमें तन्मय हो जाता है। उपदेश देनेकी आकाँक्षा शान्त होनेपर वक्ताको शान्ति मिलती है। शान्तिका मूल कारण कषायका अभाव है। कषायाग्निके शान्त करनेके लिये आवश्यकता इस बातकी है कि पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़ा जावे।

रोहतकसे श्री नानकचन्द्रजी आये। आपके साथ अन्य ४ प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे। आपका आग्रह था कि रोहतक चलिये, परन्तु मैंने उत्तर दिया कि विचार पूर्वकी ओर जानेका है। गिरिराज श्री सम्मेदशिखरजी पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बलवती है। इसलिये वे निराश हो गये। हमारे मनमें बार बार यही भाव आता था कि अब हमें व्यवहार मार्गमें नहीं पड़ना चाहिये। व्यवहारमें

पड़ना ही आत्मकल्याणका बाधक है। जहाँ परके साथ सम्बन्ध हुआ वहीं संसारका पोषक तत्त्व आगया, इसीका नाम आस्रव है।

एक दिन पं० महेन्द्रकुमारजी और पं० फूलचन्द्रजी बनारस-वालोंका शुभागमन हुआ। कुछ चर्चा हुई। चर्चामें पं० राजेन्द्र कुमारजी तथा स्वामी निजानन्दजी भी थे। कुछ निष्कर्ष न निकला। आगमका प्रमाण ही सह कहते हैं, किन्तु शान्ति पूर्वक वाक्य विन्यास नहीं होता। विवाद हरिजन समस्याका है। एक पक्ष तो यह कहता है कि हरिजन जैन मन्दिरमें प्रवेश नहीं कर सकता और एक कहता है कि भगवान् महावीरका यह संदेश है कि प्राणीमात्र धर्मधारणका पात्र है। मुझे इस विवादसे आनन्द नहीं आया। आज कलके मानवोंमें सहनशक्ति नहीं, तत्त्वचर्चामें अनापशनाप शब्दोंका प्रयोग करनेमे संकोच नहीं। धर्मको पैतृक सम्पत्ति मान रक्खा है तथा उसमे अन्यको प्रवेश करनेका हक्क नहीं। कुछ समझमे नहीं आता। अस्तु, लोग अपनी अपनी दृष्टिसे ही तो पदार्थको देखते हैं। मैंने विचार किया कि यद्वा तद्वा मत बोलो, वही बोलो जिससे स्वपरहित हो। यों तो पशु-पक्षी भी बोलते हैं पर उनके बोलनेसे क्या किसीका हित होता है। मनुष्यका बोल बहुत कठि-नतासे मिलता है।

यहाँ क्षुल्लक चिदानन्दजी भी थे। इन्होंने जैन शास्त्रोंको सस्ते मूल्यमें प्रकाशित करानेके लिए एक सस्ती ग्रन्थमालाका आयोजन किया और उसके द्वारा कई ग्रन्थोंका प्रकाशन भी हुआ। जनताने इस कार्यके लिये द्रव्य भी अच्छा दिया पर कार्य तो व्यवस्थासे ही स्थायी हो सकता है, भावुकतासे नहीं। मेरे मनमे रह रहकर यही विचार घर करता गया कि परसे संसर्ग करना ही पापका मूल है। जब अन्य द्रव्य स्वाधीन हैं तब परसे सम्बन्ध जोड़ना ही दुःखका बीज है। अनादिसे आत्माने इसी रोगको अपनाया और

उससे जो जो दुर्दशा इस जीवकी हुई वह किसीसे गुप्त नहीं—सबको अनुभूत है। परका वेदन ही दुर्दशाका मूल कारण है। जिन्हें इन दुर्दशाओंसे अपनेको बचाना है उन्हें उचित है कि इन पर पदार्थोंका सम्पर्क त्याग दें, एकाकी होनेका अभ्यास करें। जहाँ तक मनुष्यकी मनुष्यता पर आंच नहीं आती वहाँ तक पर पदार्थका सम्बन्ध रहे परन्तु निज न माने। मनुष्यता वह वस्तु है जो आत्माको संसार बन्धनसे मुक्त करा देती है। अमानुपता ही संसार दुःखोंकी जननी है। मनुप्य वह जो अपनेको संसारके कारणोंसे सुरक्षित रक्खे। मनुष्य वही है जो कुत्सित परिणामोंसे स्वात्मरक्षा करे। केवल गल्पवादसे आत्माकी शुद्धि नहीं। शुद्धिका कारण निर्दोप दृष्टि है। हे भगवान्! (हे आत्मन्) तुम भगवान् होकर भी क्यों पतित हो रहे हो?

एक दिन नये मन्दिरमें सतघरेकी कन्या पाठशालाका वार्षिकोत्सव था। चारों क्षुल्लक वहाँ विराजमान थे। २०० छात्राएं व महिलाएँ उपस्थित थीं। १ कन्याने बहुत जोरदार शब्दोंमे व्याख्यान दिया। सुनकर सर्व जनता प्रसन्न हुई। पूर्णसागर महाराजने २५००) जो उनके पास भारतवर्षकी स्कीमका है उसमेंसे दिया तथा उन्होंने अपील की जिससे ३०००) और भी हो गया।

अमावस्याके दिन वीर निर्वाणोत्सव था। जनसमुदाय अच्छा था, परन्तु कुछ नहीं निकला और न निकलनेकी संभावना है। बोलना बहुत और काम कुछ न करना यह आजके मानवोंकी वस्तु स्थिति है। गल्पवादसे कुछ कल्याण नहीं होता। कर्तव्यवादसे च्युत रहना जिसको इष्ट है वही गल्पवादका रसिक है। आगामी दिन वीरसेवामन्दिरकी कमेटी हुई जिसमें उसके स्थायित्व तथा दिल्लीमें आने विपय पर विचार हुआ।

दिल्लीके चातुर्मासका यह मेरा अन्तिम दिन था, इसलिये बहुत लोग आये। महासभाके मन्त्री परसादीलालजी आये। आप शान्त पुरुष हैं किन्तु आजकलकी परिस्थिति पर पूर्ण रीतिसे विचार नहीं करते। कुशल हैं और प्राचीनताके ऊपर बहुत बल देते हैं। प्राचीनता उत्तम है किन्तु उसका जो मार्मिक भाव है उसपर गम्भीर दृष्टिसे विचारना चाहिये। धर्मपर किसी जाति विशेषका अधिकार नहीं। प्रत्येक मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है। जिन्हें हम अस्पृश्य शूद्र कहते हैं वे भी पञ्च पापोंका मूल जो मिथ्याभाव उसे छोड़ कर पञ्च पापका त्याग कर सकते हैं। यदि वे चाहे तो हम लोग जैसा शुद्ध भोजन करते हैं वे भी कर सकते हैं।

हम दिल्लीमें आनन्दसे ३ माह २४ दिन रहे, सर्व प्रकारकी सुविधा रही। यहाँपर जनतामें धर्म श्रवणका अच्छा उत्साह रहा। समय-समयपर अनेक वक्ताओंका यहाँ समागम होता रहता था। दिल्ली भारतकी राजधानी होनेसे व्याख्यान सभाओंमें मनुष्य संख्या पुष्कल रहती थी। यहाँके व्याख्याता मुख्यमें थे—श्रीनिजानन्दजी क्षुल्लक, श्रीपूर्णसागरजी क्षुल्लक तथा श्रीचिदानन्दजी क्षुल्लक। मैं वृद्धावस्थाके कारण बहुत कम भाग ले पाता था। त्यागियोंमे श्रीचांदमल्लजी साहब उदयपुरका भी अच्छा प्रभाव था। पण्डितोंमें श्रीराजेन्द्रकुमारजी संघ मंत्रीका व्याख्यान अति प्रभावक होता था। दसलक्षणपर्वके ६ दिन बड़ी शान्तिसे बीते। ६ वें दिन न जाने हरिजनकी चर्चाने कहाँसे प्रवेश किया जो सर्व गुड़ मिट्टी हो गया। और मेरे मत्थे यह टीका मढ़ा गया कि वर्णीजी हरिजन प्रवेशके पक्षपाती हैं। यद्यपि मैं न तो पक्षपाती हूं और न विरोधी हूं किन्तु आत्माने यही साक्षी दी कि जो मनमे हो सो वचनोंसे कहो। यदि नहीं कह सकते तो तुमने अबतक धर्मका मर्म ही नहीं समझा। अनन्तानन्त आत्माएं हैं, परन्तु लक्षण सबके नाना नहीं,

एक ही हैं। भगवान् उमास्वामीने जीवका लक्षण उपयोग माना है। भेद अवस्था प्रयुक्त हैं, अवस्था परिवर्तनशील है। एक दिन हम वालक थे, अवस्था परिवर्तन होते-होते आज वृद्ध अवस्थाको प्राप्त हो गये " यह तो शारीरिक परिवर्तन हुआ किन्तु आत्मामें भी परिवर्तन हुआ। एक दिन ऐसा था जब दिनमें १० वार पानी और ५ वार भोजन करते भी संकोच न करते थे पर आज १ बार जल और भोजन ग्रहण करके संतोष करते हैं। कहनेका तात्पर्य है कि सामग्रीके अनुकूल प्रतिकूल मिलनेपर पदार्थोंमें परिणमन होते रहते हैं। आज जिनको हम अपवित्र और नीच सम्बोधनसे पुकारते हैं वे ही मनुष्य यदि उत्तम समागम पा जावें तो उत्तम विचारके हो सकते हैं, अन्यथा जो दशा उनकी हो रही है वह किसीसे गुप्त नहीं। आगममें गृध्र पक्षीको व्रती लिखा है। वह मृत्यु पाकर स्वर्गका कल्पवासी देव हुआ। देव ही नहीं श्रीरामचन्द्रको मृत भ्रातृका मोह दूर करनेमें निमित्त भी हुआ।

कार्तिक सुदी २ को दिनके २ बजे दिल्लीसे सहादराके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमें अत्यन्त भीड़ थी, लोगोंको विशेष अनुराग था। सहस्रों स्त्री पुरुषोंके अश्रुपात आ गया। पुलतक सर्व भीड रही बादमें क्रम-क्रमसे कम होती गई। हम लोग ५ बजे सहादरा पहुँच गये। भारत बैंकके मैनेजर श्रीराजेन्द्रप्रसादजी भी आये भद्र पुरुष हैं। मोहकी महिमा अपरम्पार है। बहुतसे मानव तो बहुत ही दुःखी हुए। चार माहके संपर्कने मनुष्योंके मनको मोहयुक्त कर दिया। इसीलिये पृथक् होते समय उन्हें दुःखका अनुभव हुआ।

दिल्लीसे हस्तिनागपुर

प्रातःकालिक क्रियाओंसे निवृत्त हो मन्दिरमें शास्त्रप्रवचनके अर्थ गये। वहाँपर दिल्लीसे ५० नर नारी आ गये। वही रागका आलाप, कोई अन्य बात नहीं थी। बहुत मनुष्योका कहना था कि आप दिल्ली लौट चलें, जो कहो सो कर देवें। पर हमको तो कुछ करवाना नहीं, भूलभुलैयामे फँसकर क्या करता? यहाँसे चलकर गजियाबाद आये। भोजनके बाद १ बजेसे ३ बजे तक सभा हुई। यहाँपर एक वर्णी शिक्षामन्दिरकी स्थापना हुई। यहाँसे २½ मील चल बेगमाबाद स्टेशनसे १ गर्लाङ्ग सड़कपर ठहर गये। यहाँपर एक शरणार्थी पंजाबी मनुष्य बड़ा भला आदमी था। भोजनादिके लिये आग्रह किया। अभी अन्य मतावलम्बियोंमें साधु पुरुषका महान् आदर है। जैनधर्म प्राणीमात्रका कल्याण करनेवाला है। जैन कहनेको तो कहते हैं कि हम जिन भगवान्के उपासक हैं, परन्तु उनके मार्गका आदर नहीं करते। यहाँसे ५ मील चल कर मुरादनगरकी धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशाला उत्तम थी, रात्रिको हम लोग तत्त्व विचार करते रहे। वास्तवमे अन्तरङ्गकी वासनाकी ओर ध्यान देना चाहिये। यदि अन्तरङ्ग वासना शुद्ध है तो सब कुछ है। अनादि कालसे हमारी वासना पर पदार्थोंमे ही निजत्वकी कल्पना कर असंख्य प्रकारके परिणामोंको करती है। वे परिणाम कोई तो रागात्माक होते हैं और कोई द्वेषरूप परिणम जाते हैं। जो रुच गये उनमे राग और जो प्रतिकूल हुए उनमें द्वेष करने लगते हैं।

मुरादनगरसे ४ मील चलकर मोदीनगर आये। यहाँ पर भोजन हुआ। यहाँसे ५ मील चलकर एक स्टेशन पर स्कूलमें ठहर गये। वहाँ स्कूलके हेडमास्टर अत्यन्त भद्र थे। बहुतसे छात्र यहाँ पर थे उनमे दो छात्र शरणार्थी थे। उनके चेहरे पर कुछ औदासीन्य था। पूछने पर कारण मालूम हुआ कि जब वे पंजाबसे आये तब उनके कुटुम्बके मनुष्य वहीं पाकिस्तानी मुसलमानोंके द्वारा कत्ल कर दिये गये। हमने एक एक कुरताकी खादी उन्हें श्री हुकमचन्द्रजी सलावा द्वारा दिला दी तथा हुकमचन्द्रजीने ५) मासिक राजकृष्ण जी द्वारा दिलाया। वे बहुत प्रसन्न हुए। यहाँसे चलकर मेरठसे २ मील पर १ सरोवर था वहीं भोजन किया। तदनन्तर २ मील चलकर मेरठ पहुँच गये। यहाँ बोर्डिंगमे निवास हुआ। अनेक नर-नारी स्वागतके लिये आये। मनुष्य धर्मका आदर करता है और धर्मका आदर होना ही चाहिये, क्योंकि वह निज वस्तु है तथा परकी निरपेक्षता ही से होता है। हम अनादिसे जो भ्रमण कर रहे हैं उसका मूल कारण यह है कि हमने आत्मीय परिणतिको नहीं जाना। वाह्य पदार्थोंके मोहमे आकर राग द्वेष सन्ततिको उपार्जन करते रहे और उसका जो फल हुआ वह प्रायः सबके अनुभवगम्य है।

आज कार्तिक सुदी ८ सं० २००६ का दिन था। प्रातःकाल मेरठके मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ। श्री हुकमचन्द्रजी सलावाने भोजन कराया। दिनभर मनुष्योंका समागम रहा, केवल गल्पवादमे दिन गया। दिल्लीसे लाला जैनेन्द्रकिशोरजीका शुभागमन हुआ। आप बहुत ही सज्जन हैं, श्री प्रेमप्रसादजीसे बातचीत हुई, बहुत ही सज्जन हैं। श्री लाला फिरोजीलालजी दिल्लीसे आये। बहुत उदार और योग्य हैं। आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। यहाँसे प्रातःकालकी क्रियाओंसे निवृत्त हो मिल मन्दिरमे स्वाध्याय किया। यहाँसे

३ मील चल कर तोपखाना आ गये, यहीं पर भोजन किया, यहाँपर मन्दिर बहुत ही सुन्दर है, पत्थरका दरवाजा बहुत मनोहर है, अन्दर भी उत्तम पत्थर लगा है। २ घण्टा यहाँपर विताये। बहुतसे मनुष्य मिलने आये। २० आदमी और महिलाएँ गुजरात प्रान्तके आये। धार्मिक मनुष्य थे, शिखरजीकी यात्राको जा रहे थे, लोग सरल प्रकृतिके थे, यू० पी० के मनुष्य चञ्चल होते हैं। तोपखानासे ३ मील चल कर एक चक्कीपर ठहर गये। सानन्द रात्रि बीती। प्रातःकाल प्रवचन हुआ, भोजनके बाद यहाँसे चल कर ४ मीलपर १ धर्मशालामे ठहर गये। यहाँसे ३ मील चल कर छोटे मुहाना आ गये। स्कूलमे ठहरे, प्रातःकाल प्रवचन हुआ, बहुत कुछ तत्त्व चर्चा हुई। कार्तिक सुदी ११ को प्रातः ९ बजे मवाना आ गये, मन्दिरमें प्रवचन हुआ, प्रकरण राम और रावणके युद्धका था। अन्यायका जो फल होता है वही हुआ। रावण मृत्युको प्राप्त हुआ, श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी विजय हुई। रावण रावण था पर आज रावणके दादा पैदा हो गये हैं। रावण तो सीताके संपर्कसे दूर रहा, केवल अपनी दुर्भावनाके ही कारण कुगतिका पात्र हुआ पर आज तो ऐसे-ऐसे मानव विद्यमान हैं जिन्होंने पर स्त्रीके चक्रमे पड़कर अपना सर्वस्व खो दिया है। यहाँ-से १ बजे चल कर ४ मीलपर एक बागमे ठहर गये। बाग १ मीलका था परन्तु ऊजड़ था, कोई प्रबन्ध नहीं। दूसरे दिन प्रातः काल श्रीहस्तिनापुर आ गया। स्थान शान्तिका रत्नाकर है परन्तु मेलाकी भीड़ भाड़के कारण उस समय शान्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी।

कार्तिक सुदी १४ सं० २००६ को उत्तर प्रान्तीय गुरुकुलका उत्सव हुआ किन्तु जब अपील हुई तब विशेष सफलता नहीं हुई। केवल सात आठ हजार रुपया हुआ। इसका मूल कारण इस प्रान्त

में जितने जैन लोक हैं सबकी प्रवृत्ति अंग्रेजी पढ़ानेकी है। आचरण भी प्रायः धर्मके अनुकूल नहीं। भोजनादिमे शिथिलता रहती है, वेपभूषा अपनी योग्यता और कुल मर्यादाके प्रतिकूल है। पूर्णिमाको प्रातःकाल मण्डपमे प्रवचन हुआ। ६ वजेके बाद कमेटीके मेम्बरोंमें कुछ वैमनस्य था वह दूर हो गया। उसके बाद मंन्दिर गये, शुद्धि करनेके वाद भोजनके लिये निकले। भोजनगृहमे निर्विघ्न प्रवेश किया पर ज्यों ही भोजन करना प्रारम्भ किया त्यों ही दूधका ग्रास लेनेके बाद उसमें तिरूला निकल आया। अन्तराय आ गया। लोगोंको विकलता हुई। आज अपराह्णकालमें श्रीजीका रथ निकला। बीस हजारके करीब भीड़ थी, बड़ी भक्तिसे रथ निकाला गया, मनुष्योंमें बहुत उमंग थी। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ, मनुष्योंका समुदाय अच्छा था। गुरुकुलको कुछ चन्दा भी हो गया। लोगोंमे उत्साहकी त्रुटि नहीं किन्तु योग्य नेताकी कमी है। श्रीमास्टर उग्रसेनजी इसके कार्य करनेमें अग्रसर हुए और संभव है इनके प्रयाससे गुरुकुलकी पूर्ति हो जावे।

गुरुकुलका नवीन भवन बनकर तैयार था अतः मगसिर बदी २ को ६ वजे उसका उद्घाटन हुआ। मास्टर उग्रसेनजीने अति मार्मिक व्याख्यान दिया। लोगोंके हृदयमें अति ऊत्साह हुआ, हमारे चित्तमे भी संस्थाके उत्कर्षके अर्थ बहुत उद्वेग हुआ परन्तु हम पराधीन थे, क्योंकि हमने यह निश्चित विचार कर लिया था कि एक वार श्रीपार्श्वप्रभुके निर्वाण क्षेत्रके दर्शन अवश्य करना किसीके चक्रमें न आना। चाहे २ मील ही क्यों न चला जावे। कल्याणका मार्ग निरीह वृत्ति है। आराधना करो परन्तु फलकी इच्छा न करो। धीरे-धीरे जब समुदाय अपने-अपने घर चला गया अतः वातावरण शान्त हो गया। मगासिर वदी ३ को प्रातःकाल सानन्द स्वाध्याय हुआ। भोजन करनेके उपरान्त १ घण्टा आराम

कर सामायिक किया तदनन्तर ८½ बजे चलकर ३ मीलके बाद गणेशपुरमें आ गये।

इटावा की ओर

सामायिक आदि करके परस्पर कुछ चर्चा हुई। तदनन्तर सो गये। १२½ बजे निद्रा भङ्ग हो गई ½ घण्टा कुछ विचार किया पश्चात् कठिनतासे निद्रा आयी। उस समय यह विचार मनमें आया कि जिनके पास वस्त्र नहीं ऐसे गरीब लोग कैसे रात्रि व्यतीत करते होंगे? तब यही मनमें आया कि उनकी आशा वश हो जाती है। आशा ही तो समस्त दुःखोंका कारण है जिसने आशापर विजय पा ली उसने जगत् को जीत लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल गणेशपुरसे चलकर ८½ बजे मवाना आ गये। मन्दिरमें स्वाध्यायके बाद भोजन किया। २ बजेसे संस्कृत कालेजमें प्रिन्सपल साहबके आग्रहसे गये। बहुत ही योग्य पुरुष है ½ घंटा आपका व्याख्यान हुआ। आध्यात्मिक शिक्षाके बिना लौकिक शिक्षा कुछ अर्थकरी नहीं। ½ घण्टा-मैंने भी इसी विषयपर कुछ कहा। पश्चात् यहाँसे चलकर ५ बजे छोटे मुहाना आ गये और स्कूलमें ठहर गये। दूसरे दिन छोटे मुहानेसे ३ मील चल कर एक गाँवमें ठहर गये। दिल्लीवाले छुट्टनलाल मैदावालोंके यहाँ भोजन किया। बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं यहाँसे ५ मील चल कर चक्की पर ठहर गये और वहाँ रात्रिभर रहे रात्रि सानन्द बीती। मनमें भाव आया कि 'अन्तरङ्ग की निर्मलताके बिना बाह्य निर्मलता बकवेषके

समान है। तोता, राम राम रटता है परन्तु उसका तात्पर्य नहीं समझता अतः जो कुछ रटो उसको समझो। समझोके मायने तदनुसार प्रवृत्ति करो'। यहाँसे ३ मील चल कर तोपखाना आ गये। यहीं पर भोजन किया। मध्यान्होंपरान्त शास्त्र प्रवचन किया लोग शान्ति पूर्वक सुनते रहे।

सर्व मनुष्य सुख चाहते हैं परन्तु सुख प्राप्ति दुर्लभ है इसका मूल कारण उपादान शक्तिका विकाश नहीं। वक्ताओंको यह अभिमान है कि हम श्रोताओंको समझा कर सुमार्ग पर ला सकते हैं और श्रोताओंकी यह धारणा है कि हमारा कल्याण वक्ताके आधीन है पर बात ऐसी नहीं है।

तोपखानामे १५ घर जैनियोंके हैं प्रायः अंग्रेजी विद्याके पण्डित हैं स्वाध्यायमे रुचि नहीं। परन्तु यह सभी चाहते हैं कि येन केन उपायसे संसार बन्धनसे छूटें। इसके अर्थ महान् प्रयास भी करते हैं। मर्यादासे अधिक त्यागियों और पण्डितों की शुश्रुषा करते हैं यही समझते हैं कि त्यागी और पण्डितोंके पास धर्म की दुकान है उनका जितना आदर सत्कार करेंगे उतना ही हमको धर्म का लाभ होगा। किन्तु होगा क्या सो कौन कहे? कहावत तो यह याद आती है कि 'फुट्टी देवी ऊँट पुजारी'।

दूसरे दिन मिलमे प्रवचन किया पश्चात् वहाँसे चलकर वोडिंगमें आये सामायिक की। १२॥ बजे श्री पद्मपुराणका स्वाध्याय किया प्रकरण था श्री रामचन्द्रजीकी विजय हुई। यथार्थमें बात यही है—न्याय मार्गमें जिनकी प्रवृत्ति होती है उनकी अन्तमे विजय होती है। अन्याय मार्गमें जो प्रवृत्त होते हैं वे ही न्याय मार्गमें चलनेवालोंसे पराभव प्राप्त करते हैं। अतः मनुष्योंको चाहिये कि न्याय मार्गसे चलें। संसार दुःख मय है इसका कारण आत्मा पर पदार्थको निज मानकर नाना विकल्प करता है। अगले दिन नगरमें

प्रवचन हुआ वहीं पर आहार हुआ पश्चात् बोर्डिंगमें आ गये। यहाँ पर निरन्तर भीड़ रहती है स्वाध्याय भी नहीं हो पाता केवल गल्पवादमें समय जाता है। वस्तुतः मेरे हृदयकी दुर्बलता ही भीड़ एकत्रो करती है। हृदयकी दुर्बलता कार्यकी बाधक है मोहके कारण यह दुर्बलता है इसका जीतना महान् कठिन है।

मगसिर वदी १० स० २००६ को यहाँसे १ बजे चलकर ४ मीलकी दूरीपर एक बागमे ठहर गये। यह बाग पहले बहुत ही सुन्दर रहा होगा पर अब तो नष्ट भ्रष्ट हो गया है जिस मकानमें ठहरे वह बहुतही अस्वच्छ था—मकड़ी और मच्छरोंका घर था। येन केन प्रकारेण यहाँ रात्रिभर सोये प्रातःकाल ४ मील चल कर फफूँदा आ गये। फफूँदा कसबा अच्छा है यहाँ पर गूजर लोगों की बस्ती है, सब सम्पन्न हैं, इन्होंने बहुत सत्कार किया, हमने समाधि शतकका प्रवचन किया परन्तु जो सुख होना चाहिये वह नहीं हुआ। इसका मूल कारण आत्मीक रस नहीं। यहाँसे २ बजे चल कर खरखौंदाके स्कूलमें ठहर गये। स्थान अच्छा था रात्रि को स्वाध्याय अच्छा हुआ। स्वाध्यायसे आत्मकल्याण होता है, कल्याणका अर्थ है पर पदार्थोंसे ममता त्याग। ममता का कारण अहम्बुद्धि। यहाँसे ४ मील चल कर कौनी ग्राममें एक राजपूतके बंगलेमे ठहर गये। बंगला उत्तम था, एक घण्टा स्वाध्याय किया सुनने वाले व्यग्र थे। व्यग्रताका कारण चञ्चलता है और इस ओर रुचि भी नहीं। स्वाध्यायके प्रति रुचि नहीं, रुचि न होनेमे मूल कारण कभी इस ओर लक्ष्य नहीं। निरन्तर गृहस्थोंको अपने बालकादिके पोषणके अर्थ परिग्रह सञ्चय करनेमे समयका उपयोग करना पड़ता है इस मार्गमें चलनेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। प्रातःकाल ४½ बजे से ५½ तक मोक्षमार्गप्रकाशका स्वाध्याय किया उसमे प्रकरण था कि मोहके

उदयसे यह जीव, पदार्थकी अन्य रूप श्रद्धा करता है इसीसे दुखी होता है। जैसे कोई मनुष्य रज्जुमें सर्पभ्रान्तिसे भयभीत होता है। यह भ्रम दूर हो जावे तो भय नहीं होवे। इसी प्रकार पर पदार्थोंमें निजत्व बुद्धि त्याग देवे तो सुखी हो जावे। ९ बजे मन्दिर गये वहाँ पद्मपुराणका स्वाध्याय किया उसमें चर्चा थी कि बालीकी दीक्षाका कारण रावण हुआ। यथार्थमें कारण तो उनकी आन्तरिक विरक्तता थी। रावण उसमें निमित्त हुआ। बाली मोक्षको प्राप्त हुए। आज एक मास्टरके घर भोजन हुआ। श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी दिल्लीवाले आये। शामको श्री पतासीबाईजी भी आ गईं। रात्रिको चर्चा हुई श्री जैनेद्र किशोरका स्नेह बहुत है उनका भाई भी मुरादाबादसे आया ८००) मासिक पाता है उसकी धर्मपत्नी भी साथ थी। सबका अन्तरङ्ग यह था कि आप दिल्ली रह जाओ कुटिया हम बनवा देंगे। आप निर्द्वन्द्व धर्म साधन करिये। यहाँसे चलकर हापुड़ निवास हुआ तदनन्तर वहाँसे ४ मील चल कर हाफिजनगर आ गये। यहाँ तक दो आदमी हापुड़से आये, लोगोंमें धर्म प्रेम अच्छा है रामचन्द्र बाबू यहाँ पर बहुत योग्य हैं आपकी प्रवृत्ति भी अच्छी है। पण्डित परमानन्दजी दिल्लीसे यहाँ आये १ बजे कुछ चर्चा हुई चर्चाका सार यही था कि प्राचीन साहित्यका प्रचार होना चाहिए। बिना प्राचीन साहित्यके जैन संस्कृतिकी रक्षा होना कठिन है मेरा ध्यान यह है कि प्राचीन साहित्यके प्रचारके साथ-साथ उसके ज्ञाता भी तैयार होते रहना चाहिये अन्यथा अकेला प्राचीन साहित्य क्या कर लेगा ? आज लोगोंकी दृष्टि इंग्लिश विद्याके अध्ययनकी ओर ही बलवती होती जा रही है क्योंकि वह अर्थकरी है तथा संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओंके अध्ययनसे विमुख हो रही है क्योंकि उससे ऐहिक अर्थकी प्राप्ति नहीं होती। यह समाजके हितके लिये अच्छी बात नहीं दिखती।

यहाँसे ५ मील चलकर गुलावटी आये ग्रामके बाहर स्थानमें ठहर गये, स्थान मनोज्ञ था, पानी यहाँका अच्छा था, प्रातःकाल स्वाध्याय अच्छा हुआ पश्चात् गर्मीमें कुछ नहीं हुआ। यह विचार अमलमें लानेकी महती आवश्यकता है—जिनके विचारमें मलिनता है उनका सर्व व्यापार लाभप्रद नहीं। सर्व चेष्टा संसार बन्धनसे मुक्त होनेके लिये है परन्तु वर्तमानमें मनुष्योंके व्यापार संसारमें फँसनेके लिये है। व्यापारका प्रयोजन पञ्चेन्द्रियोंके विषयसे है। यहाँसे ३ मील चल कर एक शिवालयमें ठहर गये स्थान अत्यन्त मनोज्ञ है। कूपका जल मिष्ट है आज भोजन करनेकी इच्छा नहीं थी फिर भी गये परन्तु अन्तराय हो गया। उदर निर्मल रहा। इच्छाको स्वाधीन रखना ही कल्याण मार्ग है। यहाँका जो मैनेजर है वह जाट है प्रकृत्या भद्र और उदार मनुष्य है। यहाँ पर बाहरसे आनेवालोंको पानी भी पीनेके लिये मिलता है बन्दरोंका निवास भी यहाँ पुष्कल है। कोई-कोई दयालु उन्हे भी भोजन दे देते हैं। यहाँसे ५ मील चल कर बुलन्दशहर आ गये। एक वैश्यके मकानमें ठहर गये। इसने सट्टामें सर्व धन खो दिया। हमको बहुत आदरसे ठहराया, पुष्पमाला चढ़ाई तथा १५ मिनट तक पैरों पर लोटा रहा। उसकी यह श्रद्धा थी कि इनके आशीर्वादसे हमारा कल्याण हो जावेगा। लोगोंकी धर्ममें श्रद्धा है परन्तु धर्मका स्वरूप समझनेकी चेष्टा नहीं करते केवल पराधीन होकर कल्याण चाहते हैं। कल्याणका अस्तित्व आत्मामें निहित है किन्तु जब हमारी दृष्टि उस ओर जावे तब तो काम बने। दो दिन बुलन्दशहरमें रहे सानन्द समय बीता। समयके प्रभावसे मनुष्योंमें धर्मकी रुचिका कुछ ह्रास हो रहा है पर स्त्री गण धर्मकी इच्छा रखता है फिर भी मनुष्योमें इतनी शक्ति और दया नहीं जो उनको सुमार्गपर लानेकी चेष्टा करें। यथार्थ बात तो यह है कि स्वयं सन्मार्गपर नहीं परको क्या सन्मार्ग

पर चलावेंगे ? जो स्वयं अपनेको कर्म कलंकसे रक्षित नहीं कर सकते वह परकी रक्षा क्या करेंगे ?

यहाँसे चलकर मामन आये एक राजपूतके घर ठहरे। रात्रिको यह विचार उठे कि 'किसीसे कटुक वचन मत बोलो, सर्वदा सुन्दर हितकारी परिमित वचन बोलनेका प्रयास करो अन्यथा मौनसे रहो। समागम त्यागो, भोजनके समय अन्यको मत ले जाओ। भोजनमें लिप्साका त्याग करो। पराधीन भोजनमें सन्तोष रखना ही सुखका कारण है। यदि भिक्षा भोजन अङ्गीकृत किया है तो उसमें मनोवांछितकी इच्छा हास्यकरी है। 'भैक्ष्यममृतम्' ऐसा आचार्योंका मत है। जो मानव गृहस्थीमें रत हैं उनकी ही लिप्सा शान्त नहीं होती तब अन्यकी कथा ही क्या है? यहाँ दिल्लीसे जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये। राजकृष्णजी, उनके भाई, पं० राजेन्द्रकुमारजी, लाला मक्खनलालजी, पं० परमानन्दजी, श्रीमान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार, लाला उलफतरायजी तथा श्रीसरदारीमल्लकीका बालक वा उनकी लड़की सूरजबाई आदि अनेक लोग आये। पं० खुशालचन्द्रजी एम. ए. साहित्याचार्य भी पधारे सबका आग्रह यही था कि दिल्ली चलो पर मैं तो गिरिराज जानेका निश्चय कर चुका था अत दिल्ली जानेके लिये तैयार नहीं हुआ। सब लोग निराश होकर लौट गये।

यहाँसे चल कर ४ मील बाद मरिपुर आ गये। यहाँपर कोरीका एक बालक ठण्डमें नगा था उसे मैंने मेरे पास जो ३ गज कपडा था वह दे दिया यह देख लाला खचेडूमल तथा मंगलसेनजी ने भी उसे कपडा दिया। गरीबका काम बन गया यह देख मुझे हर्ष हुआ। दया बड़ी वस्तु है, दयासे ही संसारकी स्थिति योग्य रहती है। जहाँ निर्दयता है वहाँ परस्परमें बहुत कलह रहती है। इस समय संसारमें जो कलह हो रही है वह इसी दयाके अभावमें हो रही है।

वर्तमानमें मनुष्य इतने स्वार्थी हो गये हैं कि एक दूसरेकी दया नहीं करते। यहाँसे ४ मील चल कर नगलीकी धर्मशालामें ठहर गये और वहाँसे प्रातः ५ मील चल कर १ धर्मशालामें विश्राम किया। यहीं भोजन हुआ। यहाँपर सेठ शान्तिप्रसादजीकी लड़की मिलने आई साथमें उसकी फूफी व भावज भी थी। मुझे लगा कि 'सर्व मनुष्य धर्मके पिपासु हैं परन्तु धर्मका मर्म बतानेवाले विरलता-को प्राप्त हो गये। अपने अन्तरङ्गमें यद्वा तद्वा जो समझ रक्खा है वही लोगोंको सुना देते हैं। अभिप्राय स्वात्मप्रशंसाका है। लोग यह समझते हैं कि हमारे सदृश अन्य नहीं। धर्मके ठेकेदार बनते हैं पर धर्म तो मोह-क्षोभसे रहित आत्माकी परिणतिका नाम है। उसपर दृष्टि नहीं।

दूसरे दिन प्रात ३ मील चल कर गवाना आ गये। यहीं पर भोजन किया पश्चात् ५ मील चलकर भरतरीकी धर्मशालामें ठहर गये। धर्मलाशामें ही शिवालय है यहाँसे अलीगढ़ ८ मील है। श्री पं० चाँदमलजी यहाँसे चले गये सेठ भौंरीलालजी सरियावाले खुरजासे साथ थे। यहाँ गयासे १ मनुष्य रामेश्वर जैनी तथा १ वर्तन मलनेवाला भी आ गया। इस धर्मशालामें १ साधु था वह भला आदमी था। यहाँसे ५ मील चलकर अलीगढ़से ३ मील इसी ओर आगरावालों के मिलके सामने १ छोटी-सी धर्मशाला थी उसमें ठहर गये। १० बजे भोजनको गये परन्तु २ ग्रासके बाद ही अन्त-राय हो गया। अन्तरायका होना लाभदायक है जो दोष हैं वे अपगत हो जाते हैं, क्षुधा परिषहके सहनेका अवसर आता है, अवमौदर्य तपका अवसर स्वयमेव हो जाता है। आत्मीय परिणामों-का परिचय सहज हो जाता है।'

यहाँसे ३ मील चलकर अलीगढ़ आ गये। यहाँ श्री सेठ बैजनाथजी सरावगी कलकत्तावाले मिल गये। आपका अभिप्राय

निरन्तर जैन जातिके उत्कर्षमे मग्न रहता है तथा यथाशक्ति दान भी करते रहते हैं। आज कल आपका उद्योग बनारसमे ऐसा छात्रावास बनानेका है जिसमें २०० छात्र अध्ययन करें। तथा एक महान् मन्दिर भी बने, इस कार्यके लिए सर सेठ हुकुमचन्द्रजी इन्दौरवालोंने अस्सी हजारका विपुल दान दिया है। यहाँसे खिरनीसहाय गया। यहाँ दोपहर बाद श्री क्षुल्लक चिदानन्दजीका प्रवचन हुआ। मैं १ बागमे चला गया वहीं ४ बजे तक स्वाध्याय किया पश्चात् यहीं आ गया। एक दिन यहाँ ग्रामके बाहर सड़क पर मन्दिर है उसमे गये। श्री बाबा चिदानन्दजीने अष्टमूलगुणपर व्याख्यान दिया पश्चात् मैंने भी ½ घंटा कुछ कहा। परमार्थसे क्या कहा जावे ? क्योंकि जो वस्तु अनिर्वचनीय है उसे वचनोंसे व्यक्त करना एक तरहकी अनुचित प्रणाली है, परन्तु बिना वचनके उसके प्रकाश करनेका मार्ग नहीं। यह सर्वसाधारणको विदित है कि ज्ञान ज्ञेयमें नहीं आता, फिर भी उसे प्रकाशित करनेकी चेष्टा मनुष्य करते ही हैं।

पौष वदी १ सं० २००६ को यहाँसे एटाके लिए प्रस्थान किया। ६ मील चलकर चक्की पर ठहर गये। सामायिक करनेके बाद चक्कीका स्वामी आ गया और अपनी व्यथा सुनाने लगा—सुनकर यही निश्चय हुआ कि संसारमें सर्व दुःखके पात्र हैं। साराश यह है कि जो संसारमें सुख चाहते हैं वे पर पदार्थोंसे मूर्च्छा त्यागें। मूर्च्छा त्याग बिना कल्याण नहीं। दूसरे दिन प्रातःकाल ७ बजे चलकर ६ बजे गङ्गा नहर पर आ गये। यहाँ कूपका पानी बहुत स्वादिष्ट था। भोजनोपरान्त कुछ लेट गये। स्थान अतिरम्य था। यहाँसे १२ मील शासनी ठीक दक्षिण दिशामें है। यहाँ पर एक ग्राम है। जिसका नाम पहाड़ी है। वहाँसे ८ औरतें आयीं और महान् आग्रह करने लगीं कि आज हमारे ग्राममें निवास करो।

हमने बहुत समझाया तब कहीं उन्हें संतोष हुआ। उन्होंने रविवार और एकादशीका ब्रह्मचर्य व्रत लिया। उन औरतोंमें एक औरत गरीब थी, उसे एक थान दुसूतीका जो संघके लोगोंको अलीगढ़में एक श्वेताम्बर भाईने दिया था दिलवा दिया। बड़े आग्रहसे उसने लिया। यहाँसे चलकर अकराबादके कुँवर साहबके बागमें ठहर गये। दूसरे दिन ४ मील चलकर गोपीबाजारके स्कूलमें ठहर गये। यहाँ पर छात्रोंकी परीक्षा ली। ५) पं० भँवरीलालजी सरियावालोंने छात्रोंको पारितोषिक दिया। सामायिकके बाद ४ मील चलकर सिकन्दराराऊ आ गये। यहाँ २ घर जैनके हैं।

सिकन्दराराऊसे ४ मील चल कर रतवानपुर आ गये। ग्रामवाले बहुत मनुष्य आये, सर्व साधारण परिस्थितिके थे किन्तु सज्जन थे। यहाँसे १ बजे चल कर भदरवासके ग्राम पंचायत भवनमें ठहर गये। गाँवके अनेक लोग मिलने आये। भदरवाससे ४ मील चल कर पिलुआ आ गये। यहाँ पर ३ घर पद्मावतीपुर वालोंके हैं १ मन्दिर है जो सामान्यतया उत्तम है। प्रेमसे भोजन कराया। दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी आये। इनका अनुराग विशेष है।

पौष बदी ७ सं० २००६ को एटा आ गये। यहाँ पर २०० घर पद्मावतीपुरवालोके हैं, धर्म वत्सल हैं। यहाँ पं० पन्नालालजी मथुरा संघसे आये प्रातःकाल मन्दिरमें प्रवचन हुआ। सायंकाल पार्कमें आम सभा हुई। सभामें सभ्य पुरुष आये ? पं० पन्नालालजी मथुराका व्याख्यान हुआ, मैंने भी कुछ कहा। यहाँ रात्रिको सिविल सर्जन सपत्नीक आये मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। आपने मंगलवारको ब्रह्मचर्य व्रत लिया। एक दिन बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्योंके चित्तमें कुछ प्रभाव पड़ा। यहाँ पर एक कायस्थ रहते हैं

उन्होंने सबको अच्छी तरह फटकारा फलस्वरूप पाठशाला चालू करनेके लिये ६०००) ध्रौव्यफण्ड तथा ५०) मासिकका चन्दा हो गया। लोगोंमें परस्पर सौमनस्य नहीं और अन्तरङ्गसे विद्यामें रुचि नहीं।

दूसरे दिन भोजनके पश्चात् सामायिक क्रिया और १ बजे चल कर ६½ मील छिछैनाके बंगलामें ठहर गये। यहाँ तक एटासे २५ आदमी आये पश्चात् लौट गये कोई प्रामाणिक बात नहीं हुई। यहाँसे चल कर मलावन तथा टटऊ कसबामें ठहरते हुए पौष वदी १२ को कुरावली आ गये। यहाँ पर २५ घर जैनियोंके हैं। यहाँ पर जो पण्डित हैं वे उपादानको ही मुख्य मानते हैं निमित्त हाजिर हो जाता है। हाजिर शब्दका अर्थ क्या? शून्य। अस्तु, कहाँ तक कहा जावे. विवादके सिवाय कुछ नहीं। आजकल ही क्या प्रायः सर्व कालमें हठवादका उत्तर यथार्थ होना कठिन है। सब यह चाहते हैं कि यदि हमारी बात गई तो कुछ भी न रहा अतः जैसे बने तैसे अपनी हटकी रक्षा करना चाहिये तत्त्व कहीं जावे। यदि मनुष्योंमें हठ न होती तो ३६३ पाखण्ड मत न चलते। आत्माके अभिप्राय असंख्यात हैं अतः उतने विकल्प मतोंके हो सकते हैं संग्रहसे ३६३ बतला दिये हैं। तात्त्विक दृष्टि जब आती है तब सर्व पक्षपात विलय जाते हैं।

यहाँ पर जसवन्तनगरवाले सुदर्शन सेठ भी आये आप बहुत सज्जन हैं आपके आग्रहसे ग्रन्टरोड़का मार्ग बदल कर इटावा की ओर चल दिये। कुरावलीसे ६½ मील चल कर हरिदेवके नगलेमें ठहर गये। यहाँ पर पलालका प्रबन्ध अच्छा रहा। देहातमें आदमी सरल परिणामोंके होते हैं। बोली सादी होती है परन्तु अभिप्राय निर्मल होते हैं नगलासे ७ मील चल कर मैनपुरी आ गये। धर्मशालामें ठहर गये स्थान मनोज्ञ है परन्तु जो शान्ति

चाहिये वह नहीं मिलती क्योंकि मनुष्योंका संसर्ग दूर नहीं होता। दोपहर बाद सभा हुई पर हमसे बोला नहीं गया। सरदीका प्रकोप था अतः गला बैठ गया। मनुष्य केवल निमित्त उपादानकी चर्चामें अपना काल बिताते हैं। पढ़े लिखे हैं नहीं, परिभाषा जानते नहीं, केवल अनाप सनाप कह कर समय खो देते हैं। एक दिन यहाँके कटरा बाजारके मन्दिरमें दर्शनार्थ गये। बहुत विशाल मन्दिर है इस तरहका मन्दिर हमने नहीं देखा। संस्कृत ग्रन्थोंका भण्डार भी विपुल है उसमें गोम्मटसार, मूलाचार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, यशस्तिलकचम्पू आदि बड़े बड़े ग्रन्थ हैं। २०० के लगभग सब होंगे। हमने अवकाशाभावसे ग्रन्थ नहीं देखे। शास्त्रमें समागम अच्छा नहीं। यहाँ बनारससे श्वेताम्बर साधु श्री कान्तिविजयजी आये बहुत ही सज्जन-प्रकृतिके थे, मन्दिरोंके दर्शन किये व साम्यभावसे वार्तालाप किया। यहाँसे १ बजे करहलको चल दिये और २३ मील चल कर अंढसीकी एक धर्मशालामें ठहर गये। वहाँसे १-२ स्थानों पर ठहरते हुए करहल पहुँच गये। यहाँ लमेचू जैनियोंके २०० घर हैं, ४ मन्दिर और ७ चैत्यालय हैं, जैनियोंके घर सम्पन्न हैं, १ हाई स्कूल तथा १ औषधालय भी। ऐसे स्थानों पर त्यागी वर्गको रहना चाहिये, बहुत कुछ उपकार हो सकता है। प्राचीन ग्रन्थ भण्डार भी है। लोगोंने स्वागतका बहुत आडम्बर किया। वास्तवमें आडम्बरके सामने धर्मकी प्रभावना होती नहीं। जैनधर्मका जो सिद्धान्त था उसे गृहस्थोंने लुप्त कर दिया, त्यागी वर्ग भी अपने कर्तव्यसे च्युत है। पठन पाठन करनेका अवसर नहीं। केवल गल्पवाद रह गया है सो उससे क्या होनेवाला है? लोक प्रशंसाके अर्थ ही मनुष्यों की चेष्टाएँ रहती हैं। सार तो निवृत्तिमार्गमें है सो बनती नहीं। गल्पवादसे कर्तव्यवाद अच्छा होता है। जहाँ तक बने धर्मके अर्थ उपयोग निर्मल रखना अच्छा है।

पौष सुदी ५ सं २००६ को जसवन्तनगर आ गये यहाँ पर जनताने मनःप्रसार कर स्वागत किया। वाहरसे भी वहुतसे मनुष्य आये थे। स्त्री समाजकी संख्या भी प्रचुर थी। स्त्री समाजमें पुरुष समाजकी अपेक्षा धर्मकी आकांक्षा वहुत है परन्तु वक्ता महोदय तदनुकूल व्याख्यान नहीं देते। मेरी समझसे व्याख्यान पात्रके अनुकूल होना चाहिये। भोजनका पाक उदराग्निके अनुकूल होता है। यदि उदराग्निके अनुकूल भोजन न मिले तो उसकी सार्थकता नहीं होती। पौष सुदी ६ सं० २००६ को वड़ा दिन था। स्कूलोंका अवकाश होनेसे वच्चोंके हृदयोंमें उत्साह था। मेरे मनमें विचार आया कि जिस वस्तुका पतन होता है एक दिन वह वृद्धिको प्राप्त होती है। दिनका ह्रास जितना होना था हो गया अव वृद्धिका अवसर आ गया। यहाँ वनारससे पं० कैलाशचन्द्रजी व खुशालचन्द्रजी आये। पण्डित कैलाशचन्द्रजीने शुद्धाचरण पर आध घंटा अच्छा व्याख्यान दिया। आज वड़े वेगमें ज्वर आ गया, ८ वजे तक वड़ी वेचैनी रही उसीमें नींद आ गई। एक वार खुली अन्तमें कुछ शान्ति आई परन्तु पैरोंमें वातकी वहुत वेदना रही। दोनों पैर सूज गये। उपचार जिसके मनमें आता है सो करता है। मेरा तो यह दृढ़तम विश्वास है कि जिसके वहुत सहायक होते हैं उसे कभी साता नहीं मिल सकती। अनेकोंके साथ सम्वध होना यह ही महासकट है। जिसके अनेक सम्वन्ध होंगे उसका उपयोग निरन्तर झंझटोंमें उलझा रहेगा। मनुष्य वही है जो परको सवसे हेय समझे। हेय ही न, समझे उनमें न राग करे न द्वेष। सवसे वडा दोप यदि हममें है तो यह है कि हम सवको खुश करना चाहते हैं और इसका मूल कारण सव हमको अच्छी दृष्टिसे देखें। अर्थात् सव यह कहें देखो कैसा शुद्ध आदमी है। इस लोकैपणाने ही हमें पतित कर रक्खा है। जिस दिन इस लोकैपणाको त्याग देंगे उसी

दिन सुमार्ग मिल जायगा। सुमार्ग अन्यत्र नहीं, जिस दिन राग कलंकका प्रक्षालन हो जायेगा उसी दिन आनन्दकी भेरी वजने लगेगी।

आत्माका स्वरूप ज्ञान दर्शन है अर्थात् देखना जानना। जब देखने जाननेमे विकार होता है तव पर पदार्थोंमे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है। राद्वेपका उदय होने पर यह जीव किसीमे इष्ट और किसीमें अनिष्ट कल्पना करने लगता है। पश्चात् इष्टकी रक्षाका और अनिष्टके विनाशका सतत प्रयत्न करता है। यही इस जीवके संसार भ्रमणका कारण है।

प्रात काल मोक्षमार्गप्रकाशकका स्वाध्याय किया। श्रीमान् पं० टोडरमल्लजी एक महान् पुरुष हो गये हैं, उन्होंने गोम्मटसारादि अनेक ग्रन्थोंकी इतनी सुन्दर व्याख्या की है कि अल्पज्ञानी भी उनके मर्मका वेत्ता हो सकता है। इससे भी महोपकार उन्होंने मोक्षमार्गप्रकाश ग्रन्थको सरल भापामे रचकर किया है। उसमे उन्होंने चारों अनुयोगोंकी शैलीको ऐसी निर्मल पद्धतिसे दर्शाया है कि अल्पज्ञानी उन अनुयोगोंके पारंगत विद्वान् हो सकते हैं। तथा भारतमें जो अनेक दर्शन हैं उनकी प्रणालीका भी दिग्दर्शन कराया है। इस ग्रन्थका जो गम्भीर दृष्टिसे स्वध्याय करेगा वह नियमसे सम्यग्दर्शनका पात्र होगा। पैरोंकी वेदनाका बहुत वेग बढ़ गया। जितना जितना उपचार होता है उतना उतना वेग बढ़ता है। यद्यपि वेदना बहुत तीव्र होती थी, परन्तु असन्तोप कभी नहीं आया। फिर वेदना होती ही क्यों है? इसका पता नहीं चलता। इतना अवश्य है कि असाताके तीव्र उदयमें ऐसा समागम स्वयमेव जुड़ जाता है। जिससे मोही जीव अनेक प्रकारकी कल्पना कर दुःख भोगनेका कर्त्ता वनता है। अस्तु, यहाँके लोग वैय्यावृत्यमें निरन्तर तत्पर थे। पैरोकी वेदना ज्यों की त्यों थी और ज्वर भी यदा कदा आ ही

जाता था। इसलिए लोग पाटे पर बैठाकर इटावा ले आये। यहाँ गाड़ीपुराकी धर्मशालामें ठहरे। स्थान अच्छा है। मन्दिर भी इसीमें है। एक कूप भी। यहाँ आने पर असाताका उदय धीरे धीरे कम हुआ तथा उपचार भी अनुकूल हुआ इसलिए आरोग्य लाभ हो गया।

इटावा

आठ दश दिन बड़ी व्यग्रतामें बीते। प्रवचन आदि बन्द था केवल आत्मशान्तिके अर्थ दैनंदिनीमें जब कभी दो चार वाक्य लिख लेता था। जैसे—

आत्मपरिणतिको कलुषित होनेसे बचाओ, परकी सहायतासे किसी भी कार्यकी सिद्धि न होगी और न अकार्यकी सिद्धि होगी। जैसे शुद्धोपयोग निजत्वका साधक है वैसे ही रागद्वेष संसारके साधक हैं। मेरा न कोइ शत्रु है और न मित्र है। मैं स्वकीय परिणति द्वारा स्वयं ही अपना शत्रु और मित्र हो जाता हूँ।

'सबसे क्षमा मांगनेकी अपेक्षा अन्तरङ्ग क्रोधपर विजय प्राप्त करो। ऐसा वचन मत बोलो कि जिससे किसीको अन्तरङ्ग कष्ट पहुँचे। इसका तात्पर्य यह है कि अपने हृदयमे परको कष्ट पहुँचे ऐसा अभिप्राय न हो। वचनकी मधुरता और कटुकतासे इसका यथार्थ तत्त्व अनुमित नहीं होता।'

'लोक वञ्चनाके चक्रमें पड़े मानव उन शब्दोंका व्यवहार करते हैं कि जिनसे लोग समझें यह बड़ा विरक्त है परन्तु उनमें विरक्तता

का अंश भी नहीं। यदि विरक्तताका अंश होता तो स्वप्रतिष्ठाके भाव ही न होते।

'संसारमें सुखका उपाय निराकुल परिणति है। निराकुल परिणतिका मूल कारण अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय बुद्धिका त्याग है। उसके होते ही रागद्वेष स्वयमेव पलायमान हो जाते हैं। सबसे मुख्य पौरुष यह है कि अभिप्रायमें साधुता आ जाये। जब तक परको निज मानता है तब तक असाधुता नहीं जा सकती। जहाँ असाधुता है वहाँ राग द्वेषकी सन्तति निरन्तर स्वकीय अस्तित्व स्थापित करती है।'

'सबको प्रसन्न करनेकी चेष्टा अग्निमे कमल उत्पन्न करनेकी चेष्टा है। अपनी परिणति स्वच्छ रक्खो, संकोच करना अच्छा नहीं। संकोच वहीं होता है जहाँ परके रुष्ट होनेका भय रहता है परन्तु विराग दशामे परके तुष्ट या रुष्ट होनेका प्रयोजन ही क्या है ?'

'गुरुदेवसे यह प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! अब तो सुमार्ग पर लगाओ, आपकी उपासना करके भी यदि सुमार्ग पर न आये तो कब अवसर सुमार्ग पर आनेका आवेगा? गुरुदेवने उत्तर दिया कि अभी तुमने मेरी उपासना की ही कहाँ है? केवल गल्पवादमें समय खोया है। हम तो निमित्त हैं, तुम्हे उपादान पर दृष्टि पात करना चाहिये। गुरुदेवका अर्थ आत्माकी शुद्ध परिणति है।

'किसीका सहारा लेना उत्तम नहीं, सहारा निजका ही कल्याण करनेवाला है। पञ्चास्तिकायमें श्री कुन्दकुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है कि हे आत्मन्! यदि तू संसार बन्धनसे छूटना चाहता है तो जिनेन्द्रकी भक्तिका भी त्याग कर', क्योंकि वह भी चन्दन नगसंगत दहन की भाँति दुःखका ही कारण है'।

'निवृत्ति ही कल्याणका मार्ग है अन्ततो गत्वा यही शरण है पर पदार्थका सम्बन्ध छोडना ही शान्तिका मार्ग है। शान्तिका उपाय अन्य नहीं किन्तु निजत्व दृष्टि है। जिस प्रकार हमारी दृष्टि परकी ओर है उसी प्रकार यदि आत्माकी ओर हो जाय तो कल्याण सुनिश्चित है। लोग परकी चिन्तामे व्यर्थ ही काल यापन करते हैं'।

'शान्तिका मूल मन्त्र अन्तरङ्गकी कलुषताका नाश है, कलुषताका कारण पर पदार्थोंमें ममता बुद्धि है, ममता बुद्धि ही संसारकी जननी है। जब पर पदार्थमें आत्मीय अंश भी नहीं तब उसमे राग करना व्यर्थ है। परन्तु यह मोही जानकरभी गर्तमे पड़ता है इसको दूर करनेका यत्न करो'।

'आत्मतत्वकी यथार्थता प्रत्येक व्यक्तिमे होती है परन्तु उसकी अनुभूतिसे वञ्चित रहते हैं। इसका मूल कारण हमारी अनादि-कालीन परानुभूति ही है, क्योंकि ज्ञानमे स्वपर्यायका ही सवेदन होता हैं किन्तु मिथ्यात्वकी प्रबलतामें लोग स्वरूपसे वञ्चित हो परको ही निज मान लेते हैं।

१० दिन बाद जिनेन्द्रके दर्शन किये। ये दिन बहुत व्यग्रताके थे परन्तु अन्तरङ्गमे विकलता नहीं आई। बनारससे श्री सेठ बैजनाथजी सरावगी, पं० कैलाशचन्द्रजी, अधिष्ठाता हरिश्चन्द्रजी, झवेरी लालचन्द्रजी तथा फतहचन्द्रजी साहब आ गये। सबने बहुत ही आत्मीयता दिखलायी। श्री पं० कैलाशचन्द्रजीका मर्मिक प्रवचन हुआ। श्रीयुत ब्र० चांदमल्लजी साहब भी उदयपुरसे आ गये आप बहुत विवेकी पुरुष हैं अपने कार्यमे सन्नद्ध रहते हैं स्वाध्यायपटु हैं प्रवचन समीचीन शैलीसे करते हैं। हमारे शरीरकी दशा देख आपने कहा कि अब आप शान्तिसे काल यापन करो व्यर्थके विकल्पोंसे अपनेको सुरक्षित रक्खो। दिल्लीसे श्री ताराचन्द्रजी तथा राजकृष्णजी भी आये। राजकृष्णजी एक कमण्डलु लाये। कमण्डलु

को देख मेरे मनमें विचार आया कि परमार्थसे पीछी-कमण्डलु वही रख सकता है जिसके अन्तरङ्गमें संसारसे भीरुता हो। भीरुता भी उसीको हो सकती है जो इसे दुःखात्मक समझे। दुःखका कारण परमार्थसे पर नहीं हमारी कल्पना ही है। वह इन पदार्थोंमे निजत्व मान दुःखकी जननी बन जाती है। दुःखका कारण रागादिक हैं। जबलपुरसे श्रीटेकचन्द्रजी और राँचीसे सेठ चाँदमल्लजी साहब भी आये। अब चाँदमल्लजी अपनी इस पर्यायमे नहीं हैं। आपका बोध सुपुष्ट था आप अन्तरङ्गसे विरक्त भी थे आपका आग्रह था कि आप गिरिराज चलें वहाँ पर हमारा भी निवास करनेका अभिप्राय है। मैंने कहा कि इच्छा तो यही है कि गिरिराज पहुँचकर श्रीभगवान् पार्श्वनाथकी शरण लूँ पर यह शरीर जब इच्छानुकूल प्रवृत्ति करे तब कार्य बने। सागरसे श्री बालचन्द्रजी मलैया, पं० पन्नालालजी तथा दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये प्रातःकाल आनन्दसे प्रवचन हुआ। हमारे प्रवचनके अनन्तर श्री चाँदमल्लजी ब्रह्मचारी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सामयिक था। लोगोंकी दृष्टि सुननेकी ओर तो है पर करनेकी ओर नहीं। करनेसे दूर भागते हैं परन्तु किये विना सुनना और बोलना-दोनों ही कुछ प्रयोजन नहीं रखते। परमार्थ तो यह है कि कषायपूर्वक मन वचन कायका जो व्यापार हो रहा है वह रुक जावे तो कल्याणका पथ सुलभ हो जावे। धीरे धीरे शीतकी बाधा कम हो गई और हमारे शरीरमे वातके कारण जो बाधा हो गई थी वह दूर हो गई। यहाँ स्वर्गीय ज्ञानचन्द्र जी गोलालारेकी धर्मपत्नी धनवन्ती देवीने ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया जैन पाठशालाके अर्थ प्रदान किया माघ शुक्ल ५ सोमवार दिनांक २३ जनवरी १९५० को इसका मुहूर्त्त था उद्घाटन मेरे हाथोंसे हुआ। द्वितीय दिन महिला सभाका आयोजन हुआ श्री धनवन्ती देवीने मुख्याध्यक्षाका पद अङ्गीकार किया हम लोग भी

सभामें गये। जन समुदाय पुष्कल था पं० कैलाशचन्द्रजी वनारस का व्याख्यान समयोचित था। पाठशालाका नाम श्री ज्ञानधन जैन संस्कृत पाठशाला रक्खा गया। आज सर्वत्र पाश्चात्य शिक्षाका प्रचार है इसलिए लोगोंके संस्कार भी उसी प्रकार हो रहे हैं लोगोंके हृदयसे अध्यात्म सम्बन्धी संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं यही कारण है कि सर्वत्र अशान्ति ही अशान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। शान्तिका आस्वाद आजतक नहीं आया इसका मूल कारण विरोधी पदार्थोंमे तन्मयता है। हम क्रोधको त्यागनेमें असमर्थ हैं और क्षमाका स्वाद चाहते हैं यह असम्भव है। संस्कार निर्मल वनानेकी आवश्यकता है हम आजतक जो संसारमें भ्रमण कर रहे हैं इसका मूल कारण अनादि संस्कारोंके न त्यागनेकी ही कुटेव है।

२६ जनवरीका दिन आ गया। आजसे भारतमें नवीन विधान लागू होगा अतः सर्वत्र उत्साहका वातावरण था। श्रीयुत महाशय डा० राजेन्द्रप्रसादजी विहारनिवासी इसके सभापति होंगे। आप आस्थामय उत्तम पुरुष हैं। भारतको स्वतन्त्रता मिली परन्तु इसकी रक्षा निर्मल चारित्रसे होगी। यदि हमारे अधिकारी महानुभाव अपरिग्रहवादको अपनावें तथा अपने आपको स्वार्थकी गन्धसे अदूषित रक्खे तो सरल रीतिसे स्वपरका भला कर सकते हैं। श्री हुकमचन्द्रजी सलावावाले आये आप योग्य तथा स्वाध्यायके व्यसनी हैं। एक महाशय कुरावलीसे भी आये उनकी यह श्रद्धा है कि उपादानसे ही कार्य होता है। उपादानमें कार्य होता है इसमें किसीको विवाद नहीं परन्तु उपादानसे ही होता है यह कुछ संगत नहीं क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति पूर्ण सामग्रीसे होती है, न केवल उपादानसे और न केवल निमित्तसे। शास्त्रमें लिखा है 'सामग्री जनिका कार्यस्य' अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जननी है। यदि निमित्तके विना केवल उपादानसे कार्य होता है तो मनुष्य पर्यायरूप निमित्तके

विना ही आत्माको सर्वत्र मोक्ष हो जाना चाहिये क्योंकि मोक्षका उपादान आत्मा तो सर्वत्र विद्यमान है। यदि मनुष्य पर्यायाविष्ट आत्मा ही मोक्षका उपादान है तो मनुष्य रूप निमित्तकी उपेक्षा कहाँ रही। अतः अनेकान्त दृष्टिसे पदार्थका विवेचन हो तो उत्तम है। कानपुरसे भी वहुत लोग आये और आग्रह करने लगे कि कानपुर चलिये परन्तु मैं चल सकूँ इसके योग्य मेरा शरीर नहीं अतः मैंने जानेसे इनकार कर दिया। मेरे मनमें तो अटल श्रद्धा है कि शान्तिका मार्ग न तो पुस्तकोंमें है, न तीर्थ यात्रादिमें है. न सत्समागमादिमे हैं और न केवल दिखावाके योग निरोधमें है। किन्तु कषाय निग्रह पूर्वक सर्व अवस्थामें है। श्रद्धाकी यह शक्ति है कि उसके साथ ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है और स्वानुभावात्मक निजस्वरूपमें प्रवृत्ति हो जाती है। गिरिडीहसे श्रीयुत कालूरामजी और श्री रामचन्द्रजी वावू भी आये। आप दोनों ही योग्य पुरुष हैं आपका अभिप्राय है कि अव मैं श्री पार्श्वप्रभुके चरण कमलोंमें रहकर अपनी अन्तिम अवस्था शान्तिसे यापन करूँ। मेरी अवस्था उस समय ७६ वर्षकी हो गई है, शरीर दिन प्रतिदिन शिथिल होता जाता है, स्मरण शक्ति घटती जाती है केवल अन्तरङ्गमे धर्मका श्रद्धान दृढ़तम है। किन्तु सहकारी कारणका सद्भाव भी आवश्यक है। सेठी चम्पालालजी गयावालोंने भी यही भाव प्रकट किया परन्तु इच्छा रहते हुए भी मैं शरीरकी अवस्था पर दृष्टिपात कर लम्बा मार्ग तय करनेके लिए समक्ष नहीं हो सका।

लोग बात तो वहुत करते हैं परन्तु कर्तव्यपथमें नहीं लाते। कर्तव्यपथमे लाना वहुत ही कठिन है। उपदेश देना सरल है परन्तु स्वयं उसपर आरूढ़ होना दुष्कर है। मैंने यही निश्चय किया कि आत्माकी परिणति जानने देखनेकी है अत तुम ज्ञाता द्रष्टा ही रहो पदार्थमें जैसा परिणमन होना है हो उसमें इष्टानिष्ट कल्पना

न करो क्योंकि यही संसारकी जड़ है। यदि तुम्हें संसारका अन्त करना है तो परसे आत्मीयता त्यागो। सर्वोत्तम बात यह है कि किसीके चक्रमें न आवे, चक्र ही परिभ्रमणका मुख्य कारण है। मनुष्योंसे स्नेह करना ही पापका कारण है संसारका मूल कारण यही है। जिन्हें संसार बन्धनका उच्छेद करना है उन्हे उचित है कि वे परकी चिन्ता त्यागें। परकी चिन्ता करना मोही जीवोंका कर्तव्य है।

यहाँ नीलकण्ठ नामक स्थान है जिसके कूपका जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है, यहाँ रहते हुए मैंने उसीका जल पिया। एकान्त शान्त स्थान है। अधिकांश मैं दिनका समय यहीं व्यतीत करता था। फाल्गुनका मास लग गया और ऋतुमें परिवर्तन दिखने लगा भिण्डसे बहुतसे मनुष्य आये और उन्होंने भिण्ड चलनेका आग्रह किया शरीर तथा ऋतुकी अनुकूलता देख मैंने भिण्ड जानेकी स्वीकृति दे दी। स्वीकृति तो दे दी परन्तु आकाशमें मेघकी घटा छाई हुई थी इसलिये उस दिन जाना नहीं हो सका। तीसरे दिन जब आकाश स्वच्छ हो गया तब फागुन कृष्ण ५ को १½ बजे प्रस्थान किया।

इटावाके अञ्चलमें

इटावाके पास ही श्रीविमलसागरकी समाधि स्थान है, स्थानकी नीरवता देख १५ मिनट वहाँ विश्राम किया। यह धर्म साधनका उत्तम स्थान है परन्तु कोई ठहरनेवाला नहीं। बातोंके बनानेवाले

बहुत हैं कर्तव्य पालन करनेवाले कम हैं। यहाँसे ३ मील चलकर गोरेनीका नगरामे ठहर गये। प्रातः यहाँसे २ मील चल कर चम्बल नदीके घाटपर ठहर गये। बहुत सुन्दर दृश्य है नीचे नदी वह रही है ऊपर सहस्रों टीला है। एक बंगला है, २ फर्लांगपर १ ग्राम है जिसका नाम उदी है यहाँपर १ मिडिल स्कूल है। ९ बजे शास्त्र प्रवचन हुआ, अन्य लोग भी आये स्कूलके मास्टर तथा छात्र गण भी थे। आगत जनतासे मैंने कहा कि आप बीड़ी पीना छोड़ दें तथा परस्त्रीका त्याग भी कर दें सुनकर आम जनता प्रसन्न हुई तथा अधिकांशने प्रतिज्ञा ली। यहाँसे चल कर बरहीमे ठहरे और प्रातः ५ मील चल कर फूफ आ गये। जैन मन्दिरकी धर्मशालामें ठहरे, यहाँ २० घर जैनियोंके हैं लोग भद्र जान पड़ते हैं। श्रीराजारामजी गोलसिंगारेके घर भोजन किया। उन्होंने जो खर्च हो उसपर एक पैसा प्रति रुपया दान करनेका नियम लिया तथा उनकी गृहिणीने अष्टमी चतुर्दशीको शीलव्रत लिया। आज ईसरीसे पत्र आया कि ब्र० कमलापतिजीका स्वर्गवास हो गया। समाचार जानकर पिछली घटनाएं स्मृत हो उठीं आप बरायठा (सागर) के रहनेवाले थे। सम्पन्न होनेपर भी गृहसे विरक्त थे। आपके साथ बुन्देल-खण्डमें मैंने बहुत भ्रमण किया था तथा वहाँ प्रचलित कई रूढियाँ बन्द कराई थीं। आपको शास्त्रका ज्ञान भी अच्छा था। अष्टमीका दिन होनेसे सम्यक् प्रकार धर्मध्यानमें दिन बीता। स्वाध्याय अच्छा हुआ, स्वाध्यायका फल स्वपर विवेकका होना है। इससे संवर और निर्जरा होती है। आगमाभ्याससे उत्तम मोक्षमार्गका अन्य सहा-यक नहीं। यहाँसे दूसरे दिन ४ मील चलकर दीनपुरामे रात्रि विताई। प्रातः २ मील चलकर भिण्डके बाहर एक सुरम्य स्थानमे ठहर गये। यहाँसे १ फर्लांग मन्दिर है, बहुत विशाल है। मध्याह्नके बाद २ बजेसे नसियामे सभा हुई जन संख्या अच्छी थी। श्री पं०

पन्नालालजी काव्यतीर्थ प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालयका व्याख्यान समयानुकूल हुआ, श्री ब्र० चाँदमल्लजीका भी उत्तम व्याख्यान हुआ तदनन्तर मैंने भी कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि महती आवश्यकता विशुद्धिकी है बिना भेदज्ञानके विशुद्धि रूप परिणति होना दुष्कर है। भेदज्ञानका बाधक पर पदार्थमें निजत्व कल्पना है। भेदके होनेमे सब मुख्य कारण आत्मीय ज्ञानकी प्राप्ति है। जिस प्रकार हम घट पटादि पदार्थोंको जाननेमें मनोवृत्ति रखते हैं उसी प्रकार आत्मज्ञानमें भी हमे चेष्टा करना चाहिये। उपदेशका फल तो यह है कि परलोकके अर्थ प्रयत्न किया जावे। जो मनुष्य आत्मतत्त्वकी यथार्थतासे अनभिज्ञ हैं वे कदापि मोक्ष-मार्गके पात्र नहीं हो सकते। यहाँ कभी गोलसिंघारोंके मन्दिरमे और कभी चैत्यालयमे प्रवचन होता था जनता अच्छी आती थी। यहाँ पर समयसारकी रुचिवाले बहुत हैं पर विशेषज्ञ गिनतीके हैं। एक दिन प्रवचनमें चर्चा आई कि क्या सम्यग्दृष्टि कुदेवादिककी पूजा कर सकता है? मेरा भाव तो यह है कि जिसे अनन्त संसारके बन्धनोंसे छुटानेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया वह रागद्वेपसे लिप्त कुदेवादिककी पूजा नहीं कर सकता। वीतराग सर्वज्ञ तथा संभव हो तो हितोपदेशकत्व बिना अन्य किसी भी जीवके सुदेवत्व नहीं आता। भले ही वह जैनधर्मसे प्रेम रखता हो और जिन शासनकी प्रभावना -रता हो पर है कुदेव ही। समन्तभद्र स्वामीने इस विषय-मे अपना अभिप्राय निम्न प्रकार दिया है।

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणाम विनयं चैव न कुर्यु शुद्धदृष्टय ॥

अर्थात् सम्यग्दृष्टि पुरुष भय, आशा, स्नेह और लोभके वशीभूत होकर कुदेव, कुआगम और कुलिङ्गियोंको प्रणाम न करे। लोग न

जाने क्यों पक्ष व्यामोहमें पड़ इतनी स्पष्ट बातको भी ग्रहण नहीं करते ? उन्हें देव, अदेवकी परिभाषा भी नहीं जमती ऐसा जान पड़ता है। एक दिन गोलालारोंके मन्दिरमे भी प्रवचन हुआ जनता अच्छी आयी परन्तु प्रवचनका वास्तविक प्रभाव कुछ नहीं हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि वक्ता स्वयं उसके प्रभावमे नहीं आता, अन्यको प्रभावमे लाना चाहता है यह प्रवचनकर्तामें महती त्रुटि है। एक सहस्त्र वक्ता और व्याख्यान देनेवालोंमे एक ही अमल करनेवाला होना कठिन है। यहाँ लोगोंमे आपसी वैमनस्य अधिक है। एक पाठशाला स्थापित होनेकी वात उठी अवश्य पर कुछ लोगोंके पारस्परिक संघर्षके कारण काम स्थगित हो गया। धन्य है उन्हे जिन्होने कषायरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करली। एक दिन पुरानी मण्डीमे २ मन्दिरोंके दर्शन किये। मन्दिर वहुत ही रमणीय हैं ५०० मनुष्य इनमे शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। एक मन्दिर भट्टारकजीका वहुत ही स्वच्छ—निर्मल तथा विशाल है। भिण्ड जैनियों की प्राचीन वस्ती है जन संख्या अच्छी है यदि सौमनस्य-से काम करें तो जन कल्याणके अच्छे कार्य यहाँ हो सकते हैं। ९–१० दिन यहाँ रहनेके वाद फाल्गुन शुक्लाको चल कर दीनपुरा आ गये और दूसरे दिन दीनपुरासे फूफ आ गये। यहाँ मुरारसे ४ महिलएँ आई थीं उनके यहाँ हमारा भोजन हुआ। भोजन वड़े भावसे कराया। फूफसे ५ मील चल कर वरही आये यहाँ पर १ मन्दिर प्राचीन वना हुआ है चम्बलके तटसे ½ मील है। ९० हाथ गहरा कूप है फिर भी जल क्षार है यहाँ पर ३ घर जैनियोंके हैं अच्छे सम्पन्न हैं, शिक्षा इस प्रान्तमें कम है। यहाँसे चल कर उदूग्राममे ठहर गये। यहाँसे चल कर नगरा ग्राममें आ गये। यहाँ एक ब्राह्मण महोदयके घरमें ठहर गये आप वहुत ही सज्जन हैं आपने आदरसे व्यवहार किया। भोजनके उपरान्त १ वजे

चलकर ३ वजे इटावाकी नशियॉमे आ गये स्थान रम्य है यहाँ पर श्री विमलसागरजीकी समाधि हुई थी किन्तु अव यहाँ पर इटावावालोंकी दृष्टि नहीं। इस तरह इटावाके अञ्चलमे भ्रमण कर यही अनुभव किया कि सर्व मनुष्योंके धर्मकी आकाक्षा रहती है तथा सबको अपना उत्कर्ष भी इष्ट है परन्तु मोहके नशामे अन्ध कैसी दशा हो रही है यही अकल्याणका मूल है। मोह एक ऐसी मदिरा है कि जिसके नशामें यह जीव स्व को भूल परको अपना मानने लगता है। यह विभ्रम ही संसार परिभ्रमणका कारण है। जिसके यह विभ्रम दूर होकर स्वका यथार्थ वोध हो जाता है वह परसे यथासंभव शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।

अष्टाह्निकापर्व

फाल्गुन शुक्ला ८ सं० २००६ से आष्टह्निका पर्व प्रारम्भ हो गया यह महापर्व है। इस पर्वमे देवगण नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं वहाँपर ५२ जिनालय हैं। मनुष्योंका गमन वहाँ नहीं, देवगण ही वहाँ जाते हैं मनुष्य चाहे विद्याधर हों चाहे ऋद्धिधारी मुनि हों, नहीं जा सकते। किन्तु मनुष्योंमें वह शक्ति है कि संयमांशको ग्रहण कर देवोंकी अपेक्षा असंख्यगुणी निर्जरा कर सकते हैं। मन्दिरमे समयसारका प्रवचन हुआ। कुछ वांचो परन्तु वात वही है जो हो रही है संसारके चक्रमे जीव उलझ रहा है आहार भय मैथुन परिग्रह इन संज्ञाओंके आधीन होकर आत्मीय स्वरूपसे अपरिचित रहता है। आत्मामें ज्ञायक शक्ति है जिससे वह स्वपरको जानता है परन्तु

अनादिकालसे मोह मदका ऐसा प्रभाव है कि आपापरकी ज्ञप्तिसे वञ्चित हो रहा है। संसार एक अशान्तिका भण्डार है इसमें शान्ति-का अत्यन्त अनादर है, वास्तवमें अशान्तिका अभाव ही शान्तिका उत्पादक है। अशान्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत् व्याकुल है। अशान्तिका वाच्यार्थ अनेक प्रकारकी इच्छाएं हैं। ये ही हमारे शान्ति स्वरूपमे बाधक हैं जब हम किसी विषयकी अभिलाषा करते हैं तब आकुलित हो जाते हैं, जब तक इच्छित विषयका लाभ न हो तब तक दुखी रहते हैं। अन्तरङ्गसे यदि यह बात उत्पन्न हो जाय कि प्रत्येक द्रव्य स्वमे परिपूर्ण है उसे पर पदार्थकी आवश्यकता नहीं। जब तक पर पदार्थकी आवश्यकता अनुभवमें आती है तब तक इसे स्वद्रव्यकी पूर्णतामे विश्वास नहीं" तो परकी आकाक्षा मिट जाय और परकी आकाक्षा मिटी कि अशान्तिने कूच किया। जो मनुष्य शान्ति चाहते हैं वे परजनोंके संसर्गसे सुरक्षित रहे। परके संसर्गसे बुद्धिमे विकार आता है विकारसे चित्तमे आकुलता होती है। जहाँ आकुलता है वहाँ शान्ति नहीं, शान्ति बिना सुख नहीं और सुखके अर्थ ही सर्व प्रयास मनुष्य करता है। अनादिसे हमारी मान्यता इतनी दूषित है कि निजको जानना ही असंभव है। जैसे खिचड़ी खानेवाला मनुष्य केवल चावलका स्वाद नहीं बता सकता वैसे ही मोही जीव शुद्ध आत्मद्रव्यका स्वाद नहीं बता सकता। मोहके उदयमे जो ज्ञान होता है उसमे पर ज्ञेयको निज माननेकी मुख्यता रहती है। यद्यपि पर निज नहीं परन्तु क्या किया जावे। जो निर्मल दृष्टि है वह मोहके सम्बन्धसे इतनी मलिन हो गई है कि निजकी ओर जाती ही नहीं। इसीके सद्भावमे जीवकी यह दशा हो रही है उन्मत्तक (धतूरा) पान करनेवालेकी तरह अन्यथा प्रवृत्ति करता है अतः इस चक्रसे बचनेके अर्थ परसे ममता त्यागो केवल वचनोंसे व्यवहार करनेसे ही संतोष मत कर लो। जो मोहके साधक हैं उन्हें

त्यागो। जैसे पञ्चेन्द्रियोंके विषय त्यागनेसे ही मनुष्य इन्द्रिय विजयी होगा कथा करनेसे कुछ तत्त्व नहीं निकलता। बात असलमें यह है कि हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान है इस ज्ञानमें जो पदार्थ भासमान होगा उसी ओर तो हमारा लक्ष्य जावेगा उसीकी सिद्धिके अर्थ हम प्रयास करेंगे चाहे वह अनर्थकी जड़ क्यों न हो। अनर्थकी जड़ बाह्य वस्तु नहीं, वह तो अध्यवसानमें विषय पड़ती है अतएव बाह्य वस्तु बन्धका जनक नहीं श्रीकुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।
ण हि वत्थुदो बधो अज्झवसाणेण बंधो दु॥

पदार्थ को निमित्त पाकर जो अध्यवसान भाव जीवों को होता है वही वन्धका कारण है, पदार्थ वन्धका कारण नहीं है।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि ऐसा सिद्धान्त है तो बाह्य वस्तुका त्याग क्यों कराया जाता है ? तो उसका उत्तर यही है कि अध्यवसान न होनेके अर्थ ही कराया जाता है। यदि बाह्य पदार्थके आश्रय बिना अध्यवसान भाव होने लगे तो जैसे यह अध्यवसान भाव होता है कि मैं रणमें वीरसू माताके पुत्रको मारूँगा वहाँ यह भी अध्यवसान भाव होने लगे कि मैं वन्ध्यापुत्रको प्राण रहित करूँगा। परन्तु नहीं होता क्योंकि मारणक्रियाका आश्रयभूत वन्ध्यासुत नहीं है अत: जिन्हें बन्ध न करना हो वे बाह्य वस्तुका परित्याग कर देवें। परमार्थसे अन्तरङ्ग मूर्छाका त्याग ही वन्धकी निवृत्तिका कारण है। मिथ्या विकल्पोंको त्याग कर यथार्थ वस्तु स्वरूपके निर्णयमें अपनेको तन्मय करो अन्यथा इसी भवचक्रके पात्र रहोगे। तुम विश्वसे भिन्न हो फिर भी विश्वको अपनाते हो इसमें मूल जड़ मोह है जिनके वह नहीं वह मुनि हैं, ये अध्यवसान आदि भाव

जिनके नहीं वही महामुनि हैं। वे ही शुभ अशुभ कर्मसे लिप्त नहीं होते।

जिस जीवको यह निश्चय हो गया कि मैं परसे भिन्न हूँ वह कदापि परके संयोगमे प्रसन्न और विषादी नहीं हो सकता। प्रसन्नता और अप्रसन्नता मोहमूलक हैं। मोह ही एक ऐसा महान् शत्रु इस जीवका है कि जिसकी उपमा नहीं की जा सकती उसीके प्रभावसे चौरासी लाख योनियोंमें जीवका भ्रमण हो रहा है अतः जिन्हे यह भ्रमण इष्ट नहीं उन्हें उसका त्याग करना चाहिये।

खेद करो मत आतमा खेद पापका मूल।
खेद किये कुछ ना मिलै, खेद करहु निमूंल॥

खेद पाप की जड़ है अतः हे आत्मन ? खेद करना श्रेयस्कर नहीं किन्तु खेदके जो कारण हैं उनसे निवृत्ति पाना श्रेयस्कर है। मैं अनादि कालसे संसारमे भटक कर दुखी हो रहा हूँ ऐसा विचार कर कोई खेद करने वैठ जाय तो क्या वह दुःखसे छूट जायगा ? नहीं दुःखसे तो तभी छूटेगा जव संसार भ्रमणके कारण मोह भावसे जुदा होगा।

लोग प्रवचनोंमें आते हैं पर शास्त्रश्रवणका रस नहीं। इसका मूल कारण आगमाभ्यास नहीं किया और न उस ओर रुचि ही है। लोगोंको वुद्धि न हो सो वात नहीं। सांसारिक कार्योंमे तो वुद्धि इतनी प्रवल है कि वालकी भी खाल निकाल दें परन्तु इस ओर दृष्टी नहीं। कई श्रोता तो रूढ़िसे आते हैं, कई वक्ताकी परीक्षाके अर्थ आते हैं, कई वक्ताकी वाणी कुशलतासे आते हैं और कई कौतूहलसे आते हैं, अधिक भाग महिलाओंका होता है। आत्म-कल्याणकी भावनासे कोई नहीं आता यह वात नहीं परन्तु ऐसे जीव विरले हैं। यदि यह वात न होती तो शास्त्रश्रवण करते करते

जीवन व्यतीत हो गया पर प्रवृत्तिमे अन्तर क्यों नहीं आया? यहाँ तो यह बात है कि शास्त्रमे जो लिखा सो ठीक, और वक्ता जा कह रहा सो ठीक पर काम हम वही करेंगे जो करते चले आ रहे हैं। एक कहावत है कि आप कहे सो ठीक और वे कहे सो ठीक पर नरदाका द्वार यहीं रहेगा। अस्तु, पर्वभर लोगोंमे अच्छा उत्साह रहा।

उदासीनाश्रम और संस्कृत विद्यालयका उपक्रम

चैत्र कृष्ण ३ संवत् २००६ को प्रातःकाल यहाँ उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई। श्री लक्ष्मणप्रसादजीने १००) मासिक और कई महाशयोंने मिलकर १५०) मासिक रुपये दिये। ४ उदासीन भाई आश्रममे प्रवृष्ट हुए साथ ही बहुतसे मनुष्योंके भाव इस ओर ऋजु हुए परन्तु थोड़ी देरकी उफान है घर जाकर भूल जाते हैं। पं० फूलचन्द्रजी बनारससे आये थे वे आज बनारस वापस चले गये। आप स्वच्छ बात करते हैं किन्तु समयकी गतिविधि देखकर व्यवहार करें तब उनका प्रयास सफल हो सकता है। पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ भिण्ड गये थे वहाँसे उन्हें वर्णीचेयरके लिए ५०१) मिले थे यह रुपये पं० फूलचन्द्रजीके हाथ भेज दिये। पं० झम्मनलालजी तर्कतीर्थ कलकत्तावाले आये। प्रचीन विद्वानोंमेसे हैं, व्युत्पन्न भी हैं परन्तु प्रकृतिके तीक्ष्ण हैं। ३ छात्रोंने संस्कृत पढ़नेका भाव प्रकट किया। संस्कृत भाषा उत्तम भाषा है जैनागमका भाव इस भाषाके अध्ययनके विना सुगम रीतिसे लभ्य नहीं परन्तु आज लोगोंकी दृष्टि पैसेकी ओर लग रही है। इस भाषाके अध्ययनसे पैसाकी

प्राप्ति पुष्कल नहीं होती इसलिए धनिकवर्ग अपने बालकोंको इसका अध्ययन नहीं कराते परन्तु इतना निश्चित है कि इस भाषासे हृदयमें जो शुद्धि या निर्मलता आती है वह अन्य भाषाओंसे नहीं। २ छात्रों द्वारा अभ्यन्तरकी प्रेरणासे संस्कृत भाषाके अध्ययनकी बात सुन हृदयमें प्रसन्नता हुई। यहाँ पंसारी टोलाके मन्दिरमें प्राचीन साहित्य भण्डार है ग्रन्थोको दीमक और चूहोंने बहुत नुकसान पहुँचाया है लोग शास्त्र भण्डारोंका महत्त्व नहीं समझते इसलिये उनकी रक्षाकी ओर विशेष प्रयत्न शील नहीं रहते। अपने हुन्डी दस्तावेज आदिको लोग जिस प्रकार सुरक्षित रखते हैं उसी प्रकार शास्त्र भी सुरक्षित रखनेके योग्य हैं।

श्री ज्ञानचन्द्रजीकी धर्मपत्नीने जो ७५०००) का दान निकाला था उसके ट्रष्ट होनेमें कुछ लोग बाधा उपस्थित कर रहे थे तथा कितने ही लोगोंकी यह भावना थी कि यह रुपये अंग्रेजी स्कूलमें लगाये जावें। मुझे इससे हर्ष विषाद नहीं था परन्तु भावना यह थी कि अंग्रेजी अध्ययनके लिए तो नगरमें छात्रोंको अन्य साधन सुलभ हैं अतः उसीमें द्रव्य लगानेसे वास्तविक लाभ नहीं। संस्कृत अध्ययनके और खास कर जैनधर्म सहित संस्कृत अध्ययनके साधन नहीं इसलिये उसके अर्थ द्रव्य व्यय करना उत्तम है। अस्तु मुझे इस विकल्पमें नहीं पड़ना ही श्रेयस्कर है यह विचार कर मैं तटस्थ रह गया।

चैत्र कृष्ण ६ सं० २००६ को शामके समय यहाँसे २ मील चल कर श्री सोहनलालजीके बागमें ठहर गये। प्रातःकाल सामायिक कर चलनेके लिये तैयार हुए। इतनेमें इटावासे बहुतसे सज्जन आ गये। सबने बहुत आग्रह किया कि आप इटावा ही रहिये क्योंकि गर्मी पड़ने लगी है अतः मार्गमें आपको कष्ट होगा। मैंने कहा— मुझे कोई आपत्ति नहीं श्री चम्पालालजी सेठीसे पूछिये। अन्तमें इन

लोगोंने कहा कि यदि आप रह जावें तो धनवंतीबाईका ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया संस्कृत विभागमें लगा देवेंगे। संस्कृत विभाग का नाम सुन मेरे हृदयमें बहुत प्रसन्नता हुई। अन्ततो गत्वा यही निश्चय किया कि रहना चाहिये। निश्चयानन्तर हम सोहनलाल-जीके बागसे वापिस आ गये। मनुष्योंके चित्तमें उत्साह हुआ श्री मुन्नालालजीको तो इतना उत्साह हुआ कि उन्होंने १२५) प्रतिमास देनेको कहा तथा धनवन्तीके ७५०००) भी पृथक्से इसी कार्यके लिए दिलाये। 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार चैत्र कृष्ण ६ सं० २००६ को ही पं० झम्मनलालजी द्वारा संस्कृत विद्यालयका काम शुरू हो गया। ५ छात्रोंने लघुसिद्धान्तकौमुदी प्रारम्भ की, सेठ भगवानदास-जीके सुपुत्रने सर्वार्थसिद्धि प्रारम्भ की। श्री बनवारीलालजी त्यागीने द्रव्य संग्रहका प्रारम्भ किया। अन्तमें श्रीपाल वैद्यने मिष्टान्न वितरण किया। सानन्द उत्सव समाप्त हुआ। श्री मुन्नालालजीने इटावा में ही चातुर्मास करनेका आग्रह किया तो मैंने यह बात समक्ष रक्खी कि यदि चैत्र सुदी १५ तक संस्कृत विद्यालयके लिए १ लक्ष रुपयेकी रजिष्ट्री हो जायगी तो कार्तिक सुदी २ तक रह जावेंगे। चातुर्मासकी बात सुन जनताको बहुत उल्लास हुआ।

जैनदर्शन के लेख पर

जबसे हरिजन मन्दिर प्रवेशकी चर्चा चली कुछ लोगोंने अपने स्वभाव या पक्ष विशेषकी प्रेरणासे हरिजन मन्दिर प्रवेशके विधि निषेध साधक आन्दोलनोंको उचित-अनुचित प्रोत्साहन दिया। कुछ लोगोंको जिन्हें आगमके अनुकूल किन्तु अपनी धारणाके

प्रतिकूल विचार सुनाई दिये उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि 'वर्णीजी हरिजनमन्दिर प्रवेशके पक्षपाती हैं।' इतना ही नहीं दल-विशेष और पक्ष विशेपका आश्रय लेकर अपनी स्वार्थ साधनाके लिये यद्वा तद्वा आगम प्रमाण उपस्थित करते हुए मेरे प्रति जो कुछ मनमें आया ऊटपटांग कह डाला। इससे मुझे जरा भी रोप नहीं परन्तु उन सम्भ्रान्त जनोंके निराकरण करनेके लिये कुछ लिखना आवश्यक हो गया। यद्यपि इससे मेरी न तो पक्षपाती बननेकी इच्छा है और न विरोधी किन्तु आत्माकी प्रबल प्रेरणा सदा यही रहती है कि जो मनमें हो सो वचनोंसे कहो। यदि नहीं कह सकते तो तुमने अब तक धर्मका मर्म ही नहीं समझा।

'जैनदर्शन' के सम्पादकने वर्णी लेख पर शूद्रोंके विपयमें बहुत कुछ लिखा है आगम प्रमाण भी दिये हैं। मैं आगमकी बातको सादर स्वीकार करता हूँ किन्तु आगमका जो अर्थ आप लगावें वही ठीक है यह आप जानें। श्री १०८ कुन्दकुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है—

> तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
> जदि दाएज पमाणं चुक्किज छलं ण घेतव्वं॥

आगममें लिखा है कि अस्पृश्य शुद्रसे स्पर्श हो जावे तो स्नान करना चाहिये। यहाँ यह जिज्ञासा है कि अस्पृश्य क्या अस्पृश्य जातिमें पैदा होनेसे हो जाता है? यदि यह बात है तो ब्रह्मादि ३ वर्णोंमें पैदा होनेसे सबको उत्तम होना चाहिये परन्तु ऐसा देखा जाता है कि यदि उत्तम जातिका निन्द्य काम करता है तो वह चाण्डाल गिना जाता है, उससे लोग घृणा करते हैं, पंक्ति-भोजनमें उसे शामिल नहीं करते और वही मनुष्य जो उत्तम कुलमें पैदा हुआ यदि मुनिधर्म अंगीकार कर लेता है तो पूज्य माना

जाता है। देवतुल्य उसकी पूजा होती है तथा उसके वाक्य आर्ष-वाक्य माने जाते हैं। अथवा वह तो मनुष्य हैं उत्तम कुलके हैं किन्तु जहाँ न तो कोई उपदेष्टा है और न मनुष्योंका सद्भाव है ऐसे स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्रमे असंख्यात तिर्यञ्च मछली मगर तथा स्थलचारी जीव व्रती होकर स्वर्गके पात्र होते हैं। तब कर्मभूमिके मनुष्य यदि व्रती होकर जैनधर्म पालें तो क्या आप रोक सकते हैं। आप हिन्दू न बनिये, यह कौन कहता है परन्तु जो हिन्दू उच्च कुलवाले हैं वे यदि मुनि बन जावें तब क्या आपत्ति है? हिन्दू शब्दका अर्थ मेरी समझमें धर्मसे सम्बन्ध नहीं रखता। जिस प्रकार भारतका रहनेवाला भारतीय कहलाता है इसी तरह देश विशेषमे रहनेवाला हिन्दू कहलाता हैं। जन्मसे मनुष्य एक सदृश उत्पन्न होते हैं किन्तु जिनको जैसा सम्बन्ध मिला उसी तरह उनका परिणमन हो जाता है।

भगवान् आदिनाथके समय ३ वर्ण थे, भरतने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की यह आदिपुराणसे विदित है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन तीन वर्णोंसे ही ब्राह्मण हुए। मूलमे ३ वर्ण कहाँसे आये? विशेष ऊहापोहसे न तो आप ही अपनेको वैश्य सिद्ध कर सकते हैं और न मैं ही। क्योंकि इस विषयमें मैं तो पहलेसे ही अपने आपको अनभिज्ञ मानता हूँ। आपने लिखा कि आचार्य महाराज दयालु हैं तब क्यों बेचारोंपर दया नहीं करते। आप लोग अपनी त्रुटिको नहीं देखते। आपका जो उपकार इन शूद्रोंसे होता है वह अन्यसे नहीं होता। यदि वे एक दिनके लिये भी अपनी २ सेवाएं छोड़ देवें तो पता लग जावेगा। आपने उनके साथ जो व्यवहार किया यदि उसका वर्णन किया जावे तो अश्रुपात होने लगे। वे तो तुम्हारे उन कामोंको करते हैं जिनकी तुम घृणा करते हो पर तुम उसका जो प्रतिकार करते हो सो नीचे वाक्योंसे देखो। जब तुम्हारे

यहाँ पङ्क्ति भोजन होता है तब अच्छा-अच्छा माल तो तुम उदरमें स्वाहा कर लेते हो और उच्छिष्ट पानीसे सिंचित पत्तलें उनके हवाले करते हो बलिहारी इस दया की। अच्छे-अच्छे फल तो आप खा गये और काने-काने बचे सो इन विचारोंको सौंप दिये फिर इसपर बनते हो हम आर्ष पद्धतिकी रक्षा करनेवाले हैं।'

गृद्ध पक्षी मुनिके चरणोंमें लोट गया, उसके पूर्व भव मुनिने वर्णन किये, सीता तथा रामचन्द्रजीको मुनि महाराजने उसकी रक्षाका भार सुपुर्द किया। अब देखिये, जहाँ गृद्ध पक्षी व्रती हो जावे वहाँ शूद्र शुद्ध नहीं हो सकने यह बुद्धिमें नहीं आता। यदि शूद्र इन कार्योंको त्याग देवे और मद्यादि पान छोड़ देवे तो वह व्रती हो सकता है। मन्दिर आने दो मत आने दो आपकी इच्छा। जिस प्रकार आप उनका बहिष्कार करते हैं यदि वे भी कल्पना करो सर्व सम्मति कर आपके साथ कोई व्यवहार न करें तो आप क्या करेंगे? धोबी यदि वस्त्र प्रक्षालन छोड़ दें, चर्मकार मृत पशु न हटावे, बसोरिन सौरीका काम न करे और भङ्गिन शौचगृह शुद्ध न करे तो संसारमें हाहाकार मच जावे। हाहाकारकी तो कोई बात नहीं हैजा प्लेग चेचक और क्षय जैसे अनेक भयंकर रोगोंका आश्रय हो जावेगा अतः बुद्धिसे काम लो, उनके साथ मानवताका व्यवहार करो, जिससे यह भी सुमार्गपर आवें। यह देखा जाता है कि यदि वह अध्ययन करें तो आपके बालकोंके सदृश बी. ए. एम. ए बैरिष्टर हो सकते हैं। संस्कृत पढ़ें तो आचार्य हो सकते हैं। फिर जैसे आप पञ्च पाप त्याग कर व्रती बनते हो यदि वह भी पञ्च पाप त्यागें तो इसका कौन विरोध कर सकता है?

मैं मुरारमें था एक भंगी प्रति दिन शास्त्रश्रवण करता था सुनकर कुछ भयभीत भी होता था। वह हमेशा उत्सुक रहता था

कि शास्त्रके समय मैं अवश्य रहूँ। जिस दिन उसका नाँगा हो जाता था उस दिन बहुत खिन्न रहता था। मांसादिका त्यागी था। एक दिन वह अपने मुखियाको लाया। मुखिया बोला—कुछ कहते हो? मैंने एक नया उत्तरीय वस्त्र उसे दिया और कहा कि तुम यह वस्त्र अपने साधु महात्माको देना और उनसे हमारा जयराम कहना तथा जो वह कहें सो उनका सन्देशा हम तक पहुँचाना। दूसरे दिन वह अपने साधुका संदेश लाया कि जो वर्णीजी कहें सो अपनेको करना चाहिये। क्या कहते हो? मैंने कहा—जो तुम्हारे भोज होनेवाला है उसमें माँस न बनाना। 'जो आज्ञा' कहता हुआ वह चला गया फिर २ दिन बाद आया और कहने लगा कि हमारे जो भोज था उसमे माँस नहीं बनाया गया।

आप लोगोंने यह समझ रक्खा है कि जो हम व्यवस्था करें वही धर्म है। धर्मका सम्बन्ध आत्मद्रव्यसे है न कि शरीरसे। हाँ, यह अवश्य है कि जब तक आत्मा असंज्ञी रहता है तब तक वह सम्यग्दर्शनका पात्र नहीं होता संज्ञी होते ही धर्मका पात्र हो जाता है। आर्ष वाक्य है—चारों गतिवाला संज्ञी पञ्चेंद्रिय जीव इस अनन्त संसारके नाशक सम्यग्दर्शनका पात्र हो सकता है। वहाँ पर यह नहीं लिखा कि अस्पृश्य शूद्र या हिंसक सिंह या व्यन्तरादिक देव या नरकके नारकी इसके पात्र नहीं होते। जनताको भ्रममें डाल कर हर एकको बावला कह देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। आप जानते हैं—संसारमें यावत् प्राणी हैं सर्व सुख चाहते हैं और सुखका कारण धर्म है। यद्यपि धर्मका अन्तरङ्ग साधन निजमें ही है तथापि उसके विकासके लिये बाह्य साधनोंकी आवश्यकता होती है। जैसे घटोत्पत्ति मृत्तिकासे ही होती है फिर भी कुम्भकारादि बाह्य साधनोंकी आवश्यकता अपेक्षित है एवं अन्तरङ्ग साधन तो आत्मामें ही है फिर भी बाह्य साधनोंकी अपेक्षा रखता है। बाह्य

साधन देव शास्त्र गुरु हैं। आप लोगोंने यहाँ तक प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं कि अस्पृश्य शूद्रादिको मन्दिर आनेका अधिकार नहीं। उनके आनेसे मन्दिरमें अनेक प्रकारके विघ्न होनेकी संभावना है। यदि शान्तभावसे विचार करो तो पता लगेगा कि हानि नहीं लाभ ही होगा। प्रथम तो जो हिंसादि पाप संसारमें होते हैं यदि वह अस्पृश्य शूद्र, जैनधर्मको अंगीकार करेंगे तो वह महापाप अनायास कम हो जावेंगे। ऐसा न हो, यदि दैवात् हो जावें तो आप क्या करोगे? चांडालके भी राजाका पुत्र चमर ढुलता देखा गया ऐसी कथा प्रसिद्ध है क्या यह गप्प है? अथवा कथा छोड़ो श्री समन्तभद्र स्वामीने रत्नकारण्डमें लिखा है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढाङ्गारान्तरौजसम्॥

आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है जिस प्रकार आत्मा अनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वके करनेमें समर्थ है उसी प्रकार अनन्त संसारके बन्धन काटनेमें भी समर्थ है। आप विद्वान् हैं जो आपकी इच्छा हो सो लिखिये परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य कोई लिखे उसे रोकनेकी चेष्टा करें। आपकी दया तो प्रसिद्ध है रहो, हमें इसमें आपत्ति नहीं। आप सप्रमाण यह लिखिए कि अस्पृश्य शूद्रोंको चरणानुयोगकी आज्ञासे धर्म करनेका कितना अधिकार है? तब हम लोगोंका यह वाद जो आपको अरुचिकर हो शान्त हो जावेगा। श्री आचार्य महाराजसे इस व्यवस्थाको पूछकर लिख दीजिये जिसमें व्यर्थ विवाद न हो। केवल समालोचनासे कुछ नहीं, शूद्रोंके विषयमें जो भी लिखा जावे सप्रमाण लिखा जावे। कोई शक्ति नहीं जो किसीके विचारोंका घात कर सके निमित्त तो अपना कार्य करेगा उपादान अपना करेगा।

एक महाशयने तो जैनमित्रमें यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारा क्षुल्लक पद छीन लिया जावेगा, मानों धर्मकी सत्ता आपके हाथोंमें आ गई हो। यह 'संजद' पद नहीं जो हटा दिया। जैनदर्शनके सम्पादकने जो लिखा उसका उत्तर देना मेरे ज्ञानका विषय नहीं है क्योंकि मैं न आगमज्ञ हूँ और न अब हो सकता हूँ परन्तु मेरा हृदय यह साक्षी देता है कि मनुष्य पर्यायवाला चाहे वह किसी जातिका हो कल्याणमार्गका पात्र हो सकता है। शूद्र भी सदाचारका पात्र है। हाँ, यह अन्य बात है कि आप लोगोंके द्वारा जो मन्दिर निर्माण किये गये हैं उनमें मत आने दो। गवर्नमेण्ट भी ऐसा कानून आपके अनुकूल बना देवे परन्तु जो सिद्ध क्षेत्र हैं कोई आपको अधिकार नहीं जो उन्हे वहाँ जाने पर रोक लगा सको। जो आपके मन्दिरमें शास्त्र हैं उन्हें न बाँचने दो किन्तु जो पब्लिक वाचनालय हैं उनमें आप उन्हें नहीं मना कर सकते। यदि वह पञ्च पाप छोड़ देवें और रागादि रहित आत्माको पूज्य मानें अर्हत्‌का स्मरण करें तो क्या रोक सकते हो? अथवा जो आपकी इच्छा हो सो करो।

मुझे धमकी दी कि पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे छीन लो, सर्व अनुयायी मिल जाओ चर्या बन्द कर दो परन्तु जो हमारी श्रद्धा धर्ममें है उसे भी छीन लोगे? मेरा हृदय किसीकी बन्दर घुड़कीसे नहीं डरता। मेरे हृदयमें तो दृढ़ विश्वास है कि अस्पृश्य शूद्र सम्यग्दर्शन और व्रतोंका पात्र है मन्दिर आने जानेकी बात आप जानें या जो आचार्य महाराज कहें उसे मानो। यदि अस्पृश्यताका सम्बन्ध शरीरसे है तो रहो आत्मा की क्या हानि है? यदि आत्मासे है तो जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया फिर अस्पृश्यता कहाँ रही? मेरा तो विश्वास है कि गुणस्थानों की परिपाटीसे जो मिथ्यागुणस्थान वर्ती है वह पापी है चाहे वह उत्तम वर्णका क्यों

न हो ? यदि मिथ्यादृष्टि है तो परमार्थसे पापी है, यदि सम्यक्त्वी है तो उत्तम आत्मा है। यह नियम शूद्रादि चारों वर्णों पर लागू है। परन्तु व्यवहारमें सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शनका निर्णय बाह्य आचरणोंसे है अतः जिनके आचरण शुभ हैं वे ही उत्तम कहलाते हैं जिनके आचरण मलिन हैं वे जघन्य हैं। एक उत्तम कुलवाला यदि अभक्ष्य भक्षण करता है वेश्या गमनादि पाप करता है तो उसे भी पापी जीव मानो उसे भी मन्दिर मत आने दो क्योंकि वह शुभाचरणसे पतित है और एक अस्पृश्य सदाचारी है तो वह भगवान्‌के दर्शनका अधिकारी आपके मतसे न हो परन्तु पञ्चम गुणस्थानवाला अवश्य हो सकता है।

पापत्यागकी महिमा है, उत्तम कुलमें जन्म लेनेसे उत्तम हो गये यह कदाग्रह छोड़ो। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे है कदाचारसे नहीं। नीच कुलीन मलिनाचारसे कलंकित हैं, माँस खाते हैं, मृत पशुओंको ले जाते हैं और आपके शौचगृह साफ करते हैं इसीसे तो उन्हें अस्पृश्य कहते हो तथा पक्ति भोजनमे आप उन्हें उच्छिष्ट भोजन देते हो। तत्त्वसे कहो उन्हें अस्पृश्य बनानेवाले आप लोग हैं। इन पापोंसे यदि वे परे हो जावें तब भी आप क्या उन्हें अस्पृश्य मानेंगे ? बुद्धिमें नहीं आता। आज एक भंगी यदि ईसाई हो जाता है और पढ़ लिखकर डाक्टर हो जाता है तो आप लोग उसकी दवा गट गट पीते हैं या नहीं ? क्यों उससे स्पर्श कराते हो ? आपसे तात्पर्य बहुभाग जनतासे है। आज जो पाप करते हैं वे यदि किसी आचार्य महाराजके सानिध्यको पाकर पापोंका त्याग कर देवें तो क्या वे साधु नहीं हो सकते ? व्याघ्रीने सुकौशल स्वामी-के उदरको विदारण किया और वहीं श्रीकीर्तिधर मुनीके उपदेशसे विरक्त हो समाधिमरण कर स्वर्ग लक्ष्मीकी भोक्ता हुई। अतः सर्वथा किसीका निषेध कर अधर्मके भागी मत बनो। हम

तो सरल मनुष्य हैं जो आपकी इच्छा हो सो कह दो आप लोग ही जैनधर्मके ज्ञाता और आचरण करनेवाले रहो परन्तु ऐसा अभिमान मत करो कि हमारे सिवाय अन्य कोई कुछ नहीं जानता।

पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे यह आचार्य महाराजकी आज्ञा है सो पीछी कमण्डलु तो बाह्य चिन्ह हैं इनके कार्य तो कोमल वस्त्र तथा अन्य पात्रसे हो सकते हैं। पुस्तक छीननेका आदेश नहीं दिया इससे प्रतीत होता है कि पुस्तक ज्ञानका उपकरण है वह आत्माकी उन्नतिमें सहायक है उसपर आपका अधिकार नहीं जैन दर्शनकी महिमा तो वही आत्मा जानता है जो अपनी आत्माको कषायभावोंसे रक्षित रखता है। अस्तु, हरिजन विषयक यह अन्तिम वक्तव्य देकर मैं इस ओरसे तटस्थ हो गया।

अक्षय तृतीया

एक दिन श्रीधनवन्तीदेवीके यहाँसे आहार-कर धर्मशालामें आये। मध्याह्नकी सामायिकके बाद धवल ग्रन्थका स्वाध्याय किया। श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोंने जो कि मूलनिवासी, इटावाके हैं बनारस विद्यालयका घाट बनवानेके लिये १०००) एक सहस्र रुपया अपनी धर्मपत्नीके नाम देना स्वीकृत किया। श्रीसोहनलालजी बहुत ही भद्र आदमी हैं। आपने सम्मेदशिखरजीमें तेरह पन्थी कोठीमें एक विशाल मन्दिर बनवाया है तथा उसमें चन्द्रप्रभ भगवान्की शुभ्रकाय विशाल मूर्ति विराजमान कराई है। यदि कोई परिश्रम करता तो घाटके लिये १०००००) एक लक्ष रुपया अना-

यास हो जाता। यहाँ पंसारी टोलाके मन्दिर में पुष्कल स्थान है अतः अधिकांश शास्त्र प्रवचन यहीं होता था।

वैशाख सुदी ३ अक्षय तृतीयाका दिन था, प्रातःकाल प्रवचनके बाद कुछ कहनेका अवसर आया तो मैंने कहा कि आजका दिन महान् पवित्र और उदारताका दिन है। आज श्री आदिनाथ तीर्थंकर को श्रेयान्स राजाने इक्षुरसका आहार दिया था यह वर्णन श्री आदि पुराणमें पाया जाता है इसी कारण राजा श्रेयान्सको श्री आदिनाथके अग्रज सुपुत्र भरत चक्रवर्तीने दानतीर्थके आदि विधाताकी पदवी प्रदान की थी। यह पर्व भारतवर्षमें आजतक प्रचलित है और इसके प्रचलित रहनेकी आवश्यकता भी है क्योंकि हमारा जिस क्षेत्रसे जन्म हुआ है वह कर्मभूमिके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँपर मनुष्य समाज एक सदृश नहीं है। कोई वैभवशाली है तो किसीके तनपर वस्त्र भी नहीं है। कोई आमोद प्रमोदमें अपना समय यापन कर रहा है तो कोई हाहाकारके शब्दों द्वारा आक्रन्दन कर रहा है। कोई अपने स्त्री पुत्र भ्राता आदिके साथ तीर्थयात्रा कर पुण्यका पात्र हो रहा है तो कोई उसी समय अपने अनुकूल प्राणियोंके साथ वेश्यादि व्यसनोंमें प्रवृत्ति कर पापपुञ्जका उपार्जन कर रहा है। कहनेका तात्पर्य यह है कि कर्म भूमिमें अनेक प्रकारकी विषमता देखी जाती है। यही विषमता 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस सूत्रकी यथार्थता दिखला रही है। जो संसारसे विरक्त हो गये और जिन्होंने अपनी क्रोधादि विभाव परिणतियों पर विजय प्राप्त कर ली है उनका यही उपकार है कि प्रजाको सुमार्ग पर लगावें और हम लोगोंको उनके निर्दिष्ट मार्गपर चलकर उनकी इच्छाकी पूर्ति करनी चाहिये तथा उनकी वैयावृत्य कर अथवा जीवन सफल करना चाहिए। वे आहारको आवे तो यथागम रीतिसे आहार दान देकर उन्हे निराकुल करनेका यत्न करना चाहिये। जो विद्वान् हैं उन्हे उचित है कि अपने ज्ञानके द्वारा

संसारका अज्ञान दूर करनेका प्रयत्न करें तथा हम अज्ञानी जनोंको उचित है कि उनके परिवारादिके पोषणके अर्थ भरपूर द्रव्य दें। यदि हमारे धनकी विपुलता है तो उसे यथोचित कार्योंमें प्रदान कर जगत्का उपकार करें जगत्का यह काम है कि उसके प्रति कृतज्ञताका भाव रक्खे। यदि संचित धनका उपयोग न किया जावेगा तब या तो उसे दायादगण अपनावेगा या राष्ट्र लेगा। जब संसारकी यह व्यवस्था है तब पुष्कल द्रव्यवाले आगे आकर बगाल तथा पंजाब आदिके जो मनुष्य गृहविहीन होकर दुःखी हो रहे हैं उन्हें सहायता पहुँचावें। जिनके पास पुष्कल भूमि है उसमें गृह विहीन मनुष्योंको बसावें तथा कृषि करनेको देवें। जिनके पास मर्यादासे अधिक वस्त्रादि हैं वे दूसरोंको देवें। मैं तो यहाँ तक कहता हूं कि आप जो भोजन ग्रहण करते हैं उसमेंसे भी कुछ अंश निकालकर शरणागत लोगोंकी रक्षामें लगा दो। यदि इस पद्धतिको अपनाया जावेगा तो जनता क्रान्तिसे स्वतः दूर रहेगी अन्यथा वह दिन शीघ्र आनेवाला है जिस दिन लोग किसीकी अनावश्यक सम्पत्तिको सहन नहीं करेंगे उसे बलात् छीनकर जनताके उपयोगमें लावेंगे। अतः समयके पहले ही अपनी परिणतिको सुधारो और यथेष्ट दान देकर परलोककी रक्षा करो। धनवन्तीदेवीने आपके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। सचित द्रव्यका यदि अन्तमें सदुपयोग हो जावे तो यह दाताकी भावी उत्तम परिणतिका सूचक है। सब लोग यदि यही नियम कर लें कि हमारे दैनिक भोजन तथा वस्त्रादिमें जो व्यय होता है उसमेंसे १) मे १ पैसा परोपकारमें प्रदान करेंगे तो मेरी समझसे जैन समाजमें प्रतिवर्ष लाखो रुपये एकत्रित हो जावें और उनसे समाज सुधारके अनेक कार्य अनायास पूर्ण हो जावें।

विद्यालयका उद्घाटन और विद्वत्परिषद्की बैठक

श्री पं० कमलकुमारजी व्याकरणतीर्थ जो पहले इन्दौरमे सेठजीके विद्यालयमे थे इस्तीफा देकर यहाँ आये। आप बहुत ही योग्य और स्वच्छ हृदयके विद्वान् हैं। श्री ज्ञानधन पाठशालाके लिये सुयोग्य विद्वानकी आवश्यकता थी सो इनके द्वारा पूर्ण हो गयी। पाठशालाका उद्घाटन समारोह करनेका विचार हुआ उसी समय अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वन् परिषद्की कार्यकारिणी समिति बुलानेका भी विचार स्थिर हुआ। सर्व सम्पतिसे इसके लिये ज्येष्ठ शुक्ल ५ का दिन निश्चय किया गया। उत्सवकी तैयारियाँ की गई। धर्मशालाके प्राङ्गणमे सुन्दर मंडप बनाया गया। उद्घाटन समारोहके अध्यक्ष श्री कलक्टर साहब बनाये गये। बाहरसे श्री पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर, पं० कैलाशचन्द्रजी, पं० फूलचन्द्रजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० खुशालचन्द्रजी बनारस, पं० दयाचन्द्रजी, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं० वर्धमानजी सोलापुर, पं० वंशीधरजी बीना, पं० दरबारीलालजी, पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० राजकृष्णजी देहली और पं० वंशीधरजीके सुपुत्र श्री पं० धन्यकुमारजी इन्दौर आदि अनेक विद्वान् पधारे।

उत्सवके प्रारम्भमे श्री पं० कैलाशचन्द्रजीने ज्ञानधनकी बहुत सुन्दर व्याख्या की। अनेक विद्वानोंके उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए। श्री कलक्टर साहबने त्यागपर बहुत बल दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि त्यागसे ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सक्ता है आजकल दुःखका मूल कारण परिग्रहकी इच्छा है इसका जिसने परित्याग

कर दिया उसके सुखका वर्णन कौन कर सकता है ? सम्यग्ज्ञानकी उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए मैंने भी कुछ कहा। पं० राजेन्द्र कुमारजीने जैनधर्मके बन्ध तत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला। उद्‌घाटन समारोहके अनन्तर विद्वत्परिषद्‌की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। उसमें खास चर्चाका विषय यह था कि धवल सिद्धान्तके ९३ वें सूत्रमें 'संजद पद आवश्यक है' ऐसा निर्णय सागरमें एकत्रित विद्वत्सम्मेलनने बहुत ही तर्क वितर्क—ऊहापोहके साथ किया था उसके लगभग ३ साल बाद श्रीमान् आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने ताम्रपत्रकी प्रतिसे 'संजद' पद हटानेका आदेश दिया। इस आदेशका विचारक विद्वानोंके हृदय पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। कार्यकारिणीमें इस विषयको लेकर निम्न प्रकार प्रस्ताव पास हुआ—

'फाल्गुन शुक्ला ३ वीर निर्वाण संवत् २४७६ को गजपन्थामें आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज द्वारा की गई जीवस्थान सत्प्ररूपणाके ९३ वें सूत्रसे ताड़पत्रीय मूल प्रतिमें उपलब्ध 'संजद' पदके निष्कासनकी घोषणापर विचार करनेके बाद भारतवर्षीय दि० विद्वत्परिषद्‌की यह कार्यकारिणी जून सन् ४७ में सागरमें आयोजित विद्वत्सम्मेलनके अपने निर्णयको दुहराती है तथा इस प्रकारसे ताम्रपत्रीय एवं मुद्रित प्रतियोंमें 'संजद' पद निष्कासनकी पद्धतिसे अपनी असहमति प्रकट करती है।'

बैठक समाप्त होनेपर विद्वान् लोग तो अपने अपने स्थानपर चले गये पर मेरे मनमें निरन्तर यह विकल्प उठता रहा कि एक ऐसा अवसर आता जो ५ निष्णात विद्वान् एक निरापद स्थानमें निवास कर जैनधर्मके मार्मिक सिद्धान्तको जनताके समक्ष निर्भीक होकर वचनों द्वारा प्रस्थापन करते तथा यह कहते आप लोग इसका निर्णय करें। यदि आप महाशयोंके परीक्षा विमर्शमें यह तत्व अभ्रान्त ठहरे

तो उसका प्रचार करिये यदि किसी प्रकारकी शङ्का रहे तो निर्णय करनेका प्रयास करिये तथा जो सिद्धान्त लिखे जावें वहाँपर अन्यने किस रीतिसे उसे माना है यह भी दिग्दर्शनमें आ जावे। सबसे मुख्य तत्त्व आत्माका अस्तित्व है इसके उत्तरमें अनात्मीय पदार्थों-पर विचार किया जावे। व्याख्यानों द्वारा सिद्धान्तके दिखानेका जितना प्रयास किया जावे उससे अधिक लेखबद्ध प्रणालीसे भी दिखाया जावे। इन कार्योंके लिये २५०००) वार्षिक व्ययकी आव-श्यकता है। परीक्षणके तौरपर ४ वर्ष यह कार्य करवाया जावे। जो पण्डित इस कार्यको करें उन्हें २००) नकद और भोजन दिया जावे। इनमें जो मुख्य विद्वान् हों उन्हें २५०) दिये जावें। इस तरह ४ पण्डितोंको ८००) और मुख्य पण्डितको २५०) तथा सबका भोजन व्यय २५०) सब मिला कर १३००) मासिक तो विद्वानोंका हुआ। इसके बाद ४ अंग्रेजी साहित्यके विद्वान् रक्खे जावें ४००) उन्हे दिया जावे १००) भोजन व्यय तथा २००) भृत्योंको इस तरह २०००) मासिक यह हुआ। वर्षमें २४०००) हुआ, १०००) वार्षिक यात्राका व्यय। इस प्रकार शान्तिपूर्वक कार्य चलाया जावे तो बहुत कुछ प्रश्न सरल रीतिसे निर्णीत हो जावें। एक आदमी समझ लेवे १ गजरथ यही हुआ। इससे बहुत कालके लिये जैनधर्मके अस्तित्व-की सामग्री एकत्र हो जावेगी।

एक दिन श्री जुगलकिशोरजी मुख्त्यार और पं० परमानन्दजी कलकत्तासे लौट कर आये और कहने लगे कि वीरसेवामन्दिर की नींव दृढ़तम हो गई। कलकत्तावाले बाबू छोटेलालजी तथा बाबू नन्दलालजीकी इस ओर अच्छी दृष्टि है। आप साहित्यके महान् अनुरागी हैं। आप यह चाहते हैं कि मानवमात्रके हृदयमें जैनधर्मका विकास हो जावे। जैनधर्म तो व्यापक धर्म है हम किसीको धर्म देते हैं यही बड़ी भारी भूल है। धर्म तो आत्माकी वह परिणति विशेष-

है जो आत्माको संसार वन्धनसे मुक्त करा देती है। वह परिणति शक्तिरूपसे जीव मात्रमें है।" यह संवाद सुनकर हृदयमें प्रसन्नता हुई।

अनेक समस्याओंका हल—स्त्री शिक्षा

पुरुषवर्गने स्त्री समाजपर ऐसे प्रतिवन्ध लगा रक्खे हैं कि उन्हें मुखको निरावरण करनेमें भी संकोचका अनुभव होता है। कहाँ तक कहा जावे? मन्दिरमें जब वे श्री देवाधिदेवके दर्शन करती हैं तब मुखपर वस्त्रका आवरण रहनेसे वे पूर्ण रूपसे दर्शनका लाभ नहीं ले सकतीं। यद्वा तद्वा दर्शन करनेके अनन्तर यदि शास्त्र प्रवचनमें पहुँच गईं तो वहाँ पर भी वक्ताके वचनोंका पूर्ण रूपसे कर्णों तक पहुँचना कठिन है। प्रथम तो कर्णोंपर वस्त्रका आवरण रहता है तथा पुरुषोंसे दूरवर्ती उनका क्षेत्र रहता है। दैवयोगसे किसीकी गोदमें वालक हुआ और उसने क्षुधातुर हो रोना आरम्भ कर दिया तो क्या कहे? सुनना तो एक ओर रहा वक्ता प्रभृति मनुष्योंके वाग्वाणोंका प्रहार होने लगता है—चुप नहीं करती वच्चोंको? क्यों लेकर आती हैं?....सबका नुकसान करती हैं,... वाहर क्यों नहीं चली जाती..."इन वचनोंको श्रवण कर शास्त्र श्रवणकी जिज्ञासा विलीन हो जाती है। अतः पुरुष वर्गको उचित है कि वह जिससे जन्मा है वह स्त्री ही तो है उसके प्रति इतना अन्याय न करे प्रत्युत सबसे उत्तम स्थान उन्हें शास्त्र-

प्रवचनमें सुरक्षित रखें। उनकी अशिक्षा ही उन्हे सदा अपमानित करती है।

मेरा तो ख्याल है कि, यदि स्त्रीवर्ग शिक्षित हो कर सदाचारी हो जावे तो आज भारत क्या जितना जगत मनुष्योंके गम्य है वह सभ्य हो सकता है। आज जिस समस्याका हल उत्तमसे उत्तम मस्तिष्कवाले नहीं कर सके उसका हल अनायास हो जायगा। इस समय सबसे कठिन समस्या 'जनसंख्याकी वृद्धि किस उपायसे रोकी जाय' है। शिक्षित स्त्रीवर्ग इस समस्याको अनायास हल कर सकता है। जिस कार्यके करनेमें राजसत्ता भी हार मानकर परास्त हो गई उसे सदाचारिणी स्त्री सहज ही कर सकती है। वह अपने पतियोंको यह उपदेश देकर सुमार्गपर ला सकती हैं कि जब बालक गर्भमें आ जावे तबसे आप और हमारा कर्तव्य है कि यह बालक उत्पन्न होकर जबतक ५ वर्षका न हो जावे तबतक विषय वासनाको त्याग देवें। ऐसा ही प्रत्येक स्त्री सभ्य व्यवहार करे इस प्रकारकी प्रणालीसे सुतरां वृद्धि रुक जावेगी। इसके होनेसे जो लाखों रुपया डाक्टर तथा वैद्योंके यहाँ जाता है वह बच जावेगा तथा जो टी० बी के चिकित्सागृह हैं वे स्वयमेव धराशायी हो जावेंगे। अन्नकी जो त्रुटि है वह भी न होगी। दुग्ध पुष्कल मिलने लगेगा। गृहवासकी पुष्कलता हो जावेगी अतः स्त्री समाजको सभ्य बनानेकी आवश्यकता है। यदि स्त्रीवर्ग चाहे तो बड़े बड़े मिलवालोंको चक्रमें डाल सकता है। उत्तमसे उत्तम जो धोतियाँ मिलोंसे निकलती हैं यदि स्त्रियाँ उन्हें पहिनना बन्द कर देवें तो मिलवालोंकी क्या दशा होगी? सो उन्हें पता चल जावेगा। करोड़ोंका माल यों ही बरबाद हो जायेगा। यह कथा छोड़ो आज स्त्री कांच की चूड़ी पहिनना छोड़ दे और उसके स्थानपर चाँदी सुवर्णकी चूड़ी का व्यवहार करने लगे तो चूडीवालोंकी क्या दशा होगी? रोनेको

यह है कि उन पदार्थोंमें निजत्व कल्पनाकर हम किसी पदार्थमें राग करते हैं और जो हमारे रागके विरुद्ध होता है उसे पर मानते हैं तथा उसके वियोगका यत्न करते हैं। इस प्रक्रियाको करते करते अन्तमें इस पर्यायका अन्त आ जाता है अनन्तर जिस पर्यायमें जाते हैं वहाँ भी यही प्रकिया काममें लाते हैं, इस तरह अनन्त संसारके पात्र होते हैं। यथार्थमें न तो अन्य पदार्थ हमारा है और न हम अन्यके हैं तब क्यों उनमें निजत्व कल्पना करते हैं? यही कल्पना दूर करनेके अर्थ आगमाभ्यास है। आगममें तो इनका सुन्दर कथन है कि यदि वह हमारे अनुभवमें आ जावे तो कल्याणमार्ग अति सुलभ हो जावे।

आत्मा नामक एक पदार्थ है उसका अनादि कालसे अजीव पुद्‌गलके साथ सम्बन्ध है। आत्मा चेतना गुणवाला द्रव्य है, पुद्‌गल जड़ है। उसका लक्षण स्पर्श रस गन्ध रूप है—जहाँ ये पाये जावें उसे पुद्‌गल कहते हैं। पुद्‌गलके साथ जीवका ऐसा सम्बन्ध है कि यह जीव उसे निज मान लेता है। निज मान कर उसको सदा रखनेका प्रयास करता है। यदि कोई उसमें बाधा पहुँचाता है तो उसे निज शत्रु मान लेता है। वास्तवमें यह कषाय ही नाना खेल रचता है इसलिये इसके निर्मूल करनेका प्रयत्न करो।

चातुर्मासका समय निकट आ रहा था इसलिए कई स्थानोंके लोग अपने अपने यहाँ चातुर्मास करनेकी प्रेरणा करते थे और मैं संकोचके कारण किसीको अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। परमार्थसे यह हमारे हृदयकी बहुत भारी दुर्बलता है। जहाँ चौमासा करना इष्ट नहीं था वहाँके लोगोंको स्पष्ट मनाकर देनेमें हानि नहीं थी परन्तु मैं ऐसा नहीं कर सका। अन्तमें समाजकी अत्यधिक प्रेरणासे इटावामें ही चातुर्मास करनेका निश्चय कर लिया।

इस वर्ष इटावामें वैसे ही गर्मीका अधिक त्रास था फिर दो आषाढ़ होगये इससे ठीक 'दूबली और दो अषाढ़वाली' कहावत चरितार्थ हो गई। अस्तु, जिस किसी तरह ग्रीष्मकाल व्यतीत हुआ। आकाशमें श्यामल घन-घटा छाने लगी और जब कभी बूंदा-बांदी होनेसे लोगोंको गर्मीकी असह्य वेदनासे त्राण मिला। कहाँ तो वे मुनिराज थे जो जेठ मासकी दुपहरियोंमें पर्वतकी चट्टानोंपर आतापन योग धारण करते थे और कहा मैं जो बुद्धि पूर्वक शीतलसे शीतल स्थान खोजकर उसमें ग्रीष्मकाल वितानेका प्रयास करता हूँ? वस्तुतः शरीरसे ममत्वभाव अभी दूर हुआ नहीं। मुखसे कहना बात दूसरी है और अमलमें लाना बात दूसरी है। यदि शरीरसे ममत्व छूट गया होता तो क्या सर्दी, क्या गर्मी और क्या बारिस? सब एक सदृश ही रहते। चातुर्मासका निश्चय करते समय मनमें यह विचार किया कि अन्यत्रकी अपेक्षा इटावामें रहना ही अच्छा है। कारण कि यहाँ जलवायुकी अनुकूलता है, जनता भी भद्र है। चार मासमें सानन्द अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन करो, गपोड़ावादसे बचो; केवल स्वात्मचिन्तनामें काल लगाओ। क्षयोपशमज्ञान है, ज्ञेयान्तरमें जावे जाने दो पर राग-द्वेषकी मात्रा न हो यही पुरुषार्थ करो, व्यर्थ दुःखी मत होओ।

सिद्धचक्रविधान

आषाढ़ शुक्ला अष्टमी सं० २००७ से सिद्धचक्रविधानका पाठ हुआ। मनोहररूपसे पूजन सम्पन्न हुई परन्तु परिणामोंमे शान्ति किसीके नहीं। केवल गल्पवादमें ही सर्व परिणमन हो जाता है।

अन्तरङ्गकी निर्मलता होना दूर है। इस समय चिन्तन तो इस बात का होना चाहिये कि हमारे ही समान चतुर्गतिरूप संसारमे परि-भ्रमण करनेवाली अनन्त आत्माएं ज्ञानावरणादि कर्म मलको दूर कर आत्माकी शुद्ध दशाको प्राप्त हुई हैं। आत्मामें अशुद्धता पर पदार्थके सम्बन्धसे आती है। जिस प्रकार स्वर्णमें तामा पीतल आदि धातुओंके संमिश्रणसे अशुद्धता आती है उसी प्रकार आत्मामे कर्म-रूप पुद्गल द्रव्यके सम्बन्धसे अशुद्धता आती है। इस अशुद्धताका कारण आत्माकी अनादि कालीन मोह तथा रागद्वेषरूप परिणति है। मोहके कारण यह स्वरूपको भूल कर अपनेको पररूप समझने लगता है। जिस प्रकार शृगालोंकी मांदमें पला सिंहका बालक अपनेको भी शृगाल समझने लगता है। इसी प्रकार मनुष्यादि रूप पुद्गलजन्य पर्यायोंके सम्पर्कमें रहनेवाला जीव अपनेको मनुष्यादि समझने लगता है। मनुष्यादि पर्यायोंके साथ इस जीवकी इतनी घनी आत्मीय बुद्धि हो जाती है कि वह उन्हे छोड़नेमें बड़े कष्टका अनुभव करता है। रागके कारण अन्य अनुकूल पदार्थोंमें इष्ट बुद्धि करता है और द्वेषके कारण अन्य प्रतिकूल पदार्थोंमें अनिष्ट बुद्धि करता है। जिसे इष्ट मान लेता है सदा उसके संयोगकी इच्छा करता है तथा उसके वियोगसे डरता है और जिसे अनिष्ट मान लिया है सदा उसके वियोगकी भावना रखता है तथा उसके संयोगसे डरता है। मोहकी पुट साथमे रहनेसे वह पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समझनेमें असमर्थ रहता है इसलिये जिन कारणोंसे सुख होना चाहिये उन कारणों-से यह दुःखका अनुभव करता है। जैसे किसी मनुष्यकी स्त्री मर गई यहाँ विवेकी मनुष्य तो यह सोचता है कि स्त्रीके निमित्तसे गृहस्थाश्रमकी नाना आकुलताओंका पात्र होना पड़ता था अब स्वयमेव वह सम्बन्ध छूट गया अतः आनन्दका अवसर हाथ आया है और मोही जीव सोचता है कि हाय मैं दुःखी हो गया। तत्त्वदृष्टिसे

विचार करो तो यहाँ दुःखका कारण क्या है? उस जीवके हृदयमे स्त्रीके प्रति जो रागभाव था और मोहके कारण जो वह स्त्रीको सुखका कारण मान रहा था वही तो दुखका कारण था। यदि उसके हृदयमे यह भाव दृढ़ होता कि सुख हमारी आत्माका गुण है स्त्री उसका कुछ सुधार विगाड़ नहीं कर सकती तो उसके मरने पर उसे दुःख नहीं होता। इस तरह मोह जन्य कलुषित परिणतिके कारण यह जीव द्रव्य कर्मोंको ग्रहण करता है और उसके उदयमे पुनः कलुषित परिणति करता है। जिन्होंने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके द्वारा इस विपरीत परिणतिको दूर कर पर द्रव्यसे अपना सम्बन्ध छुड़ा लिया है वे सिद्ध कहलाते हैं। जीवकी यह अचिन्त्य अव्यावाधत्व आदि गुणोंसे युक्त आत्यन्तिक अवस्था है। सिद्ध चक्रका पाठ स्थापित करनेका भाव यही है कि हम उनके गुणोंका स्मरण कर इस बातका प्रयत्न करें कि हम भी उनके समान हो जावें। उनके गुण गानमें ही समय यापन किया और उन जैसी अवस्था हमारी न हो सकी तो इससे क्या लाभ हुआ? आठ दिन तक विधि पूर्वक यह पाठ चला, श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन हवन पूर्ण हुआ। इस आयोजनमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका जमाव अधिक रहता था। पुरुष वर्गकी श्रद्धा न हो सो बात नहीं परन्तु उन्हें व्यवसाय सम्बन्धी कार्योंमे व्यस्त रहनेके कारण अवसर कम प्राप्त हो पाता था। मैंने इन दिनोंमे प्रवचनके अतिरिक्त जन संपर्कसे दूर रहनेका प्रयास किया और निरन्तर यह विचार किया—

और कार्यकी छोड़ो आशा
आतम हित कर भाई रे!
यही सार जगतमें है उत्तम
अन्य सकल भव जाला रे!

परको मान निजातम भूला
सदा भ्रमत भव वासा रे।
कहे सुखी भ्रमसे निजको तूँ
भाँग पियो बौराया रे!
परको दे उपदेश सुखी हुए
मानत निजको साधू रे!
बक बक करत बहुत दिन बीते
करत न निजकी बाता रे।
शिव सुत अब निजको निज मानो
परका कर निरवारा रे।

रक्षाबन्धन और पर्यूषण

श्रावण शुक्ला २ सं० २००७ को १५ अगस्तका उत्सव नगरमें था। सदियोंके बाद भारतवर्ष आजके दिन बन्धनसे मुक्त हुआ है इसलिये प्रत्येक भारतवासीके हृदयमें प्रसन्नताका अनुभव होना स्वाभाविक है। आजके दिन भारतको स्वराज्य मिला ऐसा लोग कहते हैं पर परमार्थसे स्वराज्य कहाँ मिला? जब आत्मा पर-पदार्थके आलम्बनसे मुक्त हो आत्माश्रित हो जावे तब स्वराज्य मिला ऐसा समझना चाहिये। खेद इस बातका है कि इस स्वराज्यकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं जा रही है, हम लोग अपनेको नहीं संभालते संसारको उपदेश देते हैं कि कल्याणमार्ग पर चलो परन्तु हम स्वयं कल्याणमार्ग पर नहीं चलते। अन्यको उपदेश देते हैं कि क्रोध मत करो पर स्वयं क्षमाकी अवलेहना

करते हैं। इस स्थितिमें पारमार्थिक स्वराज्यकी प्राप्ति होना दुर्लभ है।

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा सं० २००७ को रक्षाबन्धन पर्व आया। यह पर्व सम्यग्दर्शनके वात्सल्य अङ्गका महत्त्व दिखलानेवाला है। सम्यग्दृष्टिका स्नेह धर्मसे होता है और धर्म बिना धर्मीके रह नहीं सकता इसलिये धर्मीके साथ उसका स्नेह होता है। जिस प्रकार गौका बछड़ेके साथ जो स्नेह होता है उसमें गौको बछड़ेकी ओरसे होनेवाले प्रत्युपकारकी गन्ध भी नहीं होती उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि धर्मात्मासे स्नेह करता है तो उसके बदले वह उससे किसी प्रत्युपकारकी आकांक्षा नहीं करता। कोई माता अपने शिशुसे स्नेह इसलिये करती है कि यह वृद्धावस्थामें हमारी रक्षा करेगा पर गौका ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती क्योंकि बड़ा होनेपर बछड़ा कहीं जाता है और गौ कहीं। फिर भी गौ बछड़ेकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी भी बाजी लगा देती है। सम्यग्दृष्टि यदि किसीका उपकार करे और उसके बदले उससे कुछ इच्छा रक्खे तो यह एक प्रकारका विनिमय हो गया इसमें धर्मका अंश कहाँ रहा? धर्मका अंश तो निरीह होकर सेवा करनेका भाव है। विष्णुकुमार मुनिने सातसौ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये अपने आपको एकदम समर्पित कर दिया—अपनी वर्षोंकी तपश्चर्यापर ध्यान नहीं दिया और धर्मानुरागसे प्रेरित हो छलसे वामनका रूप धर बलिका अभिमान चूर किया। यद्यपि पीछे चलकर उन्होंने भी अपने गुरुके पास जाकर छेदोपस्थापना की अर्थात् फिरसे नवीन दीक्षा धारण की क्योंकि उन्होंने जो कार्य किया था वह मुनिपदके योग्य कार्य नहीं था तथापि सहधर्मी मुनियोंकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। किसी सहधर्मी भाईको भोजन वस्त्रादिकी कमी हो तो उसकी पूर्ति हो जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

यह लौकिक स्नेह है सम्यग्दृष्टिका पारमार्थिक स्नेह इससे भिन्न रहता है।

सम्यग्दृष्टि मनुष्य हमेशा इस बातका विचार रखता है कि यह हमारा सहधर्मी भाई सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप जो आत्माका धर्म है उससे कभी च्युत न हो जाय तथा अनन्त संसारके भ्रमणका पात्र न बन जाय। दूसरेके विषयमें ही यह चिन्ता करता हो सो बात नहीं अपने आपके प्रति भी यही भाव रखता है। सम्यग्दर्शनके निःशङ्कित आदि आठ अङ्ग जिस प्रकार परके विषयमें होते हैं उसी प्रकार स्वके विषयसे भी होते हैं। रक्षाबन्धन रक्षाका पर्व है, परकी रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं रक्षित हो। जो स्वय आत्माकी रक्षा करनेमें असमर्थ है वह क्या परका कल्याण कर सकता है? रक्षासे तात्पर्य आत्माको पापसे पृथक् करो पाप ही संसारकी जड़ है। जिसने इसे दूरकर दिया उसके समान भाग्यशाली अन्य कौन है?

आज जैन समाजसे वात्सल्य अङ्गका महत्त्व कम होता जा रहा है अपने स्वार्थके समक्ष आजका मनुष्य किसीके हानि लाभको नहीं देखता। हम और हमारे बच्चे आनन्दसे रहें परन्तु पड़ौसकी झोपडीमें क्या हो रहा है इसका पता लोगोंको नहीं। महलमें रहनेवालोंको पासमें बनी झोपड़ियोंकी भी रक्षा करनी होती है अन्यथा उनमें लगी आग उनके महलको भी भस्मसात् कर देती है। एक समय तो वह था कि जब मनुष्य बड़ेकी शरणमें रहना चाहते थे उनका ख्याल रहता था कि बड़ोंके आश्रयमें रहनेसे हमारी रक्षा रहेगी पर आजका मनुष्य बड़ोंके आश्रयसे दूर रहनेकी चेष्टा करता है क्योंकि उसका ख्याल बन गया है कि जिस प्रकार एक बड़ा वृक्ष अपनी छाँहमें दूसरे छोटे पौधेको नहीं पनपने देता है उसी प्रकार बड़ा आदमी समीपवर्ती—शरणागत अन्य मनुष्योंको नहीं

पनपने देता। अस्तु रक्षाबन्धन पर्व हमे सदा यही शिक्षा देता है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात् सब सुखी रहें।

मैं कहनेके लिये तो यह सब कह गया पर सामायिकके बाद अन्तरङ्गमें जब विचार किया तब यही ध्वनि निकली कि परकी समालोचना त्यागो आत्मीय समालोचना करो। समालोचनामें काल लगाना भी उचित नहीं प्रत्युत वह काल उत्तम विचारोंमें लगाओ। आत्माका स्वभाव ज्ञाता द्रष्टा है वही रहने दो उसमें इष्ट अनिष्ट कल्पनासे बचो। अनादि कालसे यही उपद्रव करते रहे पर सन्तुष्ट नहीं हुये। आत्म परिणतिको स्वच्छ रक्खो सो तो करता नहीं संसारका ठेका लेता है। जो मनुष्य आत्मकल्याणसे वञ्चित हैं वे ही संसारके कल्याणमे प्रयत्न करते हैं। संसारमें यदि शान्ति चाहते हो तो सबसे पहले परमें निजत्वकी कल्पना त्यागो अनन्तर अनादिकालसे जो यह परिग्रह पिचाशके आवेशमें अनात्मीय पदार्थों से आत्महितका संस्कार है उसे त्यागो। हम आहारादि संज्ञाओंसे आत्माको तृप्त करनेका प्रयत्न करते हैं यह सर्व मिथ्या धारणा है इसे त्यागो। संतोषका कारण त्याग है उसपर स्वत्व कल्पना करो। प्रतिदिन जल्पवादसे जगत्को सुलझानेकी जो चेष्टा है उसे त्यागो और आपको सुलझानेका प्रयत्न करो। संसारमे धर्म और अधर्म तथा खान और पान यही तो परिग्रह है। लोकमें जिसे पुण्य शब्दसे व्यवहृत करते हैं वह धर्म तुम्हारा स्वभाव नहीं संसारमे ही रखने-वाला है।

धीरे धीरे पर्यूषण पर्व आ गया। चतुर्थीके दिन श्री पंडित झम्मनलालजी आ गये। पं० कमलकुमारजी यहाँ थे ही इसलिये प्रवचनका आनन्द रहा। वृद्धावस्थाके कारण हमसे अधिक बोला नहीं जाता और न बोलने की इच्छा ही होती है। उसका कारण यह है कि जो बात प्रवचनमें कहता हूँ तदनुरूप मेरी चेष्टा नहीं। मैं

दूसरोंसे तो कहता हूँ कि रागादिक दुःखके कारण हैं अतः इनसे बचो पर स्वयं उनमें फँस जाता हूँ। दूसरोसे कहता हूँ कि सर्व प्रकारके विकल्प त्यागो पर स्वयं न जानें कहाँ कहाँके विकल्पोंमें फँसा हुआ हूँ।

पर्यूषण पर्व सालमें तीन बार आता है—भाद्रपद, माघ और चैत्रमे, परन्तु भाद्रपदके पर्यूषणका प्रचार अधिक है। पर्वके समय प्रत्येक मनुष्य अपने अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयास करते हैं और यथार्थमे पूछा जाय तो अभिप्राय की निर्मलता ही धर्म है। आत्माकी यह निर्मलता क्रोधादिक कषायोंके कारण तिरोहित हो रही है इसलिये इन कषायोंको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्रोध मान माया और लोभ ये चार कषाय हैं इनमें क्रोधसे क्षमा, मानसे मार्दव, मायासे आर्जव और लोभसे शौचगुण तिरोहित हैं। ये चार कषाय निकल जावें और उनके बदले 'क्षमा' आदि गुण आत्मामें प्रकट हो जावें तो आत्माका उद्धार हो जावे, क्योंकि मुख्यमें यह चार गुण ही धर्म है। आगे जो सत्यआदि छह धर्म कहे हैं वे इन्हींके विस्तार हैं—इन्हींके अङ्ग हैं। क्रोधको वही जीत सकता है जिसने मान पर विजय प्राप्त करली हो। हम कहीं गये, किसीने सत्कार नहीं किया, हमारी बात पूछी नहीं हमें क्रोध आगया। हमने किसीसे कोई बात कही उसने नहीं मानी हमें क्रोध आ गया कि इसने हमारी बात नहीं मानी इस प्रकार देखते हैं कि हमारे जीवनमे जो क्रोध उत्पन्न होता है उसमे मान प्रायः कारण होता है। इसी प्रकार मायाकी उत्पत्ति लोभसे होती है। हमें आपसे किसी वस्तुकी आकांक्षा है तो उसे पानेके लिये हम इच्छा न रहते हुए भी आपके प्रति ऐसी चेष्टा दिखलावेंगे कि जिससे आपके हृदयमें यह प्रत्यय हो जावे कि यह हमारे अनुकूल हैं। जब अनुकूलताका प्रत्यय आपके हृदयसे दृढ़ हो जावेगा तभी तो

अपनी वस्तु देनेका भाव होगा। इस तरह यह किसीका ठीक है कि 'मानात्क्रोधः प्रभवति माया लोभात्प्रवर्तते' अर्थात् मानसे क्रोध उत्पन्न होता है और लोभसे माया प्रवृत्त होती है। जब आत्मासे क्रोध लोभ भीरुत्व तथा हास्यकी परिणति दूर हो जाती है तो सत्य वचनमें प्रवृत्ति अपने आप होने लगती है। असत्य बोलनेके कारण दो हैं १ अज्ञान और २ कषाय। इनमें अज्ञान मूलक असत्य आत्माका घातक नहीं क्योंकि उसमें परिणाम मलिन नहीं रहते परन्तु कषाय मूलक असत्य आत्माका घातक है क्योंकि उसमें परिणाम मलिन रहते हैं। जब आत्मासे क्रोधादि कषाय निकल गई तब असत्य बोलनेमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्ति हो गई यही संयम है यह निवृत्ति तभी हो सकती है जब लोभ कषायकी निवृत्ति हो जाय तथा यह प्रत्यय हो जाय कि 'आत्मामें सुखकी उत्पत्ति विषयाभिमुखी प्रवृत्तिसे नहीं किन्तु तन्निवृत्तिसे है।' मानसिक विषयोंकी निवृत्ति हो जाना—इच्छाओं पर नियन्त्रण हो जाना सो तप है। जब तक मन स्वाधीन नहीं होगा तब तक उसमें इच्छाएँ उठा करेंगी और इच्छाओंके रहते परिणामोंमें स्थिरता स्वप्नमें भी नहीं आ सकती। जब इच्छाएं घट जावेंगी तब उसके फलस्वरूप त्याग स्वतः हो जावेगा। भोजन करते करते जब भोजन विषयक इच्छा दूर हो जाती है तब भोजनके त्याग करनेमें देर नहीं लगती। क्षुधित अवस्थामें यह भाव होता था कि पात्रमें भोजन जल्दी आवे और क्षुधा विषयक इच्छा दूर हो जानेपर भाव होता है कि कोई बलात् पात्रमें भोजन न परोस दे। त्यागके बाद आकिञ्चन्य दशाका होना स्वाभाविक है। जब पुरातन परिग्रहका त्याग कर दिया और इच्छाके अभावमें नूतन परिग्रह अंगीकृत नहीं किया तब आकिञ्चन्य दशा स्वयमेव होनेकी है ही। और जब अपने पास आत्मातिरिक्त किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रहा—उसमें ममता

परिणाम नहीं रहा तब आत्माका उपयोग आत्मामें ही लीन होगा-यही ब्रह्मचर्य है इस प्रकार यह दश धर्मोंका क्रम है। दश धर्मोंका यह क्रम जीवनमें उतर जावे तो आत्माका कल्याण हो जावे। विचार कीजिये क्षमा मार्दव आदि धर्म किसके हैं और कहाँ हैं? विचार करनेपर ये आत्माके हैं और आत्मामें ही हैं परन्तु यह जीव अज्ञानवश इतस्ततः भ्रमण करता फिरता है। लाखोंका धनी व्यक्ति जिस प्रकार अपनी निधिको भूल दर-दरका भिखारी हो भ्रमण करता है ठीक उसी प्रकार हम भी अपनी निधिको भूल उसकी खोजमें इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं।

परम धर्मको पाय कर सेवत विषय कषाय।
ज्यों गन्ना को पायकर नीमहि ऊँट चबाय॥

जिस प्रकार ऊँट गन्नाको छोड़कर नीमको चबाता है उसी प्रकार संसारके प्राणी परम धर्मको छोड़कर विषयकषायका सेवन करते हैं। उनमें सुख मानते हैं। मोहोदयसे इस जीवकी दृष्टि स्वोन्मुख न हो परकी ओर हो रही है।

पर्वके समय प्रवचन होते हैं। वक्ता अपने क्षायोपशमिक ज्ञान-के आधार पर पदार्थका निरूपण करता है। यहाँ वक्तासे यदि कुछ विरुद्ध कथन भी होता है, तो अन्य समझदार व्यक्तिको समता भावसे उसका सुधार करना चाहिये, क्योंकि शास्त्र प्रवचन धर्मकथा है विजिगीषु कथा नहीं। धर्मकथाका सार यह है कि दश आदमी एकत्र बैठकर पदार्थका निर्णय कर रहे हैं इसमें किसीके जय-पराजयका भाव नहीं है। जहाँ यह भाव है वहाँ वार्तालापमें विषमता आ जाती है। यह विषमता पापका कारण है। वार्तालापके समय वक्ता या श्रोता किसीको यह भाव नहीं होना चाहिये कि हमारी प्रतिष्ठामें बट्टा न लग जावे। समता भावसे

सत्य बातको स्वीकार करना चाहिये और समता भावसे ही असत्य बातका निराकरण करना चाहिये। यहाँ भाद्रपद शुक्ल १० के दिन पण्डितगणोंमें परस्पर कुछ वार्तालापकी विषमता हो गई। विषमताका कारण 'परमार्थसे हमारी प्रतिष्ठामें कुछ बट्टा न लगे' यह भाव था। तत्त्वसे देखो तो आत्मा निर्विकल्प है उसमें यशोलिप्सा ही व्यर्थ है। 'यश तो नामकर्मकी प्रकृति है। यशसे कुछ मिलता जुलता नहीं है। जिस वक्ताने शास्त्रप्रवचनमें यशकी लिप्सा रक्खी उसका २ घंटे तक गन्नेकी नशें खींचना ही हाथ रहा, स्वाध्यायके लाभसे वह दूर रहा इसी प्रकार जिस श्रोताने वक्ताकी परीक्षाका भाव रक्खा या अपनी बात जमानेका अभिप्राय रक्खा उसने अपना समय व्यर्थ खोया। वक्ताका भाव तो यह होना चाहिये कि हम अज्ञानी जीवोंको वीतराग जिनेन्द्रकी सुनाकर सुमार्ग पर लगावें और श्रोताका भाव यह होना चाहिये कि वक्ताके श्रीमुखसे जिनवाणीके दो शब्द सुन अपने विषय कषायको दूर करें।

पर्वके बाद आश्विन कृष्णा प्रतिपदा क्षमावणीका दिन था परन्तु जैसा उसका स्वरूप है वैसा हुआ नहीं। केवल प्रभावना होकर समाप्ति हो गई। परमार्थसे अन्तरङ्गमें शान्तिभावकी प्राप्ति हो जाना यही क्षमा है सो इस ओर तो लोगोंकी दृष्टि है नहीं केवल ऊपरी भावसे क्षमा माँगते हैं, एक दूसरेके गले लगते हैं। इससे क्या होनेवाला है? और खास कर जिससे बुराई होती है उसके पास भी नहीं जाते उससे बोलते भी नहीं, इसके विपरीत जिससे बुराई नहीं उसके पास जाते हैं उसके गले लगते हैं, उसे क्षमावणी पत्र लिखते हैं आदि। यह सब क्या क्षमावणी उत्सवका प्राणशून्य ढाँचा नहीं है?

आश्विन कृष्ण ४ सं० २००७ को मेरे जन्मदिनका उत्सव

था। पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, पं० चन्द्रमौलिजी, पं० पन्नरत्नजी. कवि चन्द्रसेनजी, पं० खुशालचन्द्रजी तथा राजकृष्णजी आदि बाहरसे आये। जयन्ती उत्सवोंमें जो होता है वही हुआ. सबने प्रशंसामें चार शब्द कहे और हमने नीची गरदनकर उन्हें सुना। दूसरे दिन रतनलालजी मादीपुरिया, महावीरप्रसादजी ठेकेदार दिल्ली तथा फीरोजाबादसे छदामीलालजी भी आये। छदामीलालजीने आग्रह किया कि आप फीरोजाबाद आवें। हम कुछ करना चाहते हैं और अच्छा कार्य करेंगे। हम वहाँ एक सुन्दर मन्दिर और एक उद्योग विद्यालय खोलना चाहते हैं। पं० राजेन्द्रकुमारजी तथा खुशालचन्द्रजीने भी इस पर जोर डाला तथा यह आग्रह किया कि वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थके समर्पणका समारोह यहाँ न हो कर फिरोजाबादमें ही हो। मैंने कहा कि अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पणकी बात मैं नहीं जानता पर आप लोगोंका यदि कुछ काम करनेका भाव है और मेरे वहाँ पहुँचनेमें वह फलीभूत होता है तो दीपावली बाद मैं चलूँगा। मेरा उत्तर सुन उन्हें प्रसन्नता हुई।

सब लोग अपने अपने घर गये और पर्यूषणपर्व सम्बन्धी चहल-पहल भी जयन्ती उत्सवके साथ समाप्त हुई। मनमें व्यग्रताका अभाव हुआ तथा निम्नाङ्कित भावना प्रकट हुई—

> चाहत जो मन शान्ति सुख तजहु कल्पना जाल।
> व्यर्थ भरमके भूतमें क्यों होते बेहाल ॥ १ ॥
> यह जगकी माया विकट जो न तजोगे मित्र।
> तो चहुँगतिके बीचमें पावोगे दुख चित्र ॥ २ ॥

इटावासे प्रस्थान

आश्विन कृष्णा ८ सं० २००७ को राजकोटसे डाक्टर और मोहन भाई आये। तत्त्वचर्चाका अच्छा आनन्द रहा। निमित्त उपादान की चर्चा हुई। यद्यपि इस चर्चामें विशेष आनन्द नहीं परन्तु फिर भी लोग यही करते हैं। 'आत्माका कल्याण हो' यह मुख्य प्रयोजन है। वह उपादानकी प्रधानतासे हो या निमित्तकी प्रधानतासे हो पर हो यही मुख्य उद्देश्य है। मेरी समझके अनुसार तो कार्यकी सिद्धिमें न केवल उपादान कुछ कर सकता है और न केवल निमित्त। जब दोनोंकी अनुकूलता हो तभी कार्यकी सिद्धि हो सकती है। कुम्भकारके व्यापारसे निरपेक्ष केवल मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और मृत्तिकासे निरपेक्ष केवल कुम्भकारके व्यापारसे घटकी रचना नहीं हो सकती। दोनों सापेक्ष रह कर ही कार्य उत्पन्न कर सकते हैं।

आश्विन कृष्ण १४ सं० २००७ को फिरोजाबादसे पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य आये। प्रातःकाल ८½ से ९½ तक उनका प्रवचन हुआ। आपकी कथनशैली अच्छी है, उच्च कोटिके विद्वान् हैं, आपने श्लोकवार्तिकके ऊपर भाषा टीका लिखी है। जिसका प्रथम भाग मुद्रित हुआ है। उसको हमने देखा, व्याख्या समीचीन प्रतीत हुई। आपके द्वारा यह अभूतपूर्व कार्य हो गया है।

कार्तिक शुक्ला ६ सं० २००७ के दिन जबलपुरसे बहुतसे मानव आये। सबने आग्रह किया कि जबलपुर चलिये। मैं संकोच वश कुछ निश्चित उत्तर नहीं दे सका किन्तु मनमें यह बात आई कि वहाँ जानेसे जनताका उपकार बहुत हो सकता है अतः जाना

अच्छा है। उस देशमे जानेसे दान अच्छा होगा तथा संस्थाएँ स्थिर हो जावेंगी।

प्रतिदिन प्रातःकाल मन्दिरमें शास्त्रप्रवचन, मध्यान्हमें स्वकीय स्थान पर स्वाध्याय और रात्रिको मन्दिरमें प्रवचन यही क्रम यहाँ पर जब तक रहा चलता रहा। चतुर्मासकी समाप्तिके बाद मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमीको इटवासे भिण्डके लिये प्रस्थान कर दिया। जाते समय अनेक स्त्री-पुरुष आये। १०–११ माह यहाँ रहनेसे लोगोंके हृदयमें मेरे प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होगया था इसलिए जाते समय लोगोंको बहुत दुःख हुआ। मैंने कहा कि यह स्नेह ही संसार बन्धनका कारण है। यदि आप लोगोंने इतने समय तक जैनधर्मका कुछ सार ग्रहण किया है तो उसके अनुसार प्रथम तो किसी पर पदार्थमें इष्ट अनिष्टकी भावना ही नहीं होना चाहिये और यदि कारण वश किसीमें इष्ट अनिष्ट भावना हो भी गई है तो उसके वियोग तथा संयोगमे हर्ष विषादका अनुभव नहीं करना चाहिए। इस विषम संसारमें अनादिसे यह जीव पर पदार्थमें निजत्वकी कल्पना करता है। जिसमें निजत्व मानता है उसे अपनानेकी चेष्टा करता है, उसको किसी प्रकार बाधा न पहुँचे ऐसा प्रयत्न सतत करता है। यदि कोई उसके प्रतिकूल हुआ तो उससे पृथक् होनेकी चेष्टा करता है। बन्धन ही दुःखका मूल है, बन्धन स्नेह-मोहमूलक हैं और मोहपर पदार्थोंको अपना मानना एतन्मूलक है। इस संसार अटवीमें अनन्त काल भ्रमण करते करते आज यह अलभ्य मनुष्य पर्यायका लाभ हुआ है। अथवा यह कथनमात्र है क्योंकि अनन्त वार मनुष्य पर्याय पाया है। पर्याय ही नहीं पाया अनन्तवार द्रव्यमुनि होकर अनन्तवार ग्रैवेयक तक गया जहाँ ३१ सागरकी आयु पाई, तत्त्व विचारमें समय गया किन्तु स्वात्मज्ञानसे वञ्चित रहा। अब अवसर अच्छा है यदि

अन्तरङ्गसे परिश्रम किया जावे तो अनायास भेद-ज्ञानका लाभ हो सकता है। भेदज्ञान वह वस्तु है जिसके होते ही यह आत्मा अनन्त संसारके बन्धको छेद सकता है। भेदज्ञानके अभावमें जो हमारी दशा हो रही है वह हमको विदित है। उसके विना ही हम परको अपना मानते हैं और निरन्तर यही प्रयास करते हैं कि वह पदार्थ हमारे अनुकूल रहे। पदार्थ २ तरहके हैं एक चेतन और दूसरे अचेतन। अचेतन पदार्थ तो जड़ हैं उनमे न तो राग है और न द्वेष है। वह न किसीका भला करते हैं और न किसीका बुरा करते हैं। हम स्वयं अपनी रुचिके अनुकूल उन्हें काल्पनिक बुरा भला मान लेते हैं। इसमें कारण हमारी रुचि भिन्नता है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि सर्व पदार्थ अपने अपने परिणमनसे परिणत होते रहते हैं। कोई कर्ता परिणामन करानेवाला नहीं परन्तु तो भी हमारी ऐसी धारणा बन गई है कि अमुक निमित्त न होता तो यह न होता, क्योंकि लोकमें जो कार्य देखे जाते हैं वे सर्व ही उपादान और निमित्तसे ही आत्म-लाभ करते हैं। आप लोगोंका हित आपकी आत्मा पर निर्भर है परन्तु आप लोगोंने मुझे उसका निमित्त मान रक्खा है इसलिए मेरे वियोगमें आपको दुःखका अनुभव हो रहा है।

जो संसार समुद्रसे है तरनेकी चाह।
भेदज्ञान नौका चढो परकी छोड़ो हाह॥

इटावासे १२ मील चल कर नलियाजी मिली। वहाँ तक बहुत लोगोंका समुदाय रहा। नलियाजीमें दो छोटे-छोटे मन्दिर हैं, दर्शन किये। एक मन्दिरमें प्राचीन प्रतिविम्ब है, बहुत मनोज्ञ है किन्तु हाथ खण्डित है। एक समय ऐसा था जब यवनोंके द्वारा अनेक मन्दिर ध्वस्त किये गये। यवन धर्मानुयायी मूर्तितत्त्वको नहीं

समझते। मूर्तिपूजा उन्हे पसन्द नहीं। न करें पर संसारकी मूर्तियों और मन्दिरोंको ध्वस्त करनेमे कौन सा धर्म है ? बुद्धिमें नहीं आता।

फिरोजाबादकी ओर

श्री क्षुल्लक बलदेवसादजी जिनका दूसरा नाम संभवसागर था तथा क्षुल्लक मनोहरलालजी इटावासे ही साथ हो गये थे। भिण्डमें पहुँचने पर वहाँ जनताने संघका अच्छा स्वगत किया। श्री नेमिनाथ स्वामीके मन्दिरमें श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजीका प्रवचन हुआ। आपने अति सरल शब्दोंमें, आत्मामें जो रागादिक होते हैं उनका विवेचन किया। इसी प्रकरणमें आपने यह भी कहा कि कार्यकी उत्पत्ति सामग्रीसे होती हैं। सामग्रीमे एक उपादान और इतर सहकारी कारण होते हैं जो स्वयं कार्यरूप परिणमे वह तो उपादान है और जो सहायक हो पर तद्रूप परिणमन नहीं करता वह सहकारी होता है। सहकारी अनेक होते हैं। जैसे कुम्भकी उत्पत्तिमें मिट्टी उपादान और कुम्भकारादि सहकारी होते हैं। इन सहकारियोंमें चेतन भी होते हैं और अचेतन भी। सहकारी कारण चाहे चेतन हों चाहे अचेतन, बलात्कारसे कार्यको उत्पन्न नहीं करते किन्तु उनकी सहकारिता अति आवश्यक है। प्रवचन सुन जानता बहुत प्रसन्न हुई। एक दिन आदिनाथ स्वामीके मन्दिरमें भी प्रवचन हुआ।

पिछले समय जब यहाँ आये थे तब पाठशाला चालू करनेका प्रयत्न कुछ लोगोंने किया था परन्तु परस्परके वैमनस्यसे वह

प्रयत्न सफल नहीं हो सका था। अब मार्गशीर्ष शुक्ला ६ सं० २००७ को पाठशालाका उद्घाटन श्री पं० झम्मनलालजीने मङ्गलाष्टक पूर्वक सानन्द कराया। आज श्री राजकृष्णजी, पं० राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री छदामीलालजी आये। सबका उद्देश्य फिरोजाबादमें हीरक जयन्ती महोत्सव तथा वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ समारोहकी स्वीकृति प्राप्त करना था। राजकृष्ण हृदयसे बात करते हैं। पण्डित राजेन्द्रकुमारजी चतुर व्यक्ति हैं। समाजका हित चाहते हैं तथा कार्य भी उसीके अनुरूप करते हैं किन्तु अन्तरङ्ग उनका गम्भीर है। उसका निश्चय करना प्रत्येक व्यक्तिका कार्य नहीं। कुछ हो, जो वह कार्य करते हैं समाजके हितकी दृष्टिसे करते हैं। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागरवाले आये। यह निश्चय हुआ कि अभिनन्दन ग्रन्थका समारोह फीरोजाबादमें हो। हमने यह निश्चय कर लिया कि फिरोजाबादमें उत्सव होनेके बाद सागर जावेंगे।

आज ही हम लोग भिण्ड छोड़कर फूफ आ गये। यह स्थान भिण्डसे ७ मील है। दूसरे दिन फूफसे चल कर चम्बल आये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। ३ बजे चम्बल पार हुए। ½ फर्लाङ्ग पानीमें चलना पड़ा तदनन्तर ३ मील चल कर उदीमें आ गये। स्कूलमें रात्रिको ठहर गये। प्रातःकाल सामायिकका उद्यम किया। इतनेमें श्री क्षुल्लक मनोहरजीने कहा हम खुर्जा जावेंगे। मैंने कहा ठीक है। मनमें विचार आया कि मैं संघका आडम्बर कर लोगोंके संयोग वियोगके समय व्यर्थ ही हर्ष विषादका पात्र बनता हूँ अतः जितने जल्दी बन सके यह संघका आडम्बर छोड़ देना चाहिये। परका समागम सुखद नहीं, क्योंकि परके समागममें अनेक विकल्प होते हैं। विकल्प ही आकुलताके जनक हैं। आत्मामें ज्ञान है उसके द्वारा वह उस विकल्पके अनेक अर्थ स्वरुचिके

अनुकूल लगाता है और कुछ यथार्थ भी लगाता है तथा उनको रखनेकी चेष्टा करता है। समागममें अनिष्ट-इष्ट कल्पना मत करो। इष्टानिष्ट कल्पना अन्तरङ्गसे होती है अत. यदि समागमको नहीं चाहते हो तो अन्तरङ्ग कल्पना त्याग दो। परको इष्ट अनिष्ट माननेकी बात छोड़ो। दोष आपमें देखो तभी सुमार्ग मिलेगा।

पौष कृष्ण ८ सं० २००७ सोमवारको ईसवीय नवीन वर्षका प्रारम्भ हुआ। आज दैनंदिनीके प्रथम पृष्ठ पर लिखा कि 'यदि कश्चित् आत्मा संसारसमुद्रादुद्धर्तुमिच्छति तदास्मिन् यावन्तः पदार्थाः सन्ति तैः सह संसर्गो न कार्यः' अर्थात् यदि कोई आत्मा संसार समुद्रसे उद्धार पानेकी इच्छा करता है तो इसमें जितने पदार्थ हैं उनके साथ संपर्क नहीं करना चाहिये। मनमें विचार आया कि इस वर्षमें यदि शान्तिकी अभिलाषा है तो इन नियमोंका पालन करो—

प्रातःकाल ३½ बजे उठो और १½ घंटा स्वाध्यायमे बिताओ। तदनन्तर सामायिक करो। स्वाध्यायमें पुस्तकोंकी मर्यादा रक्खो—समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार और पुरुषार्थसिद्ध्युपाय...इन पुस्तकोंको णमोकार मन्त्र बनाओ। रात्रिमें ½ घंटा बोलो, ½ शास्त्रश्रवण करो। प्रातःकाल स्वाध्यायके समय किसीसे मत बोलो। यदि बोलो तो जिसका स्वाध्याय कर रहे हो उसी पर बोलो। भोजनकी प्रक्रियाको सरल बनाओ। भृत्यका अभ्यास छोड़ो आत्मीय कार्यका भार परके ऊपर मत डालो। त्यागका अर्थ यह नहीं जो अन्य समाजको भारभूत बनो। सूत्रमें स्वामीने 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' लिखा है तदनुकूल प्रवृत्ति करो। समाज भोजनादि द्वारा तुम्हारा उपकार करती है तो तुमको भी उचित है कि यथायोग्य ज्ञानादि दान द्वारा उसका उपकार करो। यदि

तुम त्यागी न होते तो निर्वाहके अर्थ कुछ व्यापारादि करते, उसमें तुम्हारा काल जाता अतः जो तुम्हारा भोजनादि द्वारा उपकार करे उसका ज्ञानादि उपकार कर उससे उऋण होना चाहिये।

एक बार यहाँ चर्चा उठी कि यह जीव अच्छे बुरे संस्कार पूर्व जन्मसे लाता है। मेरा कहना था कि सब संस्कार पूर्व जन्मसे नहीं लाता, बहुतसे संस्कार वर्तमान संपर्कसे भी उत्पन्न होते हैं। उत्पत्तिके समय मनुष्य नग्न ही होता है और मरणके समय भी नग्न रहता है। मनुष्य जिस देशमें पैदा होता है उसी देशकी भाषाको जानता है तथा जिसके यहाँ जन्म लेता है उसीका आचार उस बालकका आचार हो जाता है। जन्मान्तरसे न तो भाषा लाता है और न आचारादि क्रियाएं। किन्तु जिस कुलमें जो जन्म लेता है उसीके अनुकूल उसका आचरण हो जाता है अतः सर्वथा जन्मान्तर संस्कार ही वर्तमान आचारका कारण है यह नियम नहीं। वर्तमानमें भी कारणकूटके मिलनेसे जीवोंके संस्कार उत्तम हो जाते हैं। अन्यकी कथा छोड़ो पशुओंके भी मनुष्यके सहवाससे नाना प्रकारकी चेष्टाएँ देखी जाती हैं और उन बालकोंमे, जो ऐसे कुलोंमें उत्पन्न हुए जहाँ ज्ञानादिके किसी प्रकारके साधन न थे, उत्तम मनुष्योंके सहवाससे अच्छे संस्कार देखे गये। वे उत्तम विद्वान् और सदाचारी देखे गये। वर्तमानमें जो डा॰ अम्बेडकर है वह विधानसभाका सदस्य है। वह जिस कुलमें उत्पन्न हुआ यद्यपि उसमें यह सब साधन न थे तो भी अन्य उत्तम संपर्क मिलनेके कारण उसकी प्रतिभा चमक उठी। यहाँके जो बालक विलायतमें अध्ययन करने जाते हैं उनके आचरण प्रायः जिस देशके शिक्षकोंके सहवासमें रहते हैं वहींके हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जीवके कितने ही संस्कार पूर्व जन्मसे आते हैं तो कितने ही इस जन्मके वातावरणसे उत्पन्न होते हैं।

पौष कृष्ण ११ सं० २००७ के दिन इन्दौरवाले यात्री आये। आत्म-कल्याणकी लालसासे आदमी यत्र तत्र भ्रमण करते हैं। जैसे गर्मीकी ऋतुमें पिपासातुर हरिण दो घूंट पानीसे लिए इधर-उधर दौड़ता है उसी प्रकार जगत्के मानव भी धर्मकी लालसासे जहाँ तहाँ दौड़ रहे हैं। कोई तीर्थक्षेत्र जाता है तो कोई किसी मुनि क्षुल्लक आदि उत्तम पुरुषोंकी संगतिमें जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म पदार्थ इतना व्यापक है कि प्रत्येक व्यक्ति इसे आत्मीय मानता है। जितने मत संसारमें प्रचलित हैं धर्म ही उनका प्राण है। इसके विना कोई भी मत जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार मनुष्यमें इन्द्रियादि प्राण हैं उसी प्रकार मतमतान्तरोंमें धर्म प्राण है। किन्तु उसकी यथार्थताके विना आज जगत् अनेक संकटोंका पात्र बन रहा है। इसका मूल कारण धर्मके स्वरूपको न समझकर उठनेवाली नाना प्रकारकी कल्पनाएँ हैं। कोई तो पृथिवी विशेषके स्पर्शमें धर्म मानते हैं अर्थात् विशेष स्थान (तीर्थक्षेत्र) का स्पर्श करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है तो कोई पानीके स्पर्शको ही धर्मका साधन मानते हैं अर्थात् अमुक नदी या तडाग आदिके जलका स्पर्श करते—उसमें स्नान करनेसे धर्म मानते हैं और कोई अग्निको ही धर्मका साधन समझ उसकी पूजा करते हैं। परन्तु यथार्थमें धर्म आत्माकी निर्मल परिणति है। निर्मलता कषायके अभाव मे आती है और कषायका अभाव स्वपरके वास्तविक स्वरूपको समझ लेनेसे होता है अतः स्वपरके यथार्थ स्वरूपको समझो। यथार्थ स्वरूपके सामने आत्माको छोड़ पुद्गल या उसके निमित्तसे उत्पन्न विकारको आत्मा न मानो और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त-गुणोंका पुञ्ज जो आत्मा है उसे पृथिवी आदिका विकार मत जानो।

चरणानुयोगके सिद्धान्त अटल हैं। उनका तात्पर्य यही है

कि पर पदार्थोंसे ममता हटाओ। हम लोग पर पदार्थोंका त्याग कर प्रसन्न हो जाते हैं और मनमें सोचते हैं कि हमने वहुत उत्तम कार्य किया। यहाँ परमार्थसे विचार करो कि जो पदार्थ हमने त्यागे वे क्या हमारे थे? आप यही कहेंगे कि हमसे भिन्न थे तव आप जो उनको आत्मीय समझ रहे थे यही महती अज्ञानता थी। यावत् आपको भेदज्ञान न था उन्हें निज मान रहे थे। यही अनन्त संसारके वन्धनका भाव था। भेदज्ञान होनेसे आपकी अज्ञानता चली गई। फिर यदि आप उस पदार्थको दानकर फल चाहते हैं तो दूसरेको अज्ञान वनानेका ही प्रयास है और तुम स्वयं आत्मीय भेदज्ञानको मिटानेका प्रयास कर रहे हो। यह जो दानकी पद्धति है वह अल्पज्ञानियोंके लिये है। भेदज्ञानवाले तो इससे तटस्थ रहते हैं अतः दान लेने देनेका व्यवहार छोड़ो। वस्तु पर विचार करो। आत्मा ज्ञाता द्रष्टा स्वयमेव है। उसमें विकार न आने दो। विकारका अर्थ यह कि ज्ञानदर्शनका कार्य जानना देखना है उसे मोह राग द्वेषसे कलङ्कित मत करो। इसीका नाम मोक्ष है, जहाँ राग द्वेष मोह है वहीं संसार है, जहाँ संसार है वहीं वन्धन है और जहाँ वन्धन है वहीं पराधीनता है।

पौष कृष्ण १३ सं० २००७ को यहाँ मल्लिसागर जी दिगम्बर मुनि आये। आपके आनेका समाचार श्रवण कर वहुत श्रावक श्राविकाएँ आपके लेनेको गये। ११½ वजे आपका शुभागमन हुआ, आपने मन्दिरमें दर्शन किये। हम लोग नित्य नियमके अनुसार सामायिक करनेके लिये बैठ गये। सामायिकके वाद आये मुनि महाराज भी सामायिकके अनन्तर वाहर तख्तपर उपदेश देने लगे। लोगोंने चर्याके लिए प्रार्थना की। फिर क्या था? आप कहने लगे कि किसके यहाँ भोजन करें। किसीके शूद्र जलका त्याग है? दस्सोंके यहाँ भोजन तो नहीं करते? परस्पर जातियोंमें विवाह तो

नहीं करते ? यह सुन भिण्डका एक जैनी बोला—मेरे शूद्र जलका त्याग है। किसके समक्ष लिया ? महाराजने कहा। श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराजके पास नियम लिया था उसने कहा। मुनिराज बोले—अरे वह तो उत्तरका मुनि है, प्रतिमाको स्पर्शकर नियम ले। वह मन्दिरमें गया और प्रतिमा स्पर्श करके आया, आपने यह कार्य कराया। फिर नीचे आया, महाराज पड़गाए गये। आहार देनेवाली औरतके मुखसे यह नहीं निकला कि दस्सोंके घर भोजन नहीं करूँगी। इतने पर महाराज भोजन छोड़कर चले गये। और स्टेशनपर साथके मनुष्योंके यहाँ भोजन किया। ग्राम ग्राममे चन्दा होता है। यहाँसे भी ६०) का चन्दा हो गया। साथमें मोटर है। हर जगह चन्दा होता है। यह दृश्य देख मुझे लगा कि पञ्चम कालका चमत्कार है। अब यही धर्म रह गया है।

पौष शुक्ला २ सं० २००७ को सहारनपुरसे श्री रतनलालजी आये। आप योग्य व्यक्ति हैं। आपको करणानुयोगका अच्छा अभ्यास है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थका आप सरल रीतिसे ज्ञान करा देते हैं। आपने मुख्त्यारी छोड़ दी है तथा युवावस्थामें ब्रह्मचर्य ले रक्खा। आपका स्वभाव सरल है और सरलताके साथ आगमानुकूल प्रवृत्तिपर आपकी दृष्टि रहती है। आपके समागमसे हर्ष हुआ। हम निरन्तर इस प्रकारकी चेष्टा करते रहते हैं कि रागकी सत्तापर विजय प्राप्त कर लेवे परन्तु आज तक हम उसपर विजय प्राप्त न कर सके। इसका मूल कारण यह ध्यानमें आता है कि हमने अभी तक परमे निजत्व कल्पनाको नहीं त्यागा है। अभी तक हम परसे अपनी प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा मान रहे हैं। जहाँ किसी व्यक्तिने कुछ प्रशंसा सूचक शब्दोंका प्रयोग किया वहाँ हम एक दम प्रसन्न हो जाते हैं और निन्दाके शब्दोंका प्रयोग किया कि एक दम अप्रसन्न हो जाते हैं। इसका मुख्य हेतु हमने यही समझा है कि पर हमारा भला

बुरा कर सकते हैं। संसारमें अधिकांश मनुष्य ईश्वरको ही कर्ता-धर्ता मानते हैं, स्वतन्त्र हम कुछ नहीं कर सकते परन्तु इसपर भी पूर्ण अमल नहीं। यदि कोई काम अच्छा बन गया तो अपनेको कर्ता मान लिया। यदि नहीं बना तो भगवान्को यही करना था.... यह कह सब दोष भगवान्के शिर मढ़ दिया। कुछ स्थिर विचार नहीं। यदि इस पिण्डसे छूटे तो शुभाशुभ परिणामोंसे उपार्जित कर्मका प्रभाव है। हम क्या कर सकते हैं? ऐसा ही तो होना था....ऐसा विश्वास अनेकोंका है। यदि उन भले मानवोंसे पूछिये कि वह कर्म कहाँसे आये? तो इसका यही उत्तर है कि वह प्राक्तन कर्मका फल है। इस प्रकार यह संसारकी प्रणाली बराबर चल रही है और चली जावेगी। मोक्षका होना अति कठिन है। मैं तो अपने विषयमें सदा यही अनुभव करता रहता हूँ कि—

सत्तर छहके योगमें गया न मनका मैल।
खाँड़ भरे मुख खात है बिन विवेकके बैल॥

सर्व पदार्थ अपनी अपनी सत्ता लिये परिणमनशील हैं। कोई पदार्थ किसीके साथ तादात्म्य नहीं रखता। जिस पदार्थमें जो गुण व पर्यायें हैं उन्हींके साथ उनका तादात्म्य है। चाहे वह चेतन हो चाहे अचेतन हो। चेतन पदार्थका तादात्म्य चेतनगुण पर्यायके साथ है यह निर्णीत है किन्तु अनादि कालसे मोहका सम्बन्ध आत्माके साथ हो रहा है। मोह पुद्गल द्रव्यका परिणमन है किन्तु जब उसका विपाक काल आता है तब यह आत्मा रागादि रूप परिणमन करता है। आत्मामें चेतना गुण है उसका ज्ञान-दर्शन रूप परिणमन है। ज्ञानगुणका काम जानना है। जैसे दर्पणमें स्वच्छता है। उसमें अग्निका प्रतिबिम्ब पड़ता है किन्तु वह्निमें जो उष्णता और ज्वाला है वह दर्पणमें नहीं है। एवं ज्ञानगुण स्वच्छ है,

उसमें मोहके उदयमें रागादिक होते हैं। वे यद्यपि आत्माको उपादान शक्तिसे ही हुए हैं तथापि मोहजन्य होनेसे नैमित्तिक हैं। यह जीव उन्हें स्वभाव मान लेता है, यही इसकी भूल है। यही भूल अनन्त संसारका कारण है। जिन्हे अनन्त संसारसे पार होना हो वे इस भूलको त्यागें। संसारको निज मत वनाओ और न निजको संसार वनाओ। न तुम किसीके हो और न कोई तुम्हारा है किन्तु मोहके आवेगमे तुम्हें कुछ सूझता नहीं। यह विचार निरन्तर मेरे मनमें घूमता रहता है।

सेठ सुदर्शनलालजीका अत्यन्त आग्रहका था इसलिये पौष शुक्ला १४ को जसवन्तनगर आ गये। यहाँ श्री ताराचन्द्रजी रपरिया, चैनाड़ा मटरूमलजी तथा श्री ख्यालीरामजी आगरा आये थे। सौंरीपुरके लिये ५५०) का चन्दा हो गया। सौरीपुरमे श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरोंके बीच कुछ संघर्ष है। संघर्षकी जड़ परिग्रह है। यद्यपि श्वेताम्बर समाजमे वर्तमान साधुसमागम पुष्कल है और वे लोग पठन-पाठनमें अपना समय लगाते हैं। कई विशिष्ट विद्वान् भी हैं किन्तु न जाने दिगम्बर समाजसे इतना वैमनस्य क्यों रखते हैं। धर्म वह भी अपना जैन मानते हैं और यह भी मानते हैं कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। चारित्रका लक्षण भी रागद्वेषकी निवृत्ति मानते हैं। वस्त्र रखकर भी यही अर्थ करते हैं कि इस परिग्रहमे हमको मूर्छा नहीं। तब समझमे नहीं आता कि दिगम्बर मुद्रासे इतनी घृणा क्यों करते हैं? मूर्तिको सपरिग्रह वनानेमें कोई प्रयत्न शेष नहीं रखते तथा कहते हैं कि यह वीतरागदेवकी मूर्ति है। यह सब पञ्चम कालका महत्त्व है। कल्याणका पथ तो केवल आत्मामें है। जहाँ अन्यकी अणुमात्र भी मूर्च्छा है वहाँ श्रेयोमार्ग नहीं। कषायस्था ही संसारकी जननी है, अन्यकी कथा छोड़ो परमात्मामें

अनुराग भी परमात्मपदका घातक है तब वस्त्रमे मूर्च्छा रखकर अपनेको वीतरागी मानना क्या शोभा देता है। अनादि कालसे इसी मूर्च्छाने आत्माको संसारका पात्र बना रक्खा है।

आत्माकी परिणति दो प्रकारकी हैं—१ विकृति और २ अविकृति। विकृति परिणति ही संसार है। विकृति परिणतिमें ही यह आत्मा परको निज मानता है। और विकृति परिणतिके अभावमे परको पर और आपको आप मानने लगता है। इसीको स्वसमय कहता है। जिस समय आत्मा परसे भिन्न आत्माको मानता है उसी समय दर्शन ज्ञानमय जो आत्मा उसको छोड़ कर पर पदार्थोंमें निजत्वका अभिप्राय चला जाता है—नष्ट हो जाता है किन्तु चारित्रमोहके सद्भावमे अभी उनमें रागादिका संस्कार नहीं जाता। इतना आवश्य है कि उन रागादि भावोका कर्तृत्व नहीं रहता। यही ही अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है—

> कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्यचितो वेदयितृत्ववत्।
> अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः॥

अर्थात् आत्माका स्वभाव कर्तापना नहीं है। जैसे भोक्तृत्व नहीं है। अज्ञानसे आत्मा कर्ता बनता है और अज्ञानके अभावमे नहीं। चेतना आत्माका निज गुण है उसका परिणमन शुद्ध और अशुद्ध के भेदसे दो तरहका होता है। अशुद्ध अवस्थामें यह आत्मा पर पदार्थका कर्ता और भोक्ता बनता है और अज्ञानके अभावमें अपने ज्ञानपनेका ही कर्ता होता है। तदुक्तम्—

'ज्ञानादन्यत्रेदं ममेति चेतना अज्ञानचेतना। सा द्विविधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च।'

अर्थात् ज्ञानसे अतिरिक्तका कर्त्ता आपको मानना यह कर्म

चेतना है और ज्ञानसे अतिरिक्तका भोक्ता अपनेको मानना यही कर्मफलचेतना है। ऐसा सिद्धान्त है कि—

यः परिणमति स कर्ता यः परिणमो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणति क्रिया सा त्रयमपि भिन्न न वस्तुतया॥

इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा जो परिणाम स्वतन्त्र करता है वह परिणाम तो कर्म है और आत्मा उसका कर्ता है तथा जो परिणति होती है वही क्रिया है। ये तीनों परस्पर भिन्न नहीं। जिन्होंने आत्मतत्त्वकी ओर दृष्टि दी उन्होंने पर संयोगसे होनेवाले भावोंको नहीं अपनाया। यही बूटी संसार रोगको नष्ट करनेवाली है। बन्धावस्था दो पदार्थोंके संयोगसे होती है। इस अवस्थामें होनेवाला भाव संयोगज है। वे पदार्थ चाहे पुद्गल हों चाहे जीव और पुद्गल हों। जहाँ सजातीय २ पुद्गल होते हैं वहाँपर एक तरहका भी परिणाम होता है और मिश्र भी होता है। जैसे दाल और चांवलके संयोगसे खिचड़ी होती है। उसका स्वाद न चांवलका है और न दालका। एवं हल्दी चूनामें दोनोंका एक तृतीय रंग हो जाता है। यद्यपि चूना हल्दी पृथक् पृथक् हैं परन्तु लाल रंग दोनोंका है। जिस पदार्थमें चाहे वह चेतन हो चाहे अचेतन, जो गुण और पर्याय रहते हैं वे गुण और पर्याय उसीमें तन्यय हो के रहते हैं। इतना अन्तर है कि गुण अन्वयी रूपसे निरन्तर द्रव्यके साथ तादात्म्य रखता है, और पर्याय क्रमवर्ती होनेके कारण व्यतिरेक रूपसे द्रव्यके साथ तादत्न्य रखता है। स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कहा है—

'परिणमदि जेण दव्व तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तम्।'

जैसे आत्मामें चेतना गुण है और मति श्रुतादि उसकी पर्याय हैं सो चेतना तो अन्वयी रूप है और पर्यायें क्रमवर्ती हैं। पर्याय

क्षणभंगुर हैं और गुण नित्य हैं। यदि पर्यायोंसे भिन्न गुण न माना जावे तो एक पर्यायका भंग होनेपर जो दूसरी पर्याय देखी जाती है वह बिना उपादानके कहाँसे उत्पन्न होती? अतः मानना पड़ेगा कि पर्यायका आधार कोई है। जो आधार है उसीका नाम तो गुण है और उसका जो विकार है वही पर्याय है। जैसे आम्र आरम्भमें हरित होता है। काल पाकर वही पीत हो जाता है। इससे यह सिद्धान्त निर्गत हुआ कि आम्रका रूप हरित अवस्थासे पीत अवस्थामें परिवर्तित हुआ इसीका नाम उत्पाद और व्यय है। सामान्य रूप गुण ध्रौव्यरूप है ही। इस तरह विवेक पूर्वक विकृति परिणतिको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आज लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं पर धर्मके निकट नहीं पहुँच पाते। वह तो उसके ढाँचेमें ही धर्म बुद्धि कर प्रतारित हो रहे हैं। परमार्थसे धर्म वह वस्तु है जो आत्माको संसार बन्धनसे मुक्त कर देता है। उसके बाधक पाप और पुण्य हैं। सबसे महान् पाप मिथ्यात्व है। इसके उदयमें जीव आपको नहीं जानता। पर पदार्थोंमें आत्मीयताकी कल्पना करता है। कल्पना ही नहीं उसके स्वत्वमें अपना स्वत्व मानता है। शरीर पुद्गल परमाणु पुञ्जका एक पुतला है। मिथ्यात्वके उदयमें यह जीव उसे ही आत्मा मान बैठता है और अहर्निश उसकी सेवामें व्यग्र रहता है। यदि कोई कहे भाई! शरीर तो अनित्य है इसके अर्थ इतने व्यग्र क्यों होते हो? कुछ परलोककी भी चिन्ता करो। तत्काल उत्तर मिलता है कि न तो शरीरातिरिक्त कोई आत्मा है और न परलोक है। यह तो लोगोंकी वञ्चना करनेके अर्थ एक जाल पण्डित महोदयों तथा ऋषिगणोंने बना रक्खा है। कहा है—

यावज्जीवं सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

न जन्मन प्राट न च पञ्चतायाः परो विभिन्नेऽवयवे न चान्तः ।
विशन्न निर्यन्न च दृश्यतेऽस्माद्भिन्नो न देहादिह कश्चिदात्मा ॥

चार्वाकका सिद्धान्त है कि पृथिवी जलादिका समुदाय ही एक आत्मा है। जैसे गेहूँ आदि सड़कर मादक शक्ति उत्पन्न कर देते हैं ऐसे ही पृथिव्यादि तत्त्व चेतन शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। शरीरसे अतिरिक्त जीव पदार्थ न तो जन्मसे पहले और न मरणके पश्चात् किसीने देखा है फिर उसके पीछे क्यों पड़ा जाय ?

यहाँसे चल कर सिमरा तथा सिरसागंजमें खास मुकाम कर माघ शुक्ल ४ सं० २००७ को फिरोजावाद पहुँच गये। यहाँ पर श्री आचार्य सूर्यसागरजी महाराजका दर्शन हुआ। आप बहुत ही शान्त तथा उपदेष्टा हैं। आपके प्रवचनसे हमको पूर्ण शान्ति हुई। आपका कहना है परसे सम्बन्ध त्यागो, परसे सम्बन्ध रखना ही संसार की जड़ है। जहाँ परसे सम्बन्ध किया वहाँ मोह हुआ और मोहके होते ही उसमें निजत्व की कल्पना हो जाती है। आपके उपदेशका आत्मा पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा किन्तु श्मशान वैराग्यवत् ही दशा रही। वहीं पर महाराजसे मोह करने लगे। केवल वचन की कुशलता और कायकी क्रियासे महाराजको यह प्रत्यय करा दिया कि हमने आपके उपदेश पर अमल किया। देखनेवाले दर्शक भी हमारी क्रियाको देख कर प्रसन्न हुए—शिष्य हो तो ऐसा हो। परन्तु यह सब नाटकका दृश्य था—अन्तरङ्गमें कुछ भी न था। कल्याणका मार्ग यह नहीं ऐसी चेष्टा केवल स्वात्मवञ्चनामें ही परिणत हो जाती है।

फिरोजाबादमें विविध समारोह

श्री छदामीलालजीने फिरोजाबादमे बहुत भारी उत्सवका आयोजन किया था। इस प्रान्तका यह वर्तमान कालीन उत्सव सबसे निराला था। क्या त्यागी, क्या व्रती, क्या विद्वान्, क्या सेठ, क्या राजनीतिमें काम करनेवाले—सब लोगोंके लिये मेलामें एकत्रित करनेका प्रयास किया था। मेलाका बहुत अधिक विस्तार था। रावटी और तम्बुओंका नगर अपनी अलग शान दिखा रहा था। रात्रिके समय बिजलीके बल्बोंका अनोखा चमत्कार देखनेके लिए अनायास जन-समूह एकत्रित हो जाता था। उत्सवका उद्घाटन उत्तर प्रदेशके तात्कालिक प्रधान मंत्री श्री पन्तजीने किया था। श्री आचार्य सूर्यसागरजी तथा हम लोगोका नगर प्रवेशका उत्सव माघ शुक्ल ५ सं० २००७ को सम्पन्न हुआ था। बहुत अधिक भीड़ तथा जुलूसकी सजावट थी।

इसी समय यहाँ श्री सूर्यसागरजी महाराजकी अध्यक्षतामे व्रती सम्मेलन, श्री सेठ राजकुमारजी सिंह इन्दौरकी अध्यक्षतामें जैन संघ मथुराका अधिवेशन और श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षता में हीरक जयन्ती महोत्सव तथा वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पणका समारोह हुआ था। प्रातःकाल मुख्य पण्डालके सामने धूपमें प्रवचन प्रारम्भ हुआ। मुनिसंघ विराजमान था। बाहरसे ७०–७५ व्रती भी पधारे हुये थे जो यथायोग्य बैठे थे। अपार जनता एकत्रित थी। महाराजने मुझे प्रवचनके लिये बैठा दिया। मैंने कहा कि प्रवचनका अधिकार तो आचार्य महाराजका है। उनके समक्ष मुझे

बोलनेका अधिकार नहीं पर उनकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है—

प्रकरण समयसारके बन्धाधिकारका था। 'रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि' आदि गाथाका अवतरण देते हुये मैंने कहा कि मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरतरूप जो त्रिविध भाव हैं यही शुभाशुभ कर्मबन्धके निमित्त हैं, क्योंकि यह स्वयं अज्ञानादिरूप हैं। यही दिखाते हैं—

जैसे जब यह अध्यवसान भाव होता है कि 'इदं हिनस्मि' मैं इसे मारता हूँ तब यह अध्यवसानभाव अज्ञानमय भाव है क्योंकि जो आत्मा सत् है, अहेतुक है तथा ज्ञप्तिरूप एक क्रियावाला है उसका और रागद्वेषके विपाकसे जायमान हननादि क्रियाओंका विशेष भेदज्ञान न होनेसे भिन्न आत्माका ज्ञान नहीं होता अतः अज्ञान ही रहता है, भिन्न आत्मदर्शन न होनेसे मिथ्यादर्शन रहता है और भिन्न आत्माका चारित्र न होने से मिथ्याचारित्रका ही सद्भाव रहता है। इस तरह मोहकर्मके निमित्तसे मिथ्यादर्शन. मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका सद्भाव आत्मामे है। इन्हींके कारण कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाहरूप बन्ध होता है।

यदि परमार्थसे विचारा जावे तो आत्मा स्वतन्त्र है और यह जो स्पर्श रस गन्ध वर्णवाला पुद्गलद्रव्य है वह स्वतन्त्र है। इन दोनोंके परिणमन भी अनादि कालसे स्वतन्त्र हैं परन्तु इन दोनोंमे जीव द्रव्य चेतन गुणवाला है और उसमें यह शक्ति है कि जो पदार्थ उसके सामने आता है वह उसमें झलकता है—प्रतिभासित होता है। पुद्गलमे भी एक परिणमन इस तरहका है कि जिससे उसमें भी रूपी पदार्थ झलकता है पर मेरेमे यह प्रतिभासित है ऐसा उसे ज्ञान नहीं। इसके विपरीत आत्मामे जो पदार्थ प्रतिभासमान होता है उसे यह भान होता है कि ये पदार्थ मेरे ज्ञानमे आये। यही

आपत्तिका मूल है, क्योंकि इस ज्ञानके साथमे जब मोहका सम्बन्ध रहता है तब यह जीव उन प्रतिभासित पदार्थोंको अपनानेका प्रयास करने लगता है। यही कारण अनन्त संसारका होता है।

प्रत्येक मनुष्य यह मानता है कि पर पदार्थका एक अंश भी ज्ञानमें नहीं आता फिर न जाने क्यों उसे अपनाता है? यही महती अज्ञानता है अतः जहाँ तक संभव हो आत्मद्रव्यको आत्मद्रव्य ही रहने दो। उसे अन्य रूप करनेका जो प्रयास है वही अनन्त संसारका कारण है। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा? जो पर द्रव्यको आत्मीय द्रव्य कहेगा। ऐसा सिद्धान्त है कि जो जिसका भाव होता है वह उसका स्वधन है। जिसका जो स्व है वह उसका स्वामी है अतः यह निष्कर्ष निकला कि जब अन्य द्रव्य अन्यका स्व नहीं तब अन्य द्रव्य अन्यका स्वामी कैसे हो सकता है? यही कारण है कि ज्ञानी जीव परको नहीं ग्रहण करता। मै भी ज्ञानी हूँ अतः मैं भी परको ग्रहण नहीं करूंगा। यदि मैं पर द्रव्यको ग्रहण करूं तो यह अजीव मेरा स्व हो जावे और मैं अजीवका स्वामी हो जाऊंगा। अजीवका स्वामी अजीव ही होगा अतः हमें बलात्कार अजीव होना पड़ेगा परन्तु ऐसा नहीं, मैं तो ज्ञाता द्रष्टा हूँ अतः पर द्रव्यको ग्रहण नहीं करूंगा। जब पर द्रव्य मेरा नहीं तब वह छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे अथवा जिस किस अवस्थाको प्राप्त हो, पर मैं उसे ग्रहण नहीं करूंगा। यही कारण है कि सम्यग्ज्ञानी, धर्म अधर्म अशन पान आदिको नहीं चाहता। ज्ञानमय ज्ञायक भावके सद्भावसे वह धर्मका केवल ज्ञाता द्रष्टा रहता है। जब ज्ञानी जीवके धर्मका ही परिग्रह नहीं तब अधर्मका परिग्रह तो सर्वथा असंभव है। इसी तरहसे न अशनका परिग्रह है और न पानका परिग्रह है क्योंकि इच्छा परिग्रह है ज्ञानी जीवके इच्छाका परिग्रह नहीं। इनको आदि देकर जितने प्रकारके पर

द्रव्यके भाव हैं तथा पर द्रव्यके निमित्तसे आत्मामें जो भाव होते हैं उन सबको ज्ञानी जीव नहीं चाहता। इस पद्धतिसे जिसने सर्व अज्ञान भावोंका वमन कर दिया तथा सर्व पदार्थोंके आलम्बनको त्याग दिया केवल टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावका अनुभव करता है उसके बन्ध नहीं होता। योगके निमित्तसे यद्यपि बन्ध होता है पर वह स्थिति और अनुभागसे रहित होनेके कारण अकिंचित्कर है। जिस प्रकार चूना आदिके श्लेषके विना केवल ईटोंके समुदायसे महल नहीं बनता उसी प्रकार रागादि परिणामके विना केवल मन वचन कायके व्यापारसे बन्ध नहीं होता। अतः प्रयत्न कर इन रागादि विकारोंके जालसे बचना चाहिये।

शरीरादिसे भिन्न ज्ञाता दृष्टा लक्षणवाला स्वतन्त्र द्रव्य हूँ। मेरी जीवनमें जो स्पृहा है वही बन्धका कारण है। अनादिकालसे जीव और पुद्गलका सम्बन्ध हो रहा है इससे दोनों ही अपने अपने स्वरूपसे च्युत हो अन्य अवस्थाको धारण कर रहे हैं।

हेयोपादेय तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान आगमके अभ्याससे होता है परन्तु हम लोग उस ओरसे विमुख हो रहे हैं। श्री कुन्दकुन्द स्वामीने तो यहाँतक लिखा है कि—

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खू सव्वभूदाणि।
देवा हि ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥

अर्थात साधुका चक्षु आगम है, संसारके समस्त प्राणियोंका चक्षु इन्द्रिय है, देवोंका चक्षु अवधिज्ञान है और सिद्ध परमेष्ठीका चक्षु सर्वदर्शी केवलज्ञान है। इसलिए अवसर पाया है तो अहर्निश आगमका अभ्यास करो।

हमारे प्रवचनके बाद महाराजने भी जीवकी वर्तमान दशाका वर्णन किया और यह बताया कि देखो अनन्त ज्ञानका धनी जीव

अज्ञानी होकर ज्ञानकी खोजमें इधर-उधर भटक रहा है। यह जीव अपनी ओर तो देखता ही नहीं है केवल परकी ओर देखता है। यदि अपनी ओर भी देख ले तो इसका कल्याण हो जावे। एक आदमी था, प्रकृतिका भोला था, आत्मज्ञानकी इच्छासे किसी विद्वान्के पास गया और आत्मज्ञानकी भिक्षा मांगने लगा। विद्वान् समझ-दार था इसलिये उसने विचार किया कि यह सीधा है अतः इस तरह नहीं समझेगा। उसने कह दिया कि उत्तरमें एक तालाव है। उसमें एक मगर रहता है, उसके पास जाओ। वह तुम्हें आत्मज्ञान देगा। भोला आदमी वहाँ गया और मगरसे बोला कि तुम आत्म-ज्ञान देते हो? मुझे भी दे दो। मगरने कहा हाँ देता हूँ। अनेकों मानवोंको मैंने आत्मज्ञान दिया है। तुम भी ले जाओ पर एक काम करो मुझे जोरकी प्यास लग रही है अतः सामनेके कुएसे एक लोटा पानी लाकर पहले मुझे पिलाओ पश्चात् पियास शान्त होनेपर तुम्हें आत्मज्ञान दूँगा। आदमीने कहा कि यह मगर रात दिन तो पानीमें रह रहा है फिर भी कहता है कि मैं पिपासातुर हूँ, सामने कूपसे १ लोटा पानी ला दो। यह तो महामूर्ख है। यह क्या आत्मज्ञान देगा? उस विद्वान्ने मुझे वड़ा धोखा दिया। मगरने कहा जिस प्रकार तुम हमारी ओर देख रहो हो उसी प्रकार अपनी ओर भी तो देखो। जिस प्रकार मैं जलमें रह रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी तो अनन्त ज्ञानके बीच रह रहे हो। जिस तरह मुझे कूपके जलकी पिपासा है उसी तरह तुम्हें भी मुझसे आत्मज्ञानकी पिपासा है। भोला आदमी समझ गया और तत्काल चिन्तन करने लगा कि अहो! मैंने आजतक अपने स्वभावकी ओर दृष्टि नहीं दी और दरिद्र वन कर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण किया।

महाराजके प्रवचनके वाद सभा समाप्त हुई। सबने आहार ग्रहण किया। माघ शुक्ला ११ सं० २००७ को मध्याह्नके वाद

१ बजेसे श्री महाराजकी अध्यक्षतामें व्रती सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमे अनेक विवाद ग्रस्त विषयोंपर चर्चा हुई। एक विषय यह था कि यदि कोई त्रिवर्णवाला जैनधर्मकी श्रद्धासे सहित हो और जैनधर्मकी प्रक्रियासे आहार तैयार करे तो व्रती उसके घर भोजन कर सकता है या नहीं? पक्ष-विपक्षकी चर्चाके बाद यह निर्णय हुआ कि जैनधर्मका श्रद्धालु त्रिवर्णवाला यदि जैनधर्मकी प्रक्रियासे आहार बनाता है तो व्रती उसे ग्रहण कर सकता है।

एक विषय था कि क्षुल्लककी नवधा भक्ति होना चाहिये या नहीं? इस विषय पर भी बहुत वाद-विवाद हुआ परन्तु अन्तमें महाराजने निर्णय दिया कि नवधा भक्तिका पात्र मुनि है, क्षुल्लक नहीं। क्षुल्लकको पड़गाह कर पादप्रक्षालन कराना तथा मन वचन काय और अन्न जलकी शुद्धता प्रकट कर आहार देना चाहिये।

एक विषय निमित्त उपादानकी प्रबलताका भी था। इस पर लोगोंने अनेक प्रकारसे चर्चा की। वातावरण कुछ अशान्त सा हो गया परन्तु अन्तमें यही निर्णय हुआ कि जैनागम अनेकान्त दृष्टिसे पदार्थका निरूपण करता है अतः कार्यकी सिद्धिके लिये निमित्त और उपादान दोनों आवश्यक हैं। केवल उपादानसे कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती और न केवल निमित्तसे किन्तु दोनोंकी अनुकूलतासे कार्यकी सिद्धि होती है। यह बात दूसरी है कि कहीं निमित्त प्रधान और कहीं उपादान प्रधान कथन हो पर उसका यह तात्पर्य नहीं कि दूसरेकी वहाँ सर्वथा उपेक्षा हो।

चरणानुयोगके विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले व्रतियोंको महाराजने शान्त भावसे उपदेश दिया कि जैनागममें व्रत न लेनेको अपराध नहीं माना है किन्तु लेकर उसमे दोष लगाना या उसे भङ्ग करना अपराध बताया है अतः 'समीक्ष्य व्रतमादेयमात्तं पाल्यं प्रयत्नतः'

अर्थात् पूर्वापर विचार कर व्रत ग्रहण करना चाहिये और ग्रहण किये हुए व्रतको प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिये। मनुष्य पर्यायका सबसे प्रमुख कार्य चारित्र धारण करना ही है इसलिये यह दुर्लभ पर्याय पा कर अवश्य ही चारित्र धारण करना चाहिये। उन्होंने कहा कि अन्तरङ्गकी बात तो प्रत्यक्ष ज्ञानगम्य है पर बाह्यमे हिंसादि पञ्च पापोंसे निवृत्ति होना सम्यक्चारित्र है। पापोंकी प्रवृत्तिसे ही आज संसार दुःखसे पीड़ित हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ हिंसा झूठ चोरी व्यभिचार और परिग्रहासक्तिके उदाहरण देखनेमें आ रहे हैं। आजका वातावरण ही पञ्च पापमय हो रहा है। इसलिये विवेकी मनुष्यको इस वातावरणसे हट कर अपनी प्रवृत्तिको निर्मल बनाना चाहिये।

इसी व्रती सम्मेलनमे यह भी चर्चा आई कि आज त्यागी छोटी मोटी प्रतिज्ञा लेकर घर छोड़ देते हैं और अपने आपको एकदम पराश्रित कर देते हैं। इस क्रियासे त्यागियोंकी प्रतिष्ठा समाजमे कम होती जा रही है। इस विषयपर महाराजने कहा कि समन्तभद्र स्वामीने परिग्रहत्यागका जो क्रम रक्खा है उसी क्रमसे यदि परिग्रहका त्याग हो तो त्यागी पुरुषको कभी व्यग्रताका अनुभव न करना पड़े। सातवीं प्रतिमा तक न्याय पूर्ण व्यापार करनेकी आगममें छूट है फिर क्यों पहली दूसरी प्रतिमाधारी त्यागी व्यापारादि छोड़ भोजन वस्त्रादिके लिये परमुखापेक्षी बन जाते हैं। यद्यपि आशाधरजीने गृहविरत श्रावकका भी वर्णन किया है पर वह अपने पास इतना परिग्रह रखता है जितनेमे उसका निर्वाह हो सकता है। यथार्थमे पर गृह भोजन १० वीं ११ वीं प्रतिमासे शुरू होता है। उसके पहले जो व्रती पर गृह भोजन सापेक्ष होते हैं उन्हे संक्लेशका अनुभव करना पडता है। पासका पैसा छोड़ दिया और यातायातकी इच्छा घटी नहीं ऐसी स्थितिमे कितने

ही त्यागी लोग तीर्थ यात्रादिके वहाने गृहस्थोंसे पैसेकी याचना करते हैं यह मार्ग अच्छा नहीं है। यदि याचना ही करनी थी तो त्यागका आडम्बर ही क्यों किया? त्यागका आडम्बर करनेके वाद भी यदि अन्तःकरणमे नहीं आया तो यह आत्मवञ्चना कहलावेगी।

महाराजने यह भी कहा कि त्यागीको किसी संस्थावादमें नहीं पड़ना चाहिये। यह कार्य गृहस्थोंका है। त्यागीको इस दल-दलसे दूर रहना चाहिये। घर छोड़ा व्यापार छोडा वाल वच्चे छोड़े इस भावनासे कि हमारा कर्तृत्वका अहंभाव दूर हो और समताभावसे आत्मकल्याण करें पर त्यागी होने पर भी वह वना रहा तो क्या किया? इस संस्थावादके दल-दलमे फँसानेवाला तत्त्व लोकैषणाकी चाह है। जिसके हृदयमे यह विद्यमान रहती है वह संस्थाओंके कार्य दिखा कर लोकमें अपनी ख्याति वढ़ाना चाहता है पर इस थोथी लोकैषणासे क्या होने जानेवाला है? जव तक लोगोंका स्वार्थ किसीसे सिद्ध होता है तव तक वे उसके गीत गाते हैं और जव स्वार्थमें कमी पड़ जाती है तो फिर टक्केको भी नहीं पूछते। इस लिये आत्मपरिणामोंपर दृष्टि रखते हुए जितना उपदेश वन सके उतना त्यागी दे, अधिककी व्यग्रता न करे।

एक वात यह भी कही कि त्यागीको ज्ञानका अभ्यास अच्छा करना चाहिये। आज कितने ही त्यागी ऐसे हैं जो सम्यग्दर्शनका लक्षण नहीं जानते, आठ मूल गुणोंके नाम नहीं गिना पाते। ऐसे त्यागी अपने जीवनका समय किस प्रकार यापन करते हैं वे जानें। मेरी तो प्रेरणा है कि त्यागीको क्रम पूर्वक अध्ययन करनेका अभ्यास करना चाहिये। समाजमे त्यगियोंकी कमी नहीं परन्तु जिन्हें आगमका अभ्यास है ऐसे त्यागी कितने हैं? आगमज्ञानके विना लोकमें प्रतिष्ठा नहीं और प्रतिष्ठाकी चाह घटी नहीं इसलिये त्यागी

उटपटांग क्रियाएँ बता कर भोली भाली जनतामें अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते हैं पर इसे धर्मका रूप कैसे कहा जा सकता है ? ज्ञानका अभ्यास जिसे है वह सदा अपने परिणामोंको तोल कर ही व्रत धारण करता है। परिणामोंकी गतिको समझे बिना ज्ञानी मानव कभी प्रवृत्ति नहीं करता अतः मुनि हो चाहे श्रावक, सबको अभ्यास करना चाहिये। अभ्यासकी दृष्टिसे यदि दश बीस त्यागी एकत्र रह कर किसी विद्वानसे अध्ययन करना चाहते हैं तो गृहस्थ लोग उसकी व्यवस्था कर दे सकते हैं। पर ऐसी भावनावाले हों तब न। व्रती विद्यालय स्थापित होना चाहिये ऐसी माँग देख श्री छदामीलालजीने कहा कि यदि व्रती विद्यायल कहीं स्थापित हो तो हम १५०) मासिक दो वर्ष तक देते रहेंगे। एक दो महाशयोंने और भी २०) २०) ३०) ३०) रुपया मासिक देते रहनेकी घोषणा की।

महाराजने यह भी कहा कि आजका व्रतीवर्ग चाहे मुनि हो चाहे श्रावक, स्वच्छन्द होकर विचरना चाहता है यह उचित नहीं है। मुनियोंमें तो उस मुनिके लिये एकविहारी होनेकी आज्ञा है जो गुरुके सान्निध्यमें रहकर अपने आचार-विचारमें पूर्ण दक्ष हो तथा धर्मप्रचारकी भावनासे गुरु जिसे एकाकी विहार करनेकी आज्ञा दे दें। आज यह देखा जाता है कि जिस गुरुसे दीक्षा लेते हैं उसी गुरुकी आज्ञा पालनमें अपनेको असमर्थ देख नवदीक्षित मुनि स्वयं एकाकी विहार करने लगते हैं। गुरुके साथ अथवा अन्य साथियोंके साथ विहार करनेमें इस बातकी लज्जा या भयका अस्तित्व रहता था कि यदि हमारी प्रवृत्ति आगमके विरुद्ध होगी तो लोग हमें बुरा कहेंगे, गुरु प्रायश्चित देंगे पर एकविहारी होने पर किसका भय रहा ? जनता भोली है इसलिए कुछ कहती नहीं, यदि कहती है तो उसे धर्मनिन्दक आदि कहकर चुप कर दिया जाता

है। इस तरह धीरे धीरे शिथिलाचार फैलता जा रहा है। किसी मुनिको दक्षिण और उत्तरका विकल्प सता रहा है तो किसीको वीसपंथ और तेरहपंथका। किसीको दस्सा वहिष्कारकी धुन है तो कोई शूद्र जल त्यागके पीछे पड़ा है। कोई स्त्री प्रक्षालके पक्षमें मस्त है तो कोई जनेऊ पहिराने और कटी मे धागा वंधवानेमें व्यग्र है। कोई ग्रन्थ मालाओंके सचालक वने हुए हैं तो कोई ग्रन्थ छपवानेकी चिन्तामे गृहस्थोंके घर घरसे चन्दा माँगते फिरते हैं। किन्हींके साथ मोटरें चलती हैं तो किन्हींके साथ गृहस्थ जन दुर्लभ कीमती चटाइयाँ और आसनके पाटे तथा छोलदारियाँ चलती हैं। त्यागी ब्रह्मचारी लोग अपने लिए आश्रय या उनकी सेवामें लीन रहते हैं। 'वहती गङ्गामें हाथ धोनेसे क्यों चूकें' इस भावनासे कितने ही विद्वान् उनके अनुयायी वन आँख मीच चुप वैठ जाते हैं या हाँ में हाँ मिला गुरुभक्तिका प्रमाणपत्र प्राप्त करनेमें संलग्न रहते हैं। ये अपने परिणामोंकी गतिको देखते नहीं हैं। चारित्र और कषायका सम्बन्ध प्रकाश और अन्धकारके समान है। जहाँ प्रकाश है वहाँ अन्धकार नहीं और जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश नहीं। इसी प्रकार जहाँ चारित्र है वहाँ कषाय नहीं और जहाँ कषाय है वहाँ चारित्र नहीं। पर तुलना करनेपर वाजे वाजे व्रतियोंकी कषाय तो गृहस्थोंसे कहीं अधिक निकलती है। व्रतीके लिये शास्त्रमे निःशल्य वताया है। शल्योंमे एक माया भी शल्य होती है। उसका तात्पर्य यही है कि भीतर कुछ रूप रखना और, वाहर कुछ रूप दिखाना। व्रतीमे ऐसी वात नहीं होना चाहिये। वह तो भीतर वाहर मनसा-वाचा-कर्मणा एक हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस उद्देश्यसे चारित्र ग्रहण किया है उस ओर दृष्टिपात करो और अपनी प्रवृत्तिको निर्मल वनाओ। उत्सूत्र प्रवृत्तिसे व्रतकी शोभा नहीं।

महाराजकी उक्त देशनाका हमारे हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा। इसी व्रती सम्मेलनमें एक विषय यह आया कि क्या क्षुल्लक वाहन-पर बैठ सकता है? महाराजने कहा कि जब क्षुल्लक पैसेका त्याग कर चुका है तथा ईर्यासमितिसे चलनेका अभ्यास कर रहा है तब वह वाहन पर कैसे बैठ सकता है? पैसेके लिये उसे किसीसे याचना करना पड़ेगी तथा पैसोंकी प्रतिनिधि जो टिकिट आदि है वह अपने साथ रखना पड़ेगी। आखिर विचार करो मनुष्य क्षुल्लक हुआ क्यों? इसीलिये तो कि इच्छाएं कम हों? यातायात कम हो, सीमित स्थानमे विहार हो। फिर क्षुल्लक बननेपर भी इन सब बातोंमे कमी नहीं आई तो क्षुल्लक पद किस लिये रखा? अमुक जगह जाकर धर्मोपदेश देंगे, अमुक जगह जाकर अमुक कार्य करेंगे? यह सब छल क्षुल्लक होकर भी क्यो नहीं छूट रहा है? तुम्हे यह कषाय क्यों सता रही है कि अमुक जगह उपदेश देंगे? अरे, जिन्हे तुम्हारा उपदेश सुनना अपेक्षित होगा वे स्वयं तुम्हारे पास चले आवेंगे। तुम दूसरेके हितको व्याज बनाकर स्वयं क्यों दौड़े जा रहे हो? यथार्थमें जो कौतुक भाव क्षुल्लक होनेके पहले था वह अब भी गया नहीं। यदि नहीं गया तो कौन कहने गया था 'कि तुम-क्षुल्लक हो जाओ? अपनी कषायकी मन्दता या तीव्रता देखकर ही कार्य कराना था। यह कहना कि पञ्चम काल है इसलिये यहाँ ऐसे होते हैं यह मार्गका अवर्णवाद है। अस्सी तोलेका सेर होता है पर इस पञ्चम कालमें आप पौने अस्सी तोलेके सेरसे किसी वस्तुको ग्रहण -कर लोगे? 'नहीं, यहाँ तो चाहते हो अस्सी तोलेसे रत्ती दो रत्ती ज्यादा ही हो पर धर्माचरणमें पञ्चम कालका छल ग्रहण करते हो। लोग कहते हैं कि दक्षिणके क्षुल्लक तो बैठते हैं? पर उनके बैठनेसे क्या वस्तुतत्त्वका निर्णय हो जावेगा? वस्तुका स्वरूप तो जो है वही रहेगा। दक्षिण और

उत्तरका प्रश्न बीचमें खड़ा कर देना हितकी बात नहीं। अस्तु,

इसके बाद दूसरे दिन श्री भैया साहब राजकुमारसिंह इन्दौरवालोंकी अध्यक्षतामें जैनसंघ मथुराका वार्षिक अधिवेशन हुआ। यह प्रयत्न पं० राजेन्द्रकुमारजीका था। अपार भीड़के बीच उत्सव प्रारम्भ हुआ। अध्यक्ष महोदयका भाषण हुआ। शुभकामनाएँ आदि श्रवण कराई गईं। दूसरे दिन फिर खुला अधिवेशन हुआ। अनेक प्रस्ताव पास हुए। इसके बाद एक दिन श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें हीरक जयन्ती समारोह तथा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पणका समरोह हुआ। विद्वानोंके बाद श्री कालेलकरने हमारे हाथमें ग्रन्थ समर्पण कर अपना भाषण दिया। उन्होंने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की। साथ ही हरिजन समस्या पर बोलते हुए कहा कि यह स्पर्शका रोग जैनधर्मका नहीं हिन्दू धर्मसे आया है। यदि जैनियोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति रही तो मुझे कहना पड़ेगा कि आप लोग नामसे नहीं किन्तु परिणामसे हिन्दू बन जावेंगे। जैनधर्म अत्यन्त विशाल है। उसकी विशालता यह है कि उसमें चारों गतियोंमें जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी हैं वे अनन्त संसारके दुखोंको हरनेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। धर्म किसी जातिविशेषका नहीं। धर्म तो अधर्मके अभावमें होता है। अधर्म आत्माकी विकृत अवस्थाको कहते हैं। जब तक धर्मका विकाश नहीं तब तक सर्व आत्माएँ अधर्म रूप रहतीं हैं। चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र हो, शूद्रमें भी चाहे चाण्डाल हो, चाहे भंगी हो, सम्यग्दर्शनके होते ही यह जीव किसी जातिका हो पुण्यात्मा जीव कहलाता है अतः किसीको हीन मानना सर्वथा अनुचित है।

समारोह समाप्त होनेके बाद आप संध्याकाल हमारे निवास स्थानपर भी आये। मासाहार आदि विषयोंपर चर्चा होती रही।

आपने स्वीकृत किया कि समय बड़ा खराब है। सरकार नवीन है। यदि जनताने पूर्ण सहयोग दिया तो देशकी परिस्थितिको हमारी सरकार संभाल लेगी। अभिनन्दन ग्रन्थके तैयार करने तथा इस विशालरूपमें उत्सव सम्पन्न करानेमें श्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य और पं० खुशालचन्द्र जी साहित्याचार्यको बड़ा श्रम करना पड़ा है। यहां का उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। श्री लाला छदामीलालजीने स्याद्वाद विद्यालयके घाटका जीर्णोद्धार कराने के लिए १००००) दश हजार का दान घोपित किया।

फाल्गुन कृष्ण १ सं० २००७ को आपके यहां हमारा आहार हुआ। आप ३ भाई हैं। आपने अपने मझले भाईका बालक गोद लिया है। आपने २० लाखका दान किया है। एक दो लाखसे ऊपर, मन्दिर बनानेका भी विचार है, जिसकी नीव गिर चुकी है। आप सुशील हैं। जो वादा करते हैं उसे पूर्ण करते हैं। आपने जो मेला भराया उसमें बहुत उदारतासे काम लिया। ७५ व्रती महानुभावों का प्रतिदिन भोजन होता था। पं० कैलाशचन्द्र जी, पं० फूलचन्द्र जी, पं० पन्नालाल जी, पं० खुशालचन्द्र जी, राजकृष्ण जी महेन्द्रकुमार जी आदि अनेक विद्वान् इस मेलामें आये थे। श्रीमन्त वर्ग भी पुष्कल था। मेलाका प्रबन्ध पं० राजेन्द्र-कुमारजी द्वारा बहुत उत्तम रीतिसे हुआ। किसीको कोई कष्ट नहीं होने दिया।

द्वितीयाके दिन श्री पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्यके घर भोजन किया। तदनन्तर श्री नसियाजीके मन्दिरमे आये। थोड़ी देर आरामकर सामायिक किया। तत्पश्चात् १ बजे शिकोहाबादके लिए प्रस्थान किया। प्रस्थानके पूर्व श्री आचार्य महाराजके पास गया तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुये कहा कि तेरा अवश्य कल्याण होगा, तू भोला है तुझसे प्रत्येक मनुष्य अनुचित लाभ उठाना

चाहता है। तेरी अवस्था वृद्ध है अतः अब एक स्थानपर रहकर धर्म साधन कर इसीमें तेरा कल्याण है, धर्म निःस्पृहतामे है।

श्री पं० राजेन्द्रकुमारजी वा श्री छदामीलालजी आदि अनेक सज्जन पहुँचानेके लिये आये। अनेक प्रकारका संलाप हुआ। सबके मुखसे श्री छदामीलालकी प्रशंसाके पोषक वाक्य निकले। मेलामे जबलपुरसे अनेक सज्जन तथा सागरसे सेठ भगवानदासजी आदि अनेक महानुभाव पधारे थे और सबने सागर चलनेकी प्रेरणा की थी इसलिये मनमें एकबार सागर पहुँचनेका निश्चय कर लिया।

स्वर्णगिरिकी ओर

फिरोजाबादसे ६ मील चलकर शिकोहाबादमे ठहर गये। अध्यापिकाके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर मन्दिर बहुत सुन्दर और स्वच्छ है। ५० घर पद्मावतीपुरवालोंके हैं। परस्परमें मैत्रीभाव है। रात्रिको शास्त्रसभा होती है। हम जहाँ पर ठहरे थे वह जैन-पुस्तकालयका स्थान था परन्तु विशेष व्यवस्था नहीं। ज्ञानका आदर नहीं, जो कुछ द्रव्य लोग व्यय करते हैं वह मन्दिरकी शोभामें लगाते हैं। ज्ञानगुण आत्माका है। उसके विकाशमे न द्रव्य लगाते हैं और न समयका सदुपयोग करते हैं। केवल बाह्यमे संगमर्मर आदिका फर्स लगाकर तथा वेदीमें सुवर्णका चित्राम आदि बनवा नेत्रोंके विषयको पुष्ट करते हैं। आत्माका स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है उसको दूषित कर राग और द्वेषके द्वारा किसीको

इष्ट और अनिष्ट मानकर निरन्तर परको अपनाने और न अपनानेमें ही दुःखके पात्र बनते हैं।

फाल्गुन कृष्णा ५ सं० २००७ को वटेश्वर आ गये। यहाँ पर भट्टारकजीके मन्दिरमें ठहर गये। मन्दिर बहुत रम्य और विशाल है। नीचेके भागमें ठहरे। स्नान कर ऊपर आये तथा मूर्तिके दर्शन कर गद्गद हो गये। काले पाषाणकी ४ फुट ऊँची श्री अजितनाथ भगवान्‌की मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। वीतराग भावका उदय जिसके दर्शनसे होता है वह प्रतिमा मोक्षमार्गमें सहायक है। आचार्योंने इसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका बाह्य कारण बताया है। यद्यपि वीतरागता वीतरागका धर्म है और वीतराग आत्मा मोहके अभावमें होता है। किन्तु जिस आत्मामें वीतरागताका उदय होता है, उसकी मुद्रा भी बाह्यमें शान्तरूप हो जाती है— शरीरके अवयव स्वभावसे ही सौम्य हो जाते हैं। यह असम्भव बात नहीं, जिस समय आत्मा क्रोध करता है उस समय उसके नेत्र आरक्त और मुख भयंकर आकृतिको धारण कर लेता है, शरीरमें कम्प होने लगता है, दूसरा मनुष्य देख कर भयवान् हो जाता है। इसी तरह जब इस प्राणीके शृङ्गार रसका उदय आता है तब उसके शरीरका अवलोकन कर रागी जीवोंको रागका उदय हो जाता है। जैसे कालीकी मूर्तिसे भय और हिंसकता झलकती है तथा वेश्याके अवलोकनसे रागादि भावोंकी उत्पत्ति होती है वैसे ही वीतरागके दर्शनसे जीवोंके वीतराग भावोंका उदय होता है। वीतरागता कुछ बाह्यसे नहीं आती। जहाँ राग परिणतिका अभाव होता है वहीं वीतरागताका उदय हो जाता है।

वटेश्वरसे ५ मील चल कर बाह आगये तथा मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। थकानके कारण ज्वर हो गया। अब शारीरिक शक्ति दुर्बल हो गई, केवल कषायसे भ्रमण करते हैं। १ बार भोजन

करनेवालेको मध्याह्नके बाद गमन करना अपथ्य है। वैसे तो नीतिमें कहा है 'अध्वा जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा' अर्थात् मार्ग चलना मनुष्योंका बुढ़ापा लाता है। और मार्ग न चलना घोड़ोंका बुढ़ापा लाता है। यह व्यवस्था प्राचीन ऋषियोंने दी है किन्तु इसका अमल नहीं करते जिसका फल अच्छा नहीं। वाह अच्छा ग्राम है। यहाँके जैनी भी सम्पन्न हैं। यदि लोगोंमें परस्पर सौमनस्य हो जावे तो १ अच्छा छात्रावास चल सकता है। लोगोंसे कहा गया तथा उन्होंने स्वीकार भी किया। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ। उपस्थिति ४० मनुष्य तथा स्त्रियोंकी थी। आगरासे श्रीयुत ख्यालीरामजी तथा एक महाशय और आ गये। प्रवचन हुआ। इस बात पर बल दिया कि यदि इस प्रान्तमें एक छात्रावास हो जावे तो छात्रोंका महोपकार हो। इसके अर्थ २ बजेसे १ सभा बुलाई गई। उपस्थिति ५० के लगभग होगी। अन्ततो गत्वा २ आदमियोंने २ काठा बनवानेका वचन दिया तथा १२००) के लगभग चन्दा हो गया। चन्दा विशेष न होनेका कारण लोगोंकी स्थिति सामान्य थी। फिर भी यथाशक्ति सबने चन्दा दिया। श्री ख्यालीरामजी आगरावालोंने कहा कि यदि तुम लोग ७०००) इकट्ठा करलो तो शेष रुपया हम आगरासे आपको दे देवेंगे। किन्तु यहाँकी जनता अभी उसकी पूर्ति नहीं कर सकती। विश्वास होता है कि यह छात्रावास पूर्ण हो जावेगा। जैनियोंमें दानकी त्रुटि नहीं परन्तु योग्य स्थानोंमें द्रव्यका सदुपयोग नहीं होता। इस प्रान्तमें शिक्षाकी त्रुटि बहुत है। ऐसे स्थानोंमें छात्रावासकी महती आवश्यकता है। यहाँपर ग्रामीण जनता बहुत है। देहातमें शिक्षाके साधन नहीं। मनुष्य इतने वैभवशाली नहीं कि छात्रोंको नगरोंमें भेज सकें। आजकलके समयमें २०) मासिक तो सामान्य भोजनको चाहिये।

तीसरे दिन भी यहाँ प्रवचन हुआ। आज उपस्थिति पिछले दिनोंसे अधिक थी। तहसीलदार, नायब तहसीलदार तथा वकील आदि विशिष्ट लोग आये। बहुतसे पण्डित महोदय भी उपस्थित थे। प्रवचन सुन कर सब प्रसन्न हुए। जैनधर्म तो प्राणीमात्रका कल्याण चाहता है। उसकी बात सुनकर किसे प्रसन्नताका अनुभव न होगा ? केवल आवश्यकता इस बातकी है कि श्रोता सद्भावसे सुने और वक्ता सद्भावसे कहे। फाल्गुन कृष्णा ६ को २ बजे बाद जब यहाँसे सागरमऊ चलने लगे तब यहाँके उत्साही युवकोंने कहा कि यहाँ १ कन्याशाला हो जावे तो उनका बड़ा उपकार हो। मैंने कहा कि करना तो तुमको है चन्दा करो। १५ मिनटमें ४३) मासिकका चन्दा हो गया। ६ मासका चन्दा पहले देनेका निर्णय हुआ। सब लोगोंमें उत्साह रहा। ३॥ बजे यहाँसे चल दिये। १५ युवक सागरमऊतक पहुँचाने आये। यहाँपर १ बुढ़ियाने सबको सायंकालका भोजन कराया। रात्रिको शास्त्रप्रवचन हुआ। यहाँपर बुढ़ियाकी एक लड़की विधवा है। ३० वर्षकी आयु है। नाम जिनमती है, बुद्धिमती है। हमने कहा महावीरजी पढ़ने चली जा। उसने स्वीकार किया कि जाऊँगी। बुढ़िया ने १०) मासिक देना स्वीकार किया। यद्यपि उसकी इतनी शक्ति न थी तथापि उसने देना स्वीकृत किया। उसका कहना था कि मैं अपनी लड़कीको अनाथ क्यों बनाऊँ ? जब तक मेरे पास द्रव्य है उसे दूंगी। लड़की भी सुशीला है। संसारमें अनेक मनुष्य उपकार करने योग्य हैं परन्तु जिनके पास धन है उनके परिणाम यदि तदनुकूल हों तो काम बने पर ऐसा हो सकना संभव नहीं है। यह कर्मभूमि है। इसमें सर्व मनुष्य सदृश नहीं हो सकते।

सागरमऊसे ५ मील चलकर नदगुवाँ आ गये। ग्राम अच्छा है, मन्दिर विशाल है, भट्टारकका बनाया है। इस प्रान्तमें भट्टारकोंने

प्रायः अनेक ग्रामोंमें मन्दिर बनवाये हैं, बड़े बड़े विशाल मन्दिर हैं। एक समय था कि जब भट्टारकों द्वारा जैनधर्मकी महती प्रभावना हुई परन्तु जबसे उनके पास परिग्रहकी प्रचुरता हुई और वे यन्त्र मन्त्र तथा औषध आदिका उपयोग करने लगे तबसे इनका चारित्र भ्रष्ट होने लगा और तभीसे इनका चमत्कार चला गया। अब इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होगई है। कई गद्दियाँ तो टूट गईं और जो हैं उनके भट्टारक समाजमान्य नहीं रहे।

नदगुवाँसे ३ मील चलकर अटेर आ गये। बीचमें २ मील पर चम्बलनदी थी। २ फर्लाङ्गका घाट था। प्रवचन हुआ, मनुष्य संख्या अच्छी थी। सायंकाल ४ बजे सार्वजनिक सभा हुई, जन अजैन सभी आये। सबने यह स्वीकार किया कि शिक्षाके बिना उपदेशका कोई असर नहीं होता अतः सर्वप्रथम हमें अपने बालकोंको शिक्षा देना चाहिए। शिक्षाके बिना हम अविवेकी रहते हैं, चाहे जो हमें ठग ले जाता है, हमारा चारित्रनिर्माण नहीं हो पाता है, हम अज्ञानावस्थाके कारण पशु कहलाते हैं। यद्यपि हम चाहते हैं कि संसारमें सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें परन्तु बोधके अभावमे कुछ नहीं जानते और सदा परके दास बने रहते हैं। ज्ञान आत्माका गुण है परन्तु कोई ऐसा आवरण है कि जिससे उसका विकाश रुका रहता है। शिक्षाके द्वारा वह आवरण दूर हो जाता है।

दूसरे दिन प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। पाठशालाके लिए जनताने उत्साहसे चन्दा दिया परन्तु कुछ आदमी अन्तरङ्गसे देना नहीं चाहते अतः चन्दा देनेमें बीसों तरहके रोड़े अटकाते हैं। इनकी चेष्टासे सत्कार्यमें बहुत क्षति होती है। अटेरसे ५ मील चलकर परतापपुर आये। यहाँ १ चैत्यालय है, ४ घर जैनी हैं, बड़े प्रेमसे शास्त्र श्रवण किया, ३ घर शुद्ध भोजन बना, जिसके यहाँ हमारा आहार हुआ उसने ५१) अटेरकी पाठशालाको दिये। दूसरे घर

श्री संभवसागरजीका आहार हुआ। उसने भी २१) दिये। यहाँके मनुष्य बहुत सज्जन हैं। कई मनुष्योंने अष्टमी चतुर्दशी अष्टाह्निका तथा दशलक्षणके दिनोंमें ब्रह्मचर्यका नियम लिया। परतापपुरसे ५॥ मील चल कर पुरा आये। यह ग्राम १ टीकरी पर बसा है। यहाँ पर १ जिन मन्दिर है। मन्दिरकी मरम्मत नहीं। ४ घर जैनी हैं। सबने अष्टमी चतुर्दशीको ब्रह्मचर्यका नियम लिया। कई ब्राह्मणोंने भी रविवार तथा एकादशीको ब्रह्मचर्य रखनेका प्रण किया। यहाँसे चल कर लावन आये। यहाँ पर २० घर जैनी हैं। १२ गोलालारे और ८ घर गोलसिंगारे हैं। २ जैनमन्दिर हैं। गोलसिंगारे सूरजपाल मन्दिरके प्रबन्धक हैं। आप भिण्डमें रहते हैं। मन्दिरकी व्यवस्था अच्छा नहीं, पूजनका भी प्रबन्ध ठीक नहीं, परस्परमें सौमनस्य नहीं। जो मनुष्य मन्दिरके द्रव्यका स्वामी बन जाता है वह शेषको तुच्छ समझने लगता है और मन्दिरका जो द्रव्य उसके हाथमें रहता है उसे वह अपना समझने लगता है। समय पाकर वह दरिद्र हो जाता है और अन्तमें जनताकी दृष्टिमे उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। अतः मनुष्यताकी रक्षा करनेवालेको उचित है कि मन्दिरका द्रव्य अपने उपयोगमे न लावे। द्रव्य वह वस्तु है कि इसके वशीभूत हो मनुष्य न्यायमार्गसे च्युत होनेकी चेष्टा करने लगता है। न्यायमार्गका अर्थ यही है कि आजीविकाका इस रीतिसे अर्जन करे कि जिसमे अन्यके परिणाम पीड़ित न हो, आत्मपरिणामसे जहाँ संक्लेशताका सम्बन्ध हो जाता है वहाँ पर विशुद्ध परिणामोंका अभाव हो जाता है और जहाँ विशुद्ध परिणामोंका अभाव होता है वहाँ शुद्धोपयोगको अवकाश नहीं मिलता।

लावनसे चल कर बरासो आये। यहाँ पर २ मन्दिर हैं। एक मन्दिर बहुत प्राचीन है। दूसरा उसकी अपेक्षा बड़ा है। बहुत

सुन्दर बना हुआ है। २० फुट की कुरसी होगी। उसके ऊपर धर्मशाला है जिसमे २०० आदमी निवास कर सकते हैं। धर्मशालासे ६ फुट ऊँचाई पर मन्दिर है। मन्दिरके चौकमे ५०० मनुष्य सानन्द शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। मन्दिरमे ३ स्थानों पर दर्शन हैं। विम्ब बहुत मनोहर हैं। १२४४ सम्वत्की प्रतिमा हैं। शिल्पकार बहुत ही निपुण था। विम्बकी मुद्रासे मानों शान्ति टपक रही है। देखते देखते चित्त गद्गद् हो गया। कोई पद्मासन विम्ब है और कोई खड्गासन है। दोनों तरहके विम्ब मनोज्ञ हैं। वर्तमानमे वह कला नहीं। मन्दिर मनोज्ञ है परन्तु वर्तमानमे कोई जैनी विशेषज्ञ नहीं। सामान्य रूपसे पूजनादि कर लेते हैं। यहाँ पर आवश्यकता १ गुरुकुल की है जिसमें १०० छात्र अध्ययन करें।

बरासौसे बीचमें छैकुरी ठहरते हुए मौ आ गये। यहाँ पर ४० घर खरौआ गोलालारोंके हैं, इनमे श्री सुखनीलालजी पुष्कल धनी हैं। आपके द्वारा १ मन्दिर सोनागिरिमें निर्माण कराया गया है। १ धर्मशाला भी आपने वहाँ निर्माण कराई है। आप सज्जन हैं। यदि आपकी रुचि ज्ञानमें हो जावे तो आप बहुत कुछ कर सकते हैं। परन्तु यही होना कठिन है, हो भी जावे असम्भव नहीं। मोह ऐसा प्रबल है कि अपनी उन्नतिके अर्थ समर्थ होते हुए भी यह जीव कुछ नहीं कर सकता। ज्ञान अर्जन करना प्राणीमात्रके लिये आवश्यक है और अवकाश भी प्रत्येकके पास है परन्तु यह मोही इसमे प्रयत्न नहीं करता। इधर उधरकी कथाएँ करके निज समयको बिता देना ही इसका कार्य है।

आज अष्टाह्निकाका प्रथम दिवस अर्थात् अष्टमी थी। मन्दिर में प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। लोगोंमे स्वाध्यायकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम हो रही है। जो है भी वह व्यवस्थित नहीं इसीलिए जीवनभर स्वाध्याय करने पर भी कितने ही लोगोंको कुछ नहीं

आता। स्वाध्याय और उसके फलका विवेचन करते हुए मैंने कहा—वाचना और पृच्छना यह स्वाध्यायके अङ्ग हैं। स्वाध्याय संज्ञा तपकी है। तपका लक्षण इच्छा निरोध है अतएव तप निर्जराका कारण है। वैसे देखा जाय तो स्वाध्यायसे तत्त्वबोध होता है तथा सुननेवाला भी इसके द्वारा बोध प्राप्त करता है। बोधका फल न्याय ग्रन्थोंमें हानोपादानोपेक्षा तथा अज्ञाननिवृत्ति बतलाया है। जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे॥

यहाँ केवलज्ञानका फल उपेक्षा और शेष चार ज्ञानोंका फल हान और उपादान कहा है। अर्थात् हेयका त्याग और उपादेयका ग्रहण है। यहाँ पर यह आशंका होती है कि ज्ञान चाहे पूर्ण हो चाहे अपूर्ण हो उसका फल एक तरहका ही होना चाहिये। तब जो फल केवलज्ञानका है वही फल शेष चार ज्ञानोंका होना चाहिये। इसीसे श्री समन्तभद्राचार्यने शेष चार ज्ञानका फल वही लिखा है—'पूर्वा वा।' यहाँ पर यह बात उठती है कि उपेक्षा तो मोहके अभावमें द्वादश गुणस्थानमें हो जाती है और केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थानमें होता है अतः केवलज्ञानका फल उपेक्षा उचित नहीं और शेष चार ज्ञानका फल 'आदान हान भी उचित नहीं क्योंकि आदान और हान मोहके कार्य हैं इससे ज्ञानका फल अज्ञान निवृत्ति ही है।

मौ से ४ मील चलकर असौना आये। यहाँ ३ घर जैनियोंके हैं, १ छोटा सा बरंडा है। उसीमें जिनेन्द्रदेवके ३ छोटे बिम्ब हैं। ग्राम अच्छा है। यहाँपर गेँहू अच्छा उत्पन्न होता है। सब लोग सुखी हैं। हमारे साथ १० आदमी थे, ग्रामवासियों ने सबको

भोजन कराया। ग्रामीण जन बहुत ही सरल व उदार होते हैं। इनमें पापाचारका प्रवेश नहीं होता। ये विषयोंके लोलुपी भी नहीं होते। इसके अनुकूल कारण भी ग्रामवासियोंको उपलब्ध नहीं होते अतः उनके संस्कार अन्यथा नहीं होते। यहाँ १ बजेसे प्रवचन हुआ। ग्रामके बहुत मनुष्य आये। सुखपूर्वक शास्त्र-श्रवण किया। मेरी बुद्धिमें तो आता है कि इस आत्माके अन्तर्गत अनेक सामर्थ्य हैं परन्तु अपनी अज्ञानतासे यह उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता। यहाँसे चलकर मगरौल ठहर गये और मगरौलसे प्रातः ६॥ बजे सौंड़ा ग्रामके लिये चल दिये। मार्गमें दोनों ओर गेहूँकी उत्तम कृषि थी। २ मील चलकर १ अटवी मिली। १ मील बराबर अटवी रही। यहाँपर करदी लकड़ीका घना जंगल था परन्तु दतिया सरकार ने बेच दिया, इससे लकड़ी काट दी गई। अब नाम मात्र अटवी रह गई है। यहाँ, अटवीके नीचे बहुत कोयला बनता है। यहाँसे १ मील चलकर काली-सिन्धु नदी मिली। बहुत वेगसे पानी बहता है। १ स्थानपर ऊपरसे जल प्रपात पड़ता है। नीचे एक बहुत भारी कुण्ड है। पत्थरकी बहुलता होनेसे कुण्डके चारों ओर दहलानें बनी हैं। कई मन्दिर हैं। एक मन्दिर महादेवजीका है। अनेक घाट बने हुए हैं। पानी अत्यन्त स्वच्छ तथा पीनेमें स्वादिष्ट है। शतशः स्त्री और मनुष्य स्नान करते हैं। स्थान अत्यन्त रम्य और चित्ताकर्षक है। ऐसे स्थान पर यदि कोई धर्मध्यान करे तो बहुत ही उपयोग लगे। परन्तु वर्तमानमें लोगोंकी इस तरहकी विषम परिस्थिति है कि वे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें ही अहर्निश निमग्न रहते हैं तथा व्यग्रताके कारण प्रसन्नतासे वञ्चित रहते हैं।

सौंड़ामें १० बजे पहुँच स्नानादिसे निवृत्त हो रामदयाल छोटेलालजी खरौआके यहाँ भोजन किया। आगामी दिन मेघका प्रकोप अधिक था अतः प्रातःकालका प्रयाण स्थगित कर सौंड़ामें

ही १ घण्टा स्वाध्याय किया। तदनन्तर भोजन कर सामायिक क्रिया और आकाशको निर्मल देख आगेके लिये चल पड़े। बीचमें बस्मी और जहला ग्राममें ठहरते हुए रामपुरा आ गये। यहाँ पर १ घर जैसवाल जैनका है। इनके घरमें १ चैत्यालय है। नीचे मकान है, ऊपर अटारीमें चैत्यालय है। बहुत स्वच्छ है। श्री जीका विम्ब भी निर्मल है। हमारा भोजन इन्हींके घर हुआ। मध्यान्हकी सामायिकके बाद २ मील चल कर १ साधुके स्थान पर ठहर गये। साधु महन्त तो इन्द्रगढ़ गये थे। उनका शिष्य था जो भद्र मनुष्य था। बड़े प्रेमसे स्थान दिया। मुझे अनुभव हुआ कि अन्य साधुओंमें शिष्टता होती है—आतिथ्य सत्कार करनेमें पूर्ण सहयोग करते हैं। जैनधर्म विश्वधर्म है। प्राणीमात्रके कल्याणका कारण है परन्तु उसे आजकलके मनुष्योंने अपना धर्म समझ रक्खा है। किसीको उच्च दृष्टिसे नहीं समझते। धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो आत्मासे बाह्य उसका अस्तित्व पाया जावे। वह तो कषायके अभावमें आत्मामें ही व्यक्त होता है।

रामपुरासे चल कर सेंतरी ठहरे और वहाँसे ५ मील चल कर इन्द्रगढ़ आ गये। ग्रामके चारों ओर प्राचीन कोट है। ग्रामके बाहर शीतला देवीका मन्दिर था उसीमें ठहर गये। इन्द्रगढ़से भड़ौल, कैती तथा जुजारपुर ठहरते हुए चैत्र कृष्ण १ सं० २००७ को सोनागिर आ गये। आनेमें विलम्ब हो जानेसे आज पर्वत पर वन्दनाके लिये नहीं जा सके। जनता बहुत एकत्रित थी। सायंकाल सामायिकादि क्रियाके अनन्तर जनता आ गई। पञ्चास्तिकायका स्वाध्याय किया। बहुत ही अपूर्व ग्रन्थ है। इसका प्रमेय बहुत ही उपयोगी है। मूलकर्ता श्री कुन्दकुन्द महाराज हैं। इस ग्रन्थकी वृत्ति श्री अमृतचन्द्र सूरि द्वारा बनाई गई है जिससे मनों अमृत ही टपकता है। चैत्र कृष्ण २ को श्री १०८ विमलसागरजी आये।

आप बहुत ही उत्तम विचारके मनुष्य हैं। इनके गुरु बहुत ही सरल हैं, कुछ पढ़े नहीं हैं परन्तु अपने आचरणमें निष्णात हैं। मेरा तो यह ध्यान है कि सर्वथा आगमके जाननेसे ही आचरण होता हो यह नियम नहीं। ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं जिन्हें आगमका अंशमात्र भी ज्ञान नहीं और अहिंसादि व्रतोंका सम्यक् पालन करते हैं। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इस सूत्रको बाँच नहीं सकते परन्तु फिर भी इस हिंसासे अपनी आत्माको रक्षित रखते हैं। इसी प्रकार 'असदभिधानमनृतम्' इस सूत्रको पढ़ नहीं सकते फिर भी मिथ्याभाषण कभी नहीं करते। 'अदत्तादानमस्तेयम्' इस सूत्रकी व्याख्या आदि कुछ नहीं जानते किन्तु स्वप्नमें परायी वस्तुके ग्रहणके भाव नहीं होते। 'मैथुनमब्रह्म' इसके आकारको नहीं जानते किन्तु स्वकीय परिणतिमें स्त्रीविषयक भोगका भाव नहीं होता। एवं 'मूर्च्छा परिग्रहः' इसका अर्थ नहीं जानते फिर भी पर पदार्थोंमें मूर्च्छा नहीं करते। इससे सिद्ध हुआ कि आगममें जो लिखा गया है वह आत्माके विशिष्ट परिणामोंका ही शब्द रचनारूप विन्यास है।

श्री ब्रह्मचारी छोटेलालजी तथा भगत सुमेरुचन्द्रजी भी यहाँ आ गये जिससे मुझे परम हर्ष हुआ। इनके साथ चतुर्थीको सानन्द वन्दना की। यह क्षेत्र अत्यन्त रम्य और वैराग्यका उत्पादक है। श्री चन्द्रप्रभके मन्दिरके सामने सङ्गमर्मरके फर्ससे जडा हुआ एक बहुत बड़ा रमणीय चबूतरा है। सामने सुन्दर मानस्तम्भ है। चबूतरा इतना बड़ा है कि उसपर ५ सहस्र मनुष्य सानन्द धर्म श्रवण कर सकते हैं। यहाँसे दृष्टिपात करनेपर पर्वतकी अन्य काली-काली चट्टानें बहुत भली मालूम होती हैं। प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जब लाल लाल प्रभा सङ्गमर्मरके श्वेत फर्सपर पड़ती है तब बहुत सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। मन्दिरके अन्दर पूजन

आदिकी सुन्दर व्यवस्था है किन्तु यह सब होते हुए भी तीर्थक्षेत्रों पर ज्ञानार्जनका कोई साधन नहीं। केवल धनिकवर्ग, अ.ना रुपया वाह्य सामग्रीकी सजावटमें व्यय करता है। इसीमें वह अपना प्रभुत्व मानता है। प्रतिवर्ष मेलामें हजारों व्यक्ति आते हैं पर किसीके भी यह भाव नहीं हुए कि यहाँ पर १ पण्डित स्वाध्याय करनेके लिये रहे, हम इसका भार वहन करेंगे। केवल पत्थर आदि जड़वाकर ऊपरी चमक दमकसे प्राणियोंके मनको मोहित करनेमे रुपयेका उपयोग करते हैं। प्रथम तो इन वाह्य वस्तुओंके द्वारा आत्माका कुछ भी कल्याण नहीं होता। द्वितीय कल्याणका मार्ग जो कषायकी कृशता है सो इन वाह्य वस्तुओंसे उसकी विपरीतता देखी जाती है। कृशता और पुष्टतामें अन्तर है। विषयोंके सम्बन्धसे कषाय पुष्ट होती है और ज्ञानसे विषयोंमें प्रेम नहीं होता सो इन क्षेत्रोंमें ज्ञान साधनका एकरूपसे अभाव है।

पञ्चमीके दिन पुनः पर्वतपर जानेका भाव हुआ परन्तु शारीरिक शक्तिकी शिथिलतासे सब मन्दिरोंके दर्शन नहीं कर सका। केवल चन्द्रप्रभ स्वामीके दर्शनकर सुखका अनुभव किया। पश्चात् २ घण्टा वहीं प्रवचन किया। मैंने कहा—मैं तो कुछ जानता नहीं परन्तु श्रद्धा अटल है कि कल्याणका मार्ग केवल आत्मतत्त्वके यथार्थ भेदज्ञानमें है। भेदज्ञानके फलसे ही आत्मा स्वतन्त्र होती है स्वतन्त्रता ही मोक्ष है। पारतन्त्र्य निवृत्ति और स्वातन्त्र्योपलब्धि ही मोक्ष है। मोक्षमार्गका मूल कारण पर पदार्थकी सहायता न चाहता है। कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे चला आया है उसका छूटना परिश्रम साध्य है। परिश्रमका अर्थ मानसिक कायिक वाचनिक व्यापार नहीं किन्तु आत्मतत्त्वमे जो अन्यथा कल्पना है उसको त्यागना ही सच्चा परिश्रम है। त्याग विना कुछ सिद्धि नहीं अतः सबसे पहले अपना विश्वास करना ही मोक्षमार्गकी सीढ़ी

हैं। विश्वासके साथ ज्ञान और चारित्रका भी उदय होता है क्योंकि ये दोनों गुण स्वतन्त्र हैं अतः उसी कालमें उनका भी परिणमन होता है। हमे आवश्यकता श्रद्धागुणकी है परन्तु वह श्रद्धा, सामान्य विशेष रूपसे जब तक पदार्थोंका परिचय न हो तब तक नहीं होती।

सप्तमीके दिन नीचे लश्करवालोंके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। उपस्थिति अल्प थी परन्तु जितने महानुभाव थे विवेकी थे। शान्तिसे सब लोगोंने शास्त्रश्रवण किया। पश्चात् स्थानपर आये व चर्याके लिये गये। एक स्थानपर चर्या की। लोग निरन्तर चर्या करानेकी इच्छा करते हैं परन्तु विधिका बोध नहीं। परमार्थसे चर्या तो उसके यहाँ हो सकती है जो स्वयं शुद्ध भोजन करे। जिनके शुद्ध भोजनका नियम नहीं उनके यहाँ भोजन करना आम्नायके प्रतिकूल है। परन्तु हम लोगोंने तो केवल शास्त्र पढ़ना सीखा है उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना नहीं अतः हम स्वयं अपराधी हैं। उचित तो यह था कि हम उनको प्रथम उपदेश करते पश्चात् उनकी प्रवृत्ति देखते। यदि वह अनुकूल होती तो उनके यहाँ भोजन करते अन्यथा स्थानान्तर चले जाते। अथवा यह बात विदित हो जाती कि इस घरमें भोजन हमारे उद्देश्यसे बनाया गया है तो अन्तराय कर चले जाते। केवल गल्पवादसे कुछ तत्त्व नहीं। हम गल्पवादके भण्डार हैं—करनेमें नपुंसक हैं। जब हम स्वयं आगमानुकूल चलनेमें असमर्थ हैं तब अन्यको उपदेश क्या देवेंगे? अथवा देवें भी तो उसका क्या प्रभाव जनतापर हो सकता है? जो जल स्वयं अग्नि सम्बन्धसे उष्णावस्था धारण किये है क्या वह जल शीतलता उत्पन्न करेगा? कदापि नहीं...सोनागिरिमें आठ दिन रहा।

बरुआसागरमें ग्रीष्म काल

चैत्र कृष्णा ६ संवत् २००७ को १ बजे श्री सिद्धक्षेत्र स्वर्ण गिरिसे दतियाके लिये प्रस्थान कर दिया। ५ बजे डांक बंगलामें ठहर गये। बंगलामें जो चपरासी था वह जातिका ब्राह्मण था, बहुत निर्मल मनुष्य था, निर्लोभी था। उसने हमारे प्रति शिष्ट व्यवहार किया। वहाँ पर रात्रिभर सुखपूर्वक रहे। यह स्थान सोनागिरिसे ७½ मील है। धूपका वेग बहुत था अतः मार्गमें बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा। शरीरकी शक्ति हीन थी किन्तु अन्तरङ्गकी बलवत्तासे यह शरीर इसके साथ चला आया। तत्त्वदृष्टिसे वृद्धावस्था भ्रमणके योग्य नहीं। दौलतरामजीने कहा है 'अर्धमृतक सम बूढ़ापनौ कैसे रूप लखे आपनौ' पर विचार कर देखा तो वृद्धावस्था कल्याण मार्गमें पूर्ण सहायक है। युवावस्थामें प्रत्येक आदमी बाधक होता है। कहता है—भाई! अभी कुछ दिन तक संसारके कार्य करो पश्चात् वीतरागका मार्ग ग्रहण करना। इन्द्रियाँ विषय ग्रहणकी ओर ले जाती हैं, मन निरन्तर अनाप सनाप संकल्प विकल्पके चक्रमें फँसा रहता है। जब अवस्था वृद्ध हो जाती है तब चित्त स्वयमेव विषयोंसे विरक्त हो जाता है।

दूसरे दिन प्रातः ६½ बजे डाक बंगलासे ४½ मील चलकर एक नदीके पार महादेवजीके मन्दिरमें ठहर गये। पास ही जल कूप था। मन्दिरकी अवस्था कुछ जीर्ण है परन्तु पासमें ग्राम न होनेसे इसका सुधार होना कठिन है। यहाँ पर चिरगाँवसे २ आदमी आये और वहाँ चलनेके लिये बहुत आग्रह करने लगे। हमने स्वीकार कर लिया और कहा कि यदि झाँसी आ जाओगे

तो आपके साथ अवश्य चलेंगे। सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए तथा घर चले गये। हम लोगोंने भोजन किया तदनन्तर सामायिकसे निवृत्त हो १ घण्टा वनारसीविलासका अध्ययन किया। बहुत ही सुगम रीतिसे पदार्थका निरूपण किया है। पुण्य पाप दोनोंको दिखाया है। पुण्यके उदयमें ऐंठ और पापके उदयमे दीनता होती है। दोनों ही आत्माके कल्याणमें वाधक हैं। अतः जिन्हें आत्मकल्याण करना है वे दोनोंसे ममता भाव छोड़ें। काञ्चन कालायसकी बेड़ीके समान दोनों ही वन्धनके कारण हैं। मनुष्य जन्मकी सार्थकता तो इसीमें है कि दोनों वन्धन तोड़ दिये जावें। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ वजे चलकर ८ वजे करारीगाँवके वनमें सड़कके ऊपर निवास किया। यहाँ झाँसीसे गुलावचन्द्रजी आ गये। उन्होंने भक्ति पूर्वक आहार दिया। यहाँसे ३ वजे चल कर ४ मील पर झाँसीके वाहर नत्थू मदारीका बँगला था उसमें ठहर गये। सानन्द रात्रि व्यतीत की। प्रातः ६½ वजे चलकर ८ वजे झाँसी आ गये और स्नानादि कर श्री मन्दिरजीमें प्रवचन किया। पश्चात् श्री राजमल्लजीके यहाँ भोजन हुआ।

यहाँ राजमल्ल एक प्रतिभाशाली विद्वान् है। धर्ममें आपकी रुचि अच्छी है। आप मन्दिरमें अच्छा काल लगाते हैं। स्वाध्याय करानेमें आपकी बहुत रुचि है। आपके भाई चाँदमल्ल तो एक प्रकारसे पण्डित ही हैं। आपका अधिक काल ज्ञानार्जनमें ही जाता है। आप लोगोंने १ मारवाड़ी मन्दिरका जो मारवाड़ी पंचायतके नामसे प्रसिद्ध है निर्माण कराया है। यहाँ पर श्री मक्खनलाल जी खण्डेलवाल भी हैं। आप १ धर्मशाला वनवा रहे हैं। उसमें १ कलाभवन भी खोल रहे हैं। आपका विचार विशेष दान करनेका है। एक कोठी जिसकी आमदनी ५०) मासिक है दानमे देना चाहते हैं। आपका विचार अति उत्तम है परन्तु अभी कार्यमें परिणत नहीं

हुआ। अनेक मनुष्य इस कार्यमें विघ्नकर्ता भी हैं परन्तु मक्खनलाल जी हृदयके स्वच्छ हैं। आपने जो प्रतीज्ञा की है उसे पूर्ण करेंगे ऐसी मेरी धारणा है। होगा वही जो वीरप्रभुने देखा है।

चैत्र कृष्ण १२ सं० २००७ को सीपरी गये। वहीं प्रवचन हुआ जनता अल्प संख्यामें थी। यहाँपर श्री स्व० मूलचन्द्रजीका एक बड़ा वाड़ा है। जिसमें ५००) मासिक भाड़ा आता है आप बहुत ही विवेकी थे। यहाँ आते ही पिछले दिन स्मरणमें आगये जब हम महीनों उनके सम्पर्कमें रहते थे। अस्तु, अब आपके २ नाती हैं। पुत्र श्रेयांसकुमार बहुत ही भद्र तथा योग्य था परन्तु वह भी कालके गालमें चला गया। पुत्रकी धर्मपत्नी बहुत कुशल है। उसने यहाँ धर्मसाधनके लिए एक चैत्यालय भी बनवा लिया। प्रतिदिन पूजा स्वयं करती है। २ बालक हैं, उन्हे पढ़ाती हैं—दोनों योग्य हैं। आशा है थोड़े ही कालमें घरकी परिस्थिति संभाल लेंगे। संभव है काल पाकर इनकी प्रभुता सर्राफके सदृश हो जावे।

अगले दिन ७ बजे चलकर ८ बजे सदर बाजार आगये। यहाँपर ½ घण्टा स्वागतमें गया। कन्याओं द्वारा स्वागत गीत गाया गया, एक छात्राने बहुत ही सुन्दर तबला बजाया। उसका कण्ठ भी मधुर था। पश्चात् श्री जिनालयमें जिनदेवके दर्शन कर चित्तमें शान्ति रसका आस्वाद किया। मूर्ति बहुत ही सुन्दर और योग्य संस्थान विशिष्ट थी। तदनन्दर १ घण्टा प्रवचन हुआ। जनताने शान्त चित्तसे श्रवण किया। अपनी अपनी योग्यतासे सबने लाभ उठाया। हम स्वयं जो कहते हैं उसपर अमल नहीं करते फिर सुननेवालोंको क्या कहें? जिस वृक्षमें छाया नहीं वह इतरको छाया देनेमें असमर्थ है। आजतक वह शान्ति न आई जिसको हमने आगममें पढ़ा है। वास्तविक बात यह है कि आगममे शान्ति नहीं है और न अशान्ति ही है। आगम तो प्रतिपादन करनेवाला है। इसी प्रकार

न तीर्थमें शान्ति-अशान्ति है और न सत्समागममें शान्ति-अशान्ति है। वह तो आत्मामे है। वहाँ हम खोजते नहीं, उसके प्रतिबन्धक कारणोंको हटाते नहीं, केवल निमित्त कारणोंको पृथक् करनेकी चेष्टा करते हैं। उसके प्रतिबन्धक कारण क्रोधादिक कषाय हैं। हम उनको तो हटाते नहीं किन्तु जिन निमित्तोंसे क्रोधादिक होते हैं उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। एक दिन गुदरीके मन्दिरमें भी प्रवचन हुआ।

चैत्र कृष्ण अमावस्या सं० २००७ के दिन प्रातः झाँसीसे ३ मील चलकर श्री परशुरामजीके वागमे ठहर गये। स्थान रम्य था परन्तु ठहरनेके योग्य स्थान था। दहलानमें भोजन हुआ, मक्खियाँ वहुत थीं। भोजन निरन्तराय हुआ। ४ आदमी उनके उडानेमें संलग्न रहे। यहीं पर श्री फिरोजीलालजी दिल्लीसे आ गये। आप वहुत ही सरल और सज्जन प्रकृतिके हैं। आप गरमीके मौसमका चद्दर लाये। प्रायः आप निरन्तर आया करते हैं। जवसे मैंने दिल्लीसे प्रस्थान किया तवसे १० स्थानोंपर आये और हर स्थान पर आहार दान दिया। आपके कुटुम्बका वहुत ही उदार भाव है। राजकृष्ण-जीसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजकृष्णकी धर्मपत्नी आपकी भगिनी है। वह तो साक्षात् देवी है। आपके यहाँ जो पहुँच जाता है उसका आप वहुत ही आतिथ्य सत्कार करते हैं। फिरोजीलालजी झाँसी चले गये और हम वागसे २ मील चलकर परशुरामके वंगला पर ठहर गये। स्थान रम्य था। १ छोटी कुईया वा १ नाला है। चारों तरफ करोंदाका वन है। यहाँ पर धर्मध्यानकी योग्यता है परन्तु कोई रहना नहीं चाहता। आजकल धर्मका मर्म दम्भमे रह गया है इसीलिये दम्भी पूजे जाते हैं।

चैत्र शुक्ल १ विक्रम सं० २००८ का प्रथम दिन था। आज प्रातः परशुरामके वंगलासे ३ मील चलकर वेत्रवती नदीको छोटी

नौका द्वारा पार किया। १ नाविक मेरा हाथ पकड़ शनैः शनैः मुझे स्थल पर पहुँचा आया। उसका हृदय दयासे परिपूर्ण था। मैंने उसे उपकारी मान अपने पास जो २ गज खादीका दुपट्टा था वह दे दिया। उसे लेकर वह बहुत प्रसन्न हुआ तथा धन्यवाद देता हुआ चला गया। वहाँपर जो मानव समुदाय था वह भी प्रसन्न हुआ। यद्यपि मेरी यह प्रवृत्ति विशेष प्रशंसाकी पोषक नहीं परन्तु मैं प्रकृति पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। संसारमें वही मनुष्य इस संसारसे मुक्त होनेका पात्र है जो परपदार्थका संपर्क त्याग दे। परपदार्थका न तो हम कुछ उपकार ही कर सकते हैं और न अनुपकार ही। संसारके यावन्मात्र पदार्थ आत्मीय-आत्मीय गुणपर्यायोंसे पूरित हैं उनके परिणमन उनके स्वाधीन हैं। उस परिणमनमे उपादान और सहकारी कारणका समूह ही उपकारी है परन्तु कार्यरूप परिणामन उपादानका ही होता है।

यहाँसे १ मील चलकर श्री स्वर्गीय फूलचन्द्रजीके बागमें आ गये। बाग रम्य है परन्तु अवस्था अवनति पर है। यहीं पर भोजन किया। भोजनके अनन्तर सामायिकसे सम्पन्न हो बैठे ही थे कि बाबू रामस्वरूपजी आ गये। ३ बजे चलकर ५ बजे वरुआसागर आ गये। श्री मन्दिर जी के दर्शनके अनन्तर श्री बाबू रामस्वरूप जी द्वारा निर्मापित गणेश वाटिका नामक स्थानपर निवास किया। रात्रि सानन्द बीती। प्रातः मन्दिर जी गये। दर्शनकर चित्त प्रसन्न हुआ। $\frac{1}{2}$ घण्टा प्रवचनके अनन्तर श्री बाबू रामस्वरूपजीके यहाँ भोजन हुआ। आप बहुत ही भद्र व्यक्ति हैं। मध्याह्नकी सामायिकके बाद २ घण्टा स्वाध्याय किया। स्वाध्यायका फल केवल ज्ञानवृद्धि ही नहीं किन्तु स्वात्मतत्त्वको स्वावलम्बन देकर शान्तिमार्गमे जाना ही उसका मुख्य फल है। आजकल हमारी प्रवृत्ति इस तरहसे दूषित हो गई है कि ज्ञानार्जनसे हम जगत्की प्रतिष्ठा चाहते हैं

अर्थात् संसारसे मुक्त नहीं होना चाहते। अन्यको तुच्छ और अपने को महान् बनानेके लिये उस ज्ञानका उपयोग करते हैं जिस ज्ञानसे भेदज्ञानका लाभ था। आज उससे हम गर्वमें पड़ना चाहते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरजीमे पुनः प्रवचन हुआ।

श्रीकुन्दकुन्द देवका कहना है कि शुभोपयोगसे पुण्यबन्ध होता है और उससे आत्माको देवादि सम्यक् पदकी प्राप्ति होती है जो तृष्णाका आयतन है अतः शुभोपयोग और अशुभोपयोगको भिन्न समझना शुद्धोपयोगकी दृष्टिमे कुछ विशेषता नहीं रखता। दोनों ही बन्धके कारण हैं। लौकिक जन शुभ कर्मको सुशील और अशुभ कर्मको कुशील मानते हैं परन्तु कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं कि शुभकर्म सुशील कैसे हो सकता है वह भी तो आत्माको संसारमे पात करता है। जिस प्रकार लोहेकी वेड़ी पुरुषको बन्धनमें डालती है उसी प्रकार सुवर्णकी वेड़ी भी पुरुषको बन्धनमें डालती है एतावता इन दोनोंमें कोई भिन्नता नहीं। लोकमे कोई पुरुष जब किसीकी प्रकृतिको स्वविरोधिनी समझ लेता है तो उसके संपर्कसे यथाशीघ्र दूर हो जाता है। इसी तरह जब कर्म प्रकृति आत्माको संसार बन्धनमें डालती है तब ज्ञानी वीतराग, उदयागत शुभाशुभ प्रकृतिके साथ राग नहीं करता। सम्यग्दृष्टि मनुष्यके भी शुभाशुभ प्रशस्ता-प्रशस्त मोहोदयमें होते हैं। विषयोंसे अणुमात्र भी विरक्ति नहीं तथा मन्द कषायमें दानादि कार्य भी शुभोपयोगमें करता है परन्तु उसे परिणाममे अनुराग नहीं। जिस प्रकार रोगी मनुष्य न चाहता हुआ भी औषध सेवन करता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी पुण्य पापादि कार्योंको करता है, परमार्थसे दोनों को हेय समझता है। उपादेयता और हेयता यह दोनो मोही जीवोंके होते हैं। परमार्थसे न कोई उपादेय है और न हेय है किन्तु उपेक्षणीय है। उपेक्षणीय व्यवहार भी औपचारिक होता है। मोहके रहते हुए

जिन पदार्थोंमें उपादेयता और हेयताका व्यवहार था मोह जानेके बाद वे पदार्थ उपेक्षणीय सुतरां हो जाते हैं। फिर यह विकल्प ही नहीं उठता कि वे पदार्थ अमुक रूपसे हमारे ज्ञानमें आते। मोहके बाद ज्ञान जिस पदार्थको विषय करता है वही उसका विषय रह जाता है। मोहका अभाव होते ही ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय ये तीन कर्म रक्षकके अभावमें अनन्यशरण हो अन्तर्मुहूर्तमें नष्ट हो जावे हैं। इनका नाश होते ही ज्ञान गुणका शुद्ध परिणमन हो जाता है। जो ज्ञान पहले पराश्रित था वही अब केवलज्ञान पर्याय पा कर आदित्य प्रकाशवत् स्वयं प्रकाशमान होता हुआ समस्त पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है और कभी स्वरूपसे च्युत नहीं होता। अतएव धनंजय कविने विषापहार स्तोत्रके आरम्भमें लिखा है।

> स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः।
>
> प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥

उसकी महिमा वही जाने, हम संसारी परके द्वारा अपनी उन्नति ज्ञात कर पर पदार्थोंके संग्रह करनेमें अपनी परिणति को लगा देते हैं और अनन्त संसारके पात्र बनते रहते हैं। वैपयिक सुखके लिये स्त्री पुत्र मित्र धनादि पदार्थोंका संग्रह करनेमें जो जो अन्याय करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं। यहाँ तक देखा जाता है कि इस तरह प्राणियोंका जीवन भी आपत्तिमें आता हो और हमारा निजका प्रयोजन सिद्ध होता हो तो हम उस आपत्तिको मङ्गलरूप अनुभव करते हैं। अस्तु।

दूसरे दिन नगरमें आहारके लिये गये। श्री जैन मन्दिर की वन्दना की। दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ। मन्दिर जानेका यह प्रयोजन है कि वीतरागदेवकी स्थापना देख कर वीतराग भाव

की प्राप्तिके लिये स्वयं द्रव्य निक्षेप वनो। वीतरागके नाम पाठ करनेसे वीतराग न हो जावेगे। उन्होंने जिस मार्गका अवलम्बनकर वीतरागताकी प्राप्ति की है उस मार्गपर चलकर स्वयं वीतराग होनेका पुरुषार्थ करो। क्या पुरुषार्थ हमारे हाथकी वात है? अवश्य हैं। जो रागादिक भाव तुममे हों उनका आदर न करो। आने दो, क्योंकि उन्हे तुमने अर्जित किया, अव उनसे तटस्थ रहो। दर्शनके पश्चात् १ घण्टा प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी परन्तु उपयोग नहीं लगा। अनन्तर आहारको निकले। हृदयमें अनायास कल्पना आई कि आज स्व० पं० देवकीनन्दनजीके घर आहार होना चाहिये। उनके गृहपर कपाट वन्द थे, वहाँसे अन्यत्र गये, वहाँ पर कोई न था, उसके वाद तीसरे घर गये तव वहाँ स्वर्गीय पण्डितजी की धर्मपत्नी द्वारा आहार दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध परिणाममें जो कल्पना की जाती है उसकी सिद्धि अनायास हो जाती है।

चैत्र शुक्ला १० सं० २००८ को यहाँकी पाठशालाके छात्रोंके यहाँ भोजन हुआ। वड़े भावसे भोजन कराया। भोजन क्या था? अमृत था। इसका मूल कारण उन छात्रोंका भाव था। स्वच्छ और अस्वच्छ भाव ही शुभाशुभ कर्मका कारण होता है। इन दोनोंसे भिन्न जो सर्वथा शुद्ध है वह संसार वन्धनके उच्छेदका कारण है। संसार सन्ततिका मूल कारण वासना है। वासना आत्मामें ही होती है और उसका उत्पादक मोह है।

चैत्र शुक्ला १३ सं० २००८ को भगवान् महावीर स्वामीके जन्म दिवसका उत्सव था। अनेक व्याख्यान हुये। मैंने तो केवल यह कहा कि आत्मीय परिणतिको कलुषित न होने दो। कलुषित परिणामोंका अन्तरङ्ग कारण मोह-राग-द्वेष हैं तथा वाह्य कारण पञ्चे-

न्द्रियोंके विषय हैं। विषय निमित्त कारण हैं परन्तु ऐसी व्याप्ति नहीं जो परिणतिको बलात् कलुषित बना ही देवें। विषय तो इन्द्रियोंके द्वारा जाने जाते हैं। उनमें जो इष्टा-निष्ट कल्पना होती है वह कषायसे होती है। कषाय क्या है? जो आत्माको कलुषित करता है। यह स्वयं होती है। अनादिसे आत्मामें इसका परिणमन चला आ रहा है। हम निरन्तर इसका प्रयास करते हैं कि आत्मामें स्वच्छ परिणाम हों परन्तु न जाने कौनसी ऐसी शक्ति आत्मामे है कि जिससे जो भाव आत्माको इष्ट नहीं वे ही आते हैं। इससे यही निश्चय होता है कि आत्मामे अनादिसे ऐसे संस्कार आ रहे हैं कि जिनसे उसे अनन्त वेदनाओंका पात्र बनना पड़ता है। यदि हमने आत्माको पहिचानकर विकारोंपर विजय प्राप्त कर ली तो हमारा महावीर जयन्तीका उत्सव मानना सार्थक है।

सागरसे श्री 'नीरज' आये। आप श्री लक्ष्मणप्रसादजी रीठीके सुपुत्र हैं। आपके पिताका स्वर्गवास होगया। आपके अच्छा व्यापार होता था परन्तु आपने व्यापार त्याग दिया अब आप प्रेसका काम करते हैं। कवि हैं. हँसमुख हैं होनहार व्यक्ति हैं। मुझसे मिलनेके लिए आये थे। एक दिन रहकर चले गये।

श्री नाथूरामजी बजाज मवईवाले आये। २ घंटा रहे पश्चात् चले गये। आपने अपने यहाँ सिद्धचक्र विधानका आयोजन किया है। उसी समय पपौरा विद्यालयके लिये २५०००) देनेका वचन दिया है। मुझे आमन्त्रण देने आये थे। विद्यादानकी बात सुन मैंने गरमीकी तीव्रता होने पर भी जाना स्वीकृत कर लिया परन्तु अन्तमें शारीरिक दुर्बलताके कारण हम जा नहीं सके। नरेन्द्रकुमार आया था। वह ज्येष्ठ कृष्णा ७ को सागर गया। स्वाभिमानी है, जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा है, उद्योगी है, परोपकारी भी है, लालची नहीं, किसीसे कुछ चाहता नहीं, स्कालरशिपको आदरके साथ लेता है,

प्रत्येक मनुष्यसे मेल कर लेता है। अभी आयु विशेष नहीं अतः स्वभावमें बालकता है। ऐसा बोध होता है कि काल पाकर यह बालक विशेष कार्य करेगा। आजकल विज्ञानका युग है। इसमे जो पुरुषार्थ करेगा वह उन्नति करेगा। जो मनुष्य पुरुषार्थी हैं वे आत्मीय उन्नतिके पात्र हो जाते हैं। जो आलसी मनुष्य हैं वे दुःखके पात्र होते हैं। मनुष्य जन्म पानेका यही फल है। स्वपरका हित किया जाय। वैसे तो संसारमे श्वान भी अपना पेट पालन करते हैं। मनुष्यकी उत्कृष्टता इसीमे है कि अपनेको मनुष्य बनावें, मनुष्यका ज्ञान और विवेक इतर योनियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। तिर्यञ्चोंमे तो पर्याय सम्बन्धी ज्ञान होता है। यद्यपि देव नारकी विशिष्ट ज्ञानी होते हैं परन्तु उनका ज्ञान भी मर्यादित रहता है तथा वे देव नारकी संयम भी धारण नहीं कर सकते। तिर्यञ्च देशसंयमका पात्र हो सकता है परन्तु इतना ज्ञान उसका नहीं कि अन्य जीवोंका कल्याण कर सके। मनुष्यका ज्ञान परोपकारी है तथा उसका संयम गुण भी ऐसा निर्मल हो सकता है कि इतर मनुष्य उसका अनुकरण कर अपनेको संयमी बनानेके पात्र हो जाते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला ३ सं० २००८ को ललितपुरसे बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जन आये और आग्रहपूर्वक कहने लगे कि आपको क्षेत्रपाल-ललितपुरका चातुर्मास्य करना चाहिये। हमने उनके प्रस्तावको स्वीकृत किया तथा निश्चय किया कि वर्षामें ललितपुर रहना ही उत्तम है। वहाँ रहनेसे प्रथम तो सागर सन्निहित है। यहाँवाले विरोध करते हैं—यह स्वाभाविक बात है। जहाँ रहो वहाँ समुदायसे स्नेह हो जाता है तथा व्यक्ति विशेषसे भी घनिष्ठता बढ़ जाती है परमार्थसे यह स्नेह ही संसारका कारण है। यद्यपि लोग इसे धार्मिक स्नेह कहते हैं परन्तु पर्यवसानमें इसका फल उत्तम नहीं।

जहाँ श्री अर्हदनुरागको चन्दननगसंगत अग्निकी तरह दाहोत्पादक कहा है वहाँ अन्य स्नेहकी गिनती ही क्या है ? मेरा निश्चय पाकर ललितपुरके लोग प्रसन्न हो चले गये ।

श्रुत पञ्चमी

ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी सं० २००८ को श्रुतपञ्चमीका उत्सव था। पं० मनोहरलालजीने सम्यग्दर्शन की महिमाका दिग्दर्शन कराया। मैंने कहा कि आजका पर्व हमको यह शिक्षा देता है कि यदि कल्याणकी इच्छा है तो ज्ञानार्जन करो। ज्ञानार्जनके विना मनुष्य जन्मकी सार्थकता नहीं। देव और नारकियोंके यद्यपि ३ ज्ञान होते हैं परन्तु उनके जो ज्ञान होते हैं उन्हें वे विशेष वृद्धिगत नहीं कर सकते। जैसे देवोंके देशावधि है, वे उसे परमावधि या सर्वावधि रूप नहीं कर सकते। हाँ, इतना अवश्य है कि मिथ्यादर्शनके उदयमें जिनका ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता था सम्यग्दर्शन होने पर उनका वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। परन्तु देव पर्यायमें संयमका उदय नहीं इसलिये आपर्याय वही अविरतावस्था रहती है। मनुष्य पर्यायकी ही यह विलक्षण महिमा है कि वह सकलसंयम धारण कर संसार बन्धनको समूल नष्ट कर सकता है। यदि संसारका नाश होगा तो इसी पर्यायमें होगा। इस पर्यायकी महत्ता संयमसे ही है, यह निरन्तर संसार को यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य जन्मकी सार्थकता इसीमें है कि फिर संसार बन्धनमें न आना पड़े। इस उपदेशका तात्पर्य केवल

सम्यग्दर्शनसे नहीं क्योंकि सम्यग्दर्शन तो चारों गतियोमें होता है। यदि इस ही को प्राप्त कर संतोष धारण किया तो मनुष्य जन्मकी क्या विशेषता हुई? अतः इससे उत्तम संयम धारण करना ही इस पर्यायकी सफलता है।

आजकल बड़े बड़े विद्वान् यह उपदेश देते हैं कि स्वाध्याय करो। यही आत्मकल्याणका मार्ग है। उनसे प्रश्न करना चाहिये—हे महानुभाव! आपने आजन्म विद्याभ्यास किया, सहस्रों को उपदेश दिया और स्वाध्याय तो आपका जीवन ही है अतः हम जो चलेंगे सो आपके उपदेश पर चलेंगे परन्तु देखते हैं कि आप स्वयं स्वाध्यायके करनेका कुछ लाभ नहीं लेते अतः हमको तो यही श्रद्धा है—स्वाध्यायसे यही लाभ होगा कि अन्य को उपदेश देनेमें पटु हो जावेंगे सो प्रातः जितनी बातोंका आप उपदेश करते हैं हम भी कर देतेहैं प्रत्युत एक बात आप लोगोंकी अपेक्षा हममें विशेष है। वह यह कि हम अपने बालकोंको यथाशक्ति जैनधर्मके जानपनेके लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु आपमें यह बात नहीं देखी जाती। आपके पास चाहे पचासों हजार रुपया हो जावें परन्तु आप उसमेंसे दान न करेंगे। अन्यकी कथा छोड़िये, आप जिन विद्यालयोंके द्वारा विद्वान् हो गये कभी उनके अर्थ १००) भी नहीं भेजे होंगे। अथवा निजकी बात छोड़ो अन्यसे यह न कहा होगा—भाई! हम अमुक विद्यालयसे विद्वान् हुए उसकी सहायता करना चाहिये। तथा जगत्को धर्म जाननेका उपदेश देंगे, अपने बालकोंको एम. ए. बनाया होगा परन्तु धर्मशिक्षाका मिडिल भी न कराया होगा। अन्यको मद्य, मांस, मधुके त्यागका उपदेश देते हैं पर आपसे कोई पूंछे—अष्ट मूल गुण हैं? हँस देवेंगे। व्याख्यान देते-देते पानीका गिलास कई बार आ जावे, कोई बड़ी बात नहीं। हमारे श्रोतागण इसीमें प्रसन्न हैं कि पण्डितजी ने सभाको प्रसन्न कर लिया।

त्यागियोंकी बात कौन कहे ? वह तो त्यागी हैं, किसके त्यागी हैं सो दृष्टि डालिये, पता चलेगा। यदि यह पण्डित वर्ग चाहे तो समाजका बहुत कुछ हित कर सकता है। जो पण्डित हैं वे यह नियम कर लेवें कि जिस विद्यालयमे हमने प्रारम्भसे विद्या अर्जित की है और जिसमे अन्त स्नातक हुए, अपनेको कृतज्ञ बनानेके लिये उन्हे २) प्रति मास देंगे। १) प्रारम्भ विद्यालयको और १) अन्तिम विद्यालयको प्रतिमास भिजवावेंगे। यदि २००) मासिक उपार्जन होगा तो २॥) २॥) प्रतिमास भिजवावेंगे तथा एक वर्षमें २० दिन दोनों विद्यालयोंके अर्थ देवेंगे। अथवा यह न दे सकें तो कमसे कम जहाँ जावें उन विद्यालयोंका परिचय तो करा देवें। जिन्हे १००) से कम आय हो वे प्रति वर्ष ५) ५) ही विद्याजननीको पहुँचा देवें तथा यह सब न बने तो एक वर्ष कमसे कम जिस ग्रामके हों वहाँ रहकर लोगोंमें धर्मका प्रचार तो कर देवें।

त्यागीवर्गको यह उचित है कि जहाँ जावें वहाँपर यदि विद्यालय होवे तो ज्ञानार्जन करें, केवल हल्दी धनिया जीरेके त्यागमें ही अपना समय न वितावें। गृहस्थोंके बालक जहाँ अध्ययन करते हैं वहाँ अध्ययन करें तथा शास्त्रसभामे यदि अच्छा विद्वान् हो तो उनके द्वारा शास्त्र प्रवचन प्रणालीकी शिक्षा लेवें। केवल शिक्षा प्रणाली तक न रहें किन्तु संसारके उपकारमें अपनेको लगा दें। यह तो व्यवहार है, अपने उपकारमें इतने लीन हो जावें कि अन्य बात ही उपयोगमे न लावें। कल्याणका मार्ग पर पदार्थोंसे भिन्न जो निज द्रव्य है उसीमें रत हो जावें। इसका अर्थ यह है कि परसे जो राग द्वेष विकल्प होते हैं उनका मूल कारण मोह है। यदि मोह न हो तो यह वस्तु मेरी है यह भाव भी न हो। तब उसमे राग हो यह सर्वथा नहीं हो सकता। प्रेम तभी होता है जब उससे अपना अस्तित्व माना जावे। देखो—मनुष्य प्रायः कहते हैं कि हमारा

विश्वास अमुक धर्मसे है, हमारी तो प्रीति इसी धर्ममें है। विचार कर देखो—प्रथम उस धर्मको निज माना तभी तो उसमें प्रेम हुआ और यदि धर्मको निज न माने तो उसमे अनुराग होना असम्भव है। यही कारण है कि १ धर्मवाला अन्य धर्मसे प्रेम नहीं करता अतः जिनको आत्म-कल्याण करना है वे संसारके कारणोंसे न राग करें न द्वेष करें।

आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है, ज्ञान दर्शनवाला है अथवा वाला क्यों ज्ञान दर्शनरूप है क्योंकि निश्चयसे गुण-गुणीमें अभेद है। उसका बोध होनेसे यह जीव संसारसे मुक्त हो जाता है—

आप रूपके बोधसे मुक्त होत सब पाप।
ज्यों चन्द्रोदय होत ही मिटत सकल संताप॥

कहनेका भाव यह है कि विवेकसे कार्य करो, बिना विवेकके कोई भी मनुष्य श्रेयोमार्गका पथिक नही बन सकता। प्रथम तो विवेकके बलसे आत्मतत्त्वकी दृढ़ श्रद्धा होना चाहिये फिर जो भी कार्य करो उसमें यह देखो कि इस कार्यके करनेमें हमको कितना लाभ है कितना अलाभ है? जिस लाभके अर्थ मैंने परिश्रम किया वह परिश्रम सुख पूर्वक हुआ या दु ख पूर्वक हुआ? यदि उस कार्यके करनेमें संक्लेशकी प्रचुरता हो तो उस कार्यके करनेमे कोई लाभ नहीं। जब प्रथमतः ही दुःख सहना पड़ा तब उसके उत्तरमें सुख होगा कुछ ध्यानमें नहीं आता। दो प्रकारके कार्य जगतमें देखे जाते हैं, एक लौकिक और दूसरे अलौकिक। लौकिक कार्य किन्हें कहते हैं? जिनसे हमको लौकिक सुखका लाभ होता है उसे हम पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु परमार्थसे वह सुख नहीं क्योंकि सुख तो वह वस्तु है जहाँ आकुलता न हो। वहाँ तो आकुलताकी बहुलता है। आकुलताकी परिभाषा कुछ बना लो

परन्तु अनुभवसे इसका परिचय सहज ही होजाता है। जब हम किसी कार्य करनेका प्रयत्न करते हैं तब हमें भीतरसे जबतक वह कार्य न हो जावे चैन नहीं पडती यही आकुलता है। इसके दूर करनेके अर्थ हम जो व्यापार करते हैं उसका उद्देश्य यही रहता है कि नाना प्रकारके उपायों द्वारा कार्यकी सिद्धि हो। कहाँतक लिखें ? प्राण जावें परन्तु कार्य सिद्धि होना चाहिये।

श्रुतपञ्चमीके दिन हम लोग शास्त्रोंकी सम्भाल करते हैं पर झाड़ पोंछकर या धूप दिखाकर अलमारीमें रख देना ही उनकी सम्भाल नहीं हैं। शास्त्रके तत्त्वको अध्ययन अध्यापनके द्वारा संसारके सामने लाना यही शास्त्रोंकी संभाल है। आज जैन-मन्दिरोंमें लाखोंकी सम्पत्ति रुकी पड़ी है, जिसका कोई उपयोग नहीं। यदि उपयोग होता भी है तो सङ्गमर्मरके फर्श लगवाने तथा सोने चांदीके उपकरण बनवानेमे होता है पर वीतराग जिनेन्द्र-की वाणीके प्रचार करनेमें उसका उपयोग करनेमें मन्दिरोंके अधिकारी सकुचाते हैं। यदि एक-एक मन्दिर एक एक ग्रन्थ प्रकाशनका भार उठा लें तो समस्त उपलब्ध शास्त्र एक वर्षमें प्रकाशित हो जावें। मन्दिरोंमें बहुमूल्य उपकरण एकत्रित कर चोरोंके लिये स्वयं आमन्त्रण देंगे और फिर हाय हाय करते फिरेंगे। यदि आपकी अरहन्तदेवमें भक्ति है तो उनकी वाणी रूप जो शास्त्र हैं उनमें भी भक्ति होना चाहिये और उनकी भक्तिका रूप यही हो कि वे अच्छेसे अच्छे रूपमें प्रकाशित हो संसारके सामने लाये जावें। प्रसन्नताकी बात है कि इस समय लोगोंका धार्मिक संघर्ष बहुत कम हो गया है। एक समय तो वह था जब कोई किसी अन्य धर्मकी बातको श्रवण ही नहीं करना चाहता था पर आजके मानवमें इतनी सहन शीलता आ गई है कि यदि उसे कोई अपनी बात प्रेमसे सुनाना चाहता है तो वह उसे सुननेके

लिये तैयार है। जब आपके धर्मकी बातको दुनियाँ सुननेके लिये तैयार है, जाननेके लिये उत्सुक है तब आप ज्ञानके साधन जो शास्त्र हैं उन्हें सामने क्यों नहीं लाते? शास्त्रसंग्रह करनेकी प्रवृत्ति आप लोगोंमें क्यों नहीं जागृत होती। एक-एक महिलाकी पेटियोंमें बीस २ पचीस २ साड़ियाँ निकलेंगी पर शास्त्रके नामपर २, रुपयेका शास्त्र भी उसकी पेटीमे नहीं होगा। हमारा पुरुषवर्ग भी अपनी शान शौकत या वैभव बतानेके लिये नाना प्रकारकी सामग्री इकट्ठी करता है पर मैंने देखा है कि अच्छे अच्छे लखपतियोंके घर दश बीस रुपयेके भी शास्त्र नहीं निकलते। क्या बात है? इस ओर रुचि नहीं। यदि रुचि हो जाय तो जहाँ सालमें हजारों खर्च करते हैं वहाँ सौ पचास रुपये खर्च करना कठिन नहीं। गृहस्थ लोग शास्त्र खरीद कर संग्रह करने लगें तो छपानेवाले अपने आप सामने आ जावें। अस्तु, भैया! बुराई न मानना मेरे मनमें तो जो बात आती है वह कह देता हूँ पर मेरा अभिप्राय निर्मल है मैं कभी किसी जीवका अहित नहीं चाहता।

बरुआसागरसे प्रस्थान

ज्येष्ठ शुक्ला ११ सं० २००८ के दिन श्री सिं० धन्यकुमारजी कटनीवाले आये। बहुत ही सहृदय मनुष्य हैं ३ घण्टा रहे। आपके विचार प्रौढ़ और गम्भीर हैं। आपका कहना है कटनी आकर रहिये। जबलपुरकी व्यवस्था भी आपने श्रवण कराई। मैंने कहा अभी कटनी तो बहुत दूर है। वह सुनकर चुप रह गये। मुझे अन्तरङ्गसे

लगा कि यदि कल्याणकी अभिलाषा है तो इन संसर्गोंको त्यागो। जितना संसर्ग बाह्यमें अधिक होगा उतना ही कल्याण मार्गका विरोध होगा। कल्याण केवल आत्मपर्यायमें है जो परके निमित्तसे भाव होते हैं वे सब स्वतत्त्व परिणतिकी निर्मलतामें बाधक हैं। निर्मलता वह वस्तु है जहाँ परकी अपेक्षा नहीं रहती। यद्यपि ज्ञायक सामान्यकी अपेक्षा सर्वदा आत्माकी स्वभावमें अवस्थिति है परन्तु अनादिकालसे आत्मा और मिथ्यात्वका संसर्ग चला आ रहा है इससे कर्मजन्य जो मिथ्यात्वादि भाव हैं उनको निज मानता है, उन्हींका अनुभव करता है अर्थात् उन्हीं भावोंका कर्ता बनता है। ज्ञानमें जो ज्ञेय आते हैं उन रूप परिणति कर उनका कर्ता बनता है। जिस कालमें मिथ्यात्व प्रकृतिका अभाव हो जाता है उस कालमे आपको आप मानता है उस कालमें ज्ञानमे जो ज्ञेय आते हैं उन्हें जानता है-परन्तु ज्ञेयके निमित्तसे ज्ञानमे जो ज्ञेयाकार परिणमन होता है उसे ज्ञेयका न मान ज्ञानका ही परिणमन मानता है,-यही विशेषता अज्ञानीकी अपेक्षा ज्ञानीके हो जाती है।

ज्येष्ठ शुक्ला १२ सं० २००८ के शास्त्र प्रवचनके समय चित्तमें कुछ क्षोभ हो गया। क्षोभका कारण यही था कि आजकल मनुष्य जैनधर्मकी प्रक्रियाको जाननेका प्रयास नहीं करते। जैनधर्मकी प्रक्रिया इतनी स्वाभाविक है कि इसका अनुसरणकर जीव ऐहिक और पार-लौकिक दोनों प्रकारके सुखोंसे वञ्चित न हों। देखिये-जैनधर्ममे यह कहा है कि संसारमे जितने पदार्थ हैं वे सब भिन्न-भिन्न सत्ताको लिये हुए हैं अतः जब दूसरा पदार्थ हमारा है नहीं तब उसमे हमारा ममत्व परिणाम न होगा। ममता परिणाम ही बन्धका जनक है, यदि पर पदार्थमें निजत्व कल्पना न हो तो हिंसा असत्य चोरी व्यभिचार परिग्रह आदि भाव स्वयमेव विलय जावें। हम दूसरे पदार्थको तुच्छ देखते हैं, उससे घृणा करते हैं। इसका मूल कारण यही है

कि हमने अपने स्वरूपको नहीं जाना। परमार्थसे कोई पदार्थ न तो बुरा है और न अच्छा है हम अपनी रुचिके अनुसार ही उनके विभाग करते हैं। जैसे देखो जिस मलको धोकर हम मृत्तिकासे हस्त प्रक्षालन करते हैं। शूकर उसी मलको बड़े प्रेमसे खा जाता है। क्या वह जीव नहीं है? है, परन्तु उस पर्यायमें इतना विवेक नहीं कि वह उसे त्यागे। वही जीव यदि चाहे तो उत्तम गतिका भी पात्र हो सकता है। ऐसी कथा आई है कि एक सिंह मुनिको मारनेके अर्थ चला और शूकरने मुनि रक्षाके लिये सिंहका सामना किया, दोनों मर गये, शूकर स्वर्ग और सिंह नरक गया। यथार्थमें शान्तिका मार्ग कहीं नहीं आपमें ही है। आपसे तात्पर्य आत्मासे है। जो हम परसे शान्ति चाहते हैं यही महती अज्ञानता है क्योंकि यह सिद्धान्त है कि कोई द्रव्य किस द्रव्यमें नवीन गुण उत्पन्न नहीं कर सकता। पदार्थों की उत्पत्ति उपादन कारण और सहकारी कारणोंसे होती है उपादान एक और सहकारी अनेक होते हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिमे उपादान कारण मृत्तिका और सहकारी कारण दण्ड चक्र चीवर कुलालादि हैं। यद्यपि घट की उत्पत्ति मृत्तिकामें ही होती है अतः मृत्तिका ही उसका उपादान कारण है फिर भी कुलालादि कारण कूटके अभावमें घट रूप पर्याय मृत्तिकामें नहीं देखी जाती अतः ये कुलालादि घटोत्पत्तिमें सहकारी कारण मान जाते हैं इसीलिये प्राचीन आचार्योंने जहाँ कारणके स्वरूपका निर्वचन किया है वहाँ 'सामग्री जनिका कार्यस्य नैकं कारणं' अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जनक है एक कारण नहीं यही तो लिखा है। अतः इस विषयमें कुतर्क करना विद्वानों को उचित नहीं। यहाँ पर मुख्य-गौणन्यायकी आवश्यकता नहीं। वस्तु स्वरूप जाननेकी आवश्यकता है 'अन्वय व्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः' अर्थात् कार्यकारणभाव

अन्वय और व्यतिरेक दोनोंसे जाना जाता है अतः दोनों ही मुख्य हैं। जब उपादानकी अपेक्षा कथन करते हैं तब घटका उपादान मिट्टी है और निमित्तकी अपेक्षा निरूपण किया जावे तो कुलालादि कारण हैं। यदि इस प्रक्रियाको स्वीकार न करोगे तो कदापि कार्यकी सत्ता न बनेगी। इस विषयमें वाद विवाद कर मस्तिष्कको उन्मत्त बनाने की पद्धति है। इसी प्रकार जो भी कार्य हों उनके उपादन और निमित्त देखो, व्यर्थके विवादमें न पड़ो। निमित्तमें ही यह प्राणी न उलझ जाय कुछ मूल तत्त्वकी ओर भी दृष्टि करे इस भावनासे प्रेरित हो कर कह दिया जाता है कि सिद्धि उपादानसे होती है। जब तक उपादान की ओर दृष्टि पात न होगा तब तक केवल निमित्तोंमें उलझे रहनेसे काम नहीं होता। और जब कोई उपादानको ही सब कुछ समझ प्राप्त निमित्तका उपयोग करनेमें अकर्मण्य हो जाता है तब निमित्तकी प्रधानतासे कथन होता है और कहा जाता है कि बिना निमित्त जुटाए कार्य नहीं होता।

आकाशमें काली काली घनावली आच्छादित होने लगी तथा जब कभी जल वृष्टि होनेसे ग्रीष्मकी भयंकरता कम हो गई इसलिये बरुआसागरसे प्रस्थान करने का निश्चय किया। आषाढ़ शुक्ल १० सं० २००८ के दिन मध्यान्हकी सामायिकके बाद ज्यों ही प्रस्थान करने को उद्यत हुआ कि बहुतसे स्त्री पुरुष आ गये और स्नेहके आधीन संसारमें जो होता आया है करने लगे। सबकी इच्छा थी कि यहाँ पर चातुर्मास्य हो पर मैं एक बार ललितपुरका निश्चय कर चुका था इसलिये मैंने रुकना उचित नहीं समझा। लोगोंके अश्रुपात होने लगा तब मैंने कहा—

संसार एक विशाल कारागृह है। इसका संरक्षक कौन है? यह दृष्टिगोचर तो नहीं फिर भी अन्तरङ्गसे सहज ही इसका पता चल

जाता है। वास्तवमें इसका संरक्षक मोह है। उसके दो मंत्री हैं एक राग और दूसरा द्वेष। इनके द्वारा आत्मामें क्रोध मान माया और लोभका प्रकोप होता है। क्रोधादिकोंके आवेगमे यह जीव नाना प्रकारके अनर्थ करता है। जब क्रोधका आवेग आता है तब परको नानाप्रकारके कष्ट देता है, स्वयं अनिष्ट करता है तथा परसे भी कराता है अथवा उसका स्वयं अनिष्ट होता हो तो हर्षका अनुभव करता है। यद्यपि परके अनिष्टसे इसका कुछ भी लाभ नहीं पर क्या करे? लाचार है। यदि परका पुण्योदय हो और इसके अभिप्रायके अनुकूल उसका कुछ भी वांका न हो तो यह दाहमें दुःखी होता रहता है। यहाँतक देखा गया है कि अभिप्रायके अनुकूल कार्य न होने पर मरण तक कर लेता है। मानके उदयमें यह इच्छा होती है कि पर मेरी प्रतिष्ठा करे, मुझे उच्च माने। अपनी प्रतिष्ठाके लिए यह दूसरेके विद्यमान गुणोंको आच्छादित करता है और अपने अविद्यमान गुणोंको प्रगट करता है। परकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करता है। मानके लिए वहुत कष्टसे उपार्जन किये हुये धनको व्यय करनेमें संकोच नहीं करता। यदि मानकी रक्षा नहीं हुई तो वहुत दुःखी होता है। अपघात तक कर लेनेमें संकोच नहीं करता। यदि कोईने जैसी आपने इच्छा की थी वैसा ही मान लिया तो फूलकर कुप्पा होजाता है। कहता है हमारा मान रह गया। पर मूर्ख यह विचार नहीं करता कि हमारा मान नष्ट होगया। यदि नष्ट न होता तो वह भाव सर्वदा वना रहता। उसके जानेसे ही तो आनन्द आया परन्तु विपरीत श्रद्धामें यह मानता है कि मानकी रक्षासे आनन्द आगया।

एवं माया कषाय भी जीवको इतने प्रपञ्चोंमें फँसा देती है कि मनमें तो और है, वचनसे कुछ कहता है और कायके द्वारा अन्य ही करता है। मायाचारी आदमीके द्वारा महान् महान् अनर्थ होते

हैं। मायावी आदमी ऊपरसे तो सरल दीखता है और भीतर अत्यन्त वक्र परिणामी होता है। जैसे बगुला ऊपर तो शनैः शनैः पैरों द्वारा गमन करता है और भीतरसे जहाँ मछलीकी आहट सुनी वहीं उसे चोंचसे पकड़ लेता है। मायाचारके वशीभूत होकर जो न करे सो अल्प है। इसी तरह लोभके वशीभूत होनेसे संसारमें जो जो अनर्थ होते हैं वे किसीसे अविदित नहीं। आज सहस्रावधि मनुष्योंका संहार हो रहा है वह लोभकी ही बदौलत तो है। आज एक राज्य दूसरेको हड़पना चाहता है। वर्षोंसे शान्ति परिषद् हो रही है, लाखों रुपया बर्बाद हो गये परन्तु टससे मस नहीं हुआ। शतशः नीतिके विद्वानोंने गंभीर विचार किये। अन्तमें परिग्रही मनुष्योंने एक भी विषय निर्णीत न होने दिया—लोभ कषायकी प्रबलता कुछ नहीं होने देती। सब ही मिल जावें परन्तु जब तक अन्तरङ्गमें लोभ विद्यमान है तब तक एक भी बात तय न होगी। राजाओंसे प्रजाका पिण्ड छुड़ाया परन्तु अधिकारी वर्ग ऐसा मिला कि उनसे बदतर दशा मनुष्योंकी हो गई। यह सब लोभकी महिमा है, लोभकी महिमा अपरम्पार है अतः जहाँ तक बने लोभको कृश करो। क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय ही आत्माके सबसे प्रबल-शत्रु हैं। इनसे पिण्ड छुड़ानेका प्रयत्न करो। हमें यहाँ रोककर क्या करोगे। ३ माह रोकनेसे तो यह दशा हो गई कि नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा अब चार माह और रोकोगे, तो क्या होगा। स्नेह दुःखका कारण है अतः उसे दूर करनेका प्रयास करो। इतना कह कर हम चल पड़े लोग बहुत दूर तक भेजने आये। आज बरुआसागरसे चल कर नदी पर विश्राम किया।

ललितपुरकी ओर

सूर्यकी सायंकालीन सुनहली किरणोंसे अनुरञ्जित हरी भरी झाड़ियोंसे सुशोभित वेत्रवतीका तट बड़ा रम्य मालूम होता था। सन्ध्याकालीन सामायिकके बाद रात्रिको यहीं विश्राम किया, यहाँ पर जो मुन्शी रहता है वह योग्य है दूसरे दिन प्रातः ८ बजे बाद नौका चली ९ के बाद नदीके उस पार पहुँच सके। मल्लाह बड़े परिश्रमसे कार्य करते हैं मिलता भी उन्हे अच्छा है परन्तु मद्यपानमे सब साफ कर देते हैं। कितने ही मल्लाह तो दो दो रुपये तककी मदिरा पी जाते हैं अतः इनके पास द्रव्यका संचय नहीं हो पाता। यद्यपि राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री आदि इनकी उन्नतिमें प्रयत्नशील हैं परन्तु इनका वास्तविक उद्धार कैसे हो इस पर दृष्टि नहीं। जो लोग वर्तमानमे श्रेष्ठ हैं उनसे कहते हैं कि इनके प्रति घृणा न करो परन्तु जब तक इन लोगोंमें मद्य मांसका प्रचार है तब तक न तो लोग इनके साथ समानताका व्यवहार करेंगे और न इनका उत्कर्ष होगा। देशके नेता केवल पत्रोंमें लेख न लिख कर या बड़े बड़े शहरोंमें भाषण न देकर इन गरीबोंकी टोलियोंमें आकर बैठें तथा इन्हे इनके हितका मार्ग दिखलावें तो ये सहज ही सुपथ पर आ सकते हैं। स्वभावके सरल हैं परन्तु अज्ञानके कारण अपना उत्कर्ष नहीं कर सकते।

राज्यकी ओरसे मद्यविक्री रोकी जावे, गांजा चरस आदिका विरोध किया जावे। राज्य सरकार भी तभी रोक सकती है जब वह इनके कारण होनेवाली आयसे अपनी इच्छा घटा ले। इनसे करोड़ों रुपयेकी आय सरकारको होती है परन्तु इनके सेवनसे होनेवाले

रोगोंको दूर करनेके लिये अस्पतालोंमे भी करोड़ों रुपये व्यय करना पड़ते हैं। राज्य चाहे तो सब कर सकता है क्यों कि उसके पास सत्ताका वल है। अथवा सत्ताका वल ही सर्वोपरि वल नहीं है। आज राजकीय अनेक कानूनोंका प्रतिवन्ध होने पर भी लोग अन्याय करते हैं। उसका करण यही है कि राजकीय कानूनोसे लोगोंका हृदय आतंक युक्त तो होता है पर उस पापसे घृणा नहीं होती। राजके जो अधिकारी वर्ग हैं वे भी स्वयं इन पापोंमें प्रवृत्ति करते हैं। कीमतीसे कीमती मदिरा इन्हींके उपयोगमें आती है। सिगरेट पीना तो आजकी सभ्यताका नमूना हो गया है। जैसे अधिकारियोंसे लोगोंके हृदय नहीं वदलते वल्कि उस पापके करनेके लिये अनेक प्रकारकी छल क्षुद्रताएं लोग करने लगते हैं। कहीं-कहीं तो यहाँतक देखा गया है कि अध्यापक लोग कक्षाओंमें वैठकर सुकुमारमति वालकोंके समक्ष सिगरेट या वीड़ीका सेवन करते हैं। इसका क्या प्रभाव उन वालकोंपर पड़ता होगा यह वे जाने। अस्तु,

आषाढ़ कृष्णा १२ सं० २००८ को झाँसी पहुँच गये तथा सेठ मक्खनलालजीके यहाँ ठहर गये। मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्य-संख्या पर्याप्त थी। धर्मश्रवणकी इच्छा सवको रहती है—सब मनोयोग पूर्वक सुनते भी हैं परन्तु उपदेश कर्तव्य पथमें नहीं आता। इसका मूल कारण वक्तामे आभ्यन्तर आर्द्रता नहीं है।

गरजनेवाले मेघ और निरर्थक उपदेश देनेवाले वक्ता सर्वत्र सुलभ हैं। ये वृथा ही सामने आ जाते हैं परन्तु जिनका अन्तरङ्ग आर्द्र है तथा जो जगत्का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे मेघ तथा उपदेशक नर दुर्लभ हैं। यदि वक्ता चाहता है कि हमारे वचनोंका प्रभाव लोगों पर पड़े तो उस कार्यको उसे स्वयं करना चाहिये। मुनिधर्मकी दीक्षा मुनि ही दे सकते हैं तथा जिस पद्धतिसे मुनि-

धर्मका निरूपण मुनि करनेमें समर्थ होते हैं विद्वान् अविरति सम्यग्दृष्टि उस पद्धतिसे निरूपण नहीं कर सकते। आजकल सिद्धान्त के ज्ञाता तो बहुत हो गये हैं परन्तु उसपर आचरण नहीं करते। इससे उनके उपदेशका कोई प्रभाव नहीं होता। पदार्थका ज्ञान होना अन्य बात है और उस पदार्थरूप हो जाना अन्य बात है। हम अपनी कथा कहते हैं—जितनी कथा कहते हैं उसका शतांश भी पालन नहीं करते। यही कारण है कि शान्तिके स्वादसे वञ्चित हैं। शान्तिका आना कोई कठिन नहीं। आज शान्ति आ सकती है परन्तु शान्तिके बाधक जो रागादि दोष हैं उनको हम त्यागते नहीं। रागादिकके जो उत्पादक निमित्त हैं सिर्फ उन्हे त्यागते हैं परन्तु उनके त्यागसे रागादिक नहीं जाते। उनका अभाव तो उनकी उपेक्षासे ही हो सकता है।

त्रयोदशीको प्रात काल चलनेका विचार था परन्तु मूसलाधार वर्षा होनेसे चल नहीं सके। ११ बजेतक वर्षा शान्त नहीं हुई। ऐसा दिखने लगा कि अब ललितपुर पहुँचनेमे विघ्न आ रहा है परन्तु मध्याह्नके बाद आकाश स्वच्छ होगया जिससे १ बजे झाँसीसे निकल कर ४ बजे बिजौली पहुँच गये। स्थान रम्य था। एक स्कूलमे ठहर गये। यह स्थान सदर (झाँसी) से ६ मील दूर है। बीचमें ४ मीलपर एक डेयरीफार्म दिखा। महिषी और गायोंकी स्वच्छता देख चित्त प्रसन्नतासे भर गया। दूसरे दिन बिजौलीसे २ मील चल कर १ उपवनमें निवास किया। शौचादिसे निवृत्त हो पाठ किया तदनन्तर सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थका प्रवचन किया। उपवनका शान्तिमय वातावरण देख चित्तमें बहुत प्रसन्नता हुई और हृदयमें विहारके निम्नांकित लाभ अनुभवमें आये।

विहारमें अनेक गुण हैं। प्रथम तो एक स्थान पर रहनेसे प्राणियोंके साथ जो स्नेह होता है वह नहीं होता तथा देशाटन

करनेसे अनेक मनुष्योंके साथ धर्मचर्चा करनेका अवसर आता है। अनेक देशोंके वन उपवन नदी नाले आदि देखनेका सुअवसर प्राप्त होता है, शरीरके अवयवोंमें संचलन होनेसे क्षुधा आदिकी शक्ति क्षीण नहीं हो पाती, अन्नका परिपाक ठीक होता रहता है, आलस्यादि दुर्गुणोंसे आत्मा सुरक्षित रहती है, अनेक तीर्थ क्षेत्रादि के दर्शनका अवसर मिलता है, किसी दिन अनुकूल स्थानादि न मिलनेसे परीषह सहन करनेकी शक्ति आजाती है, कभी दुर्जन मनुष्योंके समागमसे क्रोधादि कषायके कारणोंके सद्भावमें क्षमाका भी परिचय हो जाता है। इत्यादि अनेक लाभोंकी विहारमें सम्भावना है। यह स्थान झाँसीके सुन्दरलाल सेठका है। २०००) वार्षिक व्यय है। उपवनमे आम्रादिके वृक्ष हैं। उनसे विशेष आय नहीं। यह रुपया यदि विद्यादानमे खर्च किया जाता तो ग्रामीण जनताको बहुत लाभ होता परन्तु लोगोंकी दृष्टि इस ओर नहीं। आज भारतवर्ष अपनी पूर्व गुण-गरिमासे गिर गया है। जहाँ देखो वहाँ पैसेकी पकड़ है। पश्चिमी देशकी सभ्यताको अपनाकर लोगोंने अपने व्ययके मार्ग बहुत विस्तृत कर लिये हैं इसीलिए रात-दिन व्ययकी पूर्तिमें ही इन्हे संलग्न रहना पड़ता है। पश्चिमी सभ्यतामें केवल विषय पोषक कार्योंको भारतने अपनाया है। जहाँ प्रथमावस्थामें मद्य मांस मधुका त्याग कराया जाता था वहाँ अब तीनों अमृतरूपमें माने जाने लगे हैं। इनके विना गृहस्थोंका निर्वाह नहीं होता। थोड़े दिन पहले कोई साबुनका स्पर्श नहीं करता था पर आज उसके विना किसीका निर्वाह नहीं। अंग्रेजोंमे जो गुण थे उन्हें भारतने नहीं अपनाया। वह समयका दुरुपयोग नहीं करते थे, उन्होंने भारतवर्षकी महिलाओंके साथ सम्बन्ध नहीं किया। प्राचीन वस्तुओंकी रक्षा की, विद्यासे प्रेम बढ़ाया, स्वच्छताको प्रधानता दी इत्यादि। मुसलमानोमें भी बहुतसे गुण हैं। जैसे एक बादशाह

भी अपनी जातिके अदना आदमीके साथ भोजनादि करनेमें संकोच नहीं करता। यदि किसीके पास १ रोटी हो और १० मुसलमान आ जावें तो वह एक एक टुकडा खाकर संतोप कर लेंगे। नमाजके समय कहीं भी हों वहींपर नमाज पढ़ लेंगे, परस्परमें मैत्री भावना रक्खेंगे, एक दूसरेको अपनाना जानते हैं इत्यादि। परन्तु हमारे देशके लोग किसीसे गुण ग्रहण न कर अधिकांश उसके दोप ही ग्रहण करते हैं।

वागसे चल कर ववीना ग्राममें आ गये। यहाँ पर २५ घर जैनियोंके हैं। ५ स्थानों पर दर्शन हैं। दूसरे दिन ३ बजे जब यहाँ-से चलने लगे तब ५० मनुष्य और ५० महिलाएँ आ गईं। कुछ उपदेश हुआ। पाठशालाके लिये ४०) मासिकका चन्दा हो गया। यहाँ १ मनुष्यको पञ्चायतने १२ माससे जाति च्युत कर दिया था। उसने जो अपराध किया था उसकी क्षमा माँगी। लोगोंने क्षमा दी। यदि इतनी नम्रता पहले ही व्यवहारमें लाता तो इतना परेशान क्यों होता परन्तु कपायका वेग भी कुछ चीज है। ववीनासे ४ मील चलकर घिसोली आये, यहाँपर सड़कके किनारे एक जैन मन्दिर है। उसीकी दहलानमें ठहर गये। मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन किये। यहाँपर कोई जैनी नहीं रहता। इस ग्राममें ठाकुर (क्षत्रिय) लोग रहते हैं। उनका दवदवा है अतः कोई रहना नहीं चाहता। फिर वैश्य जाति स्वभावसे भीरु है। यह द्रव्य उपार्जन करना जानते हैं परन्तु अन्य गुणोंसे भयभीत रहते हैं। लोभके वशीभूत हो आत्मीय प्रतिष्ठासे च्युत रहते हैं। यह दान करनेमें शूर हैं परन्तु सर्वोपयोगी कार्योंमें व्यय नहीं करेंगे। यही कारण है कि सामान्य जनताको आकर्षित नहीं कर पाते। व्यापार इनकी आयका साधारण निमित्त है कृषि करनेको हेय मानते हैं। यद्यपि वैश्यका कृषिकर्म आगम विहित है परन्तु उसे हिंसाका कार्य बनाकर दयाका पालन करते हैं

परन्तु ऐसे ऐसे व्यापार करेंगे जिनमें हजारों मन चर्वीका उपयोग होता है, उससे नहीं डरते। अस्तु, संसार स्वार्थी है। यहाँसे चलकर पुलिस चौकीके समीप एक कूप था वहींपर ठहर गये। ववीनासे एक चौका आया था उसीमें निरन्तराय आहार हुआ। यहाँ २ फलांगपर वेत्रवती नदी है। घाट अकृत्रिम है। उस पार जानेको २ नौकायें रहती हैं, विना किरायेके पार उतार देते हैं। वीचमें पत्थरोंकी चट्टानें हैं, नौका वड़ी सावधानीसे ले जाते हैं, ½ घण्टा नदी पार करनेमे लगता है, पहाड़ी नदी है, पानी अत्यन्त निर्मल है, स्थान धर्मध्यानके अनुकूल है।

प्रातः ५½ नदीके घाटसे चल कर ७½ वजे कडेसरा पहुँच गये। यहाँ १० घर गोलालारे जैनोंके हैं। मन्दिरके पास हम लोग ठहर गये। यहाँसे पवाक्षेत्र ७½ मील है। ग्रामीण जनतामे धर्मका प्रचार हो सकता है परन्तु प्रचारक हों तव वात वने। अगले दिन कडेसरासे चलकर पवाक्षेत्रमे आये। यहाँ पर पृथिवीके १० फुट नीचे जिन मन्दिर है जिसमे काले पत्थरकी ४ मूर्तियाँ हैं। १ मूर्ति आदिनाथ स्वामी, १ पार्श्वनाथ भगवान् की तथा १ नेमीनाथ भगवान् की हैं। सभी प्रतिमाएँ अतिमनोज्ञ चमकदार काले पत्थर की है। आदिनाथ भगवान् की मूर्ति वि० सं० १३४५ में भट्टारक शुभकीर्तिदेवके द्वारा प्रतिष्ठापित है। यहाँ पर १ नया मन्दिर नयेगाँवकी सिंघेनने बनवाया है। उसमे १ वेदिका संगमर्मरकी है तथा उस वेदिका पर सुवर्णका चित्राम हो रहा है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। मन्दिरमें संगमर्मरका पत्थर लग जानेसे वहुत ही सुन्दरता आ गई है। मन्दिरके चारों तरफ एक प्राकार है। पूर्व दिशामे १ महान् द्वार है। उसके वगलमें १ वंगला वना हुआ है। पूर्व दिशामें यात्रियोंके निवासके लिये दरवाजेके दोनों ओर कोठा वने हुए हैं। पूर्व प्रवेशद्वारसे थोड़ी दूर पर १ वड़ा कूप है जिसका

जल अतिशय मधुर है। मन्दिरके चारो ओर रमणीय अटवी है। उत्तरकी ओर पवा ग्राम है जहाँ ७ घर जैनियोंके हैं। यह स्थान यदि श्रावक घरसे उदासीन हो, परिग्रह की मूर्च्छा न हो और स्वतन्त्र भोजन वना सकता हो तो रह कर धर्मसाधन करनेके योग्य है। विद्याध्ययनके उपयुक्त भी है परन्तु वर्तमान जैन जनताकी इस ओर दृष्टि नहीं। दृष्टि जाती भी है तो लौकिक शिक्षाकी ओर ही जाती है, उसका कारण लौकिक शिक्षामे अर्थ प्राप्तिका विशेष सम्बन्ध है किन्तु जिस शिक्षासे पारमार्थिक हित होता है उस ओर ध्यान नहीं और न हो भी सकता है। प्रत्यक्ष सुखके साधन धनकी प्राप्ति जिसमे हो उसे छोड़ लोग अन्य साधनोंमे अपनेको नहीं लगाना चाहते। इसका कारण अनादि कालसे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाके जालमे इतने उलझे हैं कि उससे निकलना कफमें उलझी मक्खीके सदृश कठिन है। जिसका महाभाग्य हो वही इस जालसे अपनी रक्षा कर सकता है। यह जाल अन्य द्वारा नहीं वनाया गया है किन्तु हमने स्वयं इसका सृजन किया है।

प्रातःकाल प्रवचन हुआ। २५ मनुष्य थे। इस पवा क्षेत्र पर उपयोग निर्मल रहता है। दूसरे दिन यहासे प्रातःकाल ५॥ वजे चल कर पुनः कडेसरा आगये और अपरान्ह समय यहांसे ४ मील चल कर तालवेहट आगये तथा मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। प्रात काल मन्दिरजीमे जिनदेवका दर्शन किया। स्वच्छ स्थान था। चित्त प्रसन्न हुआ। यहाँ पर खेतसिंहजी मिठया वहुत सज्जन हैं, धनी भी हैं तथा पुत्रादिसे संपन्न हैं। यहाँ एक राम-स्वरूप योगी संस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं, साहित्यके आचार्य हैं। आप योगी हैं अतः ब्राह्मण लोग इनसे वह प्रेम नहीं रखते जो

सजातीय ब्राह्मणसे रखते हैं। आप हाईस्कूलमें संस्कृत अध्यापक हैं। १७०) मासिक मिलता है। एक संस्कृत पाठशाला प्राइवेट चलाते हैं। उसमें कई हरिजनोंको विशारद मध्यमा तक परीक्षा उत्तीर्ण करा चुके हैं। आपका यह सब काम उच्चवर्णवालोंको अप्रिय प्रतीत होता है। न जाने लोगोंने इतनी संकीर्णता क्यों अपनाई है? विद्या किसी व्यक्ति विशेषकी नहीं, फिर भी इतनी संकीर्णता क्यों? यह सब मोहका कार्य है, मोहमें ही यह भाव होता है कि हम ही उच्च कहलावें, चाहे कितना ही नीच कार्य क्यों न करें? अन्य ऋषियोंने तो यहाँ तक लिख दिया है कि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयेयाताम्' अर्थात् स्त्री और शूद्रको नहीं पढ़ाना चाहिये। यह अन्याय नहीं तो क्या? न जानें इन मनुष्योंने कितने प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं? अन्य कथा छोड़ो, यहाँ तक आज्ञा दे डाली कि एकान्तमें अपनी माँसे भी मत बोलो। मा यह उपलक्षण है अतः स्त्रीमात्रका ग्रहण है। वास्तविक बात यह है कि परिणामोंकी मलिनता जैसे जैसे वृद्धिको प्राप्त होती गई वैसे वैसे यह सर्व नियम बनते गये। तालवेहटमें तालाब बहुत सुन्दर है, तालाबके जलसे एक प्रपात पड़ता है जो बहुत ही मनोहर है, एक छोटी पहाड़ी भी पासमें है।

अषाढ़ शुक्ला ६ सं० २००८ को यहाँसे चल कर बीचमें जमालपुर ठहरते हुए बाँसी आगये। यह बड़ा कसबा है। ३००० के करीब मनुष्य संख्या होगी। यहाँ २ घर गोलालारे जैनोंके हैं जिनमें १ घर सम्पन्न है। २ घर बिनेकावाल जैनोंके भी हैं। २ मन्दिर विशाल है। इस समय ऐसे मन्दिर बनवानेमें लाख रुपयेसे कम नहीं लगेगा। एक मन्दिरकी शिखर जीर्ण है। उसकी मरम्मतके लिये एक जैनी भाईने १००) तथा ५ बोरी सीमेंट दी और भी कई लोगोंने यथाशक्य दिये। २१) सिं० कुन्दनलालजी सागरवालोंने दिये। यह ग्राम किसी समय सम्पन्न रहा होगा। यहाँकी

जैनेतर जनता भी आई। उसके समक्ष मैंने सुझाव रक्खा कि यहाँ १ मिडिल स्कूल हो जावे तो अति उत्तम होगा। लोगोके मनमें आगई। श्री शिवप्रसाद भट्ट, गोकुलदास तमोली तथा केशवदास दुवे आदिने प्रयत्न किया। हमने कहा—यदि यहाँ मिडिल स्कूल हो जावे तो हम सागरसे सिंघई कुन्दनलालजी द्वारा १०१) भिजवा देवेंगे। लोगोने वताया कि सरकारने आदेश दिया है कि यदि ग्रामके लोग १७००) एकत्रित कर लेवें तो यहाॅ सरकार मिडिल स्कूल स्थापित कर देवेगा। जनता प्रयत्नशील है अतः आशा है १७००) कोई वड़ी वात नहीं।

यहाँसे बीचमे देवरान ठहरते हुए ललितपुरके निकट एक ग्राममें पहुॅच गये। यहाॅ पर १ चैत्यालय तथा ३ घर जैनियोंके हैं। ३ घर होते हुए भी इन्होने आथित्यसत्कार अच्छा किया। यहाँ ललितपुरसे करीब २०० पुरुष आगये। आज यहाॅ विश्राम करनेकी इच्छा थी पर लोगोंके आग्रहसे विश्राम नहीं कर सका। ४ वजे यहाँसे चल दिया। यद्यपि घामका पूर्ण प्रकोप था परन्तु समुदायमें परस्पर वार्तालाप करते हुए १३ मील चलकर वृक्षोंकी सघन छायामें वैठ गये। तदनन्तर वहाँसे चलकर ६ वजे ललितपुर पहुॅच गये। ललितपुरमें प्रवेश नहीं कर पाये थे कि स्त्रियों और पुरुषोंकी वहुत भारी भीड एकत्रित हो गई। जाकर वडे मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँपर धर्मशालाका विशाल चौक स्त्री और पुरुषो द्वारा पहलेसे ही भर गया था। पं० परमेष्ठीदासजीने व्याख्यान देकर शिष्टाचार पूर्वक वर्णीको योगी वना दिया। इस प्रकार आषाढ़ शुक्ला १२ सं० २००८ को संध्या समय ललितापुरमे आकर चार माहके लिये भ्रमण सम्बन्धी खेदसे मुक्त हो गये।

———

क्षेत्रपालमें चातुर्मास

आषाढ़ शुक्ला १३ सं० २००८ को प्रातःकाल ७½ बजेसे ८½ बजेतक मन्दिरके चौकमें प्रवचन हुआ। प्रथम श्री पं० लक्ष्मीचन्द्रजी का प्रवचन हुआ। फिर ध्वनि विस्तारक यन्त्रके आनेसे ½ घंटा मेरा प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। ५०० के ऊपर स्त्री पुरुष थे। प्रायः सबने मनोयोग लगाकर प्रवचन सुना। ४ आदमियोंने ४ मासतक ब्रह्मचर्यका नियम लिया। अष्टमी चतुर्दशी अष्टाह्निका पर्वमें तो प्राय सबने नियम लिया। सन्तोषसे सभा विसर्जित हुई। तदनन्तर श्री नये मन्दिरजीमें दर्शनार्थ गये। यहाँपर भी रम्य वेदिकाएँ हैं। उनमें विराजमान मनोज्ञ प्रतिमाओंके दर्शन किये। पश्चात् जहाँ शास्त्रप्रवचन होता है वहाँपर जनता बैठ गई। १५ मिनट तत्त्व चर्चा होती रही।

पश्चात् भोजनके लिए गये। टड़ैयाके घर भोजन हुआ। दो भाई हैं, सुशील हैं, धर्ममें रुचि है। यहाँ ४ बजे शामको समारोहके साथ चलकर क्षेत्रपाल आगये। १००० के लगभग आदमी थे। पं श्यामलालजी और पं० परमेष्ठीदासजीका समयोचित भाषण हुआ। पश्चात् ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ, मेरा तो भाषणकर्ताओंसे सर्व प्रथम यही कहना है कि जो अभिप्राय है उसे ही व्यक्त करो। व्यक्ति प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं, प्रत्युत हानि है। दूसरे दिन समयसारका स्वाध्याय किया। जनता प्रसन्न थी। सेठ अभिनन्दनकुमारजी टडैयाके यहाँ भोजन हुआ। कुछ त्यागधर्मका विचार हुआ। मध्यान्ह सामायिकके बाद परस्पर तत्त्वचर्चा करते रहे। ३ बजे प्रतिक्रमण किया

तथा कार्तिक सुदी प्रतिपदा तक ललितपुरमे रहनेका नियम किया। साथ ही यह भी नियम किया कि प्रातःकाल शास्त्र प्रवचनके बाद गल्पवादमें नहीं पड़ना, मध्यान्हकी सामायिकके बाद अध्ययनमें काल लगाना और रात्रिको प्रायः नहीं बोलना। प्रायः का अर्थ आवश्यकता पड़ने पर बोलनेकी छूट थी। यहाँ पर ५ बजे सब स्कूलोंके छात्र आये। उन्हें यहाँवाले भाइयोंने लाडू बाँटे। बालक प्रसन्न थे। १००० से ऊपर होंगे। यह अवसर सबके लिए मनोहर था—सब ही प्रसन्न चित्त थे। यदि ऐसे उत्सव जिनमें निज और परका भेद न हो, होते रहे तो नागरिक जनताका पारस्परिक सौहार्द बना रहे।

क्षेत्रपाल ललितपुरका सर्वाधिक मनोरम स्थान है। एक अहातेके अन्दर भव्य मन्दिर है। श्री अभिनन्दन स्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमाके दर्शन करनेसे चित्त आल्हादित हो उठता है। यह प्रतिमा यहाँ महोवासे लाई गई थी ऐसा सुना जाता है। मन्दिरोंके साथ एक धर्मशाला तथा एक विशाल बाग भी संलग्न है। यहाँ पहले संस्कृत पाठशाला चलती थी जो अब टूट चुकी है। यह स्थान शहरसे १ मील स्टेशनके करीब है। सामने हरा भरा पुष्कल मैदान पड़ा है। ललितपुर स्थान भी बुन्देलखण्ड प्रान्तका प्रमुख नगर है। जैनियोंके सात सौ आठ सौ घर हैं। प्रायः सम्पन्न हैं। श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ तथा पपौराजीका रास्ता यहाँसे होनेके कारण लोगोंका प्रायः आवागमन जारी रहता है। व्यापारका अच्छा स्थान है। लोगोंमे धर्म-कर्मकी रुचि भी अच्छी है। यही नहीं इस प्रान्तके सभी लोग सरल तथा संसारसे भीरु रहते हैं। श्री पं० श्यामलालजी न्याय—काव्यतीर्थ तथा पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ अच्छे विद्वान् हैं। श्री हुकमचन्द्रजी तन्मय बुखारिया और हरिप्रसादजी 'हरि' अच्छे कवि हैं।

इनकी कवितामें माधुर्य तथा ओज रहता है। केन्द्र स्थान होनेसे यहाँ विद्वानोंका समागम होता रहता है। जनताके आग्रहवश बनारससे पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री भी आ गये। आप बहुत ही स्वच्छ तथा विचारक विद्वान् हैं। किसी कामको उठाते हैं तो उसके सम्पन्न करने करानेमे अपने आपको तन्मय कर देते हैं। किसी प्रकारका दुर्भाव इनमें देखनेमें नहीं आया। प्रातःकालके प्रवचनमे शहरसे १ मील दूर होने पर भी अधिक संख्यामे जनता दौड़ी आती थी। हमारा भी उद्देश्य रहा कि जनताके हाथ कुछ तो भी लगे। इसी उद्देश्यसे सागारधर्मामृत-का प्रवचन शुरू कराया। प्रवचन स्थानीय विद्वान् तथा अन्य आगन्तुक विद्वानोंमेंसे कोई विद्वान् करते थे और उसके बाद हम भी कुछ थोड़ा कह देते थे। स्त्री पुरुष दोनों ही श्रवणमें उपयोग लगाते थे।

सभी स्त्री-पुरुष आत्महित चाहते हैं परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं देते। केवल कथा कर या श्रवण कर आत्महित चाहते हैं। आत्महित क्या है यह कुछ कठिन नहीं परन्तु प्राप्त नहीं होता इसलिये कठिन भी है। अनादिसे यह जीव शरीरको निज मानता आता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओंमे ही इस जीवका समग्र समय निकल जाता है। आत्महितकी ओर इसका लक्ष्य ही नहीं जाता। संज्ञाओंकी परिपाटीसे निकल जाना किसी विरले निकट भव्यका कार्य है। संसारके यावन्मात्र प्राणी आहारकी अभिलाषासे संत्रस्त हैं। आहारके अर्थ ही उसके समस्त उपाय हैं। यदि आहार प्राप्तिकी आकांक्षा मुनिके हृदयमें न होती तो वन छोड़कर शहरके दूषित वातवरणमे क्यो आते? भय होने पर जीव भागनेकी इच्छा करते हैं। वृद्धावस्थासे शरीर जर्जर है। अनेक रोगोंकी असह्य वेदना भी उठा रहा है, फिर भी

इस जीवको भय लगा रहता है कि मर न जाऊँ यह पर्याय छूट न जाय। मैथुन संज्ञामें विषय रमणकी इच्छा होती है। विषयेच्छासे जो अनर्थ होते हैं वे किसीसे गुप्त नहीं। यह विषय लिप्सा इतनी भयंकर है कि यदि इसकी पूर्ति न हो तो यह प्राणी मृत्यु तकका पात्र हो जाता है। इसका लोभी मनुष्य निन्द्यसे निन्द्य कार्य करनेमें भी सकोच नहीं करता। यहाँ तक देखा गया है कि पिताका सम्बन्ध साक्षात् पुत्रीसे होगया। उत्तमसे उत्तम राजपत्नी नीचोंके साथ संसर्ग करनेमें संकोच नहीं करती। जिसने इस संज्ञापर विजय प्राप्त करली वही महापुरुष है। वैसे तो सभी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। परिग्रहकी संज्ञा भी इस जीव को उन्मत्त बना रही है। आज कल तो मनुष्य इसके पीछे पागल होकर पड़ा है। त्यागी, व्रती, विद्वान, अविद्वान् जो देखो वही इसके पीछे चक्र लगा रहा है। सागारधर्मामृतके प्रारम्भमें ही पं० आशाधरजी ने सागारका लक्षण लिखते हुए कहा है कि जो उक्त चार संज्ञारूपी ज्वरसे आतुर हैं, जिस प्रकार ज्वराक्रान्त मनुष्य दुखी हो जाते हैं उसी प्रकार इन संज्ञाओं के द्वारा जो दुखी होरहे हैं और इनसे दुःखी होनेके कारण जो निरन्तर स्वज्ञान-आत्मज्ञानसे विमुख रहते हैं, इन 'संज्ञाओं' की चपेट से जो यह विचार भी नहीं कर पाते कि मेरा स्व क्या है? उसका स्वरूप क्या है? और इसी कारण जो विषयोंमें उन्मुख रहते हैं उन्हे ही सुखका कारण मान रात दिन उनके एकत्रित करनेमें लीन रहते हैं वे सागार कहलाते हैं। इन संज्ञाओंका कारण भी पं० आशाधरजी ने उसी श्लोकमें बता दिया है 'अनाद्यविद्या-दोषोत्थ' अर्थात् अनादि कालीन मिथ्याज्ञानरूपी दोषोंसे उत्पन्न हैं। जिस प्रकार ज्वर वात पित्त कफ इन दोषोंसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार चार संज्ञारूपी ज्वर मिथ्याज्ञानरूपी दोषसे उत्पन्न

हुआ है। परमार्थसे पं० आशाधरजी ने सागारका जो लक्षण
दिखाया है वह गृहस्थोंमें पूर्ण रूपसे घटित हो रहा है। उन्होंने
प्रथम श्लोकमें मोही—मिथ्यादृष्टि गृहस्थका लक्षण वतलाया है
और उसके अनन्तर दूसरे श्लोकमें सम्यग्दृष्टि गृहस्थका लक्षण
वतलाया है। सम्यग्दर्शनके होनेसे जिसे आत्माका भान तो हो गया
है परन्तु चारित्रमोहके उदयसे जो परिग्रह संज्ञाका परित्याग
करनेमें समर्थ नहीं है और उसी कारण जो प्रायः विषयोंमें मूर्च्छित
रहते हैं। मिथ्यादृष्टि गृहस्थ तो निरन्तर विपयोन्मुख रहते हैं पर
सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मिथ्यात्वरूपी तिमिरके दूर हो जानेसे इतना
समझने लगता है कि विपय प्राप्ति हमारे जीवनका लक्ष्य नहीं
परन्तु चारित्रमोहके उदयसे उनका त्याग नहीं कर पाता इस लिये
प्रायः उनमें मूर्छित रहता है। देखो मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी
महिमा। मिथ्यात्वके उदयमें तो यह मनुष्य विपयोंको ही सुखका
कारण मान अहर्निश उन्हींमें उन्मुख रहता है पर सम्यक्त्वके होने-
पर इसकी दृष्टिमें यह बात आजाती है कि विषय सुखके कारण
नहीं अतः उनमें उसकी मूर्छा पूर्ववत् नहीं रहती। पं० श्याम-
लालजीकी प्रवचन करनेकी शैली उत्तम है। अधिकांश सागरधर्मा-
मृतका प्रवचन वही करते थे।

लोगोंके हृदयमें धर्मके प्रति श्रद्धा है परन्तु उन्होने जो लीक
पकड़ ली है या जिन कार्योंको उन्होंने धर्म मान रक्खा है उससे
भिन्न कार्यमें वे अपना योग नहीं देना चाहते। उससे भिन्न बात
सामने आने पर उन्हें रुचिकर नहीं होती। वर्तमानमें यथार्थ बात
कहनेकी आवश्यकता है, क्योंकि लोग जिन कार्योंमें धर्म मानते
आ रहे हैं उनसे भिन्न कार्योंमें आवश्यकता होने पर भी)। पैसा
व्यय नहीं करना चाहते। देखा गया है कि मन्दिरमें नवीन
वेदिकाकी आवश्यकता नहीं फिर भी उसमें वेदी जड़वा देंगे। उसमें

१००००) तक व्यय कर देवेंगे। पड़ोसमें जैनी आजीविकासे रहित होगा, उसे १०) भी पूँजीको न देवेंगे। सिद्धचक्रविधानमें हजारों रुपया व्ययकर देवेंगे किन्तु १ छात्रको पढ़ानेमें १००) भी न देवेंगे। कल्याणककी आवश्यकता न होने पर ५००००) व्यय करनेमें विलम्ब न करेंगे। परन्तु ग्राममें बालकोंको धर्मशिक्षा देनेके अर्थ १ अध्यापकको ५०) देनेमें इनका हृदय द्रवीभूत न होगा। देशमें लाखों मनुष्य अन्नके कष्टसे पीडित होने पर भी लोग विवाहादि कार्योंमें लाखों रुपया बारूदकी तरह फूँक देनेमें संकोच न करेंगे परन्तु अन्न-वस्त्र विहीनोंकी रक्षामें ध्यान न देवेंगे। देवदर्शनादि करनेमें समय नहीं मिलता ऐसा बहाना कर देवेंगे परन्तु सिनेमा आदि देखनेमें आँख भले ही खराब हो जावे इसकी परवाह न करेंगे।

लोग शान्ति शान्ति चिल्लाते हैं और मैं भी निरन्तर उसीकी खोजमें रहता हूँ पर उसका पता नहीं चलता। परमार्थसे शान्ति तो तब आवे जब कषायका कुछ भी उपद्रव न रहे। कषायातुर प्राणी निरन्तर पर निन्दाके श्रवणमें आनन्द मानता है। जिसे परकी निन्दामें प्रसन्नता होती है उसे आत्मनिन्दामें स्वयमेव विषाद होता है। जिसके निरन्तर हर्ष-विषाद रहते हों वह सम्यग्ज्ञानी कैसा ? यद्यपि आत्मा ज्ञान दर्शनका पिण्ड है फिर भी न जाने क्यों उसमें राग द्वेष होते हैं ? वस्तुत इनका मूल कारण हमारा संकल्प है अर्थात् परमें निजत्व कल्पना है। यही कल्पना राग द्वेषका कारण है। जब परको निज मानोगे तब अनुकूलमें राग और प्रतिकूलमें द्वेष करना स्वाभाविक ही है। अतः स्वरूपमें लीन रहना उत्तम बात है। अपना उपयोग बाहर भ्रमाया तो फंसे। होलीके दिन लोग घरमें छिपे बैठे रहते हैं। कहते हैं कि यदि बाहर निकलेंगे तो लोग कपड़े रंग देंगे। इसी प्रकार विवेकी मनुष्य सोचता रहता है कि मैं

अपने घरमें—अपने स्वरूपमें लीन रहूँगा तो वचा रहूँगा, अन्यथा संसारके राग-रंगमें फँस जाऊँगा।

जगमें होरी हो रही बाहर निकले कूर।
जो घरमें बैठा रहे तो काहे लागे धूर॥

विविध विद्वानोंका समागम

ललितपुरकी समाजका निमन्त्रण पाकर पं० फूलचन्द्रजी वनारससे यहाँ आचुके थे यह मैं पहले लिख आया हूं। इनके सिवाय अन्यान्य विद्वानोंका समागम भी यहाँ होता रहा। विद्वानोंने अपने प्रवचनोंके द्वारा यहाँकी समाजको यथाशक्य लाभान्वित किया। श्रावण शुक्ल १ के दिन श्री पं० हीरालालजी शास्त्रीने प्रातः-काल प्रवचन करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका विशद वर्णन किया। आपने सम्यग्ज्ञानको तराजू और सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्रको तराजूके दो पलड़े बताकर मोक्ष-मार्गका अच्छा विवेचन किया। आपकी वाचनाशैली उत्तम है। श्रोतागण प्रसन्न हुए। सम्यग्दर्शनका विवेचन करते हुए आपने खास बात यह बताई कि सम्यग्दृष्टि मूल कारण को पकड़ता है और मिथ्यादृष्टि बाह्य कारणोंमें उलझता है। सम्यग्दृष्टिकी प्रवृत्ति सिंहके समान है अर्थात् जिस प्रकार सिंह बन्दूककी ओर न झपट कर मारनेवालेकी ओर झपटता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि बाह्य कारणोंमें उलझ कर उनसे रागद्वेष नहीं करता किन्तु अन्तरङ्ग कारण जो कर्मोदय है उसकी ओर दृष्टि देता है। मिथ्यादृष्टि की

प्रवृत्ति कुक्कुरके समान है अर्थात् जिस प्रकार कुक्कुरको कोई लाठी मारे तो वह लाठीको चबाने लगता है। मारनेवालेसे कुछ नहीं कहता इसी प्रकार किसीके द्वारा इष्ट या अनिष्ट होने पर मिथ्यादृष्टि उस पर राग द्वेष करता है। उस इष्ट या अनिष्टका मूल कारण जो कर्मोदय है उस पर दृष्टि नहीं देता।

श्रावण शुक्ल ४ सं० २००८ को पं० फूलचन्द्रजीका प्रवचन बहुत मनोहर हुआ। आपने कहा कि आत्माको संसारमें रखनेवाली यदि कोई वस्तु है तो पराधीनता है और संसारसे पार करनेवाली कोई वस्तु है तो स्वाधीनता है। हम स्वतन्त्र चैतन्य पुञ्ज आत्मद्रव्य हैं। हमारा आत्मद्रव्य अपने आपमें परिपूर्ण है। उसे परकी सहायताकी अपेक्षा नहीं है। फिर भी यह जीव अपनी शक्तिको न समझ पद पद पर पर द्रव्यके साहाय्यकी अपेक्षा करता है और सोचता है कि इसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। यही इसकी पराधीनता है। जिस समय परकी सहायताकी अपेक्षा छूट जावेगी उस दिन मुक्ति होनेमें देर न लगेगी। अविवेकी मनुष्य, स्त्री पुत्रादिकको अपना हितकारी समझकर उनमें राग करता है परन्तु विवेकी मनुष्य समझता है कि यह स्त्री पुत्रादिका परिकर संसारचक्रमें फसानेवाला है इसलिये उसमें तटस्थ रहता है। मनुष्य पुत्रको बहुत प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं किन्तु यथार्थ बात इसके विपरीत है। मनुष्य सबसे अधिक प्रेम स्वस्त्रीसे रखता है। इसीसे उसने स्त्रीका नाम प्राणप्रिया रक्खा है। स्त्री भी इसकी आज्ञाकारिणी रहती है। वह प्रथम पतिको भोजन कराती है पश्चात् आप भोजन करती है। पहले पतिको शयन कराती है। पश्चात् आप शयन करती है। उसकी वैयावृत्त्य करनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं करती। यह सब है परन्तु पुत्रके होने पर यह बात नहीं रहती।

यदि भोजनमे विलम्ब हो गया तो पति कहता है—विलम्ब क्यों हुआ ? स्त्री कहती है कि पुत्रका काम करूँ या आपका। पुत्र ज्यों ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता है त्यो त्यों पिता ह्रासको प्राप्त होता है। समर्थ होने पर तो पुत्र समस्त सम्पदाका स्वामी बन जाता है। अब आप स्वयं निर्णय कीजिये कि पुत्रने उत्पन्न होते ही आपकी सर्वाधिक प्रेमपात्र स्त्रीके मनमें अन्तर कर दिया, पीछे आपकी समस्त संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया तो वह पुत्र कहलाया या शत्रु ? आपकी संपत्तिको कोई छीन ले तो उसे आप मित्र मानेंगे या शत्रु ? परन्तु मोहके नशामें यथार्थ बातकी ओर दृष्टि नहीं जाती है। यह मोह दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इन तीनो गुणोंको विकृत कर देता है इसलिये हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि जिससे सर्व प्रथम मोहसे पिण्ड छूट जावे।

श्रावण शुक्ला १३ सं० २००८ को ब्रं० सुमेरुचन्द्रजी भगतका व्याख्यान हुआ। आपने पुद्गलसे भिन्न आत्माको दर्शाया। परमार्थसे सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं। कोई द्रव्यके साथ तन्मय नहीं होता। फिर भी जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य पृथक् पृथक् होने पर भी परस्पर इस प्रकार मिल रहे हैं कि जिनसे अखिल विश्व दृष्टिपथ हो रहा है। यह विश्व न तो केवल पुद्गलका कार्य है और न केवल जीवका किन्तु उभय द्रव्य मिल कर यह खेल दिखा रहे हैं। चूना अपने आपमें सफेद पदार्थ है और हल्दी अपने आपमें पीली है परन्तु दोनों मिल कर एक तीसरा लाल रंग उत्पन्न कर देते हैं इसी प्रकार जीव और पुद्गलके सम्बन्धसे यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न हुआ है। आज जो मानवीय शरीर अपनेको उपलब्ध है इसकी तुलना देवोंका शरीर भी नहीं कर सकता फिर नारकी और तिर्यञ्च की तो बात ही क्या है ? इस मानव शरीरमें वह योग्यता है कि अन्तर्मुहूर्तमें संसारसे बेड़ा पार करादे पर

देवोंके शरीरमें यह बात नहीं। अतः हमें उचित है कि इस मानव शरीरसे ऐसा कार्य किया जाय कि जिससे आत्मा संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाय।

श्रावण शुक्ला १४ सं० २००८ को क्षेत्रपालमें रक्षाबन्धनका उत्सव हुआ। श्री पं० फूलचन्द्रजीका प्रवचन हुआ। अनन्तर पं० श्यामलालजी और श्री सुमेरुचन्द्रजी भगतके रक्षाबन्धनपर व्याख्यान हुये। सबका सार यही था कि अपराधीसे अपराधी व्यक्तिकी भी उपेक्षा न कर उसके उद्धारका प्रयत्न करना चाहिए। श्री अकम्पनाचार्यने बलि आदि मन्त्रियोंके द्वारा घोर कष्ट भोगकर भी उनकी आत्माका उद्धार किया है। जैनधर्मकी क्षमा वस्तुतः अपनी उपमा नहीं रखती। पूर्णिमाके दिन शहरके बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। पं० राजधरलालजीने रक्षाबन्धनकी मनोहर गाथा सबको सुनाई। सबका चित्त प्रसन्न हुआ।

भाद्रपद कृष्णा ४ सं० २००८ को पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीनाका सम्यग्दर्शनपर सुन्दर विवेचन हुआ। आपने समयसारकी व्याख्या सुन्दर की। समय शब्दका अर्थ आत्मा है। उसका जो सार है वह समयसार है। इस तरह समयसारका अर्थ सिद्ध पर्याय है। उसकी प्राप्ति हो जाय इसीके लिए मनुष्यके प्रयत्न हैं। इसी तरह भाद्रपद कृष्णा ७ के दिन आपने बहुत बारीकीसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंका वर्णन किया। वर्णन रोचक था।

भाद्रपद कृष्णा ८ सं० २००८ को महरौनीके पं० गोविन्ददास जीका व्याख्यान हुआ। आपने सत्समागम पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। सत्समागमसे ही मनुष्यमें मनुष्यता आती है। अतः उचित है कि ज्ञानादि गुणोंसे मनुष्य वृद्ध है उनकी सेवा करें।

आपने कुरल काव्यका हिन्दी तथा संस्कृत अनुवाद किया है। व्युत्पन्न विद्वान् हैं परन्तु कर्मोदयकी विपरीततासे नेत्रविहीन हो गये।

भाद्रपद कृष्ण १४ स० २००८ को पण्डित शीतलप्रसाद् जी शाहपुरवालोंका व्याख्यान हुआ। आपका प्रवचन बहुत ही मनोहर था। आपने जनताके हृदयमें समीचीन रूपसे धर्मकी भावना भर दी। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें धर्मका वास्तविक परिचय हो गया। आपने बताया कि धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कहींसे भिक्षामे मिल जाय। हम स्वयं इतने कातर हो गये हैं कि उसके होते हुए भी परसे याचना करते हुए लज्जित नहीं होते। धर्मका घातक अधर्म है। अधर्मके सद्भावमे धर्मका विकाश नहीं हो सकता। जैसे अन्धकारके प्रभावमें प्रकाश नहीं क्योंकि अन्धकार और प्रकाश ये दोनों परस्पर विरोधी हैं किन्तु जब रात्रिका अन्त आता है तथा सूर्योदय होता है तब अन्धकार पर्याय स्वयमेव विलय जाती है। इसी प्रकार हमारी प्रवृत्ति अनादि कालसे परमें निजत्व कल्पना कर मिथ्याज्ञानका पात्र बन रही है और इसीके द्वारा अन्य पदार्थों को निज मान आत्मचारित्रको क्रोध मान माया लोभरूप बना रही है। निरन्तर इन्हींमे तन्मय हो रही है। इनमे तन्मय होनेसे आत्मीय क्षमा, मार्दव, आर्जव और शौचका घात कर रही है। जब क्षमादिक पर्यायोंका उदय नही तब आप ही बताओ शान्तिरसका आस्वाद कैसे मिले।

भाद्रपद कृष्णा ३० सं० २००८ को पं० मुन्नालालजी समगौरया सागरने शास्त्र प्रवचन किया। भक्तिपर सम्यक् विवेचन किया। परमार्थसे विचार किया जाय तो भक्ति के ही आत्माआत्मगुणोंके विकासमे कारण होती है। गुणोंमे अनुराग होना भक्तिका लक्षण है।

भाद्रपद शुक्ला १ को श्री पं० शीलचन्द्रजी साढ़मलका प्रवचन हुआ। आप प्रकृत्या शान्त तथा सुबोध विद्वान् हैं। आपने सम्यक् प्रकार यह सिद्ध किया कि मनुष्यको भावना निर्मल बनाना चाहिये। भावना ही भवनाशिनी है। अनन्त संसारका कारण असद्भावना और अनन्त संसारका विध्वंस करनेवाली सद्भावना है। जो आत्माकी यथार्थतासे अनभिज्ञ हैं वे आत्मस्वरूपसे वञ्चित हैं। परमें निजत्वका व्यामोह कर निरन्तर दुःखके पात्र रहते हैं। दुःखका लक्षण आकुलता है। आकुलता जहाँ होती है वहाँ अशान्ति अवश्य रहती है। आत्मा भीतरसे शान्ति चाहता है परन्तु शान्तिका अनुभव तभी हो सकता है जब किसी प्रकारकी व्यग्रता न हो। इस जीवको सबसे महती व्यग्रता शारीरिक स्वास्थ्यकी रहती है। यह शरीर पुद्गल समुदायसे निष्पन्न हुआ है परन्तु हम इसे अपना मानते हैं। प्रथम तो यह मान्यता मिथ्या है फिर जब इसे आत्मीय माना तब इसके रक्षणकी चिन्ता रहने लगी। रक्षणके लिये अनेक पदार्थोंका संग्रह करना पड़ता है। उस संग्रहमें अनेक प्रकारके अनर्थोंका आश्रय लेना पड़ता है। इसके लिये ही यह जीव हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार तथा परिग्रह इन पञ्च पापोंसे अपनेको नहीं बचा सकता। शरीरके अर्थ बड़े-बड़े प्राणियोंका घात करता देखा जाता है तथा अनेक प्राणियों का मास खा जाता है। जिनके द्वारा अल्प भी भय हुआ तो उन्हें शीघ्र ही नष्ट करनेका उपाय करता है। इस तरह विचार किया जाय तो संसारका मूल कारण शरीरमें निजत्वकी कल्पना है। इसे नष्ट करनेका प्रयत्न सबसे पहले करना चाहिये। किसी वृक्षको उखाड़ना है तो उसकी जड़ पर प्रहार होना चाहिये। केवल पत्तोंके लोंचनेसे वृक्ष नहीं उखाड़ा जा सकता।

इस चातुर्मास्यके समय सागरसे सिंघई डालचन्द्र जी सराफ

आये। आप एक धार्मिक पुरुष हैं। आपका तत्त्वज्ञान निर्मल है। आपकी धर्ममे अधिक प्रवृत्ति रहती है। दिल्लीसे लाला मक्खनलालजी ठेकेदार जो कि वर्त्तमानमें गृहवाससे पूर्णरीत्या उदासीन हैं, आये। टीकमगढ़से पं० ठाकुरदासजी वी. ए. आये। आप संस्कृत तथा अंग्रेजीके योग्य विद्वान् हैं। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द्र जी वकील आये। आप वहुत ही विद्वान् हैं। करणानुयोगके अच्छे ज्ञाता हैं। अल्प अवस्था होने पर भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। श्री जैनेन्द्रकिशोर जी दिल्ली तथा राजकृष्ण जी दिल्ली सकुटुम्ब आये। जानसरसे श्री तहसीलदार साहब आये। इस प्रकार अनेक विद्वानों तथा अन्य विशिष्ट महानुभावोंके समागमसे वर्षाकालका समय सम्यक् रीत्या व्यतीत हुआ। जल वायु उत्तम तथा शरीरके अनुकूल रहा।

इंटर कालेजका उपक्रम

ललितपुर बुन्देलखण्ड प्रान्तका केन्द्र स्थान है, जैनियोंकी अच्छी वस्ती है और व्यापारका अच्छा स्थान है। यहाँपर शिक्षाका आयतन न होना हृदयमे चोट करता रहता था। एक पाठशाला पहले क्षेत्रपालमें थी जिससे प्रान्तके छात्रोंको लाभ होता था परन्तु अव वह वन्द हो चुकी है। इच्छा थी कि यहाँ पर ज्ञानका एक अच्छा आयतन स्थिर हो तो प्रान्तके वालकोंका वहुत कल्याण हो। आज कल लोगोंकी रुचि अंग्रेजी विद्याकी ओर अधिक है, अतः उसीके आयतन स्थापित करना चाहते हैं। मुझे इसमें हर्ष विषाद नहीं। भाषा उन्नतिका साधन है। यदि हृदयकी पवित्रताको न

छोड़ा जाय तो किसी भाषासे मनुष्य अपनी उन्नति कर सकता है। मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि पं० फूलचन्द्रजी की विशिष्ट प्रेरणा से नगरके लोगोमें इण्टर कालेज खोलनेकी चर्चा धीरे धीरे जोर पकड़ती जाती है। वे इस विषयमें बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। उनके प्रयत्नसे श्री सर्राफ मुन्नालाल भगवानदासजीने १०१०१) और श्री निहालचन्द्रजी टड़ैयाने ७०१०१) देना स्वीकृत किया है। अन्य महानुभावोंने भी रकमें लिखाई। भादों तक १०००००) का चन्दा हो जावेगा और कालेजकी स्थापना हो जावेगी। इसी प्रकरणको लेकर क्षेत्रपाल कमेटीके सदस्योंका यह विचार हुआ कि कमेटीको मकनोंके किरायेसे जो आमदनी होती है उसे मन्दिर सम्बन्धी कार्योंसे बचनेपर कालेजके लिए दे देंगे। ज्ञानप्रचारमें सम्पत्तिका व्यय हो इससे बढ़कर क्या उपयोग हो सकता है? संगमर्मरके पत्थर जड़वानेकी अपेक्षा मन्दिरोंकी सम्पत्ति का उपयोग शास्त्र प्रकाशन तथा ज्ञान प्रचारमें होने लगे तो यह मनुष्योंकी बुद्धिका परिचायक है। कमेटीके इस विचारसे नवयुवकोंको बहुत हर्ष हुआ और वे कालेजके लिये भरसक प्रयत्न करने लगे जिससे बहुत कुछ संभावना हो गई कि यहाँ कालेज खुलकर ही रहेगा।

पर्यूषण पर्व आगया। पं० फूलचन्द्रजी यहाँ थे ही। अतः सूत्रजीपर उनका सारगर्भित व्याख्यान होता था। उनके व्याख्यान के बाद मैं भी कुछ कह देता था। मेरे कहनेका सार यह था कि यह आत्मा स्वभावतः शुद्ध-निरञ्जन होनेपर भी मोहके द्वारा विडम्बनाको प्राप्त हो रहा है—

अहो निरञ्जन शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः पर ।
एतावन्तमहं काल मोहेनैव विडम्बितः ॥

कैसे आश्चर्यकी बात है कि मैं निरञ्जन हूँ, रागादि उपद्रवोंसे रहित हूँ, शान्त हूँ, बोधस्वरूप हूँ, फिर भी इतना काल मैंने मोहके

द्वारा व्यर्थ ही विता दिया। अनादि कालसे जो पर्याय पाई उसीमें अपनत्वकी कल्पना कर ली। यद्यपि यह मनुष्य पर्याय असमान जातीय पुद्गल और जीवके सम्बन्धसे उत्पन्न है तो भी मोहजन्य विडम्बनाके कारण मैं अपने स्वरूपको न जान इस संयोगज पर्यायको अपनी मानता रहा। कभी अपनेको ब्राह्मणादिक माना, कभी आश्रमवासी माना, कभी किसी रूप माना और कभी किसी रूप। परन्तु इन सबसे परे जो आत्मा शुद्ध-विविक्त जात्यजाम्बूनदवत् उज्ज्वल स्वरूप है उसकी ओर दृष्टि नहीं दी।

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असंगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव॥

वास्तवमें विचारकर देखा जावे तो आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है और न किसी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी आश्रमका धारक है। यह सब तो शरीर के धर्म हैं—शरीरकी अवस्थायें हैं। इन रूप आत्माको मानना मोहका विलास है। 'यह मैं हूँ' इत्यादि अहंकार ममकारके द्वारा ठगाया गया चेतनाके विलाससे परिपूर्ण जो आत्मा उसके व्यवहारसे च्युत होकर अन्य कार्योंमें उलझ रहा हूँ।

शान्तिसे पर्वके दिन व्यतीत हुए। पर्वके अनन्तर जयन्ती उत्सवका आयोजन हुआ जिसमें बाहरसे श्री पं० वंशीधरजी इन्दौर, पं० राजेन्द्रकुमारजी दिल्ली, पं० दयाचन्द्रजी सागर, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर आदि विद्वान् भी पधारे। सागर तथा अन्य अनेक स्थानोंसे महानुभाव आये। मुझे क्षेत्रपालसे जुलूस द्वारा नगरमें ले जाया गया। वहाँ जयन्ती उत्सव हुआ। मैंने शिर झुका कर श्रद्धाञ्जलिके शब्द सुने। अन्तमें जब मेरे कहनेका अवसर आया तब मैंने कहा कि संस्कृतमें एक श्लोक है।

जिसका भाव यह है—चन्द्रमाका उदय होने पर कमल वन्द हो जाता है। क्यों हो जाता है? इसकी कल्पना एक कविने की है। लोग कमलको लक्ष्मीका घर कहते हैं। इसी प्रसिद्धिसे चन्द्रमाने अपना कर अर्थात् हाथ कमलके पास प्रसारित किया कि इसके पाससे कुछ लक्ष्मी मुझे भी मिल जायगी पर कमलने देखा कि मेरे पास लक्ष्मी तो है नहीं। लोग मुझे व्यर्थ ही लक्ष्मीका निवास कहते हैं। मैं द्विजराज—चन्द्रमा को क्या दे दूँ... इस संकोचके कारण ही मानों कमल चन्द्रोदय होने पर वन्द हो जाता है। सो यह तो कवियोंकी वात रही पर जव मैं अपनी ओर देखता हूँ तो यही अवस्था अपनी पाता हूँ। आप लोग वढ़ा वढ़ा कर गुणगान करते हैं पर मेरेमें वह गुण अंशमात्र भी नहीं अतः नीचा मुख कर वैठ जाता हूँ। संसार की वात क्या कहूं? वहाँ तो लोग पत्थरको देवता वना कर उससे अपना कल्याण कर लेते हैं फिर मैं तो सचेतन प्राणी हूँ। यह निश्चित है कि आपका कल्याण हमारे क्या साक्षात् जिनेन्द्रदेवके गुणगान करनेसे भी नहीं होगा। कल्याणका मार्ग तो आत्मामेंसे विकार परिणति को दूर कर देना है। जव तक इस विकार परिणतिको आप दूर न करेंगे तव तक कल्याणकी वात दूर है। स्वर्गादिकका वैभव भले ही मिल जावे पर उससे कल्याण नहीं। कल्याण तो जन्म-मरणके संकटसे दूर हो जाने पर ही हो सकता है। जन्म-मरणका कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र है। इनसे अपने आपकी रक्षा करो। जिस समय इनसे आत्मा निवृत्त हो जायगी उस समय अन्यके गुणगान करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। अस्तु,

अव तक कालेज खोलनेका दृढ़ निश्चय हो गया था और उसकी इस उत्सवमें घोषणा कर दी गई। कालेजका नाम 'वर्णी इन्टर कालेज' रक्खा गया। उत्सवमें आगत जनताने भी यथायोग्य

सहायताके वचन दिये। एक दिन रात्रिको कवियोंके कविता-पाठ भी हुए। यहाँ कवि बहुत हैं। अच्छी कविता करते हैं। आश्विन शुक्ला ६ के दिन सागरवालोंके यहाँ आहार हुआ। मैं सागर बहुत समय तक रहा हूं इसलिये यहाँके लोग मेरे साथ आत्मीयके सदृश व्यवहार करते हैं। उत्सवमें आगत विद्वान् यथास्थान चले गये। केवल पं० वंशीधरजी इन्दौर रह गये। आपके २-३ प्रवचन हुए। आप जैन वाङ्मयके उच्च कोटीके ज्ञाता हैं तथा पदार्थका विवेचन बहुत सूक्ष्म रीतिसे करते हैं। विवेचन करते करते आप इतने तन्मय हो जाते हैं कि अन्य सुध बुध भूल जाते हैं। उस समय आपकी ध्वनि गद्‌गद् हो जाती है। तथा नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगती है। सुनकर जनता भी द्रवीभूत हो जाती है।

दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये। आपका न जाने क्यों हमारे साथ इतना आत्मीय भाव हो गया है कि आप यथासमय हमारे पास आते रहते है। आश्विन कृष्णा अमावस्याके दिन आपके यहाँ आहार हुआ। अनेक प्रकारकी सामग्री थी। इसमें उनका अपराध नहीं। अपराध हमारी लालसाका है। यदि मैं लालसा पर विजय प्राप्त कर सीधा साधा भोजन ग्रहण करने लगूँ तो यह सब प्रपञ्च आज दूर हो जावे। रागादि निवृत्तिके अर्थ जो बात हम अन्यसे कहते हैं, यदि उसका शतांश भी स्वयं पालन करें तो हमारा कल्याण हो जावे। दो तीन दिन रह कर आप चले गये। विजया दशमीके दिन आपका पत्र आया कि श्री क्षुल्लक निजानन्दजी (कर्मानन्दजी) देहलीके वेदान्त आश्रममें चले गये हैं। इस घटनासे बहुतसे मनुष्योंको खेद हुआ परन्तु इसमें खेदकी बात नहीं। प्रत्येक जीवके अभिप्राय भिन्न-भिन्न होते हैं। आज तक उन्हे जैनधर्मसे प्रेम था। अब उनका विश्वास वेदान्त पर हो गया। मोहकी सत्ता

तबतक आत्मामे विद्यमान रहती है जबतक इस आत्माकी परिणति नाना प्रकारकी होती रहती है। यदि यह व्यक्ति भावावेशमे आकर क्षुल्लकपद ग्रहण न करता और शक्तिके अनुसार चारित्रका पालन करता रहता तो यह अवसर न आता। मनुष्य वही है जो किसी बातको श्रवणकर उसपर पूर्वापर विचार करे। संसार एक विचित्र जाल है। इस जालमें प्रायः सभी फंसे हैं। जो इससे निकल जावे. प्रशंसा उसीकी है। जालमे फसनेका सबसे प्रबल कारण अहंबुद्धि और ममबुद्धि है। इस जीवको अनादि कालसे यह अहंकार लगा हुआ है कि मै एक विशिष्ट व्यक्ति हूँ, मेरे समक्ष अन्य सब तुच्छ हैं। यह अहंकार ही मनुष्यकी प्रगतिमे सर्वाधिक बाधक है।

कार्तिक कृष्णा ७ सं० २००८ से श्री नये मन्दिरमे सिद्धचक्र विधानका पाठ हुआ। विधि करानेके लिए श्रीयुत पण्डित मुन्नालालजी इन्दौरसे आये। आप उत्तम विधिसे कार्य कराते हैं। पहले व्याख्यान देते हैं, फिर क्रिया कराते हैं। आपका उच्चारण स्पष्ट और मधुर होता है। जनता प्रसन्न रहती है। मैं भी प्रारम्भके दिन १½ घण्टा मन्दिरमे रहा। पाठ सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। यदि व्यवहार धर्मका प्रयोजन यथार्थ दर्शाया जावे तो उसका श्रोतागणोंपर उत्तम प्रभाव पड़ता है। जो वक्ता तत्त्वको यथार्थ नहीं दिखा सकते वह श्रोताओंके भी समयको लेते हैं और अपना भी समय प्रायः खो देते हैं। आजकल व्यवहारधर्मकी प्रभुता है। अन्तरङ्गकी ओर अणुमात्र भी दृष्टि नहीं, अन्यथा उस ओर लक्ष्य अवश्य जाता। बाह्य द्रव्यसे आजतक किसीका कल्याण न हुआ और न होगा। जबतक हमारी निर्बलता है तबतक यह पर द्रव्य हमारे लिए जो जो अनर्थ न करे अल्प है।

———

तीव्र वेदना

कार्तिक कृष्णा ११ सं० २००८ को शारीरिक अवस्था यथोचित नहीं रही—एक फोड़ा उठनेके कारण कष्ट रहा। फिर भी स्वाध्याय किया। स्वाध्याय थोड़े ही समय हुआ। उसका सार यह था कि मनुष्य अपना हित चाहते हैं परन्तु अनुकूल प्रवृत्ति नहीं करते। पर पदार्थोंके संग्रह करनेमें निरन्तर व्यग्र रहते हैं और इसी व्यग्रताके आवेगमें पूर्ण आयु व्यय कर देते हैं। कल्याणकी लालसासे मनुष्य परका समागम करता है परन्तु उससे कल्याण तो दूर रहा अकल्याण ही होता है। प्रथम तो परके समागममें अपना समय नष्ट होता है। द्वितीय जिसका समागम होता है उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना पड़ती है। अनुकूल प्रवृत्ति न करने पर अन्यको कष्ट देनेकी सम्भावना हो जाती है अतः परका समागम सर्वथा हेय है। जिस समय आत्मा अपनेको जानता है उस समय निज स्वरूप ज्ञान—दर्शनरूप ही तो रहता है। दर्शन-ज्ञानका काम देखना-जानना है। इससे अतिरिक्त मानना आत्माको ठगना है। आत्मा तो ज्ञाता-द्रष्टा है। उसे रागी द्वेषी मोही बनाया यह कार्य आत्मासे सर्वथा स्वयमेव नहीं होता। यदि परकी निमित्तता इसमें न मानी जावे तो आत्मा ही उपादान हुआ और आत्मा ही निमित्त। इस दशामें यह सतत होते रहेंगे। कभी भी आत्मा इनसे अलिप्त न होगी अतः किसी भी आत्मामें ये जो रागादि भाव हैं वे विकारी भाव हैं। जो विकारी भाव होता है वह निमित्तके दूर होने पर स्वयमेव पृथक् हो जाता है। जैसे

अग्निका सम्बन्ध पा कर जलमें जो उष्णता आ जाती है वह उसका स्वाभाविक भाव नहीं किन्तु औपाधिक भाव है अतः अग्निका सम्बन्ध दूर होने पर स्वयमेव विलीन हो जाती है इसी प्रकार मोह दूर होने पर आत्मासे रागादि भाव स्वयमेव विलीन हो जाते हैं—दूर हो जाते हैं।

द्वादशीसे पीडा अधिक बढ गई अतः स्वाध्यायमें समर्थ नहीं हो सका। शरीर यद्यपि पर है और हम तथा अन्य वक्ता भी यही निरूपण करते हैं। श्रद्धा भी यही है कि यह पर है परन्तु जब कोई आपत्ति आती है तब ऊपरसे तो वही बात रहती है किन्तु अन्तरङ्गमें वेदन कुछ और ही होने लगता है। श्रद्धा तथा ज्ञान मात्रसे कल्याण नहीं। साथमें चारित्र गुणका भी विकाश होना चाहिये। हम अन्तरङ्गसे चाहते हैं। हम ही क्या प्रायः अधिकतर प्राणी चाहते हैं कि रागादि दोषोंकी उत्पत्ति न हो क्योंकि ये समान आकुलताके उत्पादक हैं। आकुलता ही दुःख है। ऐसा कौन है जो दुःखके कारणको इष्ट मानेगा ? किन्तु लाचार है। जब रागादिक होते हैं और तज्जन्य पीडा नहीं सहन कर सकता तब चाहे किसीसे प्रतिकूल हो चाहे अनुकूल हो उन्हें शान्त करनेके लिये यह जीव चेष्टा करता है। जैसे पिता जब पुत्रके कपोलोंका चुम्बन करता है तब उसकी कडी मूछोंका स्पर्श पुत्रको यद्यपि कष्टप्रद होता है तो भी वह कपोलोंका चुम्बनकर प्रसन्न होता है।

इसी फोड़ाके रहते हुए ५ वर्ष बाद हमारे अत्यन्त प्राचीन मलेरिया मित्रने दर्शन दिया। उसने कहा तुम भूल गये हमको। तुमने कितने वादे किये पर एकका भी पालन नहीं किया। उसीका यह फल है कि आज मैंने तो तुम्हें दर्शन दिया। चार दिन पहले मैंने अपने लघु मित्र फोडाको भेजा था और उसके हाथ आदेश दिया था कि चार मासका वर्षायोग पूर्ण होनेके पहले कहीं नहीं

जावो परन्तु तुमने अवहेलना की और एक दम आज्ञा दे दी कि हम अपने वादाके अनुसार टीकमगढ़ जावेंगे। कितना निराधार साहस ? यदि प्रतिज्ञा ही करना थी तो यह करता कि यदि नीरोग रहा तो आपके उत्सवमें सम्मिलित होऊँगा। परन्तु तुमको पुरुषार्थका इतना मद कि व्यर्थकी प्रतिज्ञा लेकर अपने आपकी वञ्चना की। मलेरियाकी प्रवलता तथा फोड़ाकी तीव्र वेदनासे चित्तमें वहुत खिन्नता हुई। उपचारके लिये फोड़ा पर सिट्टीकी पट्टी बाँधी पर उससे पीड़ामें रञ्च मात्र भी कमी नहीं हुई। हमारी वेदना देख सब लोग दुःखी थे।

टीकमगढ़से डाक्टर सिद्दी साहव आये। फोड़ा देखकर उन्होंने कहा कि फोड़ा खतरनाक है। विना आप्रेशनके अच्छा होना असंभव है और जल्दी आप्रेशन न किया गया तो इसका विप शरीरमें अन्यत्र फैल जानेकी संभावना है। डाक्टरकी वात सुनकर सव चिन्तामें पड़ गये। सव लोगोंने आप्रेशन करानेकी प्रेरणा की परन्तु मैंने दृढ़तासे कहा कि कुछ हो मांसभोजीसे मैं आप्रेशन नहीं कराना चाहता। डाक्टरने मेरी वात सुनी तो उसने वड़ी प्रसन्नतासे कहा कि मैं जीवन पर्यन्तके लिए मासका त्याग करता हूँ। आप्रेशनकी तैयारी हुई तो डाक्टर वोला कि आप्रेशनमें समय लगेगा। विना कुछ सुँघाये आप्रेशन कैसे होगा ? मैंने कहा कि कितना समय लगेगा ? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा—आप निश्चिन्ततासे आप्रेशन कीजिये, सुँघानेकी चिन्ता न करें। यह कह कर मै निश्चल पड़ रहा। १५ मिनटमें आप्रेशन हो गया। फोड़ाके भीतर जो विकृत पदार्थ था वह निकल गया इसलिये शान्तिका अनुभव हुआ। आप्रेशनके समय पं० फूलचन्द्रजी पासमें थे।

दीपावलीके वाद मनोहरलालजी वर्णी भी आगये थे।

आपके आनेसे आनन्द रहा। लोगोंका प्रवचनका काम चलता रहा। आपके ज्ञान और चारित्रकी निरन्तर वृद्धि रहती है किन्तु समागम जितना उत्तम चाहिये उतना नहीं। प्रायः जितने आदमी मिलते हैं सर्व प्रशंसा द्वारा साधुको उत्तम रूप देना चाहते हैं। मेरा यह अनुभव है कि प्रशंसासे आदमीकी गुरुता॰ लघुतामें परिणत हो जाती है। जहाँ प्रशंसा हुई वहाँ उसे सुन आदमी प्रसन्न हो जाता है और जहाँ निन्दा हुई वहाँ दुखी हो उठता है। वस्तुतः प्रशंसा और निन्दा दोनों ही विकृत रूप हैं। इन्हे निज मानना ही भयंकर भ्रम है, इस भ्रमका फल संसार है, संसार ही दुःखमय है। संसारमे प्राणीमात्रके स्निग्ध परिणाम होते हैं। जितने प्राणी हैं प्रायः वे सव परको निज मान अपनानेका प्रयत्न करते हैं। डाक्टर ताराचन्द्रजी वहुत ही सज्जन और योग्य पुरुष हैं। टीकम-गढ़से कम्पोटरके आनेमे विलम्व देख आपने उत्तम रीतिसे पट्टी वाँध दी। पट्टी वाँधनेके वादमे मन्दिर गया। वहाँसे आकर स्वाध्याय किया पश्चात् भोजन कर वैठा था कि इतनेमे टीकमगढसे कम्पोटर आगया और वलात्कार फिर पट्टी वाँध दी। वहुत गप्पें उड़ाई। प्रयोजन केवल इतना था कि द्रव्य हाथ आवे। संसारमें द्रव्यके अर्थ जो जो अनर्थ न हों थोड़े हैं। इसके वशीभूत होकर मनुष्य आत्म स्वरूपको भूल जाता है। अथवा आत्मस्वरूपकी कथा छोड़ो, आज जितने मनुष्य रणक्षेत्रमे जाते या जानेकी चेष्टा करते हैं वे केवल एक अर्थार्जनके लिए ही प्रयास करते हैं। इस अर्थके लिए आदमी अदालतमे मिथ्या साक्षी दे आता है। इस अर्थके लिए भाई भाई के लिए विप देकर मारनेका प्रयास करता है, इस अर्थके लिए मनुष्य गरीबोंकी रोटी तक छीन लेता है, इस अर्थके लिये आज हजारों स्थलों पर पण्डा लोग जलकी पूजा कराकर तृप्त नहीं होते. इस अर्थके लिये हजारों स्थान तीर्थरूपमें परिणत होगये, इस अर्थके

लिये ही प्रचार किया जाता है कि अमुक स्थानपर धन देनेसे सीधा स्वर्ग मिल जाता है। अस्तु,

फोड़ामें आराम तो आपरेशनके दिनसे ही होने लगा था परन्तु घावके भरनेमें एक मासके लगभग लग गया। इस वीचमें दिल्लीसे राजकृष्ण, सागरसे वालचन्द्र मलैया. पं० पन्नालाल, वरुवासागरसे वावू रामस्वरूप तथा पं० मनोहरलालजी आदि स्नेही लोग आये। न जाने संसारमें स्नेह कितनी वला है। इसके आधीन होकर यह प्राणी परको प्रेम दृष्टिसे अवलोकन करता है। केवल अवलोकन ही नहीं करता परको अपनाना चाहता है। जव कि यह अपनानेका अभिप्राय मिथ्या है। कोई पदार्थ किसीका नहीं होता। जितने पदार्थ जगत् में हैं सव अपनी सत्ता लिये भिन्न भिन्न हैं। धीरे धीरे मार्गशीर्षका मास आ गया। मनोहरलालजी वर्णी मेरठ चले गये। केवल क्षुल्लक संभवसागरजी हमारे साथ रह गये। फोड़ा अच्छा होगया। चलनेमें कोई प्रकारकी वाधा नहीं इसलिए हमने मार्गशीर्ष ३० को ललितपुरसे जानेका निश्चल कर लिया।

इसके एक दिन पूर्व चौधरीजीके मन्दिरमें प्रातःकाल जनताका सम्मेलन हुआ। समूह अच्छा रहा किन्तु सव प्रयोजनकी वात कहते हैं, तात्त्विक वात नहीं। मनमें और, वचनमें और यह लोगोंकी वात करनेकी आज परम्परा वन गई है परन्तु हमारा तो यह विचार है कि मनमें हो सो वचनसे कहिये और जो कहिये उसे उपयोगमें लाइये। केवल वचनमें लानेसे कल्याणका मार्ग विशद न होगा। जवतक अमल (चारित्र) में न आवेगा तवतक कल्याण होनेका नहीं। पं० फूलचन्द्रजीका भी व्याख्यान हुआ और आपने इस वातका प्रयास किया कि सव सौमनस्यके साथ कालेजका काम आगे वढ़ावें।

जव ललितपुरसे प्रस्थान करनेका समय आया तव लोग वहुत

दुःखी हुए। ५-६ माहके करीव एकत्र वास करनेसे लोगोंका स्नेह वढ़ गया इसलिये जाते समय दुःख होने लगा। मैंने कहा—संसारमें सव पदार्थोंका परिणमन अपनी अपनी योग्यताके अनुसार होता है। हम चाहते हैं कि यहाँसे पपौरा जावें। आप चाहते हैं कि वर्णीजी यहीं रहे। आपका परिणमन आपके आधीन, हमारा परिणमन हमारे आधीन। दोनोंका परिणमन सदा एकसा नहीं रहता। कदाचित् निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जुटनेपर हो भी जाता है। जव यह प्राणी दूसरे पदार्थके परिणमनको अपनी इच्छानुसार परिणत करानेका प्रयास करता है और अन्य पदार्थका परिणमन उसकी इच्छाके अनुरूप होता नहीं तव यह दुःखी होने लगता है—अशान्तिका अनुभव करने लगता है इसलिये मोहकी परिणति छोड़ो और शान्तिसे अपना समय यापन करो। कालेजका आपने जो उपक्रम किया है वह प्रशस्त कार्य है। यह आगे वढ़ता रहे ऐसा प्रयास करें। ज्ञान आत्माका धन है। आपके वालक उसे प्राप्त करते रहे यह भावना आपकी होना चाहिये।" इतना कहकर मैं आगे वढ़ गया। वहुत जनता भेजने आयी पर क्रम-क्रमसे निवृत्त हो गई।

पपौरा और अहार क्षेत्र

कचरोंदा ललितपुरसे ११ मील है। वहीं पर मड़ावरावाले राजधर सोंरयाके पुत्रकी स्त्रीने आहार दिया। यहाँसे ११ मील चल कर वानपुर आये। यहाँ पर एक मन्दिर महान् है। वर्तमानमें तो कई लाख रुपया लगाकर भी नहीं वन सकता। यहाँ पर रात्रि विताई। प्रातःकाल १ मील महरोनीके मार्गमें क्षेत्रपाल

हैं। वहाँ जिनेद्रदेवके दर्शन किये। स्थान बहुत प्राचीन है परन्तु जैन जनताकी विशेप दृष्टि नहीं इससे जीर्ण अवस्थामें हैं। यहाँ पर अहार क्षेत्रकी मूर्तिके सदृश एक विशाल मूर्ति है परन्तु जिस स्थान पर है वह जीर्ण हो रहा है। यहाँसे चल कर ग्राममें मन्दिरके चबूतरे पर बैठ गये। कई सज्जन ग्रामवाले आये। विद्यादानकी चर्चा की गई। कई जैन बन्धुओंने दान देनेका विचार किया और यहाँ तक साहस किया कि इतर समाज भी इनके सदृश दान देवे तो यहाँ एक हाईस्कूल हो सकता है परन्तु लोग इस ओर दृष्टि नहीं देते। यहाँके मास्टर गहोई वैश्य हैं। बहुत ही निर्मल परिणामवाले हैं।

यहाँसे टीकमगढ़ पहुँचे। मन्दिरमें प्रवचन किया। संख्या अच्छी थी। भोजन किया। पश्चात् पं० ठाकुरदासजीके यहाँ गया। उनका स्वास्थ्य खराब था। योग्य व्यक्ति हैं। धर्मकी श्रद्धा अटल है। बीमारीका वेग थम गया है। आशा है जल्दी अच्छे हो जावेंगे। मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सं० २००९ को पपौरा गये। स्नानादिसे निवृत्त हो कर पाठ किया। तदनन्तर श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजीके साथ समस्त जिनालयोंकी वन्दना की। मेलाका उत्सव था अतः बाहरसे जनता बहुत आई थी। पण्डित जगन्मोहनलालजी कटनी और पं० फूलचन्द्रजीके पहुँच जानेसे मेलाकी बहुगुणी उन्नति हुई। पपौराका उत्सव हुआ। बीचमें मन्दिरोंके जीर्णोद्धारकी चर्चा को अवसर मिल गया। सागरसे समगौरयाजी भी पहुँच गये थे। आपने बहुत ही उत्तम व्याख्यान दिया। जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। सभापति महोदयने १००) जीर्णोद्धारमें दिया। अन्य लोगोंने भी दिया जिससे चन्दा अच्छा हो गया। इसके बाद समयकी त्रुटि होनेसे विद्यालयका उत्सव नहीं हुआ। अगले दिनके लिये स्थगित कर दिया गया।

यह क्षेत्र अति उत्तम है परन्तु यहाँके मानव गण उत्साहसे दान नहीं करते, अन्यथा जहाँ ७५ गगनचुम्बी मन्दिर हैं वहाँ स्वर्ग लोक की छटा दिखती। दूसरे दिन विद्यालयके उत्सवके समय बताया गया कि यहाँ स्वर्गीय मोतीलालजी वर्णी एक विद्यालय खोल गये जिसके द्वारा बहुसंख्यक विद्वान् समाजमें कार्य कर रहे हैं जिनमें साहित्याचार्य व्याकरणाचार्य तथा न्याय-तीर्थ काव्यतीर्थ हैं। वर्तमानमें विद्यालयका कोष बहुत अल्प है। इसका दिग्दर्शन कराया गया। जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा जिससे १००००) दस हजारका चन्दा हो गया। अभी समाजमें कर्मठ व्यक्ति नहीं तथा एक यह महान् दोप है कि एक ही साथ अनेक उत्सवोंकी संयोजना कर लेते हैं जिससे एक भी कार्य पूर्णरूपसे नहीं हो पाता।

मार्गशीर्ष शुक्ला ८ सं० २००८ मेलाका अन्तिम दिवस था। आज पण्डालमें परवारसभाका अन्तिम उत्सव था। अच्छा हुआ, ५००) के करीब परवारसभाको आय हुई। लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। प्रचार बहुत ही उत्तम हुआ। यदि इन जातीय सभाओंके बदले प्रान्तीय सभाएं होतीं और उनमें प्रान्तमें बसनेवाले सब जातियोंके लोग सम्मिलित रहते तथा सौमनस्य भावसे काम करते तो बहुत ही उत्तम होता। इस क्षेत्रकी उन्नति तब हो सकती है जब कोई दानी महाशय एक लक्ष १०००००) लगावे। आज कल नवीन मन्दिर निर्माणकी लोग इच्छा करते हैं पर प्राचीन मन्दिरोंका उद्धार नहीं कराते। नवीन मन्दिर निर्माणमें उनका निर्माताके रूपमें गौरव होता है और प्राचीन मन्दिरोंके उद्धारमें नहीं। यही प्रतिष्ठाकी आकांक्षा लोगोंको इस कार्यकी ओर प्रवृत्त नहीं होने देती। इस क्षेत्रपर एक ऐसा उच्च कोटिका औषधालय होना चाहिये जिससे प्रान्तके मानवोंको विना मूल्य औषध मिले तथा एक ऐसा

विद्यालय हो जिसमें १०० छात्र अध्ययन कर सकें। पठनक्रम नवीन पद्धतिसे होना चाहिये जिसमें धर्मका शिक्षण अनिवार्य रहे।

मेला समाप्त होनेपर जनता चली गई। वातावरण शान्तिमय हो गया। प्रातःकाल संवरका स्वरूप बांचा। वास्तवमें मोक्षमार्ग संवर ही है। अनादिकालसे हमने मोहके वशीभूत होकर आस्रवको ही अपनाया है। आत्मतत्त्वकी श्रद्धा नहीं की। इसीका यह फल हुआ कि निरन्तर पर पदार्थोंके अपनानेमें ही समय गमाया। यद्यपि यह पदार्थ आत्माके स्वरूपसे भिन्न है पर मोही जीव उसे निज मानकर अपनानेकी चेष्टा करता है। आत्माका स्वभाव देखना जानना है परन्तु क्रोधादि कषाय उसके इस स्वभावको कलुषित करते रहते हैं। इस कलुषतासे यह आत्मा निरन्तर व्यग्र रहती है। ज्ञानका कार्य इतना है कि पदार्थको प्रतिभासित कर दे। ज्ञान पदार्थरूप त्रिकालमें नहीं होता। जिस प्रकार दर्पण घट-पटादि पदार्थको प्रतिभासित कर देता है परन्तु घट-पटादि रूप नहीं होता। दर्पणमें जो घट-पटादि प्रतिभासित हो रहे हैं वह दर्पणका ही परिणमन है, दर्पणकी स्वच्छताके कारण ऐसा जान पड़ता है इसी प्रकार आत्माके ज्ञानगुणमें उसकी स्वच्छताके कारण घट-पटादि पदार्थ प्रतिभासित होते हैं परन्तु ज्ञान तद्रूप नहीं होता। मेला-के बाद ४-५ दिन पपौरामें निवास किया। परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल रहे।

मार्गशीर्ष शुक्ला १३ सं० २००८ को २ बजे यहाँसे चलकर ३ बजे टीकमगढ़ पहुँच गये। आज यहाँके कालेजमें प्रवचन था। कालेज बहुत ही भव्य स्थानपर बना हुआ है। सामने महेन्द्रसागर सरोवर है तथा उसके बाद अटवी। ३ मीलपर ७५ जिन मन्दिरोंसे रम्य पपौरा क्षेत्र है। यह सब पूर्व दिशामें है। पश्चिममें महेन्द्र बाग है, उत्तरमें टीकमगढ़ नगर है और दक्षिणमें कुण्डेश्वर क्षेत्र

है। विद्यालय कालेजका भव्य भवन ५ खण्डोंसे शोभित है। इसमें २००० छात्र अध्ययन कर सकते हैं। कालेजके प्रिंसपल महोदय बहुत ही भव्य और विद्वान् हैं। आप बंगाली हैं। एम० ए० हैं। आपकी आयु ४० वर्षसे ऊपर होगी फिर भी ब्रह्मचारी हैं। बड़े दयालु और तत्त्ववेत्ता हैं। आपकी विचारधारा अति पवित्र है। व्यवहार निष्कपट है। मूर्ति सौम्य है। ऐसे मनुष्य चाहे तो वे जगत्का उत्थान कर सकते हैं।

आजकल जो शिक्षापद्धति है उसमे भौतिकवादको खूब प्रोत्साहन मिलता है। साइंसका इतना प्रचार है कि बालकी खाल निकालते हैं। यहाँतक आविष्कार विज्ञान (साइन्स) ने किया है कि बिना चालकके वायुयान चला जाता है तथा ऐसा अणुबम बनाया है कि जिसके द्वारा लाखों मनुष्योंका युगपद् विध्वंस होजाता है। ऐसी चीर-फाड़ करते हैं कि पेटका बालक निकालकर बाहर रखके पेटका विकार निकाल देते हैं पश्चात् बालकको उसी स्थानपर रख देते हैं। यक्ष्मा रोगवालेकी पसली बाहर निकाल देते हैं किन्तु ऐसा आविष्कार किसीने नहीं किया कि यह आत्मा शान्तिका पात्र हो जावे। अशान्तिका मूल कारण परिग्रह है और सबसे महान् परिग्रह मिथ्यादर्शन है क्योंकि मिथ्यात्वके उदयमें यह जीव विपरीत अभिप्राय पोषण करता है। अजीवको जीव मानता है। शरीरमें आत्मबुद्धि करता है। जैसे कामला रोगवाला शङ्खको पीला मानने लगता है। एकबार मुझे श्री कुण्डलपर क्षेत्रपर चौमासा करनेका सुअवसर आया था। उस समय मुझे बड़े वेगसे मलेरिया ज्वर आगया और बिगड़ते बिगड़ते पित्त ज्वर होगया। एक वैद्यने कहा तुम गन्ना चूसो, ज्वर शान्त हो जायगा। मैंने चूसा किन्तु चिरायता व नीमसे भी अधिक कड़वा लगा। मैंने उसे फेंक दिया। बाईजीने कहा—बेटा चूस लो। मैंने उत्तर दिया—कैसे चूंसू?

यह तो चूसा ही नहीं जाता। यद्यपि गन्नाका रस मीठा था परन्तु मेरे रोग था इसलिये वह कटुक लगता था। इसी प्रकार जिनके मिथ्यात्वरूपी रोग है उन्हे मोक्षमार्गका उपदेश देना हितकर नहीं होता। मोक्षमार्गमे तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। उसमें परको निज माननेका अभिप्राय मिट जाता है तथा पश्चात् सर्वको त्याग स्वात्मामें लीन होजाता है अतः जिनके यह होगया उनका सर्व कार्य सम्पन्न होगया। आत्माका हित मोक्ष है। मोक्षका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है अत- सर्व द्वन्द्वको छोड़ इसीमें लगो।

टीकमगढ़से चलकर पौष कृष्ण ६ सं० २००८ को अहार क्षेत्र पहुँच गये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। श्रीशान्तिनाथ और कुन्थुनाथ भगवान्‌की मूर्ति है। अरहनाथ भगवान्‌की भी मूर्ति रही होगी पर वह उपद्रवियोंके द्वारा नष्ट कर दी गई। उसका स्थान रिक्त है। श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌की मूर्ति बहुत ही सौम्य तथा शान्तिदायिनी है। इसके दर्शन कर श्रवणवेलगोलाके बाहुबलि स्वामीका स्मरण हो आता है। यहाँ किसी समय अच्छी बस्ती रही होगी। प्राचीन मूर्तियाँ भी खण्डित दशामे बहुत उपलब्ध हैं। संग्रहालय बनवाकर उसमे सबका संग्रह किया गया है। मुख्य मन्दिरके सिवाय एक छोटा मन्दिर और भी है। पास ही मदनसागर नामका विशाल तालाब है। एक पाठशाला भी है। पं० बारेलालजी पठावाले निरन्तर इस क्षेत्र तथा पाठशालाके लिये प्रयत्न करते रहते हैं। यदि साधन अनुकूल हों तो यहाँ शान्तिसे धर्मसाधन किया जा सकता हैं।

पौष कृष्णा ८ सं० २००८ को प्रातःकाल श्रीशान्तिनाथ स्वामी का अभिषेक हुआ। यथाशक्ति चन्दा किया गया। आज कल केवल द्रव्य प्राप्तिके लिये ही धर्म कार्य होते हैं। जिसने द्रव्य दिया उसकी प्रशंसा होने लगी। तीर्थस्थानोंपर आयके अन्य साधन नहीं अतः

व्यवस्थापकोंको इस रीतिसे विवश होकर द्रव्य एकत्र करना पड़ता है। यथार्थमें तीर्थस्थान धर्मसाधनके आयतन थे। यहाँ आकर मन्द कषाय होती थी। जो कोई स्वाध्यायमें शंका होती थी वह पण्डितोंके द्वारा निर्णीत हो जाती थी तथा नवीन पदार्थ श्रवणमें आते थे। कई त्यागी महाशय मेलामें आते थे। उन्हें पात्रदान देनेका अवसर मिलता था। एक दूसरेको देखकर जो कुछ अपने चारित्रमें शिथिलता होती थी। वह दूर हो जाती थी। कई महानुभाव व्रतादिक ग्रहण करते थे। परस्परके कई मनोमालिन्य मिट जाते थे। इसके सिवाय लौकिक कार्य भी बहुतसे बन जाते थे परन्तु अब आज कल मेला इस वास्ते होता है कि जनतासे रुपया आवे। सभामें १५ मिनट भी धार्मिक व्याख्यानके लिये अवसर नहीं मिलता। रुपयेकी अपील होने लगती है। यह भी होता, कोई हानि नहीं थी किन्तु विद्यालयको छोड़ क्षेत्रकी व्यवस्थाका कुछ दिग्दर्शन कराके उसके अर्थ द्रव्य संचय करनेकी अपील होने लगती है। बीचमें कई दुर्दशापात्र व्यक्ति आजाते हैं जो बाच बीचमें तंग करते रहते हैं।

मन्दिरोंके पास ही अहार नामका छोटा सा गाँव है। २ घर जैनियोंके हैं। एक दिन पं० गोविन्ददासजीके यहाँ आहार हुआ। मेला सानन्द हुआ। मथुरासे पं० दयाचन्द्रजी व भैयालालजी भजनसागर आये थे। थे लोग जहाँ जाते हैं वहाँ व्याख्यानों द्वारा जनताको प्रसन्न कर लेते हैं। मेलामें २००० हजार जनता आई होगी। प्रबन्ध अच्छा था। यहाँपर पाठशालामें २० छात्र अध्ययन करते हैं। पं० प्रेमचन्द्रजी पं० गोविन्ददासजी तथा पं० मौजीलालजी योग्य व्यक्ति हैं।

द्रोणगिरि और रेशन्दीगिरि

अहारसे ५ मील चल कर लार आ गये। मार्गमें वहुत कण्टक हैं किन्तु यहाँके मनुष्य इसी स्थानमे रहते हैं अतः उन्हे आने जानेमे आपत्ति नहीं होती। लार में १ मन्दिर है। यहाँ आते ही ग्रामीण जनता इकट्ठी हो गई। श्री नाथूरामजी वर्णीने समयो-पयोगी व्याख्यान दिया। आपने जनताको समीचीन पद्धतिसे समझाया कि संसारमें ज्ञानके विना कोई कार्य नहीं चलता। यदि हमको ज्ञान न हो तो हम अपना हित नहीं जान सकते। हमारा क्या कर्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? तथा यह भक्ष्य है, यह अभक्ष्य है, यह माँ है, यह वहिन है, यह भ्राता है, यह सुत है, यह पिता है इत्यादि जितने व्यवहार हैं सर्व लुप्त हो जावेंगे। अतः आवश्यकता ज्ञानार्जनकी है। ज्ञानका अर्जन गुरुद्वारा होता है। इसीसे उनकी शुश्रूषा करना हमारा कर्तव्य है। विना गुरुकी कृपाके हमारा अज्ञानान्धकार नहीं मिट सकता। जैसे सूर्योदयके विना रात्रिका अन्धकार नहीं जाता वैसेही गुरुके उपदेश विना हमारा अज्ञान नहीं जाता। यही कारण है कि हम गुरुको माता पितासे अधिक मानते हैं। माता पिता तो जन्म देनेके ही अधिकारी हैं किन्तु गुरु हमको इस योग्य वना देते हैं कि हम संसारके सर्व कार्य करनेमें पटु वन जाते हैं। आज संसारमे गुरु न होता तो हम पशुतुल्य हो जाते।

यहाँ शान्तिनाथ भगवान् की संवत् १८९२ की प्रतिष्ठित प्रतिमा वहुत मनोहर है। मन्दिर भी वहुँत विस्तारसे है। २ मन्दिर हैं। २० घर जैनियोंके हैं। प्रायः सम्पन्न हैं। १ धर्मशाला है।

उसमें १ कूप भी है। लोगोंमें ज्ञान की न्यूनता है क्योंकि उसके साधन नहीं। अब जबसे विन्ध्यप्रदेश हुआ है तबसे एक प्रायमरी स्कूल हो गया है अतः कुछ समय वाद पठन-पाठन होने लगेगा। कुछ मनुष्य स्वाध्याय करते हैं परन्तु विशेष ज्ञान नहीं। यहाँके कुछ वालक पपौरामें पढते हैं। इन गावोंमें कोई त्यागी रहे तो बहुत उपकार हो सकता है परन्तु इस प्रान्तमें प्रथम तो त्यागी नहीं फिर जो हैं वे विशेष पढ़े नहीं। इसका मूल कारण जैन जनतामें विद्याका प्रचार नहीं। इस प्रान्तके जैनी प्रायः पूजा आदिमें द्रव्य व्यय कर देते हैं। जो कुटुम्ब निर्धन हैं उनकी कोई सहाय करानेवाला नहीं। छात्रोंको भी कोई सहायता नहीं देता। इनका उद्धार वही कर सकता है जो दृढप्रतिज्ञ हो, ज्ञानी हो, सद्वृत्त हो तथा कुछ कल्याण करनेकी भावनासे युक्त हो।

लारसे चलकर वड़ेगाँवमें रहे। भोजनके पश्चात् सव महाशय एकत्र हुए। यहाँ एक औषधालयकी स्थापनाके अर्थ ३००) का चन्दा होगया। यहाँके आदमी भद्र हैं। यहाँ अमृतलाल गोलापूर्व तथा उनका भाई-दोनो ही कर्मठ व्यक्ति हैं। राजनैतिक कार्यमें संलग्न हैं। भाव देशकल्याणके हैं किन्तु जितना वोलते हैं उसका अंश भी कार्य यदि करें तो वहुत ही अच्छा हो। न जाने क्या कारण है कि वर्तमान युगमें परका कल्याण करनेकी भावना तो प्रायः सवमें रहती है परन्तु हमारा भी कल्याण हो इसका ध्यान नहीं रहता। राजनैतिक कार्य करनेवाले प्रायः धर्मकी श्रद्धासे च्युत हो जाते हैं। धर्मको ढोंग वताने लगते हैं। ऐसे लोग यदि महात्मा गाँधीसे कुछ ग्रहण करते तो उत्तम होता।

वड़ेगाँवसे चलकर घुवारा आगये। यहाँके लोग अच्छी स्थितिमें हैं। १ पाठशाला है जिसमें प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण अध्यापक

है। यथाशक्ति बालकोंको अध्ययन कराता है। शिक्षक बहुत ही योग्य होना चाहिये परन्तु वर्तमानमें शिक्षा बहुत मंहगी होगई है। १००) के बिना उत्तम अध्यापक नहीं मिलता। लोग यथाशक्ति चन्दा नहीं देते। जिनके पास पुष्कल द्रव्य है वे विवेकसे व्यय नहीं करते और जिनके पास नहीं है वे बातोंके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं? ऐसे लोग प्रायः यह कहते देखे जाते हैं कि यदि हमारे पास पुष्कल धन होता तो हम ऐसा करते वैसा करते परन्तु धन पानेपर उनके परिणाम भी धनिकोंके ही समान हो जाते हैं। इसीसे किसी कविने बहुत ही समयोपयोगी दोहा कहा है—

कहा करूँ धन है नहीं होता तो किस काम।
जिनके है तिन सम कहा होते नहि परिणाम॥

पौष कृष्णा १४ सं० २००८ को दोपहरके बाद एक अत्यन्त प्राचीन खड्गासन प्रतिमाका, जो कि काले पत्थर की बहुत ही मनोज्ञ है, अभिषेक हुआ। जनता अच्छी एकत्रित हुई। कलशाभिषेक, फूलमाल तथा ज्ञानमालसें १००) के करीब आय हो गई। तदनन्तर व्याख्यान हुए। हमको भी व्याख्यान देनेके लिये कहा गया। व्याख्यान देना कुछ कठिन नहीं परन्तु तारतम्यसे कहना कठिन है। परमार्थसे हमको व्याख्यान देना आता नहीं और न उसके लिये हम परिश्रम ही करते हैं। इसका कारण प्रथम तो हमने किसी शास्त्रका साङ्गोपाङ्ग अभ्यास किया नहीं और न ही व्याख्यान कलाका अभ्यास किया अतः यदि कोई महाशय हमको किसी विषय पर व्याख्यान देनेका आग्रह करे तो हम खड़े तो हो जावेंगे परन्तु निर्वाह नहीं कर सकेंगे। 'कहींकी ईंट कहीं का रोरा भानुमतीने कुरमा जोरा' वाली कहावतके अनुसार कुछ कह कर समय पूरा कर देंगे। अस्तु, इसका हमको कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं

किन्तु अपने समयका हम दुरुपयोग करते हैं इसका खेद रहता है। यह हमारी मोह निमित्तक महती जड़ता है। यदि आज हम लोक प्रशंसाको त्याग देवें तो अनायास सुखी हो सकते हैं परन्तु लोकैषणाके प्रभावसे वञ्चित हैं यही हमारे कल्याणमें बाधक है। यहाँ ३ दिन रहे।

तदनन्तर घुवारासे ४ मील चल कर भोंहरे ग्राम आ गये। यहाँ पर ८ घर जैनियोंके हैं व १ मन्दिर है। मन्दिर मे अन्धकार था अतः उसके सुधारके लिये ४००) का चन्दा हो गया। प्रवचनमे ग्रामके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि सभी लोग आये व सुन कर प्रसन्न हुए। जैन धर्म तो प्राणीमात्रका कल्याण चाहनेवाला है। उसे सुनकर किसे हर्ष न होगा? भोजनके उपरान्त यहाँसे चल कर गोरखपुर आ गये। गाँवके सब लोगोंने स्वागत किया। श्रीनाथूरामजी ब्रह्मचारी तथा श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजीका व्याख्यान हुआ। आपलोगोंने यह बताया कि धर्मका मूल दया है अतः सभी को उसका पालन करना चाहिये। यहाँ १ मन्दिर है। उसमें पार्श्वनाथ भगवान् की एक बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है। शास्त्र प्रवचन हुआ। एक छोटी सी पाठशाला है जिसमे पं० रामलालजी दरगुवाँवाले छात्र-छात्राओं को अध्ययन कराते हैं। बहुत सुशील मनुष्य हैं। परिश्रमी भी हैं। यहाँसे चलकर धनगुवाँ आये। ग्राम साधारण है पर लोग उत्साही हैं। नरेन्द्रकुमार बी० ए०, जो निर्भीक वक्ता व लेखक है, यहींके हैं। श्री लक्ष्मणप्रसादजी जो सागर विद्यालयमें काम करते हैं वे भी यहींके हैं। शास्त्रप्रवचन हुआ जिसमें ग्रामके सब लोग सम्मिलित हुए। देहातके लोगोंमें सौमनस्य अच्छा रहता है। यहाँसे चलकर श्री द्रोणगिरि क्षेत्रपर पहुँच गये। बहुत ही रमणीय व उज्ज्वल क्षेत्र हैं। यहाँ पहुँचने पर न जाने क्यों अपने आप हृदयमें एक विशिष्ट प्रकारका आह्लाद उत्पन्न होने लगता है। ग्रामके

मन्दिरमे श्री ऋषभनाथ भगवान्के दर्शन कर चित्तमें अत्यन्त हर्ष हुआ ।

पौष शुक्ला ५ संवत् २००८ को श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की । यद्यपि शारीरिक शक्ति दुर्बल थी तो भी अन्तरङ्गके उत्साहने यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न करा दी । साथमें श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजी व ब्रह्मचारी नाथूराम तथा बालचन्द्र थे । यात्राके बाद गुफाके आगे प्राङ्गणमें शान्त चित्तसे बैठे । सामने गाँवका तथा युगल नदियोंका संगम दिख रहा था । दूर दूर तक फैली हुई खेतोंकी हरियाली दृष्टिको बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही थी । ब्र० नाथूरामने प्रश्न किया कि शान्ति तो आत्मासे आती है पर अशान्ति कहाँसे आती है ? इसके उत्तरमें मैंने कहा—शान्तिवत् अशान्ति भी बाहरसे नहीं आती, केवल निमित्तका भेद है । उपादान कारण दोनोंका आत्मा है । जिस तरह समुद्रमे उत्तरङ्ग और निस्तरङ्ग अवस्था होती है । उसमें समीरका संचरण और असंचरण निमित्त है । इसी तरह आत्मामें पुद्गल कर्मके विपाकका निमित्त पाकर अशान्ति और उसके अभावमें शान्तिका लाभ होता है । अतः जिनको शान्तिकी अभिलाषा है उन्हे पर पदार्थोंसे सम्बन्ध त्याग देना चाहिये क्योंकि सुख और शान्ति केवल अवस्थामें ही होती हैं । परके आधीन रहना सर्वथा दुःखका बीज है ।

द्रोणगिरिमें पं० गोरेलालजी सज्जन व्यक्ति हैं । द्रोणगिरिसे चलकर भगवाँ गये । यहाँ एक असाटी अच्छे सम्पन्न हैं । सामान्य रीतिसे इनका व्यवहार अच्छा है । यह जैनधर्मसे प्रेम रखते हैं । जब चन्दाका समय होता है तब कुछ न कुछ दे ही देते है । यहाँसे चलकर बरेठी पहुँचे । पद्मपुराणका स्वाध्याय किया । रोचक कथा है । यहाँ ६ घर जैनियोंके हैं । सबने यथाशक्ति द्रोणगिरिकी

पाठशालाको दान दिया। इनके पास विशेष विभूति नहीं, अन्यथा यह बहुत कुछ दे सकते हैं? यहाँ सतपारासे हीरालाल पुजारी तथा ४ आदमी और आगये जिससे भोजनके बाद वहाँ गये। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर पद्मपुराणका स्वाध्याय किया। राम-रावणके संग्रामकी चर्चा थी। रावणने अमोघ शक्तिका प्रयोग कर लक्ष्मणके उरःस्थलमें आघात किया। श्रीरामने बहुत ही शोक किया। बहुत ही मार्मिक उद्गार उनके हृदयसे निकले। यह सब मोहका प्रताप है कि एक मोक्षगामीके हृदयसे इस प्रकारके वाक्य निकले। मोहके उदयमें आत्माकी यही दशा हो जाती है। ठीक है, परन्तु जिनके हृदयमें विवेक है वे बाह्यमें कुछ आलाप करें परन्तु अन्तस्तलमें उनकी श्रद्धामें अणुमात्र भी अन्तर नहीं आता। द्रोणगिरिके अञ्चलमें भ्रमणकर पुनः द्रोणगिरि आगये।

पौष शुक्ला १२ सं० २००८ को पं० दुलीचन्द्रजी बाजना तथा मलहरासे कई सज्जन शास्त्रसभामें आगये। धनगुवांसे भी कई सज्जन आये। मलहरा जानेका विचार था परन्तु मेघवृष्टिके कारण जा नहीं सके। निश्चिन्ततासे प्रवचन किया। प्रवचनका सार यह था कि यद्यपि संसारमें प्रेमकी बहुत प्रशंसा होती है परन्तु संसारमें चक्रवत् परिभ्रमण करानेवाला यही प्रेम है। सब बन्धनोंमें कठिन बन्धन प्रेम-स्नेहका है। इसपर विजय प्राप्त करना नरसिंहका काम है। श्याल प्रकृतिके मनुष्य आप कायर होते हैं तथा अन्यको कायर बनाते हैं। अनादि कालीन प्रकृतिका निवारण करना अति दुर्लभ है। कहना सरल है परन्तु कार्यमें परिणत करना कठिन है प्रायः उपदेश देनेका प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है किन्तु उस पर अमल करनेवाला ही शूर होता है। ऐसे मनुष्यकी ही गणना उत्तम मनुष्योंमें होती है। प्रथम तो सिद्धान्त यह है कि कोई किसीका उपकार नहीं कर सकता क्योंकि सब द्रव्योंके परिणमन स्वीय

स्वीय इत्यादि चतुष्टयके अनुरूप होते हैं। इतर तो निमित्त मात्र होते हैं। जिसमें अचेतन पदार्थ तो उदासीन ही होकर कार्य करते हैं। उदासीनसे तात्पर्य अभिप्राय शून्यसे है। जिनके अभिप्राय है वे चेतन हैं। वह चेतन जो कार्य करते हैं वह भी कषायके अनुरूप ही करते हैं। आत्मा नामक एक द्रव्य है। इसमें ही चेतना गुण है। इस चेतना गुणके द्वारा ही यह पदार्थोंको देखता जानता है। परमार्थसे न देखता है, न जानता है। केवल अपने स्वरूपमे मग्न रहता है किन्तु आत्मामें अनादि कालसे मोहकी संगति है जिससे आत्मामे विपरीताभिप्राय होता है। उस विपरीताभिप्रायके कारण यह पर पदार्थोमे निजत्वका अनुभव करता है। अथवा पर और निज यह कल्पना भी मोहके प्रभावसे ही होती है। जिस दिन यह कल्पना मिट जावेगी उसी दिन शान्तिका साम्राज्य अनायास हो जावेगा।

पौष शुक्ला १४ सं० २००८ को प्रातःकाल ४ मील चल कर मलहरा आ गये। गुरुकुलमे ठहर गये। यहाँ सिघई वृन्दावनलाल बहुत ही विवेकी, उदार तथा हृदयके स्वच्छ हैं। आपके प्रतापसे यहाँ गुरुकुल बन गया। प्रान्तमे अशिक्षाका प्रचार बहुत है। पहले देशी रजवाड़े थे इसलिये प्रजाकी उन्नतिके विशेष साधन राज्यकी ओरसे नहीं थे। अब विन्ध्यप्रदेशमें यह सब स्थान आ गये हैं तथा राज्यकी ओरसे शिक्षाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। आशा है आगे चल कर यहाँ की प्रजा भी उन्नति करेगी। यहाँ १६ दिन रहे। प्रातःकाल प्रवचन हुए। इसीके बीच एक दिन माघ कृष्णा १४ को गंज गये। वहाँ एक बाईके यहाँ पंक्ति भोजन था। २०० आदमी आये होंगे। श्री जीका जल विहार हुआ। प्रान्तमे सरलता बहुत है।

मलहरासे ६ मील चलकर माघशुक्ला ४ को दरगुवाँ आगये।

यह ब्र० नाथूरामका ग्राम है। दूसरे दिन इन्हींके यहाँ भोजन हुआ। यहाँपर जो व्यय हो उसपर)। एक पैसा रुपया विद्यादान में देना लोगोंने स्वीकृत किया। यहाँपर दिल्लीसे लालामक्खन लालजी आगये। विरक्त मनुष्य हैं, गृहसे उदासीन हैं सर्व सम्पन्न होकर भी विरक्त होना ऐसे ही शूरका काम है। दरगुवाँसे चलकर हीरापुर आगये। मन्दिरके सामने धर्मशाला है, उसीमें ठहरे। सामने कूप है। उसके बाद चौक है। फिर मन्दिर है। मन्दिर स्वच्छ है। मूर्तियाँ स्वच्छ हैं। रात्रिको शास्त्र होता है। यहाँपर तिगोड़ासे पण्डित पद्मकुमारजी आगये। आप त्यागी कमलापति सेठ वरायठाके पुत्र हैं, सुबोध हैं, अन्तरसे आर्द्र हैं। रात्रिको ब्र० नाथूरामने सबको शास्त्र श्रवण कराया।

हीरापुरसे चलकर शाहगढ़ आये। बड़ा ग्राम है। जनसंख्या अच्छी है। लोगोंमें सौमनस्य भी है। मन्दिरमें प्रवचन हुआ। जनता अच्छी उपस्थित थी। ज्ञानार्णवमे अन्यत्व और एकत्व भावनाका विषय था। एकत्व भावनाका यह अर्थ है कि मनुष्य स्वकृत कर्मके अच्छे बुरे फलको अकेला ही भोगता है। किसीके सुख दुःखमें कोई शामिल नहीं होता अतः परके पीछे आत्म-परिणामोंको विकृत नहीं होने देना यही बुद्धिमत्ता है। अन्यत्व भावनाका अर्थ यह है कि आत्मा शरीरसे भिन्न है अतः शरीरके विकारको आत्माका विकार मान व्यर्थ ही रागी द्वेषी मत बनो। यहाँ २ मन्दिर हैं। रात्रिको शास्त्र प्रवचन होता है। शाहगढसे चमौरी गये। यह श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजीका ग्राम है। लोगोमें धार्मिक रुचि है। एक मन्दिर है। प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनका सार यह था कि भूल अज्ञानसे होती है। यह आत्माका मोह जन्म विकार है। जैसे भ्रमज्ञान मिथ्या है वैसे ही अज्ञान मिथ्या है। इस भूलको त्यागनेवाला ही मनुष्यताका

पात्र है। अनादिकालसे हम जिस पर्यायमें गये उसे ही अपनाया। यद्यपि उसे अपनाना पर्यायापेक्षया सर्वथा मिथ्या नहीं परन्तु उसे ही सर्वथा निजस्वरूप मान लिया इसलिये शुद्ध द्रव्यसे विमुख हो अनादिकालसे पर्यायोंमें ही उलझते रहे।

वमोरीसे १ मील चलकर वेरखेरी आये। यहाँ एक क्षत्रिय महाशय रहते हैं जो बहुत ही सरल परिणामी हैं। मांसके त्यागी हैं। इनके वंशमें शिकारका भी त्याग है। यहाँसे ५ मील चलकर सिद्ध क्षेत्र नैनागिरि (रेशन्दीगिरि) आगये। सुन्दर स्थान है। पाठशालाके छात्रोंने स्वागत किया। यहाँ पर्वतपर पार्श्वनाथ समवसरणके नामसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है। श्री पार्श्वनाथ भगवान्‌की शुभ्रकाय विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। माघ शुक्ला १५ को श्री १०८ क्षीरसागरजी मुनि यहाँ आये।

रेशन्दीगिरिमें पञ्च कल्याणक

फाल्गुन कृष्णा ३ सं० २००८ से पञ्चकल्याणकका मेला रेशन्दीगिरिजीमें था। नाला पार करके मैदानमें विशाल पण्डाल बनाया गया था। एक छोटा पण्डाल नीचेके मन्दिरोंके पास भी बना था। धीरे धीरे मेला भरना शुरू हो गया। विद्वत् परिषद् की कार्यकारिणीकी बैठक थी अतः विद्वन्मण्डली उपस्थित थी। खास कर पं० वंशीधरजी इन्दौर, पं० कैलासचन्द्रजी, खुशालचन्द्रजी जगन्मोहनलालजी, दयाचन्द्रजी आदि सभी प्रमुख विद्वान् थे। प्रतिष्ठाके कार्यके लिये श्री पं० बारेलालजी पठा तथा समगौरयाजी आये हुए थे। डेरा तम्बुओंका भी अच्छा प्रबन्ध था।

कि त्रिलोकके जीवोंको अपायसे कैसे मुक्त करें और कहाँ हम स्वयं ही अपायमें फँस गये। भगवान्‌के ऐसा चिन्तवन करते ही लौकान्तिक देव आ गये और उन्होंने बारह भावनाओंका पाठकर भगवान्‌की श्लाघा की। कैसा वह समय होता होगा कि जब जरासा निमित्त मिलनेपर आदमी विरक्त हो जाते थे और ऐसे आदमी जिनके वैभवके साथ स्वर्गका वैभव भी ईर्ष्या करता था। आज तो वैभवके नामपर फटी लंगोटी लोगोंके पास है पर उसे भी त्यागनेका भाव किसीका नहीं होता।

रात्रिको परवारसभामें एकीकरण बाबत जो प्रस्ताव पपौरामें हुआ था उसपर पं० जगन्मोहनलालजीने प्रकाश डाला। चर्चा बहुत हुई परन्तु लोगोंका कहना था कि यदि वास्तवमें एकीकरण चाहते हो तो इन जातीय सभाओंको समाप्त करो। इन सभाओंने जनताके हृदयमें फूट डालनेके सिवाय कुछ नहीं किया है। इन सभाओंके पहले जहाँ लोग आपसमें एक दूसरेसे मिल जुलकर रहते थे वहाँ अब अपने परायेका भेद होगया। अन्तमें कुछ हुआ नहीं। उतना उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनानेके लिये लोगोंमें क्षमता नहीं।

आगामी दिन मध्याह्नके बाद ज्ञानकल्याणकका उत्सव हुआ। कृत्रिम समवसरणके बीच भगवान् आदि जिनेन्द्र विराजमान थे। विद्वानोंने दिव्य ध्वनिके रूपमें जैनागम सम्मत तत्त्वोंका वर्णन किया। जिसका जनतापर अच्छा प्रभाव पड़ा। रात्रिको यहाँकी पाठशालाका अधिवेशन था। पं० कैलाशचन्द्रजीने पाठशालाकी अपील की। क्षेत्र तथा प्रान्तकी स्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला जिससे लोगोंके परिणाम द्रवीभूत होगये। कुछ चन्दा भी होगया परन्तु विद्याकी ओर जैसी रुचि लोगोंकी होनी चाहिये वह नहीं प्रकट हुई। इसका कारण विद्याका रस अभी इनके जीवनमें आया नहीं। फाल्गुन शुक्ला ७ को निर्वाण कल्याणकका दृश्य प्रातःकाल पंडालकी

वेदीपर दिखाया गया। कुछ समय पूर्व कैलाशपर्वतपर योग निरोध किये हुए भगवान् विराजमान थे पर कुछ ही समयके अनन्तर उनका प्रतिविम्व वहाँसे उठा लिया गया और चन्दनकी समिधाओं में कपूर द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर यह दृश्य दिखाया गया कि भगवान् मोक्ष चले गये। यह दृश्य देखकर जनता मुखसे तो जयध्वनिका उच्चारण करती थी परन्तु नेत्रोंसे उसके अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। मेरा परिणाम भी गद्गद् होगया जिससे अधिक तो नहीं कह सका पर इतना मैने अवश्य कहा कि जन्मापाय ही मोक्ष है। जन्मके कारणोके अभावमे जीव स्वयं मुक्त होजाता है। जन्मका कारण आयु है। जिस जीवका मोक्ष होना है उसके आयु बन्ध नहीं होता। जो आयु है उसका अन्त होनेपर जीवका मोक्ष होजाता है। वात सरल है परन्तु यह जीव मोहपदसे इतना उन्मत्त हो रहा है कि आपको जानता ही नहीं। जो वात करेगा वह विपरीत अभिप्रायसे रिक्त नहीं होती। पण्डालकी समस्त व्यवस्था पं० पन्नालालजी सागर सम्हाले हुये थे जिससे समयानुकूल सब कार्य होनेमे रुकावट नहीं होती थी। मेलामे लगभग १५-२० हजार जैन जनता आई होगी। किसीकी कुछ हानि नहीं हुई और न वर्षा आदिका किसीको कुछ कष्ट हुआ। सब सानन्द अपने अपने घर गये। मैं भी यहाँसे चलकर दलपतपुर आगया।

———

सागर

फाल्गुन कृष्णा १० सं० २००८ को दलपतपुरसे ७ मील चल कर वण्डा आ गये। यहाँ पर ८५ घर जैनियोंके हैं। प्रायः सर्व सम्पन्न हैं। थक गये इसलिये रात्रिमें प्रवचन नहीं किया। श्री कुञ्जीलालजी सराफ आदि सागरसे कई महानुभाव आये जिनने सागरके समाचार श्रवण कराये। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरमें शास्त्रप्रवचन हुआ। जनताकी उपस्थिति अच्छी थी। पाठशालाके लिये अर्थका प्रयास किया। ४०००) का चन्दा हुआ। यहाँ पर एक प्रभुदयाल दरोगा, जो कि वर्तमानमें रिटायर्ड हैं, योग्य मनुष्य हैं। आप प्रत्येक कार्यमें योगदान देते हैं। श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागर जीने चन्दामें हृदयसे योग दिया। आप जहाँ भोजनको गये वहाँसे प्रेरणा कर ५७०) पाठशालाको दिलाया। यहाँसे चलकर भड़राना आ गये और वहाँसे ६ मील चल कर शाहपुर पहुँच गये।

यहाँ कलशारोहणका उत्सव हो रहा था। बाहरसे करीब ५०० जनता आई होगी। रात्रिको पाठशालाका उत्सव हुआ। अपील होने पर १००००) दश हजारका चन्दा हो गया। शाहपुरके मनुष्योंमें देनेका उत्साह बहुत था। सबके परिणाम उदार थे। सबने मर्यादासे अधिक द्रव्य दिया। इस कार्यमें भैयालाल भजन-सागर और दयाचन्द्रजीने बहुत परिश्रम किया। द्वितीय दिन मध्यान्होपरान्त पाठशालाका पुनः उत्सव हुआ। श्री हरिश्चन्द्रजी मोदीका उत्साह एकदम उमडा। उन्होंने ५०००) पाँच हजार पाठशालाको देना स्वीकृत किया, २०००) दो हजार उनके भाई टीकारामजीने दिये और उनके बड़े भाई घप्पेरामजीने २५१) दिये

समगौरयाजी, भजनसागरजी तथा पं दयाचन्द्रजीने सबको मधुर शब्दोंमें धन्यवाद दिया और सिंघई लक्ष्मणप्रसादजी हरदीवालोंने सिंघई पदका तिलक किया तथा सब भाईयोंने भेंट की। बड़ा आनन्द रहा। अमावास्याके दिन पण्डालसे श्रीमान् ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द्रजी नायक जबलपुरवालोंने स्वरचित रामायणमेंसे दशरथ वैराग्यका प्रकरण जनताको श्रवण कराया। श्रवण कर जनता बहुत प्रसन्न हुई। मेरे चित्तमें बहुत उदासीनता आई परन्तु स्थायी शान्ति न आई। इसका मूल कारण भीतरकी दुर्बलता है। अनादि कालसे परमे निजत्वकी कल्पना चली आ रही है। उसका निकलना सहज नहीं। संसार स्थिति अल्प रह जाय तो यह कार्य अनायास हो सकता है। कलशारोहणका समारोह समाप्त हो गया। लोग अपने अपने घर गये और हम शान्त भावसे १६–१७ दिन यहाँ रहे। भगवानदास भायजी तत्त्वज्ञ तथा आसन्न भव्य पुरुष हैं। इनके साथ स्वाध्याय करते हुए शान्तिसे समय यापन किया।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा सं० २००८ के दिन सागरसे सिंघईजी आदि आये और सागर चलनेकी प्रेरणा करने लगे। हमने मना किया परन्तु अन्तमे मोहकी विजय हुई, हम पराजित हुए। सागर जाना स्वीकृत करना पड़ा। मुझे अनुभव हुआ कि संकोची मनुष्य सदा दुखी रहता है। सबको खुश करना असंभव बात है। प्रथम तो कोई ऐसा उपाय नहीं जो सबको प्रसन्न कर सके। द्वितीय सबकी एक सदृश भावना करना कठिन है। अतः एक यही उपाय है कि सबको खुश करनेकी अभिलाषा त्याग दी जाय। अभिलाषा ही दुखदायिनी है।

चैत्र कृष्णा ३ सं० २००८ को १ बजे शाहपुरसे चले। धर्मशालासे चल कर श्री अनन्दीलालकी दुकान पर विश्राम

किया। यहाँ सब जैन जनता आ गई। बालिकाओंने मंगल गान गाया। पश्चात् पं० अमरचन्द्रजीने गान पढ़ा। उसके उपरान्त पं० श्रुतसागरजीने ५ मिनट व्याख्यान दिया। सुनकर लोग गद्गद् कण्ठ हो गये। पश्चात् बहुत कठिनतासे चल पाये। आधा मील तक जनता आई। यहाँसे ६ मील चलकर सानोधा आ गये। यहाँ पर ८-१० घर जैनी हैं। १ मन्दिर है। अगले दिन भोजन कर सागरके लिये प्रस्थान कर दिया और शामके ६ बजे तक गोपालगंज (सागर) पहुँच गये।

चैत्र कृष्णा ५ को गोपालगंजमें आहार किया। ३ बजे प्रचुर जनताके साथ गोपालगंजसे चले और ४ बजे कटरा बाजार पहुँच गये। यहाँपर २ दो मन्दिर हैं। उनके दर्शन किये। मन्दिर स्वच्छता पूर्ण तथा निर्मल हैं, विस्तृत भी है परन्तु जनसंख्या बहुत होनेसे स्थानमें कमी पड़ जाती है। एक मन्दिर प्राचीन है। दूसरा स्व० सि० अनन्तरामजी दलालकी धर्मपत्नीने अपने मकानको मन्दिर रूपमें परिणतकर कुछ समय हुआ बनवाया है। मन्दिरोंके दर्शनकर वेदान्तीपर श्री गुलाबचन्द्रजी जौहरीका जो बाग है उसमें निवास किया। आपने यह बाग उदासीनाश्रमके लिये प्रदान किया है। उदासीनाश्रम संस्था इसीमें है। रात्रिको स्वागत समारोहके उद्देश्यसे मोराजी भवनमें सभा एकत्रित हुई।

सागर बडी बस्ती है। जैनियोंके हजारसे ऊपर घर हैं। बड़े बड़े १६ मन्दिर हैं। संस्कृत विद्यालय है ही। महिलाश्रम भी खुल चुका है। लोगोंमें सरलता है। यहाँ हमारा बहुत समय व्यतीत हुआ है। बाईजीका भी यहीं निवास था अतः घूम फिरकर मैं यहीं आ जाता था। यहाँका जलवायु हमारे शरीरके अनुकूल पडता है। लोगोंमें भद्रता भी अधिक है। यहाँ आकर कुछ समयके लिये भ्रमण सम्बन्धी आकुलतासे मुक्त हो गया।

यहाँकी समग्र जनताको लाभ मिल सके इस उद्देश्यसे आठ आठ दिन समस्त मन्दिरोंमें प्रवचनका क्रम जारी किया। पहले कटराके मन्दिरसे प्रवचन हुआ। फिर चौधरनवाईके मन्दिरमे, फिर सिंघईजीके मन्दिरमें। इसी क्रमसे सब मन्दिरोंमे यह क्रम चलता रहा। यहाँ तारण समाजका भी चैत्यालय है। उस आम्नायके लोगोंमें प्रमुख सेठ भगवानदासजी शोभालालजी बीड़ीवाले, मुन्नालालजी वैशाखिया तथा मथुराप्रसाद जी आदि है। इन सबके आग्रहसे चैत्यालयमे भी प्रवचन हुए।

चैत्र शुक्ला १३ सं० २००६ को वर्णी भवन (मोराजी भवन) में महावीर जयन्तीका उत्सव था। पं० दयाचन्द्रजी, माणिकचन्द्रजी, पन्नालालजी आदि के व्याख्यान हुए। कुछ इतर समाजके वक्ता भी बोले। जनता अधिक थी। समारोह अच्छा हुआ। दूसरे दिन सर्वधर्मसम्मेलनका आयोजन था जिसमे जैन हिन्दू मुसलमान और ईसाई धर्मवालोंके व्याख्यान हुये। अन्तमें मैंने भी बताया कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। काम क्रोध लोभ मोह आदि विकार आत्माकी उस निर्मल परिणतिको मलिन किये हुए हैं। जिस दिन यह मलिनता दूर हो जायगी उसी दिन आत्मामें धर्म प्रकट हुआ कहलावेगा। किसी कुल या जातिमें उत्पन्न होनेसे कोई उस धर्मका धारक नहीं हो जाता। कुलमें तो शरीर उत्पन्न होता है सो इसे जितने परलोकवादी हैं सब आत्मासे जुदा मानते हैं। शरीर पुद्गल है। उसका धर्म तो रूप रस गन्ध स्पर्श है। वह आत्मामे कहाँ पाया जाता है? आत्माका धर्म ज्ञान दर्शन क्षमा मार्दव आर्जव आदि गुण हैं। ये सदा आत्मामे पाये जाते हैं। आत्माको छोड़कर अन्यत्र इनका सद्भाव नहीं होता।

इतना तो सब मानते हैं कि इस समय संसारमे कोई विशिष्ट ज्ञानी नहीं। विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने-अपने ज्ञानके

अनुसार पदार्थको समझनेका प्रयास करते हैं। जिस प्रकार सूर्यके अभावमें घर-घर दीपक जल जाते हैं, कोई बिजलीका बड़ा बल्ब जलाता है तो कोई मिट्टीका छोटा-सा टिमटिमाता हुआ दीपक ही जलाता है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है वह उतना साधन जुटाता है। इसी प्रकार सर्वज्ञ-विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने अपने ज्ञानके दीपक जलाते हैं। फिर भी एक सूर्य संसारका जितना अंधकार नष्ट कर देता है उसको पृथिवीके छोटे बड़े सब दीपक भी मिल कर नष्ट नहीं कर सकते। ज्ञान थोड़ा हो, इसमें हानि नही परन्तु मोह मिश्रित ज्ञान हो तो वह पक्ष खड़ाकर देता है। यही कारण है कि इस समय उपलब्ध पृथिवीपर नाना धर्म नाना मत-मतान्तर प्रचलित हैं। यह कलिकालकी महिमा है। इस कालका यही स्वभाव है। आज लोगोंमें इतनी तो समझ आई है कि विभिन्न धर्मवाले एक स्थानपर बैठकर एक दूसरेके धर्मकी बात सुनते हैं, सुनाते हैं। जैनधर्मका अनेकान्तवाद तो इसीलिये अवतीर्ण हुआ है कि वह सब धर्मोंका सामञ्जस्य बैठाकर उनके पारस्परिक संघर्षको कमकर सके। आयोजक समितिने सब वक्ताओंके लिये एक-एक वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया।

समय यापन

पं० फूलचन्द्र जी बनारसवाले आये हुए थे। वैशाख कृष्णा ३-४ और ५ को आपका शास्त्र प्रवचन हुआ। इन तिथियोंमें प्रवचनकी व्यवस्था तालाबके मन्दिरमें थी। मन्दिर छोटा है परन्तु व्यवस्थित है। पण्डितजीके प्रवचन मार्मिक होते हैं।

आपका कहना था कि मनुष्यका कल्याण निज ज्ञानमें होता है, पुस्तक ज्ञानसे नहीं। खाली पुस्तकीय ज्ञान तो वैलपर लदी शक्कर के समान है। अर्थात् जिस प्रकार पीठपर लदी हुई शक्करका स्वाद वैलको नहीं मिलता उसी प्रकार केवल पुस्तकीय ज्ञानका स्वाद निज ज्ञानसे शून्य मनुष्योंको नहीं मिलता। आत्मज्ञानके साथ पुस्तकीय ज्ञान अधिक न हो तो भी काम चल जाता है परन्तु आत्मज्ञानके विना अनेक शास्त्रोंका ज्ञान भी वेकार है। प्रत्येक मानवको यदि शरीरादि पर पदार्थोंसे भिन्न आत्माका ज्ञान हुआ है तो उसे उसका सदुपयोग करना चाहिये। ज्ञानका सदुपयोग यही है कि उसमे मोह तथा राग-द्वेषका सम्मिश्रण न होने दे। ज्ञाता-दृष्टा आत्माका स्वभाव है। जब तक यह जीव ज्ञाता दृष्टा रहता है तव तक स्वस्थ कहलाता है और जव ज्ञाता-दृष्टा के साथ साथ रागी द्वेषी तथा मोही भी हो जाता है तव अस्वस्थ कहलाने लगता है। संसारमें अस्वस्थ रहना किसीको पसन्द नहीं अतः ऐसा प्रयत्न करो कि सतत स्वस्थ अवस्था ही वनी रहे। कल्याणका मार्ग उपेक्षामें है। उपेक्षाका अर्थ राग-द्वेपका अप्रणिधान है। अर्थात् उस ओर उपयोग नहीं जाने देना। रागादि कारणोंके द्वारा कल्याण मार्गकी अकांक्षा करना सर्पको दुग्ध पिलानेके समान है। संसारका आदि कारण आत्मा ही तो है। वही उसके अन्तका कारण भी है। छोटे छोटे वच्चे मिट्टीके घरोंदे वनाकर खेलते हैं और खेलते खेलते अपने ही पदाघातसे उन घरोंदोंको नष्ट कर देते हैं। इसी तरह मोही जीव मोहवश नाना प्रकारके घरोंदे वनाता है, पर पदार्थको अपना मान अनेक मंसूवे वनाता है परन्तु मोह निकल जानेपर उन सवको नष्ट कर देता है।

श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजी भी विहार करते हुए सागर

पधारे। निःस्पृह व्यक्ति हैं, तत्त्वज्ञानकी अभिलाषा रखते हैं, संस्कृत जानते हैं, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखते हैं। आपके दर्शन कर मेरे मनमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस कलिकालमें दिगम्बरत्वकी रक्षा करना सामान्य मनुष्यका काम नहीं। धन्य है आपके पुरुषार्थ-को जो इस विषम कालमें साक्षात् मोक्षमार्गकी जननी दिगम्बर मुद्राका निरतिचार निर्वाह कर रहे हैं। आपकी शान्तिमुद्रा देख-कर अन्य जन्तु भी शान्त भावको धारणकर मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं।

सागरमें बालचन्द्र मलैया श्रद्धालु जीव हैं। सम्पन्न होनेपर भी कोई प्रकारका व्यसन आपको नहीं। श्रावकके षट् कर्ममें निरन्तर आपकी प्रवृत्ति रहती है। आपने सागरसे २ मील दूर दक्षिणमें तिलीग्राममें एक विस्तृत तथा सुन्दर भवन बनवाया है। पूजाके लिये चैत्यालय भी निर्माण कराया है। एकान्त प्रिय होनेसे अधि-कांश आप वहीं पर रहते हैं। आपका आग्रह कुछ दिनके लिये अपने बागमें ले जानेका हुआ। मैंने स्वीकृत कर लिया अतः वैशाख शुक्ला १३ को श्रीक्षुल्लक क्षेमसागरजीके साथ वहाँ गया। बहुत ही रम्य स्थान है। सर्व तरहके सुभीते हैं। यदि कोई यहाँ तत्त्व विचार करना चाहे तो कोई उपद्रव नहीं। ३ दिन यहाँ रहा। पण्डित पन्नालालजी साथ रहते थे। शान्तिसे समय व्यतीत हुआ। वहाँसे आकर दिनमें गरमी अधिक पड़ती थी अतः भोजनोपरान्त ५ बजे तक श्री भगवान्दासजीकी हवेलीके नीचे भागमें रहता था। यहाँ सूर्यका आताप नहीं पहुँच पाता था इसलिये शान्ति रहती थी। ५ बजे शान्ति निकेतन—उदासीनाश्रममें चला जाता।

सागरमें अनेक मन्दिर हैं तथा विद्यालय और महिलाश्रम इस प्रकार २ संस्थाएं हैं। सबकी व्यवस्थापक समितियाँ जुदी-जुदी हैं इसलिये अपनी अपनी ओर लोगोंका खिचाव रहा करता है।

हमने सुझाव रक्खा कि समस्त सागर समाजकी एक प्रतिनिधि सभाका निर्माण होना चाहिये। वही सब मन्दिरों तथा संस्थाओं-की व्यवस्था करे। अलग अलग खिचड़ी पकानेमें शोभा नहीं। जनता को सुझाव पसन्द आ गया और ८४ प्रतिनिधियोंकी एक प्रतिनिधि सभा बन गई। परन्तु देखनेमें यह आया कि कार्यकर्ताओंके हृदय स्वच्छ नहीं अतः विश्वास नहीं बैठा कि ये लोग आगे चलकर सम्मिलितरूपसे व्यवस्था बनाये रखेंगे। सबसे जटिल प्रश्न मन्दिरों सम्बन्धी द्रव्यके सदुपयोग तथा उसकी सुव्यवस्थाका है। परिग्रह एक ऐसा मद्य है कि वह जहाँ जाता है वहीं लोगोके हृदयमे मद उत्पन्न कर देता है। परिग्रह चाहे घरका हो चाहे मन्दिर का, विकार भाव उत्पन्न करता ही है। जब तक मनुष्य परिग्रहको अपनेसे भिन्न अनुभव करता रहता है तब तक इसका बन्धन नहीं होता परन्तु जिस क्षण वह उसे अपना मानने लगता है उसी क्षण बन्धनमे पड़ जाता है। सरकारी खजानेमें कार्य करनेवाला व्यक्ति अपनी ड्यूटीके अवसर पर खजानेका स्वामी है पर वह उसे अपना नहीं मानता। यदि कदाचित् सौ पचास रुपयेमे उसका मन ललचा जावे और उन्हें वह निकाल कर जेबमें रखले—उनके साथ ममत्वभाव करने लगे तो तत्काल उसके हाथमे बेड़ी (हथकड़ी) पड़ जाती है।

कण्डया वंशमे श्री ताराचन्द्रजीका एक विस्तृत मकान, जो कि इतवारा बाजारमें था, बिकनेवाला था। लोगोंने सुझाव रक्खा कि यह मकान महिलाश्रमके लिये खरीद लिया जाय क्योंकि महिलाश्रम अभी तलावके मन्दिरके पीछे किरायेके मकानमे है, जहाँ संकीर्णता बहुत है तथा मच्छरोंकी अधिकता है। मकानकी कीमत २२०००) बाईस हजारके लगभग थी। महिलाश्रमके पास इतना फण्ड नहीं कि जिससे वह स्वयं खरीद सके। मकान निजका होनेसे संस्थामें स्थायित्व आ जाता है अतः मंत्री चाहता था कि मकान महिला-

प्रसन्नता हुई। मैंने कहा कि गुरुका अर्थ तो दिगम्बर मुद्राके धारी तपोधन मुनि हैं। श्रावण कृष्णा १ से चातुर्मास प्रारम्भ होजाता है अतः पूर्णिमा तक जहाँ जिनका चातुर्मास सम्भव होता वहाँ सब गुरु पहुँच जाते थे और गृहस्थ लोग उनके आगमनका समारोह मनाते थे। परन्तु आज दिगम्बर मुद्राधारी लोगोकी कमी हो गई इसलिए गुरुका अर्थ विद्यागुरु रह गया। यह भी बुरा नहीं क्योंकि एक अक्षरके देनेवालेके प्रति भी मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिये। 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति' किये हुये उपकारको साधुजन भूलते नहीं। माता पिताकी अपेक्षा विचार करो तो गुरुका स्थान सर्वोपरि है क्योंकि उसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्बन्धी हितकी प्राप्ति होती है।

छात्रका हृदय जितना अधिक निर्मल होगा वह उतना ही अधिक व्युत्पन्न बनेगा। छात्रको निर्द्वन्द्व होकर अध्ययन करना चाहिये। आजका छात्र पढ़ना अधिक चाहता है पर पढ़ता बिलकुल नहीं है। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद भी आज छात्र उस योग्यताको नहीं प्राप्त कर पाते जिस योग्यताको पहले छात्र एक दो पुस्तकोंको पढ़कर प्राप्त कर लेते थे। कितने ही छात्रोंमें बुद्धि स्वभावतः प्रबल होती है पर उन्हें अनुकूल साधन नहीं मिल पाते इसलिये वे आगे बढ़नेसे रह जाते है। जिन्हें साधन अनुकूल प्राप्त हो जाते हैं वे आगे बढ़ जाते हैं। इस समय उन्हें चिन्ता ही किस बातकी है, आरामसे बना बनाया भोजन प्राप्त होता है और गुरुजन तुम्हारे स्थानपर आकर पढ़ा जाते हैं। एक समय वह था कि जब हम विद्याध्ययन करनेके लिए मीलो दूर गुरुओंके स्थानपर जाया करते थे, हाथसे रोटी बनाकर खाते थे, गुरुओंकी शुश्रूषा करते थे तब कहीं कुछ हाथ लगता था पर आज तो सब सुविधाएँ हैं, फिर भी अध्ययन न हो तो दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

'ज्ञानं सुखस्य कारणम्' ज्ञान सुखका कारण है परन्तु परिपक्व ज्ञानसे ही सुख होता है यह निश्चय रखना चाहिए। जिसका ज्ञान अपरिपक्व है वह 'न इधरका न उधरका'—कहींका नहीं रहता। उसे पद पदपर श्रम उठाना पड़ता है। अतः जिस विषयको पढ़ो, मनोयोगसे पढ़ो और खूब पढ़ो। अनेक विषयोंकी अपेक्षा एक ही विषयका परिपक्व ज्ञान हो जावे तो उत्तम है।

श्रावण कृष्णा १० सं० २००९ को समाचार मिला कि डालमियाँ नगरमें श्रावण कृष्णा ८ सोमवारकी रात्रिको १० बजकर १५ मिनटपर श्री सूरिसागरजी महाराजका समाधिपूर्वक देहावसान होगया। समाचार सुनते ही हृदयपर एक आघात सा लगा। आप एक विशिष्ट आचार्य थे, फीरोजाबादके साक्षात्कारके अनन्तर तो आपमें हमारी अत्यन्त भक्ति होगई थी। इसके पहले जब आपकी रुग्णावस्थाके समाचार श्रवण किये थे तब मनमें आया था कि एक वार उनके चरणोंमें पहुँचकर उनकी वैयावृत्त्य करें परन्तु वाह्य त्याग के संकोचमें पड़ गये। हमारा मनोरथ मनका मनमें रह गया। श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजीके नेत्रोंसे तो अश्रुधारा बहने लगी क्योंकि आपने उन्हींसे दीक्षा ली थी। मुनिमहाराज तथा हमने आज उपवास रक्खा। कटरामें मन्दिरके सामने शोकसभा हुई जिसमें बहुत भारी जनता आई। विद्वानोंने समाजको उनका परिचय कराया तथा उनका गुणगानकर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

दिल्लीसे श्रीराजकृष्णजी, जैनेन्द्रकिशोरजी तथा लाला मुंशीलालजी आदि और कलकत्तासे छोटेलालजी आये। सब वर्णीभवनके हालमें ठहरे। रक्षाबन्धनका पर्वकी आज चर्या श्रीराजकृष्ण तथा जैनेन्द्रकिशोरके यहाँ हुई किन्तु भाग्यवश कटोरी भर भी दुग्धपान न कर पाया कि कटोरीमें मृत मक्षिका निकल गई। भोजनमें अन्तराय हो गया। इसके पूर्व चतुर्दशीका उपवास किया था। लोगोंको

बहुत दुःख हुआ। द्वितीय दिन श्रीराजकृष्णजीके यहाँ भोजन हुआ। श्रीजैनेन्द्रकिशोरजी ने अनारका रस दिया। २ दिनके बाद आज पारणा हुआ। लोगोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। इसी समय श्रीछोटेलालजी (कलकत्ता) ने १०००) विद्यादानमें अर्पित किये, जिनमें मैंने विद्यालयको ६००) विधवाश्रमको ३००) और उदासीनाश्रमको १००) दिला दिये। श्रीमुंशीलालजी देहलीवालोंने एक लाख रुपया समन्तभद्र विद्यालयको दिया। यह विद्यालय दिल्लीमें अनाथाश्रमके पास सामने जो भूमि है उसीपर बनेगा। चाधरन बाईके मन्दिरमे उनके १ लाखके दानकी घोषणा हुई। उन्हे समाजकी ओरसे पगड़ी बंधायी गई। श्रीसिघई कुन्दनलालजीके द्वारा पगड़ीका कार्य सम्पन्न हुआ। सेठ भगवानदासजीने पुष्पमाला पहिनाई। श्रीछोटेलालजीने अच्छा व्याख्यान दिया। आप १ पुरातनवेत्ता हैं। आपने पुराने तीर्थक्षेत्रों तथा प्रतिमाओंकी फिल्म ली है। एक दिन रात्रिको उनका प्रदर्शन किया। सिं० डालचन्द्रजीने सब आगन्तुकोको भोजन कराया। प्रसन्नतासे सब लोग अपने-अपने स्थान गये। हम शान्तिसे समय यापन करते रहे।

पर्यूषण पर्व आनेवाला था इसलिये समग्र समाजमे उत्साह भर रहा था।

पर्व प्रवचनावली

यहाँ श्री चौधरनबाईके मन्दिरमे पुष्कल स्थान है इसलिये प्रातः-कालके प्रवचनकी व्यवस्था इसी मन्दिरमें रहती थी। प्रातः ८॥ वजेसे श्री मुनि आनन्दसागरजीका प्रवचन उसके वाद पं० द्वारा तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ, और उसके बाद धर्मपर हमारा प्रवचन होता था। प्रवचनोंकी कापी पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने की थी। जन कल्याणकी दृष्टिसे उन प्रवचनोको यहां दे देना उपयुक्त समझता हूँ।

आज पर्वका प्रथम दिन है ३५० दिन वाद यह पर्व आया है। क्षमा सवसे उत्तम धर्म है। जिसके क्षमा धर्म प्रकट हो गया उसके मार्दव, आर्जव और शौच धर्म भी अवश्यमेव प्रकट हो जावेंगे। क्रोधके अभावसे आत्मामें शान्ति गुण प्रकट होता है। वैसे तो आत्मामे शान्ति सदा विद्यमान रहती है क्योंकि वह आत्माका स्वभाव है—गुण है। गुण गुणीसे दूर कैसे हो सकता है? परन्तु निमित्त मिलनेपर वह कुछ समयके लिए तिरोहित हो जाता है। स्फटिक स्वभावत. स्वच्छ होता है पर उपाधिके संसर्गसे अन्य रूप हो जाता है। हो जाओ, पर क्या वह उसका स्वभाव कहलाने लगेगा? नहीं, अग्निका संसर्ग पाकर जल उष्ण हो जाता है पर वह उसका स्वभाव तो नहीं कहलाता। स्वभाव तो शीतलता ही है। जहां अग्निका सम्वन्ध दूर हुआ कि फिर शीतलका शीतल। क्या बतलावें? पदार्थका स्वरूप इतना स्पष्ट और सरल है परन्तु अनादि कालीन मोहके कारण वह दुरूह हो रहा है।

क्रोधके निमित्तसे आदमी पागल हो जाता है और इतना पागल कि अपने स्वरूप तकको भूल जाता है। वस्तुकी यथार्थता उसकी दृष्टिसे लुप्त हो जाती है। एकने एक को घूँसा मार दिया। वह उसका घूँसा काटनेको तैयार हो गया पर इससे क्या? घूँसा मारनेका जो निमित्त था उसे दूर करना था। वह मनुष्य कुक्कुर वृत्ति पर उतारू हुआ है। कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो वह लाठीको दांतोंसे चबाने लगता है पर सिंह बन्दूक की ओर न झपट कर बन्दूक मारनेवालेकी ओर झपटता है। विवेकी मनुष्यकी दृष्टि सिंहकी तरह होती है। वह मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है। आज हम क्रोधका फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं। लाखों निरपराध प्राणी मारे गये और मारे जा रहे हैं। क्रोध चारित्रमोहकी प्रकृति है। उससे आत्माके संयम गुणका घात होता है। क्रोधके अभावमें प्रकट होनेवाला क्षमा गुण संयम है, चारित्र है। राग द्वेषके अभाव को ही तो चारित्र कहते हैं।

ज्ञानसूर्योदय नाटककी प्रारम्भिक भूमिकामें सूत्रधार नटीसे कहता है कि आजकी यह सभा अत्यन्त शान्त है इसलिये कोई अपूर्व कार्य इसे दिखलाना चाहिये। वास्तवमें शान्तिके समय कौनसा अपूर्व कार्य नहीं होता? मोक्षमार्गमें प्रवेश होना ही अपूर्व कार्य है। शान्तिके समय उसकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। आप लोग प्रयत्न कीजिये कि मोक्षमार्गमें प्रवेश हो और संसारके अनादि बन्धन खुल जाँय। आजके दिन जिसने क्षमा धारण नहीं की वह अन्तिम दिन क्षमावणी क्या करेगा? 'मैं तो आज क्षमा चाहता हूँ' इस वाचनिक क्षमाकी आवश्यकता नहीं है। हार्दिक क्षमासे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। क्षमाके अभावमें अच्छेसे अच्छे आदमी बरबाद हो जाते हैं।

मैं नदिया (नवद्वीप) में दुलारझाके पास न्याय पढ़ता था।

वे न्यायशास्त्रके बड़े भारी विद्वान् थे। उन्होंने अपने जीवनमें २५ वर्ष न्याय ही न्याय पढ़ा था। वे व्याकरण प्रायः नहीं जानते थे। एक दिन उन्होंने किसी प्रकरणमें अपने गुरुजीसे कहा कि जैसा 'वक्ति' होता है वैसा 'श्रीति' क्यों नहीं होता? उनके गुरु उनकी मूर्खता पर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि तू बैल है, भाग जा यहाँसे। दुलार झा को बहुत बुरा लगा। उनका एक साथी था जो व्याकरण अच्छा जानता था और न्याय पढ़ता था। दुलार झाने कहा कि यहाँ क्या पढ़ते हो? चलो हम तुम्हें घर पर न्याय बढ़िया पढ़ा देंगे। साथी इनके गाँवको चला गया। वहाँ उन्होंने उससे एक सालमें तमाम व्याकरण पढ़ डाला और एक साल बाद अपने गुरुके पास आकर क्रोधसे कहा कि तुम्हारे बापको धूल दी. पूछले व्याकरण कहाँ पूछना है? गुरु ने हँसकर कहा—आओ बेटा! मैं यही तो चाहता था कि तुम इसी तरह निर्भीक बनो। मैं तुम्हारी निर्भीकतासे बहुत संतुष्ट हुआ पर मेरी एक बात याद रक्खो—

अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि॥

दुलारझा अपने गुरुकी क्षमाको देखकर नतमस्तक रह गये। क्षमासे क्या नहीं होता? अच्छे-अच्छे मनुष्योंका मान नष्ट हो जाता है। दरभंगामें दो भाई थे। दोनों इतिहासके विद्वान् थे। एक बोला कि आला पहले हुआ है और दूसरा बोला कि ऊदल पहले हुआ है। इसीपर दोनोंमें लड़ाई हो गई। आखिर मुकदमा चला और जागीरदारसे किसानकी हालतमें आ गये। क्षमा सर्व गुणोंकी भूमि है। इसमें सब गुण सरलतासे विकसित हो जाते हैं। क्षमासे भूमिकी शुद्धि होती है। जिसने भूमिको शुद्ध कर लिया उसने सब कुछ कर लिया। एक गाँवमें दो आदमी थे—

एक चित्रकार और दूसरा अचित्रकार। अचित्रकार चित्र बनाना तो नहीं जानता था पर था प्रतिभाशाली। चित्रकार बोला कि मेरे समान कोई चित्र नहीं बना सकता। दूसरेको उसकी गर्वोक्ति सह्य नहीं हुई अतः उसने झटसे कह दिया कि मैं तुमसे अच्छा चित्र बना सकता हूँ। विवाद चल पड़ा। अपना अपना कौशल दिखानेके लिये दोनो तुल पड़े। तय हुआ कि दोनों चित्र बनावें फिर अन्य परीक्षकोंसे परीक्षा कराई जावे। एक कमरे-की आमने सामनेकी दीवालों पर दोनों चित्र बनानेको तैयार हुए। कोई किसीका देख न ले इसलिये बीचमें परदा डाल दिया गया। चित्रकारने कहा कि मैं १५ दिनमें चित्र तैयार कर लूंगा। इतने ही समयमें तुझे भी करना पड़ेगा। उसने कहा— मैं पांचे पन्द्रह दिनमें कर दूंगा, घवड़ाते क्यों हो? चित्रकार चित्र बनानेमें लग गया और दूसरा दीवाल साफ करनेमें। उसने १५ दिन में दीवाल इतनी साफ कर दी कि कांचके समान स्वच्छ हो गई। १५ दिन बाद लोगोंके सामने बीचका परदा हटाया गया। चित्रकारका पूरा चित्र उस स्वच्छ दीवालमें प्रतिबिम्बित हो गया और इस तरह कि उसे स्वयं अपने मुंहसे कहना पड़ा कि तेरा चित्र अच्छा है। क्या उसने चित्र बनाया था? नहीं, केवल जमीन ही स्वच्छ की थी पर उसका चित्र बन गया और प्रतिद्वन्द्वीकी अपेक्षा अच्छा रहा। आप लोग क्षमा धारण करें, चाहे उपवास एकाशन आदि न करें। क्षमा ही धर्म है और धर्म ही चरित्र है। कुन्दकुन्द स्वामीका वचन है—

> चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
> मोहक्खोहविहोणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

यह जीव अनादि कालसे पर पदार्थको अपना समझ कर

व्यर्थ ही सुखी दुखी होता है। जिसे यह सुख समझता है वह सुख नहीं है। वह ऊंचाई नहीं जहां से फिर पतन हो। वह सुख नहीं जहां फिर दुखकी प्राप्ति हो। यह वैषयिक सुख पराधीन है, बाधा सहित है, उतने पर भी नष्ट हो जानेवाला है और आगामी दुःखका कारण है। कौन समझदार इसे सुख कहेगा ? इस शरीर से आप स्नेह करते हैं पर इस शरीरमें है क्या ? आप ही बताओ। माता पिताके रज-वीर्यसे इसकी उत्पत्ति हुई। यह हड्डी, मांस, रुधिर आदिका स्थान है। उसीकी फुलवारी है। यह मनुष्य पर्याय सांटेके समान है। सांटेकी जड़ तो सड़ी होनेसे फेंक दी जाती है, वांड़ भी वेकाम होता है और मध्यमें कीड़ा लग जानेसे वेस्वाद हो जाता है। इसी प्रकार इस मनुष्यकी वृद्ध अवस्था शरीर शिथिल हो जाने से वेकार है। वाल अवस्था अज्ञानीकी अवस्था है और मध्यदशा अनेक रोग संकटोंसे भरी हुई है। उसमे कितने भोग भोगे जा सकेंगे ? पर यह जीव अपनी हीरा सी पर्याय व्यर्थ ही खो देता है। जिस प्रकार वातकी व्याधिसे मनुष्यके अङ्ग अङ्ग दुखने लगते हैं। कषायसे—विषयेच्छासे इसकी आत्माका प्रत्येक प्रदेश दुखी हो रहा है। यह दूसरे पदार्थको जव तक अपना समझता है तभी तक उसे अपनाये रहता है। उसकी रक्षा आदिमें व्यग्र रहता है पर ज्यो ही उसे परमें परकीय वुद्धि हो जाती है, उसका त्याग करनेमें उसे देर नहीं लगती। एक वार एक धोवीके यहाँ दो मनुष्यों-ने कपड़े धुलानेको दिये। दोनोंके कपड़े एक समान थे, धोवी भूल गया, वह वदल कर दूसरेका कपड़ा दूसरेको दे आया। एक खास परीक्षा किये विना दुपट्टाको अपना समझ ओढ़ कर सो गया पर दूसरेने परीक्षा की तो उसे अपना दुपट्टा वदला हुआ मालूम हुआ। उसने धोवीसे कहा। धोवीने गलती स्वीकार कर उसका कारण वतलाया और झटसे उस सोते हुए मनुष्यके दुपट्टेका अंचल

खींच कर कहा—जरा जागिये, आपका कपड़ा वदल गया है। आपका यह है वह मुझे दीजिये। धोवीके कहने पर ज्यों ही उसने लक्षण मिलाये त्यों ही उसे उसकी वात ठीक जॅची। अव उसे उस दुपट्टे से, जिसे वह अपना समझ मुँह पर डाले हुए था, घृणा होने लगी और तत्काल उसने उसे धोवीको वापिस कर दिया। आपके शुद्ध चैतन्य भावको छोड़कर सभी तो आपमें पर पदार्थ हैं परन्तु आप नींदमे मस्त हो उन्हे अपना समझ रहे हैं। स्वपरस्वरूपोपादानापोहनके द्वारा अपनेको अपना समझो और पर को पर। फिर कल्याण तुम्हारा निश्चित है।

आप लोग कल्याणके अर्थ सही प्रयाण तो करना नहीं चाहते और कल्याणकी इच्छा करते हैं सो कैसे हो सकता है? जैनधर्म यह तो मानता नहीं है कि किसीके वरदानसे किसीका कल्याण हो जाता है। यहाँ तो कल्याणके इच्छुक जनको प्रयत्न स्वयं करना होगा। कल्याण कल्याणके ही मार्गसे होगा। मुझे एक कहानी याद आती है। वह यह कि एक वार महादेवजीने अपने भक्तपर प्रसन्न होकर कहा—वोल तूँ क्या चाहता है? उसके लड़का नहीं था अतः उसने लड़का ही माँगा। महादेवजीने 'तथास्तु' कह दिया। घर आनेपर उसने स्त्रीसे कहा—आज सव काम वन गया, साक्षात् महादेवजीने वरदान दे दिया कि तेरे लड़का हो जायगा। भगवान्के वचन तो झूठ होते नहीं। अव कोई पाप क्यों किया जाय? हम दोनों ब्रह्मचर्यसे रहें। स्त्रीने पतिकी वात मान ली पर ब्रह्मचारीके सन्तान कहाँ? वर्षोंपर वर्षे व्यतीत होगई परन्तु सन्तान नहीं। स्त्रीने कहा भगवान्ने तुम्हे धोखा दिया। पुरुष बेचारा लाचार था। वह फिर महादेवजीके पास पहुँचा और वोला भगवन्! दुनिया झूठ वोले सो तो ठीक है पर आप भी झूठ वोलने लगे। आपको वरदान दिये १० वर्ष होगये पर आजतक लड़का नहीं

हुआ, ठगनेके लिये मैं ही मिला। महादेवजीने कहा—तुमने लड़का पानेके लिये क्या किया? पुरुषने कहा—हम लोग तो आपके वरदानका भरोसाकर ब्रह्मचर्यसे रहे। महादेवजीने हँसकर कहा—भाई! मैंने वरदान दिया था सो सच दिया था पर लड़का लड़केके रास्ते होगा। ब्रह्मचारीके संतान कैसे होगी? तू ही बता, मैं आकाशसे तो गिरा नहीं देता। ऐसा ही हाल हम लोगोंका है, कल्याण कल्याणके मार्गसे ही होगा।

यह मोह दुखदायी है—शास्त्रोंमें लिखा है, आचार्योंने कहा है, हम भी कहते हैं पर वह झूठा तो है ही नहीं। प्रयत्न जो हमारे अधूरे होते हैं। पूज्यपाद स्वामी समाधितन्त्रमें कहते हैं कि—

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
यज्जानाति न तद् दृश्यं केन साकं ब्रवीम्यहम्॥

जो दिखता है वह जानता नहीं है और जो जानता है वह दिखता नहीं फिर मैं किसके साथ बातचीत करूं? अर्थात् किसी के साथ बोलना नहीं चाहिये यह आत्माका कर्तव्य है। वे ऐसा लिखते हैं पर स्वयं बोलते हैं, स्वयं दूसरोंको ऐसा करनेका उपदेश देते हैं। तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन आपने सुना। उसकी भूमिकामें उसके बननेके दो तीन कारण बतलाये हैं पर राजवार्तिकमें अकलंकदेवने जो लिखा है वह बहुत ही ग्राह्य है। वे लिखते हैं कि इस सूत्रकी रचनामें गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अपेक्षित नहीं है किन्तु अनन्त संसारमें निमग्न जीवोंका अभ्युद्धार करनेकी इच्छासे प्रेरित हो आचार्यने स्वयं वैसा प्रयास किया है। कहनेका तात्पर्य है कि मोह चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, किसीको नहीं छोड़ता। भगवान् ऋषभदेव तो युगके महान् पुरुष थे पर उन्होंने भी मोहके उदयमें अपनी आयुके ८३ लाख पूर्व बिता दिये। आखिर, इन्द्रका इस ओर ध्यान

गया कि १८ कोड़ाकोड़ी सागरके बाद इस महापुरुषका जन्म हुआ और यह सामान्य जीवोंकी तरह संसारमें फँस रहा है, स्त्रियों और पुत्रोंके स्नेहमें डूब रहा है, संसारके प्राणियोंका कल्याण कैसे होगा? उसने यह सोच कर नीलञ्जनाके नृत्यका आयोजन किया और उस निमित्तसे भगवान्का मोह दूर हुआ। जब मोह दूर हुआ तब ही उनका और उनके द्वारा अनन्त संसारी प्राणियोंका कल्याण हुआ। रामचन्द्रजी सीताके स्नेहमे कितने भटके, लड़ाई लडी, अनेकोंका संहार किया पर जब स्नेह दूर हो गया तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितना प्रयत्न किया उन्हें तपसे विचलित करनेका। पर क्या वह विचलित हुए? मोह ही संसारका कारण है मेरा यही अटल श्रद्धान है।

इस मोहके कारण ही अपने आपको दुनियाँका कर्ता-धर्ता मानते हैं पर यथार्थमें पूँछो तो कौन कहाँका? कहाँकी स्त्री? कहाँका पुत्र? कौन किसको अपनी इच्छानुसार परिणमा सकता है। 'कहींकी ईंट कहींका रोरा भानमतीने कुरमा जोड़ा' ठीक हम लोग भी भानमतीके समान ही कुरमा जोड़ रहे हैं। नहीं तो कहाँका मनुष्य, कहाँका क्या? इसलिए जो संसारके बन्धनसे छूटना चाहते हैं उन्हे मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आप लोग विना कुछ किये कल्याण चाहते हो पर वह इस तरह होनेका नहीं। आपका हाल ऐसा है कि 'अम्मा मैं तैरना सीखूँगा पर पानीका स्पर्श नहीं करूँगा'।

: २ :

मार्दवका अर्थ कोमलता है। कोमलतामें अनेक गुण वृद्धि पाते हैं। यदि कठोर जमीनमे वीज डाला जाय तो व्यर्थ चला जायगा। पानीकी वारिसमे जो जमीन कोमल हो जाती है उसीमें वीज जमता है। वच्चोंको प्रारम्भमें पढ़ाया जाता है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

विद्या विनयको देती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रतासे धन मिलता है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है। जिसने अपने हृदयमें विनय धारण नहीं किया वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है? विनयी छात्रपर गुरुका इतना आकर्षण रहता है कि वह उसे एक साथ सव कुछ वतलानेको तैयार रहता है।

एक स्थानपर एक पण्डितजी रहते थे। पहले गुरुओंके घरपर ही छात्र रहा करते थे तथा गुरु उनपर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। पण्डितजीका एक छात्रपर विशेष स्नेह था, पण्डितानी उनको वार वार कहा करती कि सभी लड़के तो आपकी विनय करते हैं, आपको मानते हैं फिर आप इसी एककी क्यों प्रशंसा करते हैं। पण्डितजी ने कहा कि इस जैसा कोई मुझे नहीं चाहता। यदि तुम इसकी परीक्षा ही करना चाहती हो तो मेरे पास वैठ जाओ। आमका सीजन था, गुरुने अपने हाथपर एक पट्टीके भीतर आम वाँध लिया। और दुखी जैसी सूरत वनाकर कराहने लगे। समस्त छात्र गुरुजीके पास दौड़े आये। गुरुने कहा दुर्भाग्य वश भारी फोड़ा हो गया

है। छात्रोंने कहा मैं अभी वैद्य लाता हूँ, ठीक हो जावेगा। गुरुने कहा बेटो! यह वैद्यसे अच्छा नहीं होता—एक बार पहले भी मुझे हुआ था। तब मेरे पिताने उसे चूसकर अच्छा किया था, यह चूसने ही से अच्छा हो सकता है। मवादसे भरा फोड़ा कौन चूसे? सब ठिठक कर रह गये। इतनेमें वह छात्र आ गया जिसकी गुरु बहुत प्रशंसा किया करते थे। आकर बोला—गुरु जी क्या कष्ट है? बेटा! फोड़ा है, चूसनेसे ही अच्छा होगा…गुरु ने कहा। गुरुजीके कहनेकी देर थी कि उस छात्रने उसे अपने मुंहमें ले लिया। फोड़ा तो था ही नहीं. आम था। पण्डितानीको अपने पतिके वचनोंपर विश्वास हुआ। आजका छात्र तो गुरुको नौकर समझ उसका बहुत ही अनादर करता है। यही कारण है कि उसके हृदयमें विद्याका वास्तविक प्रवेश नहीं हो रहा है। क्या कहें आजकी बात? आज तो विनय रह ही नहीं गया। सभी अपने आपको बड़ेसे बड़ा अनुभव करते हैं। मेरा मान नहीं चला जाय इसकी फिकरमें सब पड़े हैं पर इस तरह किसका मान रहा है? आप किसीको हाथ जोड़कर या शिर झुकाकर उसका उपकार नहीं करते बल्कि अपने हृदयसे मान रूपी शत्रुको हराकर अपने आपका उपकार करते हैं। किसीने किसीकी बात मान ली, उसे हाथ जोड़ लिये, शिर झुका दिया उतने से ही वह खुश हो जाता है और कहता है कि इसने हमारा मान रख लिया। अरे मान रख क्या लिया? आपि तो खो दिया। आपके हृदयमें जो अहंकार था उसने उसे अपनी शारीरिक क्रियासे दूर कर दिया?

दिल्लीमें पञ्च कल्याणक हुआ था। पञ्चकल्याणकके बाद लाडू बाँटनेकी प्रथा वहाँ थी। लाला हरसुखरायजीने नौकरके हाथ सबके घर लाडू भेजा, लोगोंने सानन्द लाडू ले लिया पर एक गरीब आदमीने जो चना गुड़ आदिकी दुकान किये था यह विचार

कर लाडू लेना अस्वीकृत कर दिया कि मैं कभी लालाजीको पानी नहीं पिला सकता तब उनके लाडूका व्यवहार कैसे पूर्ण कर सकूँगा? शामके समय जब लालाजीको पता चला तो दूसरे दिन वे स्वयं लाडू लेकर नौकरके साथ गाड़ीपर सवार हो उसकी दूकानपर पहुँचे और बड़ी विनयसे दूकानपर बैठकर उसकी डालीमेंसे कुछ चने और गुड़ उठाकर खाने लगे। खानेके बाद बोले लाओ पानी पिलाओ। पानी पिया, तदनन्तर बोले कि भाई अब तो मैं तुम्हारा पानी पी चुका अब तो तुम्हें हमारा लाडू लेना अस्वीकृत नहीं करना चाहिये। दूकानदार अपने व्यवहार और लालाजीकी सौजन्यपूर्ण प्रवृत्तिसे दङ्ग रह गया। लाडू लिया और आँखोंसे आँसू गिराने लगा कि इनकी महत्ता तो देखो कि मुझ जैसे तुच्छ व्यक्तिको भी ये नहीं भुला सके। आजका बड़ा आदमी क्या कभी किसी गरीबका इस प्रकार ध्यान रख सकता है?

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरकी सुन्दरता इन आठ बातोंको लेकर मनुष्य गर्व करता है पर जिनका वह गर्व करता है क्या वे इसकी हैं? सदा इसके पास रहनेवाली हैं? क्षायोपशमिक ज्ञान आज है, कल इन्द्रियोंमें विकार आ जानेसे नष्ट हो जाता है। जहाँ चक्रवर्तीकी भी पूजा स्थिर नहीं रह सकी वहाँ अन्य लोगोंकी पूजा स्थिर रह सकेगी यह सम्भव नहीं है। कुल और जातिका अहङ्कार क्या है? सबकी खान निगोद राशि है। आज कोई कितना ही बड़ा क्यों न बना हो पर निश्चित है कि वह किसी न किसी समय निगोदसे ही निकला है। उसका मूल निवास निगोदमें ही था। बलका अहंकार क्या? आज शरीर तगड़ा है पर जोरका मलेरिया आ जाय तथा चार छह लँघने हो जावें तो सूरत बदल जाय, उठते न बने। धन सम्पदाका अभिमान थोता अभिमान है, मनुष्यकी सम्पत्ति जाते देर नहीं लगती। इसी

प्रकार तप और शरीरके सौन्दर्यका अभिमान करना व्यर्थ है।

कलके दिन प्रथमाध्यायमे आपने सम्यग्दर्शनका वर्णन सुना था। जिस प्रकार अन्य लोगोंके यहाँ ईश्वर या खुदाका माहात्म्य है वैसा ही जैनधर्ममें सम्यग्दर्शनका माहात्म्य है। सम्यग्दर्शनका अर्थ आत्मलब्धि है। आत्मीक स्वरूपका ठीक ठीक बोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। आत्मलब्धिके सामने सब सुख धूल हैं। सम्यग्दर्शनसे आत्माका महान् गुण जागृत होता है, विवेक शक्ति जागृत होती है। आज कल लोग हर एक बातमे क्यों? क्यों ?' करने लगते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि उनमें श्रद्धा नहीं है। श्रद्धाके न होनेसे ही हर एक बातमें कुतर्क उठा करते हैं। एक आदमीको 'क्यों' का रोग हो गया। उससे बेचारा बड़ा परेशान हुआ। पूछने पर किसी भले आदमीने सलाह दी कि तू इसे किसी को बेच डाल, भले ही सौ पचास लग जाँय। बीमार आदमी इस बिचारमें पड़ा कि यह रोग किसे बेचा जाय ? किसीने सलाह दी कि स्कूलके लड़के बडे चालाक होते हैं, ५०) देकर किसी लड़केको बेच दे। उसने ऐसा ही किया। एक लड़केने ५०) लेकर उसका वह रोग ले लिया। सब लड़कोंने मिल कर ५० की मिठाई खाई। जब लड़का मास्टरके सामने गया और मास्टरने पूछा कि कलका सबक सुनाओ, तब लड़का बोला—क्यों ? मास्टरने कान पकड़ कर लड़केको बाहर निकाल दिया। लड़का समझा कि 'क्यों' का रोग तो बड़ा खराब है, वह उसको वापिस कर आया। अबकी बार उसने सोचा कि चलो अस्पतालके क़िसी मरीजको बेच दिया जाय तो अच्छा है। ये लोग तो पलंग पर पड़े पड़े आनन्द करते ही हैं। ऐसा ही किया, एक मरीजको बेच आया। दूसरे दिन डाक्टर आये। पूछा—तुम्हारा क्या हाल है ? मरीजने कहा—क्यों ? डाक्टरने उसे अस्पतालसे बाहर कर दिया। उसने भी

समझा कि दर असल यह रोग तो बड़ा खराब है। वह भी वापिस कर आया। अबकी बार उसने सोचा कि अदालती आदमी बड़े टंच होते हैं, उन्हींको बेचा जाय। निदान, एक आदमीको बेच दिया। वह मजिष्ट्रेटके सामने गया। मजिष्ट्रेटने कहा कि तुम्हारी नालिशका ठीक ठीक मतलब क्या है? आदमीने कहा—क्यों? मजिष्ट्रेटने मुकद्दमा खारिज कर कहा कि घरकी रह लो।... यह तो कहानी है पर विचार कर देखा जाय तो हर एक बातमे कुतर्कसे काम नहीं चलता। युक्तिके बलसे सभी बातोका निर्णय नहीं किया जा सकता। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनका आगमसे निर्णय होता है और कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनका युक्तिसे निर्णय होता है। यदि आपको धर्ममे श्रद्धा न होती तो हजारोंकी संख्यामे क्यों आते?

आचार्योंने सबसे पहले यही कहा कि 'सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। आचार्यकी करुणा बुद्धि तो देखो। अरे, मोक्ष तो तब हो जब पहले बन्ध हो। यहाँ पहले बन्धका मार्ग बतलाना था फिर मोक्षका परन्तु उन्होंने मोक्ष-मार्गका पहले वर्णन किया है। उसका कारण यही है कि ये प्राणी अनादिकालसे बन्ध जनित दुःखका अनुभव करते करते घबड़ा गये हैं अतः पहले इन्हे मोक्षका मार्ग बतलाना चाहिये। जैसे जो कारागारमें पड़ कर दुःखी होता है वह यह नहीं जानना चाहता है कि मैं कारागारमे क्यों पड़ा? वह तो यह जानना चाहता है कि मैं इस कारागारसे छूटूँ कैसे? यही सोच कर आचार्यने पहले मोक्षका मार्ग बतलाया है। सम्यग्दर्शनके रहनेसे विवेक शक्ति सदा जागृत रहती है। वह विपत्तिमे पड़ने पर भी कभी अन्यायको न्याय नहीं समझता। रामचन्द्रजी सीताको छुड़ानेके लिये लङ्का

गये थे। लंकाके चारों ओर उनका कटक पड़ा था। हनूमान् आदिने रामचन्द्रजीको खबर दी कि रावण जिनमन्दिरमें बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि उसे यह विद्या सिद्ध हो गई तो फिर वह अजेय हो जायगा। आज्ञा दीजिये कि जिससे हम लोग उसकी विद्यासिद्धिमे विघ्न करें। रामचन्द्रजीने कहा कि हम क्षत्रिय हैं, कोई धर्म करे और हम उसमें विघ्न डालें यह हमारा कर्तव्य नहीं है। सीता फिर दुर्लभ हो जायगी...... यह हनुमानने कहा। रामचन्द्रजीने जोरदार शब्दोंमे उत्तर दिया—हो जाय, एक सीता नहीं दशों सीताएँ दुर्लभ हो जाँय पर मैं अन्याय करने की आज्ञा नहीं दे सकता। रामचन्द्रजीमे जो इतना विवेक था उसका कारण क्या था? कारण था उनका सम्यग्दर्शन—विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन।

सीताको तीर्थयात्राके बहाने कृतान्तवक्र सेनापति जंगलमे छोड़ने गया। क्या उसका हृदय वैसा करना चाहता था? नहीं, वह तो स्वामीकी परतन्त्रतासे गया था। उस वक्त कृतान्तवक्रको अपनी पराधीनता काफी खली। जब वह निर्दोष सीताको जंगलमे छोड़ अपने अपराधकी क्षमा माँग वापिस आने लगा तब सीता उससे कहती है—सेनापते! मेरा एक संदेश उनसे कह देना। वह यह कि जिस प्रकार लोकापवादके भयसे आपने मुझे त्यागा है इस प्रकार लोकापवादके भयसे जैनधर्मको नहीं छोड़ देना। उस निराश्रित अपमानित स्त्रीको इतना विवेक बना रहा। इसका कारण क्या था? उसका सम्यग्दर्शन। आज कलकी स्त्री होती तो पचास गालियाँ सुनाती और अपने समानताके अधिकार बनाती। इतना ही नहीं, सीता जब नारदजीके आयोजन द्वारा लवणांकुशके साथ अयोध्या आती है। एक वीरता पूर्ण युद्धके बाद पिता-पुत्रका मिलाप होता है, सीता लज्जासे भरी हुई राज दरबारमें पहुँचती है। उसे देखकर

रामचन्द्रजी कह उठते हैं कि दुष्टे ! तू विना शपथ दिये—विना परीक्षा दिये यहाँ कहाँ ? तुझे लज्जा नहीं आई ? सीताने विवेक और धैर्यके साथ उत्तर दिया कि मैं समझी थी कि आपका हृदय कोमल है पर क्या कहूँ ? आप मेरी जिस प्रकार चाहे शपथ ले लें। रामचन्द्रजीने उत्तेजनामें आकर कह दिया कि अच्छा अग्निमें कूद कर अपनी सचाईकी परीक्षा दो। बड़े भारी जलते हुए अग्नि कुण्डमें कूदनेके लिये सीता तैयार हुई। रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि सीता जल न जाय। लक्ष्मणने कुछ रोषपूर्ण शब्दोंमें उत्तर दिया कि यह आज्ञा देते समय न सोचा ? यह सती है, निर्दोष है। आज आप इसके अखण्ड शीलकी महिमा देखिये। इसी समय दो देव केवलीकी वन्दनासे लौट रहे थे। उनका ध्यान सीताका उपसर्ग दूर करनेकी ओर गया। सीता अग्नि कुण्डमें कूद पड़ी और कूदते ही साथ जो अतिशय हुआ सो सब जानते हो। सीताके चित्तमें रामचन्द्रजीके कठोर शब्द सुन कर संसारसे वैराग्य हो चुका था पर 'निःशल्यो व्रती' व्रतीको निःशल्य होना चाहिये। यदि विना परीक्षा दिये मैं व्रत लेती हूं तो यह शल्य निरन्तर वनी रहेगी। इसलिये उसने दीक्षा लेनेसे पहले परीक्षा देना आवश्यक समझा था। परीक्षामें वह पास हो गई, रामचन्द्रजी उससे कहते हैं—देवि ! घर चलो। अव तक हमारा स्नेह हृदयमे था पर अब आँखोंमे आ गया है। सीताने नीरस स्वरमें कहा—

> कहि सीता सुन रामचन्द्र संसार महादुःख वृक्षकंद।
> तुम जानत पर कुछ करत नाहिं..........................॥

रामचन्द्रजी ! यह घर दुखरूपी वृक्षकी जड़ है। अव मै इसमे न रहूँगी। सच्चा सुख इसके त्यागमे ही है। रामचन्द्रजी ने बहुत कुछ कहा—यदि मै अपराधी हूँ तो लक्ष्मणकी ओर देखो, यदि

यह भी अपराधी है तो अपने बच्चों लवणांकुशकी ओर देखो और एक वार पुनः घरमें प्रवेश करो। परन्तु सीता अपनी दृढ़तासे च्युत नहीं हुई। उसने उसी वक्त केश उखाड़ कर रामचन्द्रजीके सामने फेंक दिये और जङ्गलमें जाकर आर्या हो गई। यह सब काम सम्यग्दर्शनका है। यदि उसे अपने कर्मपर, भाग्यपर विश्वास न होता तो वह क्या यह सब कार्य कर सकती?

अब रामचन्द्रजीका विवेक देखिये। जो रामचन्द्र सीताके पीछे पागल हो रहे थे, वृक्षोंसे पूछते थे—क्या तुमने मेरी सीता देखी है? वही जब तपश्चर्यामें लीन थे तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितने उपसर्ग किये पर वह अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। शुक्ल ध्यान धारणकर केवली अवस्थाको प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शनसे आत्मामें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं जो सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यदि आपमें ये गुण प्रकट हुए हैं तो समझ लो हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या वतलायगा कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि? अप्रत्याख्यानावरणी कषायका संस्कार छह माहसे ज्यादा नहीं चलता। यदि आपकी किसीसे लड़ाई होनेपर छह माहसे अधिक कालतक बदला लेनेकी भावना रहती है तो समझ लो कि अभी हम मिथ्यादृष्टि हैं। कषायके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। उनमें मनका स्वरूपसे ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अवस्थामें इस जीवकी विषय कषायमें जैसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति होती है वैसी सम्यग्दर्शन होनेपर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चारित्रमोहके उदयसे यह उसे छोड़ नहीं सकता हो पर प्रवृत्तिमें शैथिल्य अवश्य आ जाता है। प्रशमका एक अर्थ यह भी है जो पूर्वकी अपेक्षा अधिक ग्राह्य है। वह यह कि सद्यःकृतापराध जीवोंपर भी रोष उत्पन्न नहीं होना प्रशम कहलाता है। बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करते

समय रामचन्द्रजीने रावणपर जो रोष नहीं किया था वह इसका उत्तम उदाहरण है। प्रशम गुण तब तक नहीं हो सकता जब तक अनन्तानुबन्धी क्रोध विद्यमान रहता है। उसके छूटते ही प्रशम गुण प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्यों अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी मान माया लोभ सभी कषाय प्रशमगुणके घातक हैं। संसारसे भय उत्पन्न होना संवेग है। विवेकी मनुष्य जब चतुर्गतिरूप संसारके दुःखोंका चिन्तन करता है तब उसकी आत्मा भयभीत होजाती है तथा दुःखके कारणोंसे निवृत्त होजाती है। दुःखी मनुष्यको देखकर हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो जाना अनुकम्पा है। मिथ्यादृष्टिकी अनुकम्पा और सम्यग्दृष्टिकी अनुकम्पामें अन्तर होता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य जब किसी आत्माको क्रोधादि कषायोंसे अभिभूत तथा भोगासक्त देखता है तब उसके मनमें करुणाभाव उत्पन्न होता है कि देखो बेचारा कषायके भारसे कितना दब रहा है ? इसका कल्याण किस प्रकार हो सकेगा ? आप्त व्रत श्रुत तत्त्वपर तथा लोक आदि पर श्रद्धापूर्ण भावका होना आस्तिक्य भाव है। ये गुण सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यद्यपि मिथ्यात्वकी मन्दतामें भी ये हो जाते हैं तथापि वे यथार्थ गुण नहीं किन्तु गुणाभास कहलाते हैं।

: ३ :

आज आर्जव धर्म है। आर्जवका अर्थ सरलता है और सरलताके मायने मन वचन कायकी एकता है। मनमें जो विचार आया हो उसे वचनसे कहा जाय और जो वचनसे कहा जाय उसीके

अनुसार कायसे प्रवृत्ति की जाय। जब इन तीनों योगोंकी प्रवृत्तिमें विषमता आ जाती है तब माया कहलाने लगती है। यह माया शल्यकी तरह हृदयमें सदा चुभती रहती है। इसके रहते हुए मनुष्यके हृदयमें स्थिरता नहीं रहती और स्थिरताके अभावमें उसका कोई भी कार्य यथार्थरूपमें सिद्ध नहीं हो पाता।

मान और लोभके बीचमें मायाका पाठ आया है सो उसका कारण यह है कि माया मान और लोभ—दोनोंके साथ संपर्क रखती है। दोनोंसे उसकी उत्पत्ति होती है। मानके निमित्तसे मनुष्यको यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरे बड़प्पनमें कोई प्रकारकी कमी न आ जाय परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे बड़प्पनका कार्य करनेमें असमर्थ रहता है इसलिये मायाचाररूपी प्रवृत्ति कर अपनी हार्दिक कमजोरीको छिपाये रखता है। मनुष्य जिस रूपमें वस्तुतः है उसी रूपमें उसे अपने आपको प्रगट करना चाहिये। इसके विपरीत जब वह अपनी दुर्बलताको छिपाकर बड़ा बननेका प्रयत्न करता है तब मायाकी परिणति उसके सामने आती है। यही दम्भ है, माया है। जिनागम तो यह कहता है कि जितनी शक्ति हो उतना कार्य करो और अपने असली रूपमें प्रकट होओ। लोभके वशीभूत होकर जीव नाना प्रकारके कष्ट भोगता है तथा इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये निरन्तर अध्यवसाय करता है। वह तरह-तरहकी छल-क्षुद्रताओंको करता है। मोहकी महिमा विचित्र है। आपने पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्व भव श्रवण किये होंगे। एक मुनिने एक स्थानपर मासोपवास किये। व्रत पूर्ण होनेपर वे तो कहीं अन्यत्र विहार कर गये पर उनके स्थानपर अन्यत्रसे विहार करते हुए दूसरे मुनि आ गये। नगरके लोग उन्हे ही मासोपवासी मुनि समझ उनकी प्रभावना करने लगे पर उन आगन्तुक मुनिको यह भाव नहीं हुआ कि कह दें—मैं मासोपवासी नहीं हूँ। महान् न होनेपर भी

महान् बननेकी आकांक्षाने उनकी आत्माको मायाचारसे भर दिया और उसका परिणाम क्या हुआ सो आप जानते हैं। मनुष्य अपने पापको छिपानेका प्रयत्न करता है पर वह रुईमें लपेटी आगके समान स्वयमेव प्रकट हो जाता है। किसीका जल्दी प्रकट हो जाता है और किसीका विलम्बसे पर यह निश्चित है कि प्रकट अवश्य होता है। पापके प्रकट होनेपर मनुष्यका सारा वड़प्पन समाप्त हो जाता है और छिपानेके कारण संक्लेश रूप परीणामोंसे जो खोटे कर्मोका आस्रव करता रहा उसका फल व्यर्थ ही भोगना पड़ता है। बाँसकी जड़, मेढ़ेके सींग, गोमूत्र तथा खुरपीके समान माया चार प्रकारकी होती है। यह चारों प्रकारकी माया दुःखदायी है। मायाचारी मनुष्यका कोई विश्वास नहीं रखता और विश्वासके न होनेसे उसे जीवन भर कष्ट उठाना पड़ते हैं। जब कि सरल मनुष्य इसके विरुद्ध अनेक सम्पत्तियोंका स्वामी होता है। आपने पूजामें पढ़ा होगा—

कपट न कीजे कोय चोरनके पुर ना वसै।
सरल स्वभावी होय ताके घर बहु सम्पदा॥

अर्थात् किसीको कपट नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरोंके कभी गाँव बसे नहीं देखे गये। जीवन भर चोर चोरी करते हैं पर अन्त-मे उन्हें कफनके लिये परमुखापेक्षी होना पड़ता है। इसके विपरीत सरल मनुष्य अधिक सम्पत्तिशाली होता है। मायासे मनुष्यकी सब सुजनता नष्ट हो जाती है। मायावी मनुष्य ऐसी मुद्रा वनाता है कि देखनेमे वड़ा भद्र मालूम होता है पर उसका अन्तःकरण अत्यन्त कलुषित रहता है। वनवासके समय जब रामचन्द्रजी पम्पा सरो-वरके किनारे पहुँचे तब एक वगला वड़ी शान्त मुद्रामें वैठा था। उसे देख रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि लक्ष्मण! देखो

कैसा शान्त तपस्वी बैठा है ? उसी समय एक मच्छकी आवाज आती है कि महाराज ! उसकी शान्त वृत्तिका हाल तो मुझसे पूछिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्य येन केन प्रकारेण अपना ऐहिक प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं पर पारलौकिक प्रयोजनकी ओर उनकी दृष्टि नहीं है। साँप लहराता हुआ चलता है पर वह जब अपने बिलमें घुसने लगता है तब उसे सीधा ही चलना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य जब स्वरूपमें लीन होना चाहता है तब उसे सरल व्यवहार ही करना पड़ता है। सरल व्यवहारके बिना स्वस्व-भावमें स्थिरता कहाँ हो सकती है ?

जहाँपर स्वस्वभावरूप परिणमन है वहाँ पर कपटमय व्यवहार नहीं और जहाँ कपट व्यवहार है वहाँ स्वस्वभाव परिणमनमें विकार है। इसीसे इसको विभाव कहते हैं। विभाव ही संसारका कारण है। प्रायः ससारमें प्रत्येक मनुष्यकी यह अभिलाषा रहती है कि मैं लोगोंके द्वारा प्रशंसा पाऊं—लोग मुझे अच्छा समझें यही भाव जीवके दुःखके कारण हैं। ये भाव जिनके नहीं होते वे ही सुजन हैं। उनके जो भी भाव होते हैं वे ही सुस्वभाव कहलाते हैं। जिन जीवोंके अपने कषाय पोषणके परिणाम नहीं वही सुजन हैं। उनकी जो परिणति है वही सुजनता है। यहाँ तक उनकी निर्मल परिणति होजाती है कि वे परोपकारादि करके भी अपनी प्रशंसा नहीं चाहते—किसी कार्यके कर्ता नहीं बनते। मेरा तो विश्वास है कि ऐसे महान् पुरुष पुण्यको बन्धका कारण समझते हैं। यदि उसे बन्धका कारण न समझते तो उसके कर्तृत्वको क्यों न अपनाते ? वे कर्मोदयमें विषयादि कार्य भी बलात् करते हैं परन्तु उसमें विरक्त रहते हैं। जो पुण्य कार्य करनेमें भी उपेक्षा करते हैं वे पाप कार्य करनेमें अपेक्षा करें यह बुद्धिमें नहीं आता। सुजन मनुष्यकी चेष्टा अगम्य है। उनका जो भी कार्य है वह कर्तृत्वसे शून्य है। इसीसे वे लौकिक

सुखों और दुःखके होनेपर हर्ष और विषाद भावके पात्र नहीं होते। वे उन कार्योंको कर्मकृत जान उनसे उपेक्षित रहते हैं। वे जो दानादि करते हैं उनमे भी उनके प्रशंसादिके भाव नहीं होते। यही कारण है कि वे अल्प कालमे संसारके दुःखोंसे बच जाते हैं।

सुजनताकी गन्ध भी मनुष्यके लग जावे तो वह अधर्म कार्योंसे बच जावे। वर्तमान युगमें मनुष्य प्रायः विषयलम्पटी हो गये हैं। इससे सम्पूर्ण संसार दुःखमय हो रहा है। पहले मनुष्य विद्यार्जन इसलिये करते थे कि हम संसारके कष्टोंसे बचें तथा परको भी बचावें। हमारे संचयमे जो वस्तु हो उससे परको भी लाभ पहुँचे। पहलेके लोग ज्ञानदान द्वारा अज्ञानीको सुज्ञानी बनानेका प्रयत्न करते थे परन्तु अब तो विद्याध्ययनका लक्ष्य परिग्रह पिशाचके अर्जनका रह गया है। यह बात पहले ही लक्ष्यमें रखते हैं कि इस विद्याध्ययनके बाद हमको कितना मासिक मिलेगा ? पारलौकिक लाभका लक्ष्य नहीं। पाश्चात्य विद्याका लक्ष्य ही यह है कि विज्ञानके द्वारा ऐसे ऐसे आविष्कार करना जो किसी तरह द्रव्य का अर्जन हो, प्राणियोंका संहार हो, सहस्रों जीवोंका जीवन खतरे मे पड जावे। ऐसे आविष्कार किये जावें कि एक अणुबमके द्वारा लाखों मनुष्योंका स्वाहा हो जावे। अथवा ऐसे ऐसे सिनेमा दिखाये जावें। यद्यपि कोई कोई सिनेमा भलाईके हैं तो भी वे विष मिश्रित भोजनके समान हैं। अस्तु, यह सब इस निकृष्ट कालकी महिमा है। इस युगमें भी कई ऐसे सुजन हैं जो इन उपद्रवोंसे सुरक्षित हैं और उन्हींके प्रतापसे आज कुछ शान्ति देखी जाती है। जिस दिन उन महात्माओंका अभाव हो जायगा उस दिन सर्वत्र ही अराजकताका साम्राज्य हो जावेगा। आजकल प्राचीन आर्यपद्धति के परम्परागत नियमोकी अवहेलना की जाती है और नये नये नियमोंका निर्माण किया जा रहा है। प्राचीन नियम यदि दोष

पूर्ण हों तो उन्हे त्याग दो। इसमे कोई भी आपत्ति नहीं परन्तु अब तो प्राचीन महात्माओंकी बात सुननेसे मनुष्य उबल उठते हैं। मेरा तो विश्वास है कि परिग्रहके पिशाचसे पीड़ित आत्मा कितने ही ज्ञानी क्यों न हो उनके द्वारा जो भी कार्य किया जावेगा उससे कदापि साधारण मनुष्योंको लाभ नहीं पहुँच सकता क्योंकि वे स्वयं परिग्रहसे पीड़ित हैं। प्राचीन समयमे वीतराग साधुओंके द्वारा ससारमात्रकी भलाईके नियम बनाये जाते थे अतः जिन्हें संसारके कल्याण करनेकी अभिलाषा है वे पहले स्वयं सुजन बनें। सुजन मायने भले मानुष। भले मानुषका अर्थ है जिनका आचार निर्मल हो। निर्मल आचारके द्वारा वे आत्मकल्याण भी कर सकते हैं और उनके आचारको देखकर संसारी मनुष्य स्वयं कल्याण कर सकता है। यदि पिता सदाचारी है तो उसकी संतान स्वयं सदाचारी बन जाती है। यदि पिता बीड़ी पीता है तो बेटा सिगरेट पीवेगा और पिता भंग पीता है तो बेटा मदिरा पान करेगा इसलिए निर्मल आचारके धारक सुजन बनो तथा निश्छल प्रवृत्ति करो।

आपने तृतीयाध्यायमे नरक लोकका वर्णन सुना, वहाँके स्वाभाविक तथा परकृत दुःखोंका जब ध्यान आता है तब शरीरमें रोमाञ्च उठ आते हैं। हृदयमे विचार करो कि इन दुःखोंका मूल कारण क्या है? इन दुःखोंका मूल कारण मिथ्यात्वकी प्रबलता है। मिथ्यात्वकी प्रवलतासे यह जीव अपने स्वभावसे च्युत हो पर पदार्थोंको सुखका कारण मानने लगता है इसीलिये परिग्रहमे तथा उसके उपार्जनमें इसकी आसक्ति बढ़ जाती है और यह परिग्रह तथा आरम्भ सम्बन्धी आसक्ति ही इस जीवको नरकके दुःखोंका पात्र बना देती है। नरक गतिमे यह जीव दश हजार वर्षसे लेकर तेतीस सागर तक विद्यमान रहता है। वहाँसे असमयमे निकलना

भी नहीं होता अर्थात् जो जीव जितनी आयु लेकर नरकमें जहाँ पहुँचता है उसे वहाँ उतनी आयु तक रहना ही पड़ता है। नरक दुःखका कारण है परन्तु वहाँ भी यदि किन्हीं जीवोंकी काललब्धि आजाती है तो वे सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं। सम्यग्दृष्टि बनते ही उनकी अन्तरात्मा आत्मसुखका स्वाद लेने लगती है।

चिन्मूरति दृग्धारीकी मोहि रीति लगत है अटापटी।
बाहर नारक कृत दु.ख भोगै अन्तर सुख रस गटागटी॥

सम्यग्दर्शन हो जाने पर भी नारकी बाह्यमे यद्यपि पूर्वकी भाँति ही दुःख भोगता है तथापि अन्तरङ्गमे उसे मोहाभाव जन्य सुखका अनुभव होने लगता है। वह समझता है कि नारकियोंके द्वारा दिया हुआ दुःख हमारे पुराकृत कर्मोंका फल है जिसे भोगना अनिवार्य है परन्तु यह दुःख हमारा निज स्वभाव नहीं है। मेरा निज स्वभाव तो चैतन्यमूर्ति तथा अनन्त सुखका भण्डार है। मोहके कारण मेरा यह स्वभाव वर्तमानमें अन्यथा परिणमन कर रहा है पर जब मोहका विकार आत्मासे निकल जायगा तब आत्मा निजस्वभावमें लीन हो जायगा।

मध्यम लोकके वर्णनसे यह चिन्तवन करना चाहिये कि इस लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं बचा जिसमे मैं अनन्त बार उपजा मरा न होऊँ। धर्म रूढ़ि नहीं है प्रत्युत आत्माकी निर्मल परिणति है। उसे जीवनमें उतारनेसे ही आत्माका कल्याण हो सकता है।

आज शौचधर्म है। शौचका अर्थ पवित्रता है। यह पवित्रता लोभ कषायके अभावमें प्रकट होती है। लोभके कारण ही संसारके यावन्मात्र प्राणी दुखी हो रहे हैं। आचार्य गुणभद्रने आत्मानुशासनमे लिखा है—

> आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
> कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥

अर्थात् यह आशारूपी गर्त प्रत्येक प्राणीके सामने खुदा है। ऐसा गर्त कि जिसमे समस्त संसारका वैभव परमाणुके समान है। फिर किसके भागमें कितना आवे अतः विषयोकी वाञ्छा करना व्यर्थ है। इस आशारूपी गर्तको जैसे-जैसे भरा जाता है वैसे-वैसे ही यह गहरा होता जाता है। पृथिवीके अन्य गर्त ता भर देनेसे भर जाते हैं पर यह आशागर्त भरनेसे और भी गहर हो जाता है। किसी आदमीको हजारकी आशा थी, हजार उसे मिल भी गये पर अब आशा दश हजारकी हो गई। अर्थात् आशारूपी गर्त पहलेसे दशगुना गहरा हो गया। भाग्यवश दश हजार भी मिल गये पर अब एक लाखकी आशा हो गई। अर्थात् आशागर्त पहलेसे सौ गुना गहरा हो गया। यह केवल कहनेकी बात नहीं है। इसे आप लोग रात दिन अपने जीवनमें उतार रहे हैं। तृष्णाके वशीभूत हुआ प्राणी क्या-क्या नहीं करता है? वह इष्टसे इष्ट व्यक्तिका प्राणान्त करनेमे भी पीछे नहीं हटता। आजका मानव निरन्तर 'और और' चिल्लाता रहता है। उसके मुखसे कभी 'बस' नहीं निकलता। बिना सन्तोषके बस कैसे निकले?

एक समय था कि जब लड़का कार्य सम्भालने योग्य हो जाता था तब वृद्ध पिता सम्पत्तिसे मोह छोड़ दीक्षा ले लेता था पर आज वृद्ध पिता और उनके भी पिता हों तो वह भी सम्पत्तिसे मोह नहीं छोड़ना चाहता, फिर लड़का तो लड़का ही है। वह सम्पत्तिसे मोह नहीं छोड़ रहा है इसमें आश्चर्य ही क्या है ? कपडा बुनने-वाला कुविन्द कपडा बुनते अन्तिम छीरा छोड़ देता है पर हम उस अन्तिम छीरे तक बुनना चाहते हैं। इस तृष्णाका भी कभी अन्त होगा ?

लोभ मीठा शत्रु है। यह दशम गुणस्थान तक मनुष्यका पिण्ड नहीं छोड़ता। अन्य कषाय यद्यपि उसके पहले ही नष्ट हो जाती हैं पर लोभकषाय सबसे अन्त तक चलती जाती है। लोभके निमित्तसे आत्मामें अपवित्रता आती है। लोभसे ही समस्त पापोंमें इस प्राणीकी प्रवृत्ति होती है। आचार्योंने लोभको ही पापका बाप बतलाया है। एकबार एक आदमी काशी पढ़ने गया। उस समय छोटी अवस्थामें विवाह हो जाता था इसलिये उसका भी विवाह हो गया था। वह स्त्रीको घर छोड़ गया। ५-६ वर्ष काशीमें पढ़नेके बाद जब घर लौटा तब गाँवके लोगोंने उसका बड़ा सत्कार किया। जब वह अपनी स्त्रीके पास पहुँचा तब स्त्रीने कहा कि आप मुझे अकेली छोड़ काशी गये थे। अब आप मेरे एक प्रश्नका उत्तर यदि दे सकें तो मैं अपने घरके भीतर पैर रखने दूँगी, अन्यथा नहीं। उसने कहा कि अपना प्रश्न कहो। स्त्रीने कहा कि बताओ 'पापका बाप क्या है?' अद्भुत प्रश्न सुनकर वह बहुत घबड़ाया। रामायण महाभारत भागवत आदि सब ग्रन्थ देख डाले पर कहीं पापका बाप नहीं मिला। उसे चुप देख स्त्रीने कहा कि अब पुनः काशी जाइये और यह पढ़कर आइये। काशी बहुत दूर थी इसलिये उसने सोचा कि यदि कोई यहीं पापका

आप बता दे तो काशी न जाना पड़े। अन्तमे वह पागलकी भाँति नगरकी सड़कों पर पापका बाप क्या है? पापका बाप क्या है? यह चिल्लाता हुआ भ्रमण करने लगा। एक दिन एक वेश्याने अपने घरकी छपरीसे उसे ऊपर बुलाया और कहा कि यहाँ आओ, पापका बाप मैं बताती हूँ। वह आदमी सीढ़ियोंसे जब ऊपर पहुँचा तो वह वेश्या जान बड़ा दुःखी हुआ और झटसे नीचे उतरने लगा। वेश्याने कहा—महाराज! ठहरिये तो सही; आप जिस सड़कपर चल रहे थे उस सड़कपर तो वेश्या आदि सभी अधम प्राणी चलते हैं, फिर हमारा वह मकान उस सड़कसे तो अच्छा है। आप इतनी घृणा क्यों करते हैं? आपने हमारा घर अपनी चरणरजसे पवित्र किया इसलिए एक मुहर आपको देती हूँ।" यह कहकर वेश्याने एक मुहर उसे दे दी। मुहर देख उसने सोचा कि यह ठीक तो कह रही है। आखिर यह मकान सड़कसे तो अच्छा है। कुछ देर ठहरनेके बाद वह जाने लगा तब वेश्याने कहा महाराज! दो मुहरें देती हूँ। यह सामने पंसारीकी दूकान है इससे सीधा बुलाकर भोजन बना लीजिये, फिर जाइये। दो मुहरोंका लाभ देख उसने सोचा कि मैं भी तो इसी पंसारीकी दूकानसे खाद्य सामग्री लेता हूँ इसलिये वेश्याका इसके साथ क्या सम्बन्ध है? २ मुहरें लेकर उसने भोजन बनाना शुरू किया। जब भोजन बन चुका तब वेश्याने कहा महाराज! मैंने जीवन भर पाप किये हैं। यदि आज आपके लिये अपने हाथसे भोजन परोस सकूँ तो मैं पापसे निर्मुक्त हो जाऊँ। इस कार्यके लिये मैं पाँच मुहरें आपके चरणोंमे चढाती हूँ। पाँच मुहरोंका नाम सुनते ही उसके मुहमें पानी आ गया। उसने सोचा कि भोजन तो मेरे हाथका बनाया है। यदि वेश्या छूकर इसे मेरी थालीमें रख देती है तो इससे कौन सा अधर्म हुआ जाता है। यह विचारकर उसने वेश्याको परोसनेकी अज्ञा दे

दी। वेश्याने उत्तम थालीमें भोजन परोस दिया। पश्चात् वेश्या बोली—महाराज! एक भावना बाकी और रह गई है। मैं चाहती हूँ कि मैं एक ग्रास थालीसे उठाकर आपके मुखमें दे दूँ तो मेरे जन्म जन्मके पाप कट जावें। इस कार्यके लिये मैं दश मुहरें चढ़ाती हूं। दश मुहरोंका लाभ देख उसने वेश्याके हाथसे भोजन करना स्वीकृत कर लिया। वेश्याने जो ग्रास मुखमें देनेके लिये उठाया था उसे मुखतक ले जानेके बाद छोड़ दिया और उसके गालमें जोर की थप्पड़ मारते हुए कहा कि समझे पापका बाप क्या है? पाप का बाप लोभ है। कहाँ तो आप वेश्याके घर आनेपर ग्लानिसे नीचे उतरने लगे थे और कहाँ उसके हाथका ग्रास खानेके लिये तैयार हो गये? यह सब महिमा लोभकी है। मुहरोंके लोभने आपको धर्म-कर्मसे भ्रष्ट कर दिया है।

शौच पवित्रताको कहते हैं और यह पवित्रता बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकार की है। अपने अपने पदके अनुसार लौकिक शुद्धिका विचार रखना बाह्य शुद्धि है और अन्तरङ्गमें लोभादि कषायोंका कम करना आभ्यन्तर शुद्धि है। 'गङ्गास्नानान्मुक्तिः'—गङ्गा स्नानसे मुक्ति होती है इसे जिन शासन नहीं मानता। उससे शरीरका मल छूट जानेके कारण लौकिक शुद्धि हो पर वास्तविक शुद्धि तो आत्मामें लोभादि कषायोंके कृश करनेसे ही होती है। अर्जुनके प्रति उपदेश है—

> आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
> सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
> तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र
> न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।

संयम ही जिसका पवित्र घाट है, सत्य ही जिसमें पानी भरा है, शील ही जिसके तट हैं और दया रूप भवरें जिसमें उठ

रही हैं ऐसी आत्मारूपी नदीमे हे अर्जुन ! अभिषेक करो क्योंकि पानीमात्रसे अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होती ? आत्माको निर्मल बनाने का जिसने अभ्यास कर लिया उसने सब कुछ कर लिया। 'आतमके अहित विषय कषाय'—आत्माके सबसे बड़े शत्रु विषय और कषाय हैं। इनसे जिसने अपने आपकी रक्षा कर ली उसने जग जीत लिया, अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लिया।

लोभ केवल रुपया पैसाका ही हो सो बात नहीं। मान प्रतिष्ठा आदिकी आकांक्षा रखना भी लोभका ही रूप है। जब रामका रावणके साथ लङ्कामें युद्ध हो रहा था तब राम रावणको मारते थे तो वह बहुरूपिणी विद्यासे दूसरा रूप बना कर सामने आ जाता था। इसी प्रकार हम लोभको छोड़नेका प्रयत्न करते हैं। घर गृहस्थी, बाल बच्चे छोड़ कर जंगलमे जाते हैं पर वहाँ शिष्य संग्रह, धर्म प्रचार आदिका लोभ सामने आजाता है। पहले घरके कुछ लोगोंके भरण-पोषणका ही लोभ था अब अनेकों शिष्योंके भरण-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा आदिका लोभ सामने आ गया। लोभ नष्ट कहाँ हुआ ? वह तो वेष बदल कर आपके सामने आ गया है। यदि वास्तवमें लोभ नष्ट हो जाता तो इस परिकरकी क्या आवश्यकता थी ? 'इसका कल्याण करूँ, उसका कल्याण करूँ' यह विकल्पजाल निरन्तर आत्मामें क्यों उठते ? अतः प्रयत्न ऐसा करो कि जिससे यह लोभ समूल नष्ट हो जाय। एक रोग छूटनेके बाद यदि दूसरा रोग दवाईसे होता है तो वह दवाई दवाई नहीं। दवाई तो वह है जिससे वर्तमान रोग नष्ट हो जाय और उसके बदले कोई दूसरा रोग उत्पन्न न हो। विषय कषायका सेवन करते करते अनन्त काल बीत गया पर आत्मामें संतोष उत्पन्न नहीं हुआ। इससे जान पड़ता है कि यह सब संतोषके मार्ग नहीं हैं। समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा—
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ॥

अर्थात् तृष्णारूपी ज्वालाएं इस जीवको निरन्तर जला रहीं हैं। यह जीव इन्द्रियोंके इष्ट विषय एकत्रित कर उनसे इन तृष्णा-रूपी ज्वालाओंको शान्त करनेका प्रयत्न करता है पर उनसे इसकी शान्ति नहीं होती, प्रत्युत वृद्धि ही होती है। जिस प्रकार घृतकी आहुतिसे अग्निकी ज्वाला शान्त होनेके बदले प्रज्वलित ही होती है उसी प्रकार विषय सामग्रीसे तृष्णारूप ज्वाला शान्त होनेके बदले प्रज्वलित ही अधिक होती है।

चतुर्थ अध्यायमे देवलोकका वर्णन आपने सुना। देवपर्यायके दीर्घ काल तक स्थिर रहनेवाले सुखोंसे भी इस जीवको तृप्ति नहीं हुई फिर मनुष्य लोकके अल्पकालीन सुखोंसे इसे तृप्ति हो जायगी यह संभव नहीं। सागरों पर्यन्त स्वर्गके सुख यह जीव भोगता है पर अन्तमें जब माला मुरझा जाती है तो दुखी होता है कि हाय अब यह सामग्री अन्यत्र कहां मिलेगी? इसी आर्तध्यानसे मर कर कितने ही देव एकेन्द्रिय तक हो जाते हैं। नरकसे निकल कर एकेन्द्रिय पर्याय नहीं मिलती पर देवसे निकल कर यह जीव एकेन्द्रिय तक हो जाता है। परिणामोंकी विचित्रता है। देवोंके वर्णनमें आपने सुना है कि उनमें 'स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः' और 'गति-शरीर-परिग्रहाभि-मानतो हीना.' अर्थात् स्थिति, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय और अवधिज्ञानके विषयकी अपेक्षा अधिकता है तथा गति, शरीर परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीनता है। ऊपर ऊपरके देवोंमें सुखकी मात्रा तो अधिक है परन्तु परिग्रहकी अल्पता है। इससे सिद्ध होता है कि परिग्रह सुखका कारण नहीं है

किन्तु परिग्रहकी आकाङ्क्षा न होना ही सुखका कारण है। यह प्राणी मोहोदयके कारण परिग्रहको सुखका कारण मान रहा है इसीलिये रात-दिन उसीके संचयमें तन्मय हो रहा है। पासका परिग्रह नष्ट न हो जाय यह लोभ है और नवीन परिग्रह प्राप्त हो जाय यह तृष्णा है। इस प्रकार आजका मनुष्य इन लोभ और तृष्णा दोनोंके चक्रमें फंस कर दुखी हो रहा है।

: ५ :

जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप कथन करना सत्य है। भगवान् उमास्वामीने असत्य पापका लक्षण लिखा है—'असदभिधानमनृतम्' अर्थात् प्रमादके योगसे जो कुछ असत्का कथन किया जाता है उसको अनृत या असत्य कहते हैं। इसके चार भेद हैं—जो वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्टय कर है उसका अपलाप करना यह प्रथम असत्य है। जैसे देवदत्तके रहने पर भी कहना कि यहाँ पर देवदत्त नहीं है। जो वस्तु अपने चतुष्टय कर नहीं है वहाँ उसका सद्भाव स्थापना द्वितीय असत्य है। जैसे जहाँ पर घट नहीं वहाँ पर कहना कि घट है। जो वस्तु अपने स्वरूपसे है उसे पर रूपसे कहना यह तृतीय असत्य है जैसे गौको अश्व कहना। तथा पैशुन्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, प्रलाप तथा उत्सूत्ररूप जो वचन हैं वह चतुर्थ असत्य है। इन चार भेदोंमे ही सब प्रकारके असत्य आ जाते हैं। इन चार भेदोंके विपरीत जो वचन हैं वे चार प्रकारके सत्य हैं। असत्य भाषणके प्रमुख कारण दो हैं—एक अज्ञान और दूसरा कषाय। अज्ञानके कारण मनुष्य असत्य बोलता

है और कषायके वशीभूत होकर कुछका कुछ बोलता है। यदि अज्ञान जन्य असत्यके साथ कषायकी पुट नहीं है तो उससे आत्माका अहित नहीं होता क्यों कि वहाँ वक्ता अज्ञानसे विवश है। ऐसा अज्ञान जन्य असत्यवचनयोग तो आगममें बारहवें गुणस्थान तक बतलाया है परन्तु जहाँ कषायकी पुट रहती है वह असत्य आत्माके लिये अहितकारक है। संसारमें राजा वसुका नाम असत्यवादियोंमें प्रसिद्ध हो गया। उसका खास कारण यही था कि वह कषाय जन्य था। पर्वतकी माताके चक्रमें पड़ कर उसने 'अजैर्यष्टव्यम्' वाक्यका मिथ्या अर्थ किया था इसलिये उसका तत्काल पतन हो गया। और वह दुर्गतिका पात्र हुआ। कषायवान् मनुष्य अपने स्वार्थके कारण पदार्थका स्वरूप उस रीतिसे कहनेका प्रयत्न करते हैं जिससे उनके स्वार्थमें बाधा न पड़ जाय। महाभारतमें एक गृद्ध और गोमायुका संवाद आया है। किसीका पुत्र मर गया, उस मृतक पुत्रको लेकर उसके परिवारके लोग श्मशानमें गये। जब श्मशानमें गये तब सूर्यास्त होनेमें कुछ विलम्ब था। उसी श्मशान-में एक गृध्र तथा एक गोमायु-शृगाल विद्यमान थे। गृध्र रातमें नहीं खाता इसलिए वह चाहता था कि ये लोग मृत बालकको छोड़कर जल्दी ही यहाँसे चले जावें तो मैं इसे खा लूँ और गोमायु यह चाहता था कि ये लोग यहाँ सूर्यास्त होने तक विद्यमान रहें जिससे सूर्यास्त होनेके बाद इसे गृध्र खा नहीं सकेगा तब केवल मेरा ही यह भोज्य हो जावेगा। अपने अभिप्रायके अनुसार गृध्र कहता है।

अलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन्गृध्रगोमायुसंकुले।
कङ्कालबहुले घोरे सर्वप्राणिभयंकरे ॥
न चेह जीवितः कश्चित्कालधर्ममुपागतः।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः प्राणिना गतिरीदृशी ॥

अर्थात् गृध्र तथा शृगालोंसे भरे और समस्त प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाले श्मशानमें ठहरना व्यर्थ है। मृत्युको प्राप्त हुआ कोई भी प्राणी यहाँ आकर जीवित नहीं हुआ। चाहे प्रिय हो चाहे अप्रिय हो, प्राणियोंकी रीति ही ऐसी है।

गृध्रके वचनोंका प्रभाव मृत बालकके बन्धुजनों पर न पड़ जाय इस भावनासे गोमायु कहता है—

आदित्योऽय स्थितो मूढाः स्नेह कुरुत साम्प्रतम्।
वहुविघ्नो मुहूर्तोऽय जीवेदपि कदाचन॥
अमु कनकवर्णाभ वालमप्राप्तयौवनम्।
गृध्रवाक्यात्कथं मूढास्त्यजध्वमविशङ्किताः॥

अर्थात् अरे मूर्ख! अभी यह सूर्य विद्यमान है। तुम लोग वालकसे स्नेह करो। यह मुहूर्त अनेक विघ्नोंसे भरा है। कदाचित् तुम्हारा वालक जीवित हो जाय। जो स्वर्णके समान कान्तिमान है तथा जिसका यौवन नहीं आ पाया ऐसे वालकको गृध्रके कहनेसे आप लोग निःशङ्क हो क्यों छोड़ रहे हो?

प्रकरण लम्बा है पर उसका अभिप्राय देखिये कि मनुष्य अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार पदार्थके यथार्थ स्वरूपको कैसा छिन्न-भिन्न करते हैं। इस छिन्न भिन्न करनेका कारण मनुष्यके हृदयमे विद्यमान प्रमादयोग या कपायपरिणति ही है। उस पर विजय होजाय तो फिर मुखसे एक भी असत्य शब्द न निकले। मनुष्यकी शोभा या प्रामाणिकता उसके वचनोंसे है। वचनोंकी प्रामाणिकता नष्ट हुई कि सब कुछ नष्ट होगया। असत्यवादीके वचन रथ्यापुरुपके वचनके समान अप्रामाणिक होते हैं। उनपर कोई ध्यान नहीं देता पर सत्यवादी मनुष्यके वचन सुननेके लिए लोग घण्टों पहलेसे उत्सुक रहते हैं।

वचनोंमें बल सत्यभाषणसे ही आता है, असत्य भाषणसे नहीं। एक सत्यभाषण ही मनुष्यकी अन्य पापोंसे रक्षा कर देता है।

एक राजपुत्रको चोरीकी आदत पड़ गई। जब राजाको उसका व्यवहार सह्य नहीं हुआ तब उसने घरसे निकाल दिया। अब वह खुले रूपमें चोरी करने लगा। एक दिन उसने किन्हीं मुनिराजके उपदेशसे प्रभावित होकर असत्य बोलनेका त्याग कर दिया। अब वह एक राजाके यहाँ चोरी करनेके लिये गया। पहरे पर खड़े लोगोंने पूछा कि कहाँ जाते हो? उसने कहा चोरी करनेके लिए जाता हूँ। राजपुत्र था इसलिए शरीरका सुन्दर था। पहरे पर खड़े लोगोंने सोचा कि यह कोई महापुरुष राजाका स्नेही व्यक्ति है। कहीं चोर यह कहते नहीं देखे गये कि मैं चोरीके लिए जाता हूँ। यह तो हम लोगोंसे हँसी कर रहा है। ऐसा विचारकर उन्होंने उसे रोका नहीं। चोरी करनेके बाद वह वहीं एक स्थानपर सो गया। प्रातःकाल जब लोगोंकी दृष्टि पड़ी तब उससे पूछा गया तो उसने यही कहा कि मैं चोर हूँ, चोरी करनेके लिए आया हूं। फिर भी लोगोंको विश्वास नहीं हुआ। राजपुत्र सोचता है कि देखो सत्य वचनमें कितना गुण हैं कि चोर होने पर भी किसीको विश्वास ही नहीं होता कि मैं चोर हूँ। जब एक पापके छोड़नेमें इतना गुण हैं तब समस्त पापोंके छोड़नेमें कितना गुण न होगा? यह विचार कर उसने मुनिराजके पास जाकर समस्त पापोंका परित्यागकर दीक्षा धारण करली। अस्तु,

मैं आज तक नहीं समझा कि असत्य भी कुछ है क्योंकि जिसे आप असत्य कहते हैं वह वस्तु भी तो आत्मीय स्वरूपसे सत् है। तब मेरी बुद्धिमें तो यह आता है कि जो पदार्थ आत्माको दुःखकर हो उसको त्यागना ही सत्य है। जैसे शरीरको आत्मा मानना असत्य है। शरीर असत्य नहीं है किन्तु जिस रूपसे

वह है उससे अन्यरूप मानना असत्य है। शरीर पुद्गल द्रव्यका विकार है। उसे आत्मद्रव्य मानना मिथ्या है। यह विपरीत मान्यता मिथ्यात्वके कारण उत्पन्न होती है इसलिये सर्व प्रथम इसे ही त्यागना चाहिये।

पञ्चमाध्यायमें षड् द्रव्योंका वर्णन आपने सुना है। उसमें प्रमुख जीवद्रव्य है। उसीका सब खेल है, वैभव है—

अह प्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात्।
'एको दरिद्र एक. श्रीमानिति च कर्मणः॥

'मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ इत्यादि प्रत्ययसे जीवके अस्तित्वका साक्षात्कार होता है तथा अन्वयसे भी इसका प्रत्यय होता है। यह वही देवदत्त है जिसे मैंने मथुरामें देखा था, अब यहाँ देख रहा हूँ। इस प्रत्ययसे भी आत्माके अस्तित्वका निर्णय होता है तथा कोई तो श्रीमान् देखा जाता है और कोई दारिद्र देखा जाता है इस विभिन्नतामें भी कोई कारण होना चाहिये। यह विभिन्नता—विषमता निर्हेतुक नहीं। जो हेतु है उसीको कर्म नामसे कहा जाता है। नाममें विवाद नहीं—चाहे कर्म कहो, अदृष्ट कहो, ईश्वर कहो, खुदा कहो, विधाता कहो, जो आपको रुचिकर हो परन्तु यह अवश्य मानना कि यह विभिन्नता निर्मूल नहीं। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जो यह दृश्यमान जगत् है वह केवल एक जीवका परिणाम नहीं। केवल एक पदार्थ हो तो उसमें नानात्व कहाँसे आया ? नानात्वका नियामक द्रव्यान्तर होना चाहिये। केवल पुद्गलमें शब्द बन्धादि पर्यायें नहीं होतीं। जब पुद्गल परमाणुओंकी बन्धावस्था हो जाती है तभी यह पर्यायें होतीं हैं। उस अवस्थामें पुद्गल परमाणुओंकी सत्ता द्रव्यरूपसे अबाधित रहती है। एतावता शब्दादि पर्यायें

केवल परमाणुओंकी नहीं किन्तु स्कन्ध पर्यायापन्न परमाणुओंकी हैं। इसी तरह जो रागादि पर्याय हैं वह उदयावस्थापन्न कर्मोंके सद्भाव मे ही जीवके होती हैं। यदि ऐसा न माना जावे तो रागादि परिणाम जोवका पारिणामिक भाव हो जावेगा और ऐसा होनेसे संसारका अभाव हो जावेगा जो कि किसीको इष्ट नहीं। रागादिक भावोंका प्रत्यक्षमें सद्भाव देखा जाता है। इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादि भाव औपाधिक हैं। जैसे स्फटिकमणि स्वच्छ है किन्तु जब स्फटिकमणिके साथ जपापुष्पका सम्बन्ध होता है तब उसमें लालिमा प्रतीत होती है। यद्यपि स्फटिकमणि स्वयं रक्त नहीं किन्तु निमित्तको पाकर रक्तिमामय प्रत्ययका विषय होता है। इससे यह समझमें आता है कि स्फटिकमणि निमित्तको पाकर लाल जान पड़ती है। यह लालिमा सर्वथा असत्य नहीं। ऐसा सिद्धान्त है कि जो द्रव्य जिस कालमें जिस रूप परिणमती है वह उस कालमें तन्मय हो जाती हैं। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने स्वयं प्रवचनसारमें लिखा है—

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणादो आदा धम्मो मुणेदव्वो ॥

इस सिद्धान्तसे यह निष्कर्ष निकला कि आत्मा जिस समय रागादिरूप परिणमेगा उस समय नियमसे उसी रूप होगा तथा पर्याय दृष्टिसे उन्हीं रागादिकका उस कालमें अस्तित्व रहेगा। जो भाव करेगा उसीका वर्तमानमें अनुभव होगा। जल शीत है परन्तु अग्निके सम्बन्धसे उष्ण पर्यायको प्राप्त करता है।

यद्यपि उसमें शक्ति अपेक्षा शीत होनेकी योग्यता है तथापि वर्तमानमें शीत नहीं। यदि कोई उसे शीत मानकर पान करे तो दग्ध ही होगा। इसी प्रकार आत्मा यदि वर्तमानमें रागरूप है तो

रागी ही है। इस अवस्थामें वीतरागका अनुभव होना असंभव है—इस कालमे आत्माको रागादि रहित मानना मिथ्या है। यद्यपि रागादि परिणाम परनिमित्तक हैं अतएव औपाधिक हैं—नशनशील हैं तथापि वर्तमानमे तो औष्ण्य परिणत अयःपिण्डवत् आत्मा तन्मय हो रहा है, अर्थात् उन परिणामोंके साथ आत्माका तादात्म्य हो रहा है। इसीका नाम अनित्य तादात्म्य है। यह अलीक कथन नहीं। एक मनुष्यने मद्यपान किया और उसके नशासे वह उन्मत्त होगया। हम पूछते हैं कि क्या वह वर्तमानमें उन्मत्त नहीं है? अवश्य उन्मत्त है किन्तु किसीसे आप प्रश्न करें कि मनुष्यका क्या लक्षण है? इसके उत्तरमें उत्तर देनेवाला क्या यह कह सकता है कि उन्मत्तता मनुष्यका लक्षण है? नहीं, यह उत्तर ठीक नहीं क्योंकि मनुष्यकी सर्व अवस्थाओंमे उन्मत्तताकी व्याप्ति नहीं। इसी तरह आत्मामे रागादिभाव होनेपर भी आत्माका लक्षण रागादि नहीं हो सकता क्योंकि आत्माकी अनेक अवस्थाओंमे रागादिभाव व्यापकरूपसे नहीं रहता अतः यह आत्माका लक्षण नहीं हो सकता। लक्षण वह होता है जो सर्व अवस्थाओंमें पाया जावे। ऐसा लक्षण चेतना ही है। यद्यपि रागादि परिणाम तथा केवलज्ञानादि भी आत्मामे ही होते हैं तथापि उन्हें लक्षण नहीं माना जाता क्योकि वे जीवकी पर्यायविशेष हैं, व्यापक रूपसे नहीं रहतीं। अन्ततो गत्वा चेतना ही आत्माका एक ऐसा गुण है जो आत्माकी सर्व दशाओंमें व्यापकरूपसे रहता है। आत्माकी २ अवस्थाएँ हैं—संसारी और मुक्त। इन दोनोंमे चेतना रहता है। उसीसे अमृत चन्द्र स्वामीने लिखा है कि—

> अनाद्यमनन्तमचल स्वसंवेद्यमिह स्फुटम्।
> जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते॥

जीव नामक जो पदार्थ है वह स्वयंसिद्ध है तथा परनिरपेक्ष

अपने आप अतिशय कर चकचकायमान हो रहा है। कैसा है? अनादि है। कोई इसका उत्पादक नहीं अतएव अनादि है, अतएव अकारण है। जो वस्तु अनादि अकारणक है वह अनन्त भी है तथा अचल है ऐसे अनादि. अनन्त तथा अचल अजीव द्रव्य भी है, इससे इसका लक्षण स्वसंवेद्य भी है यह स्पष्ट है। जीव नामक पदार्थमें अन्य अजीवोंकी अपेक्षा चेतनागुण ही भेद करनेवाला है। वही गुण इसमें ऐसा विशद है कि सर्व पदार्थोंकी तथा निजकी व्यवस्था कर रहा है।

इस गुणको सब मानते हैं परन्तु कोई उस गुणको जीवसे सर्वथा भिन्न मानते हैं। कोई गुणसे अतिरिक्त अन्य द्रव्य नहीं—गुण-गुणी सर्वथा एक हैं ऐसा मानते हैं। कोई चेतना तो जीवमें मानते हैं परन्तु वह ज्ञेयाकार परिच्छेदसे पराङ्मुख रहता है ऐसा अङ्गीकार करते हैं। प्रकृति और पुरुषके सम्बन्धसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसमें चेतनाके संसर्गसे जानपना आता है। कोईका कहना है कि पदार्थ नाना नहीं एक ही अद्वैत तत्त्व है। वह जब मायावच्छिन्न होता है तब यह संसार होता है। किसीका कहना है कि जीव नामक स्वतन्त्र पदार्थकी सत्ता नहीं किन्तु पृथिवी जल अग्नि वायु और आकाश इनकी जिस समय विलक्षण अवस्था होती है उसी समय यह जीवरूप अवस्था होजाती है। ये जितने मत हैं वे सर्वथा मिथ्या नहीं। जैनदर्शनमें अनन्त गुणोंका जो अविष्वग्भाव सम्बन्ध है वही तो द्रव्य है। वह आत्मीय स्वरूपकी अपेक्षा भिन्न भिन्न है परन्तु कोई ऐसा उपाय नहीं कि उनमेंसे एक भी गुण पृथक् हो सके। जैसे पुद्गल द्रव्यमें रूप रस गन्ध स्पर्श गुण हैं। चक्षुरादि इन्द्रियोंसे पृथक् पृथक् ज्ञानमें आते हैं परन्तु उनमेंसे कोई पृथक् करना चाहे तो नहीं कर सकता। वे सब अखण्डरूपसे विद्यमान हैं। उन सर्व गुणोंकी जो अभिन्न प्रदेशता है उसीका नाम

द्रव्य है। अतएव प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

णत्थि विणा परिणाम अत्थो अत्थ विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिप्पण्णो॥

परिणामके विना अर्थकी सत्ता नहीं तथा अर्थके विना परिणाम नहीं। जैसे दुग्ध दधि घी छाछ इनके बिना गोरस कुछ भी सत्ता नहीं रखता इसी तरह गोरस न हो तो इन दुग्धादिकी भी सत्ता नहीं। एवं यदि आत्माके ज्ञानादि गुण न हों तो आत्माके अस्तित्व की सिद्धि नहीं हो सकती तथा आत्माके विना ज्ञानादि गुणोंका कोई अस्तित्व नहीं। विना परिणामीके परिणमनका नियामक कोई नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि ये गुण सदा परिणमनशील हैं किन्तु अनादिसे आत्मा कर्मोंसे सम्बद्ध हैं, इससे इसके ज्ञानादि गुणोंका विकास निमित्त कारणोंके सहकारसे होता है। होता उसीमें है परन्तु जैसे घटोत्पत्तिकी योग्यता मृत्तिकामें ही होती है किन्तु कुम्भ-कारके विना घट नहीं बनता। यद्यपि घटकी उत्पत्तिके योग्य व्यापार कुम्भकारमें ही होगा फिर भी मृत्तिका अपने व्यापारसे घटरूप होगी, कुम्भकार घटरूप न होगा। उपादानको मुख्य माननेवालोका कहना है कि जब मृत्तिकामें घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है तब वहाँ कुम्भ-कारकी उपस्थिति स्वयमेव हो जाती है। यहाँपर यह कहना है कि घटोत्पत्ति स्वयमेव मृतिकामें होती है इसका क्या अर्थ है? जिस काल मृतिकामे घट होता है उस कालमें क्या कुम्भकारादि निरपेक्ष घट होता है या सापेक्ष? यदि निरपेक्ष घटोत्पत्ति होती है तो एक भी उदाहरण ऐसा बताओ कि मृत्तिकासे कुम्भकारके बिना घट हुआ हो सो तो देखा नहीं जाता। यदि सापेक्ष पक्षको अङ्गीकार करोगे तो स्वयमेव आगया कि कुम्भकारके व्यापार विना घटकी उत्पत्ति नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि कुम्भकार घटोत्पत्तिमें सहकारी निमित्त है। जैसे आत्मामें रागादि परिणाम होते हैं। यद्यपि

आत्मा ही उनका उपादान कर्ता है परन्तु चारित्रमोहके उदय विना रागादि नहीं होते। होते आत्मामे ही हैं परन्तु विना कर्मोदयके यह भाव नहीं होते। यदि निमित्तके विना यह हों तब तो आत्माका त्रिकाल अबाधित स्वभाव हो जावे सो ऐसा यह भाव नहीं। इसका विनाश हो जाता है अतः यह मानना पड़ेगा कि यह आत्माका निज भाव नहीं इसका यह अर्थ नहीं कि यह भाव आत्मामे होता ही नहीं। होता तो है परन्तु निमित्त कारणकी अपेक्षासे होता है। यदि निमित्त कारणकी अपेक्षासे नहीं है ऐसा कहोगे तो आत्मामें मतिज्ञानादि जो चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे भी तो नैमित्तिक हैं उनको भी आत्माके मत मानो। यह भी हमे इष्ट है, हम तो यहां तक माननेको प्रस्तुत हैं कि क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक जितने भी भाव हैं वे आत्माके अस्तित्व में सर्वदा नहीं होते। उनकी कथा छोड़ो, क्षायिक भाव भी तो क्षयसे होते हैं वे भी अबाधित रूपसे त्रिकालमें नहीं रहते अतः वे भी आत्माके लक्षण नहीं। केवल चेतना ही आत्माका लक्षण है यही अबाधित त्रिकालमें रहता है। इसी भावको पुष्ट करनेवाला श्लोक अष्टावक्र गीतामें अष्टावक्र ऋषिने लिखा है—

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे बन्धो या स्यज्जीविते स्पृहा॥

अर्थात् मैं देह नहीं हूँ और न मेरा देह है, न मैं जीव हूँ, मैं तो चित् हूँ चैतन्यगुणवाला हूँ। यदि ऐसा वस्तुका निज स्वरूप है तो आत्माको बन्ध क्यों होता है? इसका कारण हमारी इस जीवमें स्पृहा है। यह जो इन्द्रिय मन वचन काय श्वासोच्छ्वास तथा आयुप्राणवाले पुतलेमे हमारी स्पृहा है यही तो बन्धका मूल कारण है। हम जिस पर्यायमे जाते हैं उसीको निज मान बैठते हैं। उसके अस्तित्वसे अपना अस्तित्व मान कर पर्याय बुद्धि हो पर्यायके अनुरूप ही समस्त व्यवहार कर पर्यायान्तरको

प्राप्त होते हैं। इससे यही तो निकला कि हम पर्यायबुद्धिसे हीअपनी जीवनलीला पूर्ण करते हैं। अस्तु विषय लम्बा हो गया है।

: ६ :

स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों तथा मनके विषयों और षट्कायिक जीवोंकी हिंसासे विरत होना संयम कहलाता है। इन्द्रिय विषयोंके आधीन हुआ प्राणी उत्तर कालमें प्राप्त होनेवाले दुःखोको अपनी दृष्टिसे ओझल कर देता है। यहि कारण है कि वह तदात्व सुखमें निमग्न हो आत्महितसे वञ्चित हो जाता है। इन्द्रिय विषयोंके आधीन हुआ वनका हाथी अपनी सारी स्वतन्त्रता नष्ट कर देता है। रसनेन्द्रियके वशमें पड़ा मीन धीवरकी वशीमें अपना कण्ठ छिदा देता है। नासिकाके आधीन रहनेवाला भ्रमर सन्ध्याके समय यह सोचकर कमलमें बन्द हो जाता है कि रात्रि व्यतीत होगी, प्रातःकाल होगा, कमल फूलेगा तब मैं निकल जाऊंगा। अभी रात भर तो मकरन्दका रसास्वादन करूं पर प्रातःकाल होनेके पहले ही एक हाथी आकर उस कमलिनीको उखाड़ कर चला जाता है। भ्रमरके विचार उसके जीवनके साथ ही समाप्त हो जाते हैं। कहा है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री ।
इत्थं विचारयत्यन्जगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

नेत्रेन्द्रियके वशीभूत हुए पतंग दीपकों पर अपने प्राण न्योछावर

कर देते हैं और कर्णेन्द्रियके आधीन हो हरिण वहेलियोंके द्वारा मारे जाते हैं। ये तो पञ्चेन्द्रियोंमे एक-एक इन्द्रियके आधीन रहनेवाले जीवोंकी बात कही पर जो पांचों ही इन्द्रियोंके वशीभूत हैं उनकी तो कथा ही क्या है। पञ्चेन्द्रियोंमे स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां अधिक प्रवल हैं। वट्टकेर स्वामीने मूलाचारमें कहा है कि चतुरङ्गुल प्रमाण स्पर्शन और रसना इन्द्रियने संसारको पटरा कर दिया—नष्ट कर दिया। इन इन्द्रियोंकी विपयदाहको सहन करनेके लिये जब प्राणी असमर्थ हो जाता है तब वह इनमे प्रवृत्ति करता है। कुन्दकुन्द स्वामीने प्रवचनसारमे यहाँ तक लिखा है कि संसारके साधारण मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ? हरि, हर, हलधर, चक्रधर तथा देवेन्द्र आदिक भी इन्द्रियोंकी विपय दाहको न सहकर उनमे झम्पापात करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वड़े वड़े पुरुप इनमे झम्पापात करते हैं अतः ये त्याज्य नहीं है। विप तो विष ही है, चाहे उसे छोटे पुरुष पान करें चाहे वड़े पुरुप। हरि-हरादिककी विपयोंमें प्रवृत्ति हुई सही परन्तु जब उनके चारित्रमोहका उदय दूर हुआ तब उन्होंने उस विपयमार्गको हेय समझ कर त्याग दिया। भगवान् ऋपभदेव अपने राज्य पाट भोग विलासमे निमग्न थे परन्तु नीलाञ्जनाका विलय देख विषयोंसे विरक्त हो गये। जब तक चारित्रमोहका उदय उनकी आत्मामे विद्यमान रहा तब तक उनका भाव विपयोंसे विरक्त नहीं हुआ। उन्होंने समस्त राज्य वैभव छोड़ कर दिगम्बर दीक्षा धारण की। इससे यही तो अर्थ निकला कि यह विषयका मार्ग श्रेयस्कर नहीं। यदि श्रेयस्कर होता तो तीर्थंकर आदि इसे क्यों छोड़ते। अतः अन्तरङ्गसे विषयेच्छाको दूर कर आत्महितका प्रयत्न करना चाहिये।

वज्रदन्त चक्रवर्ती सभामें विराजमान थे। मालीने एक सहस्र-

दल कमल उनकी सेवामें भेट किया। सूँघनेके बाद जब उन्होंने कमलके अन्दर मृत भ्रमरको देखा तो उनके हृदयके नेत्र खुल गये। वे विचार करने लगे कि देखो नासा इन्द्रियके वशीभूत हो इस भ्रमरने अपने प्राण गँवाये हैं। यह विषयासक्ति ही जन्म-मरणका कारण है। ऐसा विचार कर उन्होंने दीक्षा लेनेका विचार कर लिया। चक्रवर्ती थे इसलिये राज्यका भार बड़े पुत्रको देने लगे। पुत्रके भी परिणाम देखो, उसने कहा पिताजी! यह राज्यवैभव अच्छा है या बुरा? यदि अच्छा है तो आप ही इसे क्यों छोड रहे हैं? यदि बुरा है तो फिर मैं तो आपका प्रीतिपात्र हूँ—स्नेह भाजन हूँ। यह बुरी चीज मुझे ही क्यों दे रहे हैं। किसी शत्रुको दीजिये। चक्रवर्ती निरुत्तर हो गये। दूसरे पुत्रको राज्य देना चाहा, उसने भी लेनेसे इनकार कर दिया। तब पुण्डरीक नामका छोटा सा बालक जो कि बड़े पुत्रका लडका था उसका राज्याभिषेक कर वन को चले गये। उनके मनमें यह भी विकल्प न उठा कि षट्खण्डके राज्यको छोटा सा बालक कैसे संभालेगा? संभाले या न संभाले, इसका विकल्प ही उन्हें नहीं उठा। यही सच्चा वैराग्य कहलाता है। हम लोग तो 'आलसी बानिया अपशकुनकी बाट जोहै' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। जरा जरासे कामके लिये बहाना खोजा करते हैं पर यह निश्चित समझो, ये बहाना एक भी काम न आवेंगे। मनुष्य जीवनका भरोसा क्या है? अभी आरामसे बैठें हो पर हार्ट फैल हो जाय तो पर्याय समाप्त होते देर न लगे इसलिये समय रहते, सावधान हो जाना विवेकका कार्य है। 'सुरग-नरक पशुगतिमें नाहीं' यह संयम देव नरक तथा पशुगतिमे प्राप्त नहीं होता। यद्यपि पशुगतिमें संयमासंमयरूप थोड़ा सा संयम प्रकट हो जाता है पर वह उत्कृष्ट संयमके समक्ष नगन्य ही है। यह संयम कर्मभूमिके मनुष्यके ही हो सकता है अतः मनुष्य पर्याय

पाकर इसे अवश्य धारण करना चाहिये। अपनी शक्तिको भूलकर लोग दीन-हीन हो रहे हैं। कहते हैं कि हमसे अमुक काम नहीं बनता, अमुक विषय नहीं छोड़ा जाता। यदि राजाज्ञा होने पर बलात्कार यह काम करना पड़े तो फिर शक्ति कहाँसे आवेगी। आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है। यह प्राणी उसे भूल पर पदार्थका आलम्बन ग्रहण करता फिरता है परन्तु यह निश्चित है कि जब तक यह परका आलम्बन छोड़ अपनी स्वतन्त्र शक्तिकी ओर दृष्टि-पात न करेगा तब तक इसका कल्याण नहीं होगा।

आजका मनुष्य इच्छाओंका कितना दास हो गया है? न उसके रहन-सहनमें विवेक रह गया है, न खान-पानमें भक्ष्या-भक्ष्यका विचार शेष रहा है। स्त्री-पुरुषोंकी वेष-भूषा ऐसी हो गई है कि जिससे कुलीन और अकुलीनका अन्तर ही नहीं मालूम होता है। पुरुष स्वयं विषयोंका दास हो गया है जिससे वह स्त्रियोंको नाना प्रकारके उत्तेजक वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित देख प्रसन्नताका अनुभव करता है। यदि पुरुषके अन्दर थोड़ा विवेक रहे तो वह अपने घरके वातावरणको संभाल सकता है। आजके प्राणी जिह्वा इन्द्रियके इतने दास होगये हैं कि उन्हे भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ भी विचार नहीं रह गया है। जिन चीजोंमें प्रत्यक्ष त्रसघात अथवा बहुस्थावरघात होता है उन्हें खाते हुये वे सुखका अनुभव करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि हमारे अल्प स्वादके पीछे अनन्त जीवोंकी जीवन लीला समाप्त हो रही है। आज खाते समय लोग दिन-रातका विकल्प छोड़ बैठे हैं। उन्हे जब मिलता है तभी खाने लगते हैं। आशाधरजीने कहा है कि उत्तम मनुष्य दिनमें एक बार, मध्यम मनुष्य दो बार और अधम मनुष्य पशुके समान चाहे जब भोजन करते हैं। जैसे पशुके सामने जब भी घासका पूला डाला जाता है वह तभी उसे खाने लगता है वैसे ही आजका मनुष्य

जब भी भोजन सामने आता है तभी खाने लगता है।

छठवें अध्यायमे आपने आस्रवतत्त्वका वर्णन सुना है। मेरी दृष्टिमें यह अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम कर्मबन्धसे बचना तो चाहते हैं पर कर्म किन कारणोंसे बँधते हैं यह न जाने तो कैसे बच सकते हैं? बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक ऐसे बहुतसे कार्य हम लोगोंसे होते रहते हैं जिनसे कर्मका बन्ध जारी रहता है। जो वैद्य रोगके निदानको ठीक ठीक समझ लेता है उसकी दवा तत्काल लाभ पहुँचा देती है पर जो निदानको समझे बिना उपचार करता है उसकी दवा महीनों सेवन करनेपर भी लाभ नहीं पहुँचाती।

'आव चोर चोरी कर ले गव मोरी मूंदत मुगध फिरे'

सीधा सीधा पद है। किसीके घर चोर आया और चोरी कर लेगया पर उस मूर्खको यह पता नहीं चला कि चोर किस रास्तेसे आया था अतः वह मुहरी-पानी आने जानेके मार्गको चोरका मार्ग समझकर मूंदता फिरता है। दूसरी रात फिर चोर आते हैं। यही दशा संसारी प्राणीकी है कि जिन भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है-कर्मरूपी चोर आत्मामें घुसते हैं उन भावोंका इसे पता नहीं रहता इसलिये अन्य प्रयत्न कर्मोंका आस्रव रोकनेके लिये करता है। पर कर्मोंका आस्रव रुकता नहीं है। यही कारण है कि यह अनन्तबार मुनिलिङ्ग धारण कर नवम ग्रैवेयक तक उत्पन्न हुआ परन्तु संसार बन्धनसे मुक्त नहीं हो सका। जान पड़ता है कि उसे कर्मोंके आस्रवका बोध ही नहीं हुआ। आत्माकी विकृत परिणतिसे होनेवाले आस्रवको उसने केवल शरीराश्रित क्रियाकाण्डसे रोकना चाहा सो कैसे रुक सकता था? आगममें लिखा है कि अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मकी तपस्याके द्वारा भी जिस कर्मको नहीं खिपा सकता ज्ञानी जीव उसे क्षणमात्रमें खिपा देता है। तालेकी जो कुंजी है उसीसे तो वह

खुलेगा। दूसरी कुंजीसे दूसरा ताला घंटों परिश्रम करनेपर भी नहीं खुल सकता और कुंजीका ठीक ठीक बोध हो जानेपर जरासी देरमें खुल जाता है। यही बात यहाँपर है। जो कर्म जिस भावसे आता है उस भावके विरुद्ध भाव जब आत्मामे उत्पन्न हो तब उस कर्मका आना रुक सकता है। आपने सुना है 'सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः' अर्थात् योग सकषाय जीवोंके साम्परायिक तथा कषायरहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रवका कारण है। जिस आस्रवका प्रयोजन संसार है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं और जिसमें स्थिति तथा अनुभागबन्ध नहीं पड़ता उसे ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। साम्परायिक आस्रव आत्माका अत्यन्त अहित करनेवाला है। यह कषाय सहित जीवके ही होता है। जिस प्रकार शरीरमे तेल लगाकर मिट्टीमें खेलनेवाले पुरुषके मिट्टीका सम्बन्ध सातिशय होता हैं और तेल रहित मनुष्यके नाममात्रका होता है उसी प्रकार कषाय सहित जीवका आस्रव सातिशय होता है—स्थिति और अनुभागसे सहित होता है परन्तु कषाय रहित जीवके नाममात्रका होता है। अर्थात् समयमात्र स्थित रहकर निर्जीर्ण हो जानेवाले कर्मप्रदेशोंका आस्रव उसके होता है। इस तरह आत्माकी सकषाय अवस्था ही आस्रव है—बन्धका कारण है अतः उससे बचना चाहिये। जिस प्रकार फिटकरी आदिके संसर्गसे जो वस्त्र सकषाय हो गया है उसपर रंगका सम्बन्ध अच्छा होता है परन्तु जो वस्त्र फिटकरी आदिके संसर्गसे रहित होनेके कारण अकषाय है उसपर रङ्गका सम्बन्ध स्थायी नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतमें भी समझना चाहिये।

नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंमें तीर्थंकर प्रकृति सातिशय पुण्य-प्रकृति है इसलिये उसके आस्रव आचार्यने अलगसे बतलाये हैं। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके चिन्तनसे उसका आस्रव

होता है। इन सभीमे दर्शनविशुद्धि प्रमुख है । यदि यह नहीं है और बाकी सब हैं तब भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव नहीं हो सकता और यह है तथा बाकीकी नहीं हैं तब भी उसका आस्रव हो सकता है । दर्शनविशुद्धिका अर्थ है अपायविचय धर्मध्यानमें बैठकर करुणापूर्ण हृदयसे यह विचार करना कि ये संसारके प्राणी मोहके वशीभूत हो मार्गसे भ्रष्ट हो कितना दुःख उठा रहे हैं। इनका दुःख किस प्रकार दूर कर सकूं। इस लोककल्याणकी भावनाके समय जो शुभ राग होता है उसीसे तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव होता है। सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता तो मोक्षका कारण है। उसके द्वारा कर्मबन्ध किस प्रकार हो सकता है ?

: ७ :

'तपसा निर्जरा च' आचार्य उमास्वामीने लिखा है कि तपके द्वारा संवर तथा निर्जरा दोनों ही होते हैं। मोक्ष उपादेय तत्त्व है और संवर तथा निर्जरा उसके साधक तत्त्व हैं। इनके बिना मोक्ष होना संभव नहीं। तप चारित्रका ही विशेष रूप है। चारित्रमोहका अभाव होने पर मनुष्यकी विरक्तिरूप अवस्था होती है और उस विरक्ति अवस्थामें जो कार्य होता है वह तप कहलाता है। विरक्तिरूप अवस्थामें इच्छाओंका निरोध सुतरा हो जाता है इसलिये 'इच्छानिरोधस्तपः' इच्छाको रोकना तप है यह तपका लक्षण प्रसिद्ध हो गया है। रागके उदयमे यह जीव बाह्य वैभवको पकडे रहता है पर जब अन्तरङ्गसे राग छूट जाता है तब उस वैभवको छोडते इसे देर नहीं लगती। बड़े बड़े पुरुष संसारसे विरक्त न हो सकें

पर छोटे पुरुष विरक्त होकर आत्मकल्याण कर जाते हैं। प्रद्युम्नको वैराग्य आया—दीक्षा लेनेका भाव उसका हुआ अत राज्यसभामें बलदेव तथा श्रीकृष्णसे आज्ञा लेने गया। वहाँ जाकर जब उसने अपना अभिप्राय प्रकट किया तब बलदेव तथा श्रीकृष्ण कहते हैं कि बेटा! अभी तेरी अवस्था ही क्या है? तूने संसारका सार जाना ही क्या है? जो दीक्षा लेना चाहता है अभी हम तुझसे बड़े बूढ़े विद्यमान हैं। हम लोगोंके रहते तू यह क्या विचार कर रहा है?- सुनकर प्रद्युम्नने उत्तर दिया कि आप लोग संसारके स्तम्भ हो अतः राज्य करो। मेरी तो इच्छा-दीक्षा धारण करनेकी है। इस संसारमें सार है ही क्या जिसे जाना जाय। इस प्रकार राज्यसभा-से विदा लेकर अपने अन्तःपुरमें पहुँचा और स्त्रीसे कहता है—प्रिये! मेरा दीक्षा लेनेका भाव है। स्त्री पहलेसे ही विरक्त बैठी थी। वह कहती है जब दीक्षा लेनेका भाव है तब प्रिये! सम्बोधनकी क्या आवश्यकता है? क्या स्त्रीसे पूछ-पूछकर दीक्षा ली जाती है। आप दीक्षा लें या न लें, मैं तो जाकर अभी लेती हूँ। यह कहकर वह प्रद्युम्नसे पहले निकल गई। दोनोंने दीक्षा धारण कर आत्म-कल्याण किया और श्रीकृष्ण तथा बलदेव संसारके चक्रमें फँसे रहे। एक समय था कि जब लोग थोड़ा सा निमित्त पाकर संसारसे विरक्त हो जाते थे। शिरमें एक सफेद बाल देखा कि वैराग्य आ गया पर आज एक दो नहीं समस्त बाल सफेद हो जाते हैं पर वैराग्यका नाम नहीं आता। उसका कारण यही है कि मोहका संस्कार बड़ा प्रबल है। जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानीकी बूँद नहीं ठहरती उसी प्रकार मोही जीवोंपर वैराग्यवर्धक उपदेशोंका प्रभाव नहीं ठहरता। थोड़ा बहुत वैराग्य जब कभी आता भी है तो श्मशान वैराग्यके समान थोड़ी ही देरमें साफ हो जाता है।

बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तप दो प्रकारके हैं। अनशन,

ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं। इन्हे बाह्य पुरुष भी कर सकते हैं तथा इनका प्रवृत्त्यंश बाह्यमें दृष्टिगोचर होता है इसलिये इन्हें बाह्य तप कहते हैं। और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं। इनका सीधा सम्बन्ध आभ्यन्तर—अन्तरात्मासे है तथा इन्हें बाह्य पुरुष नहीं कर सकते इसलिये ये आभ्यन्तर तप कहलाते हैं। इन सभी तपोंमें इच्छाका न्यूनाधिक रूपसे नियन्त्रण किया जाता है इसीलिये इनसे नवीन कर्मोंका बन्ध रुकता है और पूर्वके बँधे कर्म निर्जीर्ण हो जाते हैं। 'कर्मशैलको वज्रसमाना' यह तप कर्मरूपी पर्वतको गिरानेके लिये वज्रके समान है। जिस प्रकार वज्रपातसे पर्वतके शिखर चूर चूर हो जाते हैं उसी प्रकार तपश्चरणसे कर्म चूर चूर हो जाते हैं। जिन कर्मोंके फल देनेका समय नहीं आया ऐसे कर्म भी तपके प्रभावसे असमयमे ही गिर जाते हैं। अविपाक निर्जराका मूल कारण तप ही है। तपके द्वारा किसी सांसारिक फलकी आकांक्षा नहीं करना चाहिये। जैन सिद्धान्त सम्मत तप तथा अन्य लोगोंके तपमे अन्तर बताते हुए श्री समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया
तपस्विन केचन कर्म कुर्वते।
भवान् पुनर्जन्म-जराजिहासया
त्रयीं प्रवृतिं समधीरनारुणत् ॥

हे भगवन्! कितने ही लोग संतान प्राप्त करनेके लिये, कितने ही धन प्राप्त करनेके लिये तथा कितने ही मरणोत्तर कालमें प्राप्त होनेवाले स्वर्गादिकी तृष्णासे तपश्चरण करते हैं परन्तु आप जन्म और जराकी बाधाका परित्याग करनेकी इच्छासे इष्टानिष्ट

पदार्थोंमे मध्यस्थ हो मन वचन कायकी प्रवृत्तिको रोकते हैं। अन्यत्र तपका प्रयोजन संसार है तो यहां तपका प्रयोजन मोक्ष है। परमार्थसे तप मोक्षका ही साधन है। उसमे यदि कोई न्यूनता रह जाती है तो सांसारिक सुखका भी कारण हो जाता हैं। जैसे खेती का उद्देश्य अनाज प्राप्त करना है। यदि पाला आदि पड़नेसे अनाज प्राप्त करनेमे कुछ कमी हो जाय तो पलाल कौन ले गया, वह तो प्राप्त होगा ही इसी प्रकार तपश्चरणसे मोक्ष मिलता है। यदि कदाचित् उसकी प्राप्ति न हो सकी तो स्वर्गका वैभव कौन छीन लेगा ? वह तो प्राप्त होगा ही।

पद्मपुराणमे विशल्याकी महिमा आपने सुनी होगी। उसके पास आते ही लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे देवोपनीत शक्ति निकलकर दूर हो गई। इसमे विशल्याका पूर्व जन्ममे किया हुआ तपश्चरण ही कारण था। निर्जन वनमे उसने तीन हजार वर्ष तक कठिन तपश्चरण किया था। तपश्चर्याके प्रभावसे मुनियोंके शरीरमे नाना प्रकारकी ऋद्धियां उत्पन्न होती हैं पर वे उनकी ओरसे निर्भान ही रहते हैं। विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न थी पर उन्हे इसका पता ही नहीं था। क्षुल्लकके कहनेसे उनका उस ओर ध्यान गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती तपश्चरण करते थे। दुष्कर्मके उदयसे उनके शरीरमे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो गये फिर भी उस ओर उनका ध्यान नहीं गया। एक बार इन्द्र की सभामे इसकी चर्चा हुई तो एक देव इनकी परीक्षा करने के लिये आया। जहाँ वे तप करते थे वहाँ वह देव एक वैद्यका रूप धरकर चक्कर लगाने लगा तथा उनके शरीर पर जो रोग दिख रहे थे उन सबकी औषधि अपने पास होनेकी टेर लगाने लगा। एक दो दिन हो गये। मुनि विचार करते हैं कि यदि यह वैद्य है तो नगरमे क्यों नहीं जाता ? यहाँ क्या झाड़-झंखाड़ोंकी औषधि करने

आया है ? उन्होंने उसे बुलाया और पूछा कि तुम्हारे पास क्या क्या औषधियाँ है ? उसने जो रोग उनके शरीर पर दिख रहे थे उन सबकी औषधियाँ बता दीं। मुनिराजने कहा कि भाई ! ये रोग तो मुझे हैं नहीं। ये सब शरीरमें अवश्य हैं पर उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? मैं तो आत्मद्रव्य हूँ जो कि इससे सर्वथा भिन्न है। उसे इन रोगोंमेंसे एक भी रोग नहीं है। हाँ, उसे जन्म-मरणका रोग है। यदि तुम्हारे झोलामें उसकी औषधि हो तो देओ। वैद्य असली रूपमें प्रकट हो चरणोंमें गिर कर कहता है कि भगवन् ! इस रोगकी औषधि तो आपके ही पास है। हम देव लोग तो इसकी औषधि जो तप है उससे वञ्चित ही रहते हैं। चाहते हैं कि तप करें पर हमारा यह वैक्रियिक शरीर उसमें बाधक है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि किसी तरह गृहस्थीके जालसे छुटकारा मिला है तो दूसरे जालमें नहीं फँसना चाहिये और निर्द्वन्द्व होकर आत्माका कल्याण करना चाहिये।

अन्तरङ्ग तपोंमें स्वाध्यायको भी तप बताया है। स्वाध्यायसे आत्मा और अनात्माका बोध होता है इसलिये प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमें प्रवृत्ति करना चाहिये। आचार्योंकी बुद्धि तो देखो, उन्होंने शास्त्र पढ़नेके लिये 'स्वाध्याय' यह कितना सुन्दर शब्द चुना है। अरे शास्त्र पढ़ते हो तो उसके लिये 'शास्त्राध्याय' शब्द चुनते पर उन्होंने स्वाध्याय शब्द चुना है। इसका तात्पर्य यह है कि शास्त्र पढ़कर स्वको पढो—अपने आपको पहिचानो। यदि ग्यारह अङ्ग और नौ पूर्वको पढ़नेके बाद भी स्वको नहीं पढ़ सके तो उस भारभूत ज्ञानसे कौन सा लाभ होनेवाला है ? इतना ज्ञान तो इस जीवने अनन्तवार प्राप्त किया परन्तु संसार सागरसे पार नहीं हो सका। जैन सिद्धान्तमें अनेक शास्त्रोंको जाननेकी प्रतिष्ठा नहीं है किन्तु सम्यग्ज्ञानकी प्रतिष्ठा है। यहाँ तो मात्र

तुषमात्रको भिन्न भिन्न जाननेवाले मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति बताकर मोक्ष पहुँचनेकी बात लिखी है अतः ज्ञान थोड़ा भी हो तो हानि नहीं परन्तु मिथ्या न हो इस बातका ध्यान रक्खो।

सप्तम अध्यायमें आपने शुभास्रवका वर्णन सुनते समय अहिंसादि पाँच व्रतोंका वर्णन सुना है। उसमें उन्होंने उन व्रतोंकी स्थिरताके लिए पाँच पाँच भावनाओंका वर्णन किया है। उसपर ध्यान दीजिये। जिन कामोंसे व्रतमें बाधा होती दिखी उन्हीं उन्हीं कामोंपर आचार्यने पहरा बैठा दिया है। जैसे मनुष्य हिंसा करता है तो किन किन कार्योंसे करता है? १ वचनसे कुछ बोलकर, २ मनसे कुछ विचार ३ शरीरसे चलकर, ४ किन्हीं वस्तुओंको रख तथा उठाकर और ५ भोजन ग्रहणकर इन पाँच कार्योंसे ही करता है। आचार्यने इन पाँचों कार्योंपर पहरा बैठाते हुए लिखा है—

'वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च' अर्थात् वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपानभोजन इन पाँच कार्योंसे अहिंसा व्रतकी रक्षा होती है। इसी प्रकार सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत और परिग्रहत्यागव्रतकी बात समझना चाहिये।

उन्होंने एक बात और लिखी है 'निःशल्यो व्रती' अर्थात व्रतीको निःशल्य होना चाहिये। माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य हैं। ये काँटेकी तरह सदा चुभती रहती हैं इसलिये व्रतीको इनसे दूर रहना चाहिये। मायाका अर्थ है भीतर कुछ और बाहर कुछ। व्रतीको ऐसा कभी नहीं होना चाहिये। कितने ही व्रती अन्तरङ्गमें कुछ हैं और लोक व्यवहारमें कुछ और ही प्रवृत्ति करते हैं। जिसकी ऐसी प्रपञ्चसे भरी वृत्ति है वह व्रती कैसे होसकता है? हृदय यदि दुर्बल है तो कठिन व्रत कभी धारण नहीं करो तथा हृदयकी दुर्बलता छिपाकर बाह्य प्रवृत्तिके द्वारा उन्नत बननेकी भावना निन्द्य

भावना है। इससे व्रतीको सदा यह भय बना रहता है कि कहीं मेरी हृदयकी दुर्बलता कोई जान न जावे। इसी तरह जिस व्रतको धारण किया है उसमें पूर्ण श्रद्धा होना चाहिये। उसके बिना मिथ्यात्व अवस्था रहेगी तथा श्रद्धाकी दृढ़ता न होनेसे आचार भी निर्मल नहीं रह सकेगा इसलिये जितना आचरण किया जाय उनका विवेक और श्रद्धाके साथ किया जाय। यदि व्रतीके विवेक नहीं होगा तो वह उत्सूत्र प्रवृत्ति करेगा और अपनी उस प्रवृत्तिसे जनतापर आतंक जमानेकी चेष्टा करेगा। यदि भाग्यवश जनता विवेकवती हुई और उसने उसकी उत्सूत्र प्रवृत्तिकी आलोचना शुरू कर दी तो उससे हृदयमें क्षोभ उत्पन्न हो जायगा जो निरन्तर अशान्तिका कारण होगा। इसके सिवाय व्रतीको व्रत धारण कर उसके फलस्वरूप किसी भोगोपभोगकी आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेके कारण उसकी आत्मामें निर्मलता नहीं आ सकेगी। जहाँ स्वार्थकी गन्ध है वहाँ निर्मलता कैसी? व्रतीको तो केवल यह भावना रखना चाहिये कि पापका परित्याग करना हमारा कर्तव्य है जिसे मैं कर रहा हूँ। इससे क्या फलकी प्राप्ति होगी? इस प्रपञ्चमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं। एक बार सही मार्गपर चलना शुरू कर दिया तो लक्ष्य स्थानकी प्राप्ति अवश्य होगी उसमें सन्देहकी बात नहीं है।

: ८ :

त्यागका अर्थ छोड़ना है, पर जब ग्रहण हो तभी न छोड़ना बने। संसारके समस्त पदार्थ अपना अपना चतुष्टय लिये स्वतन्त्र स्वतन्त्र विद्यमान हैं। किसीको ग्रहण करनेकी किसीमें सामर्थ्य

नहीं। हमारा कमण्डलु वहां रक्खा और मैं यहां बैठा, मैंने कमण्डलुको क्या ग्रहण कर लिया? आपकी सम्पत्ति आपके घर है। आप यहां बैठे हैं। आपने सम्पत्तिको क्या ग्रहण कर लिया? जब ग्रहण ही नहीं किया तब त्यागना कैसा? बाह्ममे तो ऐसा ही है परन्तु मोहके कारण यह जीव उन पदार्थोंमें 'ये मेरे हैं' 'मै इनका स्वामी हूं' इस प्रकारका मूर्च्छाभाव लिये बैठा है वही मूर्च्छाभाव छोड़नेका नाम त्याग है। जिसका यह मूर्च्छाभाव छूट गया उसकी आत्मा निःशल्य हो गई। यह मनुष्य पर पदार्थको अपना मान उसके इष्ट अनिष्ट परिणमनसे व्यर्थ ही हर्ष-विषादका अनुभव करता है। यदि परमे परत्व और निजमें निजत्व बुद्धि हो जावे तो त्यागका आनन्द उपलब्ध हो जावे। इस तरह निश्चयसे ममता भावको छोड़ना त्याग कहलाता है। बहिरङ्गमें आहार, औषधि, ज्ञान तथा अभयसे त्यागके चार भेद हैं। जब यहां भोगभूमि थी तब सबकी एकसी दशा थी, कल्पवृक्षोंसे सबकी इच्छाएं पूर्ण होती थीं इसलिये किसीसे किसीको कुछ प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी। मुनिमार्गका भी अभाव था इसलिये आहारादि देना अनावश्यक था परन्तु जबसे कर्मभूमि प्रचलित हुई और विषमता को लिए हुए मनुष्य यहा उत्पन्न होने लगे तबसे पारस्परिक सहयोगकी आवश्यकता हुई। मुनिमार्गका भी प्रचलन हुआ इसलिये आहारादि देना आवश्यक हो गया। फलस्वरूप उसी समयसे त्याग धर्मका आविर्भाव हुआ। दाताको हृदयसे जब तक लोभ कषायकी निवृत्ति नहीं होती तब तक वह किसीके लिये एक कपर्दिका भी देनेके लिये तैयार नहीं होता पर जब अन्तरङ्गसे लोभ निकल जाता है तब छह खण्डका वैभव भी दूसरेके लिये सौंपनेमे देर नहीं लगती। मुनिने श्रावकसे आहार लिया, श्रावकने भक्तिपूर्वक दिया इसमे दोनोंका कल्याण हुआ। दाताको तो इसलिये हुआ कि उसकी आत्मासे लोभकषायकी निवृत्ति हुई और

मुनिका इसलिये हुआ कि आहार पाकर उसके औदारिक शरीरमें स्थिरता आई जिससे वह रत्नत्रयकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुआ। मुनि अपने उपदेशसे अनेक जीवोंको सुमार्ग पर लगावेंगे इस दृष्टिसे अनेक जीवोंका कल्याण हुआ। इस तरह विचार करनेपर त्यागधर्म अत्यधिक स्वपर कल्याणकारी जान पड़ता है। मुनि अपने पदके अनुकूल निश्चय त्यागधर्मका पालन करते हैं और गृहस्थ बाह्य त्यागधर्मका पालन करते हैं। इतना निश्चत है कि संसारका समस्त व्यवहार त्यागसे ही चल रहा है। अन्यथा जिसके पास जो है वह किसीके लिए कुछ न दे तो क्या संसारका व्यवहार चल जावेगा?

एक वार एक साधु नदीके किनारे पहुँचा। दूसरी पार जानेके लिए नाव लगती थी। नावका किराया दो पैसा था। साधुके पास पैसाका अभाव था इसलिए वह नदीके इस पार ही ठहरनेका उद्यम करने लगा। इतनेमें एक सेठ आया, बोला—बाबाजी! रात्रिको यहाँ कहाँ ठहरेगें! उस ओर चलिये, वहाँ ठहरनेका अच्छा स्थान है। साधुने कहा बेटा! नावमें बैठनेके लिए दो पैसा चाहिये। मेरे पास है नहीं अतः यहीं रात्रि बितानेका विचार किया हैं। सेठने कहा पैसोकी कोई बात नहीं, आप नावपर बैठिये। सेठ और साधु—दोनों नाव पर बैठ गये। सेठने चार पैसे नाववालेको दिये। जब नावसे उतरकर दूसरी ओर दोनों पहुँच गये तब सेठने साधुसे कहा बाबाजी आप बहुत त्यागका उपदेश देते हो। यदि आपके समान मैंने भी पैसे त्याग दिये होते तो आज क्या दशा होती? अतः त्यागकी बात छोड़ो। साधुने हँसकर कहा—बेटा! यदि नदी पार हुई है तो चार पैसोंके त्यागसे ही हुई है। यदि तूँ ये पैसे अपनी अंटीमें रखे रहता तो यह नाववाला तुझे कभी भी नदीसे पार नहीं उतारता। सेठ चुप रह गया।

कहनेका तात्पर्य यही है कि त्यागसे ही संसारके सब काम चलते हैं।

पानी बाढ़े नावमे घरमे बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयाना काम ॥

यदि नावमे पानी बढ़ रहा है तो दोनों हाथोंसे उलीचकर उसे बाहिर करना ही बुद्धिमत्ता है। इसी प्रकार यदि घरमें सम्पत्ति बढ़ रही है तो उसे दानके द्वारा उत्तम कार्यमे खर्च करना ही उसकी रक्षाका उपाय है। दान सन्मानके साथ देना चाहिये और उसके बदले किसी प्रकारका अभिमान हृदयमे उत्पन्न नहीं होना चाहिये, अन्यथा पैसाका पैसा जाता है और उससे आत्माको लाभ भी कुछ नहीं होता। दानमे लोभ कषायसे निवृत्ति होनेके कारण दाताकी आत्माको लाभ होता है। यदि लोभके बदले उसके दादा मानका उदय आत्मामे हो गया तो इससे क्या लाभ कहलाया। उत्तम पात्रके लिये दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। धन्यकुमारकी कथा आप लोग जानते हैं। घरसे निकलनेपर उसे जो स्थान-स्थानपर अनायास ही लाभ हुआ था वह उसके पूर्व पर्यायमे दिये दानका ही फल था। समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

क्षितिगतमिव वटबीज पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥

अर्थात् जिस प्रकार योग्य भूमिमे पड़ा हुआ वटका छोटा सा बीज कालान्तरमें बड़ा वृक्ष बनकर छायाके विभवको प्रदान करता है उसी प्रकार योग्य पात्रके लिये दिया हुआ छोटा सा दान भी समय पाकर अपरिमित वैभवको प्रदान करता है।

जब वसन्त याचक भये दीने तरु मिल पात।
इससे नव पल्लव भये दिया व्यर्थ नहिं जात ॥

एक कविके सामने पूर्तिके लिये समस्या रखी गई—'दिया व्यर्थ नहि जात' जिसकी उसने उक्त प्रकार पूर्ति की। कितना सुन्दर भाव इसके अन्दर भर दिया है। वसन्त ऋतुमे प्रथम पतझड़ आती है जिससे समस्त वृक्षोंके पुराने पत्ते झड़ जाते हैं और उसके बाद उन वृक्षोंमें नये लहलहाते पल्लव उत्पन्न होते हैं। कविने यही भाव इसमे अंकित किया है कि जब वसन्त ऋतु याचक हुआ अर्थात् उसने वृक्षोंसे पत्तोंकी याचना की तब सब वृक्षोंने उसे अपने अपने पत्ते दे दिये। उसीके फलस्वरूप उन्हे नये नये पल्लवोंकी प्राप्ति होती है क्योंकि दिया दान कभी व्यर्थ नहीं जाता है। मान बड़ाईके लिए जो दान दिया जाता है वह व्यर्थ जाता है। इसके लिए महाभारतमें एक उपकथा आती है—

युद्धमें विजयोपरान्त युधिष्ठिर महाराजने एक बड़ा भारी यज्ञ किया। उसमे हजारों ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। जिस स्थान पर ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया उस स्थानपर युधिष्ठिर महाराज खड़े हुए कुछ लोगोंसे वार्ता कर रहे थे। वहीं एक नेवला जूठनमें बार बार लोट रहा था। महाराजने नेवलासे कहा—यह क्या कर रहा है? तब नेवलाने कहा—महाराज! एक गाँवमे एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री थी, एक लड़का था और लड़केकी स्त्री थी। इस तरह चार आदमियोंकी उसकी गृहस्थी थी। बेचारे बहुत गरीब थे। खेतों परसे शिला बीनकर लाते और उससे अपनी गुजर करते थे। एक बार ३ दिनके अन्तरसे उन्हे भोजन प्राप्त हुआ। शिला बीनकर जो अनाज उन्हें मिला उससे वे आठ रोटियाँ बना-कर तथा दो दो रोटियाँ अपने हिस्सेकी लेकर खाने बैठे। बैठे ही थे कि इतनेमें एक गरीब आदमी चिल्लाता हुआ आया कि सात दिनसे मुखमे अनाजका दाना भी नहीं गया, भूखके मारे प्राण निकले जा रहे हैं। उसकी दीन वाणी सुन ब्राह्मणको दया आगई

जिससे उसने यह विचार कर कि अभी मुझे तो दो तीन ही दिन हुए हैं पर इस बेचारेको सात दिन हो गये हैं, अपनी रोटियाँ उसे दे दीं। वह आदमी तृप्त नहीं हुआ। तब ब्राह्मण अपनी स्त्रीकी ओर देखने लगा। ब्राह्मणीने कहा कि आप भूखे रहें और मैं भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है? यह कह उसने भी अपनी रोटियाँ उसे दे दीं। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ। तब दोनों लड़केकी ओर देखने लगे। लड़केने कहा कि हमारे वृद्ध माता पिता भूखे रहें और मैं भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है? यह कह उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दीं। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ तब तीनों लड़केकी स्त्रीकी ओर देखने लगे। उसने भी कहा कि यद्यपि मैं आपके घर उत्पन्न नहीं हुई हूँ तथापि आप लोगोंके सहवाससे मुझमें भी कुछ-कुछ उदारता और दयालुता आई है यह कहकर उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दीं। वह भूखा आदमी तृप्त होकर आशीर्वाद देता हुआ चला गया। चारोंके चारों भूखे रह गये। महाराज! जिस स्थान पर उस गरीबने बैठकर भोजन किया था, मैं वहाँसे निकला तो मेरा नीचेका भाग स्वर्णमय हो गया। अब आधा स्वर्णमय और आधा चर्ममय होनेसे मुझे अपना रूप अच्छा नहीं लगा। इसी बीच मैंने सुना कि महाराजके यहाँ यज्ञमें हजारों ब्राह्मणोंका भोजन हुआ है। वहाँ जाकर लोटूँगा तो पूरा स्वर्णमय हो जाऊँगा। यही सुनकर मैं यहाँ आया और बड़ी देरसे जूँठनमें लोट रहा हूँ परन्तु मेरा शेष शरीर स्वर्णमय नहीं हो रहा है। महाराज! जान पड़ता है आपने यह ब्राह्मणभोजन करुणाबुद्धिसे नहीं कराया, केवल मान बढ़ाईके लिये लोकव्यवहार देख कराया है।... कथा तो कथा ही है पर इससे सार यही निकलता है कि मान बढ़ाईके उद्देश्यसे दिया दान निष्फल जाता है। दान देते समय पात्रकी योग्यता और आवश्यकता

पर भी दृष्टि डालना चाहिये। एक स्थान पर कहा है—

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्य नीरुजस्य किमौषधैः ॥

अर्थात् हे युधिष्ठिर! दरिद्रोंका भरण पोषण करो, सम्पन्न व्यक्तियोंको धन नहीं दो। रुग्ण मनुष्यके लिए औषधि हितकारी है, नीरोग मनुष्यको उससे क्या प्रयोजन ?

प्रसन्नताकी वात है कि जैन समाजमें दान देनेका प्रचार अन्य समाजोंकी अपेक्षा अधिक है। प्रतिवर्ष लाखों रुपयोंका दान समाजमें होता है और उससे समाजके उत्कर्षके अनेक कार्य हो रहे हैं। पिछले पचास वर्षोंसे आपकी समाजमें जो प्रगति हुई है वह आपके दानका ही फल है।

अष्टम अध्यायमें आपने बन्धतत्त्वका वर्णन सुना है। बन्धका प्रमुख कारण मोहजन्य विकार है। 'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः' इस सूत्रमें जो बन्धके कारण बतलाये हैं उनमें योगको छोड़कर शेष सब मोहजन्य विकार ही तो हैं। अन्य कर्मोंके उदयसे जो भाव आत्मामें उत्पन्न होते हैं उनसे नवीन कर्म बन्ध नहीं होता। परन्तु मोह कर्मके उदयसे जो भाव होता है वह नवीन कर्मबन्धका कारण है। कुन्दकुन्द स्वामीने भी समयसारमें कहा है—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥

अर्थात् रागी प्राणी कर्मोंको बाँधता है और राग रहित प्राणी कर्मोंको छोड़ता है। बन्धके विषयमें जिनेन्द्र भगवान्का यही उपदेश है, अतः कर्मोंमें राग नहीं करो। इस रागसे बचनेका प्रयत्न करो। 'यह राग आग दहे सदा तातैं समामृत सेइये' यह राग रूपी आग

सदा जलाती रहती है इसलिये इससे बचनेके लिए सदा समता-भावरूपी अमृतका सेवन करना चाहिये। यह संसारचक्र अनादि कालसे चला आ रहा है और सामान्यकी अपेक्षा अनन्त काल तक चलता रहेगा। पञ्चास्तिकायमे श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

> गदिमधिगदस्स देहो देहादिंदियाणि जायंते।
> जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो॥
> परिणामादो कम्मं कम्मादो गदिसु होदि गदी।
> गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायते॥
> तेहिं दु विषयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।
> जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि॥
> इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा।

जो संसारमें रहनेवाले जीव हैं उनके स्निग्ध परिणाम होता है, परिणामोंसे कर्मका बन्ध होता है, कर्मसे जीव एक गतिसे अन्य गतिमें जाता है, जहाँ जाता है वहाँ देहग्रहण करता है, देहसे इन्द्रियोका उत्पाद होता है, इन्द्रियोंके द्वारा विषय ग्रहण करता है, विषय ग्रहणसे रागादि परिणामोंकी उत्पत्ति होती है फिर रागादिकसे कर्म और कर्मसे गत्यन्तरगमन, फिर गत्यन्तरगमन से देह देहसे इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण, विषयोंसे स्निग्ध परिणाम, स्निग्धपरिणामोंसे कर्म और कर्मसे वही प्रक्रिया इस तरह यह संसार चक्र बराबर चला जाता है। यदि इसकोमिटानाहै तो उक्त प्रक्रियाका अन्त करना पड़ेगा। इस प्रक्रियाका मूल कारण स्निग्ध परिणाम है। उसका अन्त करनाही इस भवचक्रके विध्वंस-का मूल हेतु है। इसको दूर करनेके उपाय बड़े बड़े महा-त्माओंने बतलाए हैं। आज संसारमें धर्मके जितने आयतन दृष्टिपथ हैं वे इसी चक्रसे बचनेके साधन हैं। किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि डालो तो ये सर्व उपाय पराश्रित हैं। केवल स्वाश्रित उपाय ही

स्वद्वारा अर्जित संसारके विध्वंसका कारण हो सकता है। जैसे शरीरमे यदि अन्न खाकर अजीर्ण हो गया है तो उसके दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि उदरसे पर द्रव्यका सम्बन्ध पृथक् कर दिया जावे। उसकी प्रक्रिया यह है कि प्रथम तो नवीन भोजन त्यागो तथा उदरमे जो विकार है वह या तो काल पाकर स्वयमेव निर्गत हो जावेगा या शीघ्र ही पृथक् करना है तो वमन-विरेचन द्वारा निकाल दिया जावे। ऐसा करनेसे निरोगताका लाभ अनायास हो सकता है। मोक्षमार्गमें भी यही प्रक्रिया है। वल्कि जितने कार्य हैं उन सबकी यही पद्धति है। यदि हमे संसार वन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है तो सबसे प्रथम हम कौन हैं ? क्या हमारा स्वरूप है ? वर्तमान क्या है ? तथा संसार क्यों अनिष्ट है ? इन सव वातोंका निर्णय करना आवश्यक है। जव तक उक्त वातोंका निर्णय न हो जावे तव तक उसके अभावका प्रयत्न हो ही नहीं सकता। आत्मा अहम्प्रत्ययवेद्य है। उसकी जो अवस्था हमे संसारी वना रही है उससे मुक्त होनेकी हमारी इच्छा है तव केवल इच्छा करनेसे मुक्तिके पात्र हम नहीं हो सक्ते। जैसे जल अग्निके निमित्तसे उष्ण होगया है। अव हम माला लेकर जपने लगें कि 'शीतस्पर्शवज्जलाय नमः' तो क्या इससे अनल्प कालमे भी जल शीत हो जायगा ? नहीं वह तो उष्ण स्पर्शके दूर करनेसे ही शीत होगा। इसी तरह हमारी आत्मामें जो रागादि विभाव परिणाम हैं उनके दूर करनेके अर्थ 'श्री वीतरागाय नमः' यह जाप असंख्य कल्प भी जपा जावे तो भी आत्मामें वीतरागता न आवेगी किन्तु रागादि निवृत्तिसे अनायास वीतरागता आ जावेगी। वीतरागता नवीन पदार्थ नहीं, आत्माकी निर्मोह अवस्था ही वीतरागता है जो कि शक्तिकी अपेक्षा सदा विद्यमान रहती है। जिसके उदयसे परमें निजत्व बुद्धि होती है वही मोह है। परको निज मानना यह

अज्ञान भाव है अर्थात् मिथ्याज्ञान है। इसका मूल कारण मोहका उदय है। ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे ज्ञान तो होता है परन्तु विपर्यय होता है। जैसे शुक्तिकामे रजतका विभ्रम होता है। यद्यपि शुक्ति रजत नहीं हो गई तथापि दूरत्व एवं चाकचक्यादि कारणोंसे भ्रान्ति हो जाती है। यहाँ भ्रान्तिका कारण दूरत्वादि दोष है। जैसे कामला रोगी जब शङ्ख देखता है तब 'पीतः शङ्खः' ऐसी प्रतीति करता है। यद्यपि शङ्खमे पीतता नहीं, यह तो नेत्रमे कामला रोग होनेसे शङ्खमे पीतत्व भासमान है। यह पीतता कहाँसे आई। तब यही कहना पड़ेगा कि नेत्रमे जो कामला रोग है वही इस पीतत्वका कारण है। इसी प्रकार आत्मामे जो रागादि होते हैं उनका मूल कारण मोहनीय कर्म है। उसके दो भेद हैं—१ दर्शनमोह और २ चारित्रमोह। उनमें दर्शनमोहके उदयसे मिथ्यात्व और चारित्रमोहके उदयसे राग द्वेप होते हैं। उपयोग आत्माका ऐसा है कि उसके सामने जो आता है उसीका उसमे प्रतिभास होने लगता है। जैसे नेत्रके समक्ष जो पदार्थ आता है वह उसका ज्ञान करा देता है। यहाँतक तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु जो पदार्थ ज्ञानमे आवे उसे आत्मीय मान लेना आपत्तिजनक हैं क्योंकि वह मिथ्या अभिप्राय है। जो पर वस्तुको निज मानता है, संसारमें लोग उसे ठग कहते हैं परन्तु यह चोट्टापन छूटना सहज नहीं। अच्छे अच्छे जीव परको निज मानते हैं और उन पदार्थोकी रक्षा भी करते हैं किन्तु अभिप्रायमे यह है कि ये हमारे नहीं। इसीलिये उन्हें सम्यग्ज्ञानी कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव उन्हे निज मान अनन्त संसारके पात्र होते हैं अतः सिद्ध होता है कि यह मोह परिणति ही बन्धका कारण है। इससे छुटकारा चाहते हो तो प्रथम मोह परिणतिको दूर कर आत्मस्वरूपमें स्थित होनेका प्रयास करो। इसीसे आत्मशान्ति प्राप्त होगी। परमार्थसे आत्मशान्तिका उपाय यही है कि परसे सम्बन्ध छोड़ा जाय और

आत्मपरिणतिका विचार किया जाय। विचारका मूल कारण सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति आप्तश्रुतिसे होती है, आप्तश्रुति आप्ताधीन है, आप्त रागादि दोष रहित है अतः रागादि दोषोंको जानो, उनकी पारमार्थिक दशासे परिचय करो। रागादि दोषोंका त्याग ही संसार वन्धनसे मुक्तिका उपाय है। रागादिकोंका यथार्थ स्वरूप जान लेना ही उनसे विरक्त होनेका मूल उपाय है।

: ६ :

त्याग करते करते अन्तमे आपके पास क्या वचेगा? कुछ नहीं। जिसके पास कुछ नहीं वचा वह अकिञ्चन कहलाता है और अकिञ्चनका जो भाव है वही आकिञ्चन्य कहलाता है। परिग्रहका त्याग हो जानेपर ही पूर्ण आकिञ्चन्य धर्म प्रकट होता है। सुख आत्माका गुण है। भले ही वह वर्तमानमे विपरीतरूप परिणमन कर रहा हो पर यह निश्चित है कि जब भी वह प्रकट होगा तब आत्मामें ही प्रकट होगा यह ध्रुव सत्य है परन्तु मोहके कारण यह जीव परिग्रहको सुखका कारण जान उसके संचयमें रात दिन एक कर रहा है। 'परितो गृह्णाति आत्मानमिति परिग्रहः' जो आत्माको सव ओरसे पकड़ कर जकड़ कर रक्खे वह परिग्रह है। परमार्थसे विचार किया जाय तो यह परिग्रह ही इस जीवको समन्तात्—सव ओरसे जकड़े हुए है। 'मूर्च्छा परिग्रहः।' आचार्य उमास्वामी महाराजने परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा रक्खा है। मैं इसका स्वामी हूँ, ये मेरे स्व हैं इस प्रकारका भाव ही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छाके रहते हुए पासमें कुछ भी न हो तब भी यह जीव

परिग्रही कहलाता है और मूर्च्छाके अभावमें समवसरणरूप विभूति-के रहते हुए भी अपरिग्रह—परिग्रह रहित कहलाता है। परिग्रह सबसे बड़ा पाप है जो दशम गुणस्थान तक इस जीवका पिण्ड नहीं छोड़ता। आज परिग्रहके कारण संसारमें त्राहि त्राहि मच रही है। जहाँ देखो वहीं परिग्रहकी पुकार है। जिनके पास है वे उसे अपने पाससे अन्यत्र नहीं जाने देना चाहते और जिनके पास नहीं है वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं इसीलिये संसारमें संघर्ष मचा हुआ है। यदि लोगोंकी दृष्टिमें इतनी बात आ जाय कि परि-ग्रह निर्वाहका साधन है। जिस प्रकार हमें भोजन, वस्त्र और निवासके लिए परिग्रहकी आवश्यकता है उसी प्रकार दूसरेके लिए भी इसकी आवश्यकता है अतः हमें आवश्यकतासे अधिक अपने पास नहीं रोकना चाहिये तो संसारका कल्याण हो जाय। यदि परिग्रहका कुछ भाग एक जगह अनावश्यक रुक जाता है तो दूसरी जगह उसके बिना कमी होनेसे संकट उत्पन्न हो जाता है। शरीरके अन्दर जबतक रक्तका संचार होता रहता है तबतक शरीरके प्रत्येक अंग अपने कार्यमें दक्ष रहते हैं पर जहाँ कहीं रक्तका संचार रुक जाता है वहाँ वह अङ्ग बेकार होजाता है और जहाँ रक्त रुक जाता है वहाँ मवाद पैदा हो जाता है। यही हाल परिग्रहका है। जहाँ यह नहीं पहुँचेगा वहाँ उसके बिना संकटापन्न स्थिति हो जायगी और जहाँ रुक जायगा वहाँ मद-मोह विभ्रम आदि दुर्गुण उत्पन्न कर देगा। इसलिये जैनागममें यह कहा गया है कि गृहस्थ अपनी आवश्यकताओंके अनुसार परिग्रहका परिमाण करे और मुनि सर्वथा ही उसका परित्याग करे।

आजके युगमें मनुष्यकी प्रतिष्ठा पैसेसे आँकी जाने लगी है इसलिये मनुष्य न्यायसे अन्यायसे जैसे बनता है वैसे पैसेका संचय कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता है। प्रतिष्ठा किसे बुरी लगती है?

इस परिग्रहकी छीना-झपटीमें मनुष्य भाई भाईका, पुत्र पिताका और पिता पुत्र तकका घात करता सुना गया है। इसके दुर्गुणोंकी ओर जब दृष्टि जाती है तब शरीरमें रोमाञ्च उठ आते हैं। चक्रवर्ती भरत ने अपने भाई बाहुबलिके ऊपर चक्र चला दिया। किसलिए? पैसेके लिये। क्या वे यह नहीं सोच सकते थे कि आखिर यह भी तो उसी पिताकी सन्तान है जिसकी मैं हूँ। यह एक न वशमें हुआ न सही, षट्खण्डके समस्त मानव तो वशमें आगये—आज्ञाकारी होगये पर वहाँ तो भूत मोहका सवार था इसलिए संतोष कैसे हो सकता था? वे मन्त्रियों द्वारा निर्णीत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्ल-युद्धमें पराजित होनेपर भी उबल पड़े—रोषमें आगये और भाईपर चक्ररत्न चलाकर शान्त हुए। उस समयके मंत्रियोंकी बुद्धिमानी देखो। वे समझते थे कि ये दोनों भाई चरमशरीरी—मोक्षगामी हैं। इनमेंसे एकका भी विघात होनेका नहीं। यदि सेनाका युद्ध होता है तो हजारों निरपराध व्यक्ति मारे जावेंगे इसलिये अपनी बलवत्ताका निर्णय ये दोनों अपने ही युद्धोंसे करें और युद्ध भी कैसे, जिनमें घातक शस्त्रोंका नाम भी नहीं? यह उस समयके मन्त्री थे और आजके मन्त्रियोंकी बात देखो। आप घरमेंसे बाहर नहीं निकलेंगे पर निरपराध प्रजाके लाखों मानवोंका विध्वंस करा देंगे। कौरव और पाण्डवोंका युद्ध किंनिमित्तक था? इसी परिग्रह निमित्तक तो था। कौरव अधिक थे इसलिए सम्पत्तिका अधिक भाग चाहते थे। पाण्डव यदि यह सोच लेते कि हम थोड़े हैं अतः हमारा काम थोडेसे ही चल सकता है। अर्ध भागकी हमें आवश्यकता नहीं है तो क्या महाभारत होता? नहीं, पर उन्हे तो आधा भाग चाहिये था। कितने निरपराध सैनिकोंका विनाश हुआ इस ओर दृष्टि नहीं गई। जावे कैसे परिग्रहका आवरण नेत्रके ऊपर ऐसी पट्टी बाँध देता है कि वह पदार्थका सही रूप देख ही नहीं पाता।

संसारमें परिग्रह पापकी जड़ है। वह जहाँ जावेगा वहीं पर अनेक उपद्रव करावेगा। करावे किन्तु जिन्हें आत्महित करना है वे इसे त्याग करें। त्याग परिग्रहका नहीं मूर्च्छाका होना चाहिये।

कितने ही लोग ऐसा सोचते हैं कि अभी परिग्रहका अर्जन करो, पीछे दान आदि कार्योंमे व्यय कर पुण्यका संचय कर लेंगे परन्तु आचार्य कहते हैं कि 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' अर्थात् कीचड़ धोनेकी अपेक्षा दूरसे ही उसका स्पर्श न करना अच्छा है। लक्ष्मीको अंगीकार कर उसका त्याग करना कहाँकी बुद्धिमानी है। कार्तिकेय मुनिने लिखा है कि वैसे तो सभी तीर्थङ्कर समान हैं परन्तु वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थङ्करोंमे हमारी भक्ति विशेष है क्यों कि इन्होंने संपत्तिको अङ्गीकृत ही नहीं किया, जब कि अन्य तीर्थङ्करोंने सामान्य मनुष्यों-की तरह सम्पत्ति ग्रहण कर पीछे त्याग किया। परिग्रहवालोंसे पूछो कि उन्हें परिग्रहसे कितना सुख है? जिसके पास कुछ नहीं है वह सुखकी नींद तो सोता है पर परिग्रहवालोको यह नसीव नहीं।

एक गरीव आदमी था, महादेवजीका भक्त था। उसकी भक्ति-से प्रसन्न होकर एक दिन महादेवजीने कहा—बोल क्या चाहता है? महादेवजीको सामने खड़ा देख वेचारा घवड़ा गया। बोला—महाराज! कल सवेरे माँग लूंगा। महादेवजी ने कहा—अच्छा। वह आदमी सायंकलसे ही विचार करने वैठा कि महादेवजीसे क्या माँगा जाय। हमारे पास रहनेके लिये घर नहीं इसलिये यही माँगा जाय। फिर सोचता है जव महादेवजी मुंह मागा वरदान देनेको तैयार हैं तब घर ही क्यों माँगा जाय? देखो ये जमींदार हैं, गाँवके समस्त लोगों पर रौव गाँठते हैं इसलिये हम भी जमींदार हो जावें तो अच्छा है। यह विचार कर उसने जमींदारी माँगनेका निर्णय किया। फिर सोचता है आखिर जव लगान भरनेका समय आता

है तब ये तहसीलदारकी आरजू मिन्नत करते हैं इसलिये इनसे बडा तो तहसीलदार है, वही क्यों न बन जाऊँ ? इस तरह विचार कर वह तहसीलदार बननेकी आकांक्षा करने लगा। कुछ देर बाद उसे जिलाधीशका स्मरण आया तो उसके सामने तहसीलदारका पद फीका दिखने लगा। इस प्रकार एकके बाद एक इच्छाएं बढ़ती गईं और वह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या माँगा जाय। सारी रात्रि विचार करते करते निकल गई। सबेरा हुआ, महादेवजी ने पूछा—बोल क्या चाहता है ? वह उत्तर देता है—महाराज ! कुछ नहीं चाहिये ! क्यों ? क्यों क्या, जब पासमें संपत्ति आई नहीं, आनेकी आशामात्र दिखी तब तो रात्रिभर नींद नहीं। यदि कदाचित् आ गई तो फिर नींद तो एकदम विदा हो जायगी इसलिये महाराज मैं जैसा हूँ वैसा ही अच्छा हूँ। उदाहरण है अतः इससे सार ग्रहण कीजिये। सार इतना ही है कि परिग्रह जञ्जालका कारण है अतः इससे निवृत्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये।

नवम अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन आपने सुना है। वास्तवमें विचार करो तो मोक्षके साधक ये दो ही तत्त्व हैं। नवीन कर्मोंका आस्रव रुक जाय यही संवर है और पूर्वबद्ध कर्मोंका क्रम-क्रमसे खिर जाना निर्जरा है। संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्रके द्वारा होता है। इन कारणोंमें आचार्य महाराजने सर्वसे प्रथम गुप्तिका उल्लेख किया है। समस्त आस्रवोंका मूल कारण योग है। यदि योगों पर नियन्त्रण हो गया तो आस्रव अपने आप रुक जावेंगे। इस तरह गुप्ति ही महासंवर है परन्तु गुप्तिका प्राप्त होना सहज नहीं। गुप्तिरूप अवस्था सतत नहीं हो सकती अतः उसके अभावमें प्रवृत्ति करना पड़ती है तब आचार्यने आदेश दिया कि भाई यदि प्रवृत्ति ही करना है तो प्रमाद रहित प्रवृत्ति करो। प्रमाद रहित

प्रवृत्तिका नाम समिति है। मनुष्य चलता है, बोलता है, खाता है, किसी वस्तुको उठाता धरता है और मलमूत्रादिका त्याग करता है। इनके सिवाय यदि अन्य कर्म करता हो तो बताओ? उसके समस्त कार्य इन्हीं पांच कर्मोंमे अन्तर्गत हो जाते हैं। आचार्य महाराजने पांच समितियोंके द्वारा इन पांचों कार्यों पर पहरा बैठा दिया फिर अनीतिमें प्रवृत्ति हो तो कैसे हो?

: १० :

आत्माका उपयोग आत्मामें स्थिर नहीं रहता इसका कारण परिग्रह है। परिग्रहके कारण ही उपयोगमें सदा चञ्चलता आती रहती है। आकिञ्चन्य धर्ममें परिग्रहका त्याग होनेसे आत्माका उपयोग अन्यत्र न जाकर ब्रह्म अर्थात् आत्मामे ही लीन होने लगता है। यथार्थमें यही ब्रह्मचर्य है। बाह्य ज्ञेयसे उपयोग हटकर आत्म-स्वरूपमें ही लीन हो जाय तो इससे बढ़कर धर्म क्या होगा? इसी-लिये ब्रह्मचर्यको सबसे बड़ा धर्म माना है। ब्रह्मचर्यकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानमें होती है। आगमसे वहीं ही शीलके अठारह हजार भेदोंकी पूर्णता बतलाई है। यद्यपि निश्चय नयसे ब्रह्मचर्यका यही स्वरूप है तथापि व्यवहारसे स्त्रीत्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। स्वकीय तथा परकीय दोनों प्रकारकी स्त्रियोंका त्याग हो जाना पूर्ण ब्रह्मचर्य है और परकीय स्त्रीका त्यागकर स्वकीय स्त्रीमे संतोष रखना अथवा स्त्रीकी अपेक्षा स्वपुरुषमे संतोष रखना एकदेश ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म-चर्यसे ही मनुष्यकी शोभा तथा प्रतिष्ठा है। चिरकालसे मनुष्योंमे जो कौटुम्बिक व्यवस्था चली आ रही है उसका कारण मनुष्यका

ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्यका सबसे बड़ा बाधक कारण कुसङ्गति है। कुसंगतिके चक्रमे पड़कर ही मनुष्य बुरी आदतोंमे पड़ता है इसलिये ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाले मनुष्यको सर्व प्रथम कुसंगतिसे बचना चाहिये। शुभचन्द्राचार्यने वृद्ध सेवाको ब्रह्मचर्यका साधक मानकर ज्ञानार्णवमें इसका विशद वर्णन किया है। यहाँ जो उत्तमगुणोंसे सहित हैं उन्हे वृद्ध कहा है। केवल अवस्थासे वृद्ध मनुष्योंकी यहाँ विवक्षा नहीं है। मनुष्यके हृदयमें जब दुर्विचार उत्पन्न होते हैं तब उन्हें रोकनेके लिये लज्जा गुण बहुत कुछ प्रयत्न करता है। उत्तम मनुष्योंकी संगतिसे लज्जागुणको बल मिलता है। और वह मनुष्योंके दुर्विचारोंको परास्त कर देता है परन्तु जब नीच मनुष्योंकी संगति रहती है तब लज्जागुण असहाय जैसा होकर स्वयं परास्त हो जाता है। हृदयसे लज्जा गई फिर दुर्विचारोंको रोकनेवाला कौन है?

आदर्श गृहस्थ वही हो सकता है जो अपनी स्त्रीमें संतोष रखता है। इस एकदेश ब्रह्मचर्यका भी कम माहात्म्य नहीं है। सुदर्शन सेठकी रक्षाके लिये देव दौड़े आते हैं। सीताजीके अग्निकुण्डको जलकुण्ड बनानेके लिये देवोंका ध्यान आकर्षित होता है। यह क्या है? एक शीलव्रतका ही अद्भुत माहात्म्य है। इसके विरुद्ध जो कुशील पापमें प्रवृत्ति करते हैं वे देर सबेर नष्ट हो जाते हैं इसमे संदेहकी बात नहीं है। जिन घरोंमें यह पाप आया वे घर बरबाद ही हो गये और पाप करनेवालोंको अपने ही जीवनमे ऐसी दशा देखनी पड़ी कि जिसकी उन्हें स्वप्नमे भी संभावना नहीं थी। जिस पापके कारण रावणके भवनमें एक बच्चा भी नहीं बचा उसी पापको आज लोगोंने खिलौना बना रक्खा है।

जाहि पाप रावणके छौना रह्यौ न भौना माहिं।
ताहि पाप लोगनने खिलौना कर राख्यौ है॥

पाप पाप ही है। इसे जो भी करेगा वह दुःख उठावेगा। ब्रह्मचारी मनुष्यको अपने रहन, वेषभूषा आदि सब पर दृष्टि रखना पड़ती है। बाह्य परिकर भी उज्वल बनाना पड़ता है क्योंकि इन सबका असर उसके ब्रह्मचर्यपर अच्छा नहीं पड़ता। आप भगवान् महावीर स्वामीके संबोधे हुए शिष्य हैं। भगवान् महावीर कौन थे ? बाल ब्रह्मचारी ही तो थे। अच्छा जाने दो उनकी बात, उनके पहले भगवान् पार्श्वनाथ कैसे थे ? वे भी बालब्रह्मचारी थे और उनके पहले कौन थे ? नेमिनाथ, वे भी ब्रह्मचारी थे। उनका ब्रह्मचर्य तो और भी आश्चर्यकारी है। बीच विवाहमें विरक्त हो दीक्षा उन्होंने धारण की थी। इस तरह एक नहीं तीन तीन तीर्थंकरोंने आपके सामने ब्रह्मचर्यका माहात्म्य प्रकट किया है। हम अपने आपको उनका शिष्य बतलाते हैं पर ब्रह्मचर्यकी ओर दृष्टि नहीं देते। जीवन विलासमय हो रहा है और उसके कारण सूरतपर बारह बज रहे हैं फिर भी इस कमीको दूर करनेकी ओर लक्ष्य नहीं जाता। कीड़े मकोड़ेकी तरह मनुष्य संख्यामें वृद्धि होती जा रही हैं। बल-वीर्यका अभाव शरीरमें होता जा रहा है फिर भी ध्यान इस ओर नहीं जाता। एक बच्चा माँके पेटमें और एक अञ्चलके नीचे है फिर भी मनुष्य विषयसे तृप्त नहीं होता। पशुमे तो कमसे कम इतना विवेक होता है कि वह गर्भवती स्त्रीसे दूर रहता है पर हाय रे मनुष्य ! तू तो पशुसे भी अधम दशाको पहुँच रहा है। तुझे गर्भवती स्त्रीसे भी समागम करनेमें संकोच नहीं रहा। इस स्थितिमें जो तेरे सन्तान उत्पन्न होती है उसकी अवस्थापर भी थोड़ा विचार करो। किसीके लीवर बढ़ रहा है तो किसीके पक्षाघात हो रहा है, किसीकी आँख कमजोर है तो किसीके दाँत दुर्बल हैं। यह सर्व क्यों है ? एक ब्रह्मचर्यके महत्त्वको नहीं समझनेसे है। जब तक एक बच्चा माँका दुग्धपान करता है तब तक दूसरा बच्चा उत्पन्न न

किया जाय तो बच्चे भी पुष्ट हों तथा माता पिता भी स्वस्थ रहें। आज तो स्त्रीके दो तीन बच्चे हुए नहीं कि उसके शरीरमें बुढ़ापेके चिह्न प्रकट हो जाते हैं। पुरुषके नेत्रो पर चश्मा आजाता है और मुँहमें पत्थरके दाँत लगवाने पड़ते हैं। जिस भारतवर्षमें पहले टी. बी. का नाम नहीं था वहाँ आज लाखोंकी संख्यामें इस रोगसे ग्रसित हैं। विवाहित स्त्री पुरुषोंकी बात छोड़िये, अब तो अविवाहित बालक बालिकायें भी इस रोगकी शिकार हो रही हैं। इस स्थितिमें भगवान् ही देशकी रक्षा करें। एक राजा ज्योतिष विद्याका बड़ा प्रेमी था। वह मुहूर्त दिखाकर ही स्त्री समागम करता था। राजाका ज्योतिषी तीन सालमें एक बार मुहूर्त निकाल कर देता था। इससे राजाकी स्त्री बहुत कुढ़ती रहती थी। एक दिन उसने राजासे कहा कि ज्योतिषी जी आपको तो तीन साल बाद मुहूर्त शोध कर देते हैं और स्वयं निजके लिए चाहे जब मुहूर्त निकाल लेते हैं। उनका पोथी-पत्रा क्या जुदा है? देखो न, उनके प्रति वर्ष बच्चे उत्पन्न हो रहे हैं। स्त्रीकी बात पर राजाने ध्यान दिया और ज्योतिषीको बुलाकर पूछा कि महाराज! क्या आपका पोथी-पत्रा जुदा है? ज्योतिषीने कहा—महाराज! इसका उत्तर कल राजसभामें दूँगा। दूसरे दिन राजसभा लगी हुई थी। सिंहासन पर राजा आसीन थे। उनके दोनों ओर तीन तीन वर्षके अन्तरसे हुए दोनों बच्चे सुन्दर वेष-भूषामें बैठे थे। राजसभामें ज्योतिषी जी पहुँचे। प्रति वर्ष उत्पन्न होनेवाले बच्चोंमेंसे वे एकको कन्धेपर रखे थे, एकको बगलमें दाबे थे और एकको हाथसे पकड़े थे। पहुँचने पर राजाने उत्तर पूछा। ज्योतिषीने कहा—महाराज! मुहूर्तका बहाना तो मेरा छल था। यथार्थ बात यह है कि आप राजा हैं। आपकी संतान राज्यकी उत्तराधिकारी है। यदि आपके प्रतिवर्ष संतान पैदा होती तो वह हमारे इन बच्चोंके समान होती। एकके नाक बह रही है, एककी

आँखोंमें कीचड़ लग रहा है, कोई चीं कर रहा है, कोई पीं कर रहा है। ऐसी संतानसे क्या राज्यकी रक्षा हो सकती है? हम तो जाति के ब्राह्मण हैं। हमारे इन बच्चोंको राज्य तो करना नहीं है, सिर्फ अपना पेट पालना है सो येन केन प्रकारेण पाल ही लेंगे। आपके ये दोनों बच्चे तीन तीन सालके अन्तरसे हुए हैं और ये हमारे बच्चे एक एक वर्षके अन्तरसे हुए हैं। दोनोंकी सूरत मिलान कर लीजिये। राजा ज्योतिषीके उत्तरसे निरुत्तर हो गया तथा उसकी दूरदर्शितापर बहुत प्रसन्न हुआ। यह तो कथा रही पर मैं आपको एक प्रत्यक्ष घटना सुनाता हूँ। मैं पं० ठाकुरदासजीके पास पढ़ता था। वह बहुत भारी विद्वान थे। उनकी स्त्री दूसरे विवाहकी थी पर उसकी परिणतिकी बात हम आपको क्या सुनावें? एक बार पण्डित जी उसके लिए १००) सौ रुपयेकी साड़ी ले आये। साड़ी हाथ में लेकर वह पण्डित जी से कहती है—पण्डित जी! यह साड़ी किसके लिये लाये हैं? पण्डितजीने कहा कि तुम्हारे लिये लाया हूँ। उसने कहा कि अभी जो साड़ी मैं रोज पहिनती हूँ वह क्या बुरी है? बुरी तो नहीं है पर यह अच्छी लगेगी … पण्डितजीने कहा। यह सुन उसने उत्तर दिया कि मैं अच्छी लगने के लिए वस्त्र नहीं पहनना चाहती। वस्त्रका उद्देश्य शरीरकी रक्षा है, सौन्दर्य वृद्धि नहीं और सौन्दर्य वृद्धि कर मैं किसे आकर्षित करूँ? आपका प्रेम मुझपर है यही मेरे लिये बहुत है। उसने वह साड़ी अपनी नौकरानीको दे दी और कह दिया कि इसे पहिन कर खराब नहीं करना। कुछ बट्टेसे वापिस होगी सो वापिस कर आ और रुपये अपने पास रख, समय पर काम आवेंगे। जब पण्डितजीके २ सन्तान हो चुकीं तब एक दिन उसने पण्डितजीसे कहा कि देखो अपने दो संतान एक पुत्र और एक पुत्री हो चुकीं। अब पापका कार्य बन्द कर देना चाहिये।

पण्डितजी उसकी वात सुन कर कुछ हीला-हवाला करने लगे तो वह स्वयं उठ कर उनकी गोदमें जा बैठी और बोली कि अब तो आप मेरे पिता तुल्य हैं और मैं आपकी वेटी हूँ। पण्डितजी गद्गद् स्वरसे बोले—वेटी! तूंने तो आज वह काम कर दिया जिसे मैं जीवन भर अनेक शास्त्र पढ़कर भी नहीं कर पाया। उस समयसे दोनो ब्रह्मचर्यसे रहने लगे। यदि किसीकी लड़की या वधू विधवा हो जाती है तो लोग यह कह कर उसे रुलाते हैं कि हाय! तेरी जिन्दगी कैसे कटेगी? पर यह नहीं कहते कि वेटी! तू अनन्त पापसे वच गई, तेरा जीवन वन्धन मुक्त हो गया। अव तू आत्महित स्वतन्त्रतासे कर सकती है।

प्रथमानुयोगमें एक कथा आती है—किसी आदमीसे पानी छाननेके वाद जो जीवानी होती है वह लुढ़क गई। उसने मुनिराज से इसका प्रायश्चित्त पूछा तो उन्होंने कहा कि असिधारा व्रत धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषको भोजन कराओ। महाराज! इसकी परीक्षा कैसे होगी? ... ऐसा उसने पूछा तो मुनिराजने कहा कि जब तेरे घरमे ऐसे स्त्री-पुरुष भोजन कर जावेगे तब तेरे घरका मलिन चंदेवा सफेद हो जावेगा। मुनिराजके कहे अनुसार वह स्त्री-पुरुषोंको भोजन कराने लगा। एक दिन उसने एक स्त्री तथा पुरुषको भोजन कराया और देखा कि उनके भोजन करते करते मैला चंदेवा सफेद हो गया है। आदमीको विश्वास हो गया कि ये ही असिधारा व्रतके धारक हैं। भोजनके वाद उसने उनसे पूछा तो उन्होंने परिचय दिया कि जब हम दोनोंका विवाह नहीं हुआ था, उसके पहले हमने शुक्ल पक्षमें और इसने कृष्ण पक्षमे ब्रह्मचर्य रखनेका नियम ले रक्खा था। अनजानमे हम दोनोंका विवाह हो गया। शुक्लपक्षके वाद कृष्णपक्षमें जब हमने इसके प्रति कामेच्छा प्रकट की तो इसने उत्तर दिया कि मेरे तो कृष्णपक्षमें

ब्रह्मचर्यसे रहनेका जीवन पर्यन्तके लिए नियम है। मैं उत्तर सुनकर शान्त हो गया। तदनन्तर जब कृष्णपक्षके बाद शुक्लपक्ष आया और इसने अपना अनुराग प्रकट किया तब मैंने कहा कि मैंने शुक्लपक्षमे ब्रह्मचर्यसे रहनेका नियम जीवन पर्यन्तके लिये विवाहके पूर्व लिया है। स्त्री शान्त हो गई। इस प्रकार स्त्री-पुरुप दोनों साथ-साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्यसे अपना जीवन विता रहे हैं। देखो उनके संतोपकी बात कि सामग्री पासमें रहते हुए भी उनके मनमें विकार उत्पन्न नहीं हुआ तथा जीवन भर उन्होंने अपना अपना व्रत निभाया। अस्तु,

दशम अध्यायमें आपने मोक्षतत्त्वका वर्णन सुना है। इसमें आचार्य ने मोक्षका स्वरूप बतलाते हुए लिखा है कि 'बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः' अर्थात् बन्धके कारणोंका अभाव और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होनेसे जो समस्त कर्मोंका आत्यन्तिक क्षय हो जाता है वह मोक्ष कहलाता है। निश्चयसे तो सब द्रव्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। जीव स्वतन्त्र है और कर्मरूप पुद्गल द्रव्य भी स्वतन्त्र हैं। इनका बन्ध नहीं, जब बन्ध नहीं तब मोक्ष किसका? इस तरह निश्चयकी दृष्टि से तो बन्ध और मोक्षका व्यवहार बनता नहीं है परन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे जीव और कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका एकक्षेत्रावगाह हो रहा है, इसलिये दोनोंका बन्ध कहा जाता है और जब दोनोंका एक क्षेत्रावगाह मिट जाता है तब मोक्ष कहलाने लगता है। समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू
बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं
नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता॥

अर्थात् वन्ध, मोक्ष, इनके कारण, जीवकी वद्ध और मुक्त दशा तथा मुक्तिका प्रयोजन यह सव हे नाथ! आपके ही संघटित होता है, क्योंकि आप स्याद्वादसे पदार्थका निरूपण करते हैं, एकान्त दृष्टिसे आप पदार्थका उपदेश नहीं देते।

इस तरह परपदार्थसे भिन्न आत्माकी जो परिणति है वही मोक्ष है। इस परिणतिके प्रकट होनेमें सर्वसे अधिक वाधक मोह कर्मका उदय है, इसलिये आचार्य महाराजने आज्ञा की है कि सर्व प्रथम मोह कर्मका क्षय कर तथा उसके वाद शेप तीन घातिया कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करो। उसके वाद ही अन्य अघातिया कर्मोंका क्षय होनेसे मोक्ष प्राप्त हो सकेगा। मोहके निकल जाने तथा केवलज्ञानके हो जाने पर भी यद्यपि पचासी प्रकृतियोंका सद्भाव आगममे वताया है तथापि वह जली हुई रस्सीके समान निर्बल है—

ध्यान कृपाण पाणि गहि नाशी त्रेशठ प्रकृति अरी।
शेष पचासी लाग रही हैं ज्यों जेवरी जरी॥

परन्तु इतना निर्वल नहीं समझ लेना कि कुछ कर ही नहीं सकती हैं। निर्वल होनेपर भी उनमे इतनी शक्ति है कि वे देशोन कोटि पूर्व तक इस आत्माको केवलज्ञान हो जानेपर भी मनुष्य शरीरमे रोके रहती हैं। फिर निर्वल कहनेका तात्पर्य यही है कि वे इस जीवको आगेके लिये वन्धन युक्त नहीं कर सकतीं। परम यथाख्यात चारित्रकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानमें होती है। अतः वहीं शुक्लध्यानके चतुर्थ पायेके प्रभावसे उपान्त्य तथा अन्तिम समयमे वहत्तर और तेरह प्रकृतियोंका क्षय कर यह जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है तथा ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण एक समयमे सिद्धालयमे पहुँच कर विराजमान हो जाता है। यही जैनागममें मोक्षकी व्याख्या है।

-त्रयोदशी और चतुर्दशीके दिन नगरके मन्दिरोंके दर्शनार्थ जुलूस निकले। क्षमावर्णीके दिन विद्यालयके प्राङ्गणमें श्रीजिनेन्द्र-देवका कलशाभिषेक हुआ। क्षमाधर्मपर विद्वानोंके भाषण हुए। आसौज वदी ४ को जयन्ती उत्सव हुआ। बाहरसे भी अनेक महानुभाव पधारे। दिल्लीसे राजकृष्ण तथा फिरोजाबादसे श्रीलाला छदामीलालजी भी आये। आपने फिरोजाबादके मेलाकी फिल्म दिखलाई तथा राजकृष्णजी ने उसका परिचय दिया। जिसे देख सुन कर जनता बहुत प्रसन्न हुई।

विचार कण

दीपावलीके पूर्व धन्वन्तरि त्रयोदशी (धनतेरस) का दिन था। मनमें विचार आया कि आजके दिन सब लोग नया वर्तन खरीदते हैं अतः हम भी आजसे प्रतिदिन एक एक नया वर्तन खरीदें। वर्तन नाम विचारका है। उस दिनसे हमने कुछ दिन तक प्रतिदिन जो वर्तन खरीदे उनका संचय इस प्रकार है—

'संसारमें वही मनुष्य वन्दनीय होते हैं जिन्होंने ऐहिक और पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ रह कर आत्मकल्याणके अर्थ स्वकीय परिणतिको निर्मल बना लिया है।'

'जो अवस्था आवे उसे अपनानेका प्रयत्न मत करो। पुण्य पाप दोनों ही विकार परिणाम हैं, इनकी उपेक्षा करो।'

'प्रभु कोई अन्य नहीं, आत्मा ही प्रभु है और वही अपनी रक्षा करनेवाला है। अन्यको रक्षक मानना ही महती अज्ञानता है।

'किसीको तुच्छ मत बना, अपनी प्रशंसाकी लिप्सा ही दूसरेको तुच्छ बतलाती है।'

'स्वतन्त्रता ही संसार वल्लरीकी सत्ताको समूल नाश करनेवाली असिधारा है और पराधीनता ही संसारकी जननी है।'

'ईश्वर अन्य कोई नहीं। आत्मा ही सर्व शक्तिमान् है। यही संसारमें अपने पुरुषार्थके द्वारा रङ्कसे इतना समर्थ हो जाता है कि संसारको इसके अनुकूल वनते देर नहीं लगती।'

'यदि आत्मकल्याणकी अभिलाषा है तो परकी अभिलाषा त्यागो।'

'कल्याणका मार्ग निश्चिन्त दशामें है। जब आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है तब उसे परतन्त्र बनाना ही वन्धनका कारण है।'

'कल्याणका मार्ग अति सुलभ है परन्तु हृदयमें कठोरता नहीं होनी चाहिये।'

'इस संसारमें जो शान्तिसे जीवन विताना चाहते हैं उन्हें पर की चिन्ता त्यागना चाहिये तथा स्वयंका इतना स्वच्छ आचरण करना चाहिये कि जिससे परको कष्ट न हो।'

'किसीको वह उपदेश नहीं देना चाहिये जिसे तुम स्वयं करनेमें असमर्थ हो।'

'मनको कावू करना कठिन नहीं, क्योंकि वह स्वयं पराधीन है। वह तो अश्वके सदृश है। सवार उसे चाहे जहां ले जा सकता है।'

'समयका सदुपयोग करो। पुस्तकोंके ऊपर ही विश्वास मत करो। अन्तःकरणसे भी तत्त्वको देखो।'

'परकी आशा त्यागो। परावलम्बनसे कभी किसीका कल्याण नहीं हुआ।'

'निरन्तर यही भावना रक्खो कि स्वप्नमें भी मोहके आधीन न होना पड़े। जो आत्मा मोहके आधीन रहता है वह कदापि सुख का पात्र नहीं हो सकता।'

'मोह क्या है ? यह यदि ज्ञानमें आ जावे तो निर्मोह होना कुछ कठिन नहीं।'

'आहारत्यागका नाम उपवास नहीं किन्तु आहारसम्बन्धी आशाका त्याग ही उपवास है।'

'जो कार्य करना चाहते हो प्रथम उसके करनेका दृढ़ संकल्प करो अनन्तर उसके कारणोंका संग्रह करो। जो वाधक कारण हों उनका परित्याग करो।'

'वहुत मत वोलो। वोलना ही फंसनेका कारण है। पक्षी वोलने से जालमे फंसता है।'

'उपयोगकी स्वच्छता ही अहिसा है—रागादि परिणामोंकी अनुत्पत्ति ही अहिंसा है।'

'शान्तिके पाठसे शान्ति नहीं किन्तु अशान्तिके कारण दूर करनेसे शान्ति प्राप्त होती है।'

'वाह्य वेपसे परकी वञ्चना करनेवाला स्वयं आत्माको दुःखके सागरमे डालता है। जो ईंधन परको दग्ध करनेके अभिप्रायसे अग्निका समागम करता है वह स्वयं भस्म हो जाता है।'

'आत्माका परिचय होना उतना कठिन नहीं जितना आत्माको जानकर आत्मनिष्ठ होना कठिन है।'

'यदि अशान्तिका साक्षात् अनुभव करना है तो समाजके कार्योंमे अग्रेसर वन जाओ।'

'यदि हम चाहें तो प्रत्येक अवस्थामें सुखका अनुभव कर सकते हैं। सुख कोई वाह्य वस्तु नहीं। आत्माकी वह परिणति है जहां पर आत्मा आकुलताके कारणोंसे अपनेको रक्षित रखती है।

'स्वाधीनता कहो या यह कहो परके अवलम्वनका त्याग। जो मानव इस संकल्प-विकल्पसे जायमान त्रिविध प्रकारकी

वेदनाओंका अभाव करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि पर पदार्थों का अपनाना त्यागें ।'

'प्रशंसाकी इच्छासे कार्य आरम्भ करना आत्माको पतित बनानेकी कला है ।'

'अपनी सुध भूलकर यह आत्मा दुःखका पात्र बना । गृहस्थों के जालमें आकर जैसे चुगके लोभसे चिड़ियां फंस जाती हैं वैसे ही त्यागी वर्ग मोह-जालमें फंस जाता है ।'

'आत्माराम अकेला आया और अकेला ही जावेगा । कोई भी इसका साथी नहीं । अन्यकी क्या कथा, शरीर भी सुख-दुःख भोगनेमें साथी नहीं ।'

'शुद्ध हृदयकी भावना नियमसे फलीभूत होती है । निर्माय [मायारहित] ही कार्य सफल होता है ।'

'पर का भय मत करो । पर को अपनाना छोड़ो । परको अपनाना ही राग-द्वेषमें निमित्त है ।'

'भयसे व्यवहार करना आत्माकी वञ्चना है । मोक्षमार्गका सुगमोपाय अपनी अहम्बुद्धि त्यागो । मैं कौन हूँ ? इसे जानो । इसे जानना कुछ कठिन नहीं । जिसमें यह प्रश्न हो रहा है वही तो तुम हो ।'

'आत्मज्ञान होना कठिन नहीं किन्तु परसे ममता भाव त्यागना अति कठिन है ।'

'सुख—शान्तिका लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेक्षाकी देन है ।'

'शान्त मनुष्य वह हो सकता है जो अपनी प्रशंसाको नहीं चाहता ।'

'परकी समालोचना न करो और न सुनो ।'

'धन अधिक संग्रह करना चोरी है, इसलिये कि तुमने अन्यका स्वत्व हरण कर लिया।'

'राग द्वेष घटानेसे घटता है किन्तु उसके प्राक् मोहका नाश करो। मोहके नशामें आत्मा उन्मत्त हो जाता है।'

'यदि शान्ति चाहते हो तो स्थिर चित्त रहो। व्यग्रता ही संसार की दादी है। यदि संसारमे रुलनेकी इच्छा है तो इस दादीके पुत्रसे स्नेह करो।'

'यदि परोपकार करनेकी भावना है तो उसके पहले आत्माको पवित्र बनानेका प्रयत्न करो।'

,परोपकारकी भावना उन्हींके होती है जो मोही हैं। जिनकी सत्तासे मोह चला गया वे परको पर समझते हैं तथा आत्मीय वस्तुमे जो राग है उसे दूर करनेका प्रयास करते हैं।'

'ज्ञानार्जन करना उत्तम है किन्तु ज्ञानार्जनके बाद यदि आत्म-हितमें दृष्टि न गई तब जैसा धनार्जन वैसा ज्ञानार्जन।'

'मनुष्य वही है जिसने मानवता पर विश्वास किया।'

'लोभ पापका बाप है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य जो जो अनर्थ करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं।'

'अपने लक्ष्यसे च्युत होनेवाले मनुष्यके कार्य प्रायः निष्फल रहते हैं।'

'जितना अधिक संग्रह करोगे उतना ही अधिक व्यग्र होगे।'

जो सुख चाहत आतमा तज दो अपनी भूल।
परके तजनेसे कहीं मिटे न निजकी शूल॥
जो आनन्द स्वभावमय ज्ञानपूर्ण अविकार।
मोहराजके जालमें सहता दुख अपार॥

जो सुख है निज भावमें कहीं न इस जग बीच ।
परमें निजकी कल्पना करत जीव सो नीच ॥
जो नाहीं दुख चाहता तज दे परकी ओट ।
अग्नी संगत लोहकी सहती घनकी चोट ॥
परकी संगतिके लिये होता मनमें रङ्ग ।
लोह अगनि संगति पिटे होत तस सब अङ्ग ॥
गल्पवादमें दिन गया सोवत बीती रात ।
तोय विलोलत होत नहिं कभी चीकने हात ॥
जो चाहत दुःखसे बचे करो न परकी चाह ।
पर पदार्थकी चाह से मिटे न मन की दाह ॥
बहु सुनवो कम बोलवो यो है चतुर विवेक ।
तब ही तो विधिने रच्यो दोय कान जिभ एक ॥
जो चाहत निज रूप तजहु परिग्रह कामना ।
तिन सम नाहीं भूप अर्थ चाह जिनके नहीं ॥

स्वराज्य मिला पर सुराज्य नहीं

लिखना सरल है—स्वराज्य मिल गया परन्तु मानवोंको शान्ति नहीं । अन्नादि खाद्य सामग्रीकी न्यूनता हो रही है, अनेक मनुष्य बेकार हैं, यन्त्रविद्याकी प्रचुरता होनेसे अनेक कार्य करनेवाले बेकार हो गये, लोगोंके हृदयमें स्वकीय कार्यके प्रति निष्ठा नहीं, नौकरीकी टोहमें प्रायः सब घूमते हैं, दैवी विपत्ति निरन्तर आती रहती है, पशु-धनकी हानि हो रही है, राज्यने पशुओंके लिये चारे तकका स्थान नहीं रहने दिया, सब पर अपना अधिकार कर लिया इसलिये पशुधनको चारा तक नहीं मिलता, शुद्ध घी दूध भक्षणमें

नहीं आता, मनुष्योंका नैतिक वल उत्तरोत्तर घटता जा रहा है, डाकेजनीका प्रचार वढ़ गया है, ग्रामीण लोग नगरोंको सव सामग्री तैयार कर देते हैं परन्तु इस समय वे असुरक्षाका अनुभव कर रहे हैं, घूसखोरीका जोर वढ़ रहा है, प्रायः अधिकांश लोग पद-लिप्साकी दौड़मे एक दूसरेको पीछे छोड़ स्वयं आगे वढ़ जाना चाहते हैं, आज यदि कुछ मूल्य रह गया है तो मनुष्यका, मनुष्यके स्वार्थके लिये अन्य समस्त वध्य हो रहे हैं, जैसे मानों उनमें जीव ही न हो, चरखाका स्थान चक्रने ले लिया है, गाय भैंस वकरा वकरियोंकी परवाह नहीं रही, वन्दरों पर भी वारी आ गई, तालावोंकी मछलियाँ भी अव सुरक्षित नहीं रहीं, न्यायालयोंका न्याय समय साध्य तथा द्रव्य सापेक्ष हो गया, जनताके हृदयमें स्वराज्यके लिये जो उत्साह था वह निराशामें परिणत हो रहा है, देशकी जनता करोके भारसे त्रस्त है और ऋणके भारसे दव रही है। इन सव कारणोंको देखते हुए हृदयसे निकलने लगता है कि स्वराज्य तो मिला पर सुराज्य नहीं। स्वराज्य तो अंग्रेजोंने दे दिया पर सुराज्य देनेवाला कोई नहीं। यह तो स्वयं अपने आपसे लेना है। देशकी जनता देशके प्रति कर्तव्य निष्ठ हो, अपने स्वार्थमें कमी करे, वढ़ती हुई तृष्णाओंको नियन्त्रित करे, गांधीजीके सिद्धान्तानुसार यान्त्रिक विद्याकी प्रचुरताको कमकर हस्तोद्योगको वढ़ावा दे, परिश्रमकी प्रतिष्ठा करे और अहिंसाको केवल वाचनिक रूप न दे प्रयोगमें लावे तो सुराज्य प्राप्त हो सकता है।

गिरिराजके लिये प्रस्थान

पौष कृष्णा अमावस्या सं० २००६ की रात्रि थी। आकाशमे माववृष्टिके मेघ छाये थे। रात्रिके समय अचानक वर्षा शुरू होनेसे

निद्रा भङ्ग हो गई। मनमे नाना प्रकारके विकल्प उठने लगे। विचार आया कि तेरी आयु ७६ वर्षकी हो गई फिर भी इस चक्रमें पड़ा है। कभी ललितपुर, कभी सागर, कभी जबलपुर, कभी सागर विद्यालय और कभी बनारस विद्यालय। शरीरकी शक्ति दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती है। भाग्यवश एक बार श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमे पहुँच गया था परन्तु मोहके जालमें पड़ वहाँसे वापिस आ गया। पक्वपानवत् शरीरकी अवस्था है। न जाने कब डालसे नीचे झड़ जाय इसलिये जब तक चलनेकी सामर्थ्य है तब तक पुनः श्री पार्श्वनाथ भगवान्के पादमूलमें पहुॅचनेका विचार कर। जहाँसे अनन्तानन्त तीर्थंकरोंने तथा वर्तमानमें बीस तीर्थंकरोंने निर्वाण प्राप्त किया उस स्थानसे बढ़कर समाधिके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त होगा? वहाँ निरन्तर धार्मिक पुरुषोंका समागम भी रहता है। सागरमे तूं बहुत समय रहा है अतः यहाँके लोगोंसे आत्मीयवत् स्नेह है। श्री भगवतीआराधनामें लिखा है कि सल्लेखना करनेके लिये अपना संघ अथवा अपना परिचित स्थान छोड़ कर अन्यत्र चला जाना चाहिये जिससे अन्तिम क्षण किसी प्रकार की शल्य अथवा चिन्ता आत्मामें न रह सके।

उक्त विचारधारामें निमग्न रहते हुए लगभग १ घंटा व्यतीत हो गया। उठकर समयसारका स्वाध्याय किया। तदनन्तर सामायिकमे बैठा। सामायिकमें भी यही विकल्प रहा कि जितना जल्दी हो यहाँसे गिरिराजके लिये प्रस्थान कर देना चाहिये। आकाश मेघाच्छन्न था इसलिये तत्काल तो यह विचार कार्य रूपमे परिणत नहीं कर सका पर मनमे जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया। मैंने यह विचार मनमें ही रक्खा। कारण यदि प्रकट करता तो सागरके लोग रोकनेका प्रयास करते और मैं उनके संकोचमें पड़ जाता। २ दिन बाद ईसरीसे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी

का पत्र आया कि आप जिस दिन ईसरी आ जावेंगे मैं उसी दिन नवमी प्रतिमाके व्रत धारण कर लूंगा। भगतजीके पत्रसे मुझे और भी प्रेरणा मिली जिससे मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि गिरिराज अवश्य जाना। यद्यपि शरीर शक्तिहीन है तथापि श्रीपार्श्व प्रभुमें इतना अनुराग है कि वे पूर्ण वल प्रदान करनेमें निमित्त होंगे।

पौषशुक्ला ११ संवत् २००६ को भोजनके उपरान्त मैंने लोगोंके समक्ष अपना विचार प्रकट कर दिया कि मैं आज गिरिराजके लिये १ वजे प्रस्थान करूँगा। यह खबर सारे शहरमें विजलीकी भाँति फैल गई जिससे वहुतसे लोग एकत्र हो गये और रोकनेका प्रयत्न करने लगे परन्तु मैं अपने विचारसे विचलित नहीं हुआ। लोगोंके अवागमनके कारण १ वजे तो प्रस्थान नहीं कर पाया परन्तु ३ वजे प्रस्थान कर चल दिया। मार्गमें वहुत भीड़ हो गई। मैं जाकर गोपालगंजके मन्दिरसे वाहर जो कमरे हैं उनमें ठहर गया। रात्रि-के १० वजे तक लोगोंका आना जाना वना रहा। सेठ भगवान-दासजी वालचन्द्रजी मलैया आदि अनेक पुरुष आये पर मैं किसीके चक्रमें नहीं आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोपालगंजके मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हुआ। भोजनोपरान्त सामायिक किया। तदनन्तर १ वजेसे चल दिया। यूनीवरसिटीके मार्गसे चलकर शामके ५ बजे गमीरिया पहुँच गये। यहाँ तक सागरके अनेक महानुभाव पहुँचाने आये। गाँवके जमींदारने सत्कार पूर्वक रात्रि भर रक्खा। जो अन्य लोग गये थे उन्हें दुग्ध पान कराया। खेद इस वातका है कि हम लोग किसी दूसरेको अपनाते नहीं। धर्मको हम लोगोंने अपनी सम्पत्ति मान रक्खा है।

कटनी

गमीरिया से ४ मील चलकर वमोरीमें आहार किया, तदनन्तर सानोधा और पड़रिया ठहरते हुए आगे वढ़े। पड़रियासे ३ मील चलकर १ कूप पर भोजन हुआ। स्थान अति रम्य और सुखद था। ऐसे स्थानों पर मनुष्योंको स्वाभाविक निर्मलता आ जाती है परन्तु हम लोग उन परिणामोंको यों ही व्यय कर देते हैं। यहां पर ईसरीसे श्री सुमेरुचन्द्र जी भगत आ गये। आप वहुत ही विलक्षण प्रकृतिके हैं—प्रायः सवकी समालोचना करनेमें नहीं चूकते। अस्तु, उनकी प्रकृति है उसे हम निवारण नहीं कर सकते। अच्छा तो यही था कि इसके विरुद्ध वे अपनी समालोचना करते। यहां से गोरा, सासा, शाहपुर, टड़ा आदि स्थानोंमे ठहरते हुए माघ शुक्ला ११ को दमोह आ गये। लोगोंने सम्यक् स्वागत किया। प्रातःकाल धर्मशालाके विशाल भवनमे प्रवचन हुआ। एक सहस्र संख्या एकत्र हुई। लोगोंकी भीड़ देखकर लगने लगता है कि प्रायः सर्व लोग धर्मके पिपासु हैं परन्तु कोई इन्हें निरपेक्षभावसे धर्मपान करानेवाला नहीं है। पं० जगन्मोहन-लालजी आ गये। आपने अपने प्रवचनमें संगठन पर वहुत वल दिया परन्तु लाभांश कुछ नहीं हुआ। केवल वाह वाहमें व्याख्यानका अन्त हो गया। गल्पवादकी वहुलतासे संसार व्यामूढ़ हो रहा है। यहीं पर श्री १०८ मुनि आनन्दसागर जी भी थे। उनके दर्शन करनेके लिए गये। सेठ लालचन्द्रजीसे भी वार्तालाप हुआ। आप विद्वान् हैं, धनी हैं, परन्तु समाज आपसे लाभ लेना नहीं जानती।

दमोहसे हिंडोरिया तथा पटेरामें ठहरते हुए श्री अतिशय क्षेत्र कुण्डलपुरजी पहुँच गये। बड़ा रमणीय क्षेत्र है। कुण्डलाकार पर्वत पर सुन्दर मन्दिर बने हैं। नीचे तालाब है। उसके समीप भी अनेक मन्दिर बने हैं। ऊपर श्री भगवान् महावीर स्वामीकी सातिशय विशाल प्रतिमा है। मेलाका समय था। लगभग ४ सहस्र आदमी थे। मेला सानन्द सम्पन्न हुआ। पं० जगन्मोहनलालजीके पहुँच जानेसे अच्छी प्रभावना तथा क्षेत्रको अच्छी आय हुई। लोगोंमें जागृति हुई। जनता धर्मपिपासु थी। एक दिन पर्वतपर स्थित श्री महावीर स्वामीके दर्शन किये। चित्तमें असीम हर्ष उत्पन्न हुआ। यहाँसे बीचके कई स्थानोंमें ठहरते हुए फाल्गुन कृष्णा १० को कटनी आ गये। बीचका मार्ग पहाडी मार्ग था, अतः कष्ट हुआ परन्तु यथास्थान पहुँच गया। कटनीकी जनताने स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरमे प्रवचन हुआ। समयसार ग्रन्थ सामने था इसलिये उसीका मङ्गलाचरण कर प्रवचन प्रारम्भ किया। मैंने कहा—

श्रीकुन्दकुन्द भगवान् ने ८४ प्राभृत बनाये हैं। उनमें कतिपय अब भी प्रसिद्ध हैं। उन प्रसिद्ध प्राभृतोंमे समयसारकी बहुत प्रसिद्धि है। यद्यपि श्री स्वामीने जो कुछ लिखा है वह सभी मोक्षमार्गका पोषक है परन्तु कई व्यक्ति समयसारको ही बहुत महत्त्व देते हैं यह व्यक्तिगत विचार है। इसके हम निवारक कौन होते हैं? फिर भी हमारी बुद्धिमें जो आया उसे स्वीय अभिप्रायके अनुकूल कुछ लिखते हैं।

श्रीस्वामीने प्रथम गाथामे सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा की कि मैं समयप्राभृतका परिभाषण करूँगा और यह भी लिखा कि श्रुतकेवली भगवान् ने जैसा कहा वैसा करूँगा। इससे यह द्योतित होता है कि वर्तमानमे हमारी आत्मामें सिद्ध पर्याय

नहीं है, अर्थात् संसार पर्याय है। श्रुतकेवलीने जैसा कहा उससे यह द्योतित होता है कि परम्परासे यह उपदेश चला आया है। मैं वैसा ही कहूँगा इससे यह ध्वनि निकलती है कि मेरे अनुभवमें भी आ गया है। निरूपण करनेका यह प्रयोजन है कि अनादिकालसे जो स्वपरमें मोह है उसका नाश हो जावे। इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि स्वामीके धर्मानुराग है और यही धर्मानुराग उपचार से शुद्धोपयोगका कारण भी कहा जाता है। स्वामीने प्रतिज्ञा की कि मै समयप्राभृत कहूँगा। यहाँ आशङ्का होती है कि समय क्या पदार्थ है? इस आशङ्काका स्वयं स्वामी उत्तर देते हैं कि जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्रमे स्थित है उसे स्वसमय और जो इससे भिन्न पुद्गल कर्मप्रदेशमे स्थित है उसे पर समय कहते हैं। यह दोनों जिसमे पाये जावें उसीका नाम जीव जानो चाहे समय जानो। इसके वाद स्वामीने द्वैविध्यको आपत्तिजनक वतलाया अर्थात् यह द्वैविध्य शोभनीक नहीं, एकत्व प्राप्त जो समय है वही सुन्दर है। जहाँ द्विविध हुआ वहाँ ही वन्ध है, संसार है। जैसे माँ के पुत्र पैदा होता है तो स्वतन्त्र होता है। जहाँ उसका विवाह हुआ—परको अपनाया—ब्रह्मचारीसे गृहस्थ हुआ वहाँ उसकी स्वतन्त्रताका हरण हो गया—वह संसारी वन गया। इसी तरह आत्माने जहां परको अपनाया वहां उसका एकत्व चला गया। क्यों दुर्लभ हो गया? इसका उत्तर यह है कि अनादिसे काम भोगकी कथा सुनी, वही परिचयमें आई और वही अनुभवमे आई। आत्माका जो एकत्व था उसे कषायचक्रके साथ एकमेक होनेसे न तो सुना, न परिचय में लाया और न अनुभवमे लाया। इसपर श्री आचार्य लिखते हैं कि मैं उस आत्माके एकत्वका जो सर्वथा परसे भिन्न है अपने विभवके अनुसार निरूपण करूँगा। मेरा विभव यह है कि मैंने स्याद्वाद पद भूपित शब्दब्रह्मका अच्छा अभ्यास

किया है, एकान्तवाद द्वारा जो उसकी बाधक युक्तियाँ हैं उनको निरस्त करनेमें समर्थ युक्तियोंकी पूर्णता प्राप्त की है, परापर गुरुओंका उपदेश भी मुझे प्राप्त है तथा वैसा अनुभव भी है। इतने पर भी यदि अच्छा न जँचे तो अनुभवसे परीक्षा कर पदार्थका निर्णय करना, छल ग्रहण कर अमार्गका अवलम्बन मत करना।

अब स्वयं स्वामी उस केवल आत्माको कहते हैं जो न तो अप्रमत्त है और न प्रमत्त है, केवल ज्ञायकभाववाला है, उसीको शुद्ध कहते हैं, वही ज्ञाता है अर्थात् आत्माकी कोई अवस्था हो वह ज्ञायकभावसे शून्य नहीं होती। जैसे मनुष्यकी बाल्यादि अनेक अवस्थाएँ होती हैं परन्तु वे ज्ञायकभावसे शून्य नहीं होतीं। यही कारण है कि आत्माका लक्षण अन्यत्र चेतना कहा है। कर्तृ-कर्माधिकारमें आत्मामें कर्तृत्व तथा कर्मत्व हो सकता है या नहीं ? इस पर विचार किया है। यह विचार २ दृष्टियोंसे हो सकता है--एक तो शुद्ध दृष्टिसे और दूसरा अशुद्ध दृष्टिसे। कर्ता किसे कहते हैं ? जो परिणमन करता है वह कर्त्ता है और कर्म उसे कहते हैं जो परिणमन होता है वह कर्म है। कर्तृ-कर्माधिकारमे जो दिखाया है वह निमित्तकी गौणता कर दिखाया है। उसे लोक सर्वथा मान लेते हैं यही परस्पर विवादका स्थल बन जाता है।

अमृतचन्द्र स्वामीने मङ्गलाचरणमे लिखा है कि मैं एक कर्ता हूँ और ये जो क्रोधादिक भाव हैं ये मेरे कर्म हैं ऐसी अज्ञानी जीवोंकी अनादि कालसे कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति चली आती है परन्तु जब सब द्रव्योंको भिन्न भिन्न दर्शानेवाली ज्ञानज्योति उदयको प्राप्त होती है तब यह सब नाटक शान्त हो जाता है। इससे यह निश्चय हुआ कि यह नाटक, जब तक इसकी विरोधी ज्ञानज्योति उदित नहीं हुई तब तक सत्य है। आपकी इच्छा चाहे इसे व्यवहार कहो या अशुद्ध दशा कहो।

जीवकी दो पर्याय होती हैं—एक संसार और दूसरी मोक्ष। हम तो दोनों पर्यायोंको सत्य मानते हैं। जब कि ये अपने अपने कारणोंसे होती हैं तब एकको सत्य और दूसरीको असत्य मानना यह हमारे ज्ञानमे नहीं आता। हाँ, यह अवश्य है कि एक पर्याय अनादि-सान्त है और दूसरी सादि-अनन्त है। इन दोनों पर्यायोंका आधार आत्मा है, एक पर्याय आकुलतामय है क्योंकि उसमें पर पदार्थोंका संपर्क है और दूसरी आकुलतासे रहित है क्योंकि उसमें परपदार्थोंका सपर्क दूर हो गया है। जहाँ पर पदार्थके संपर्कको जीव निज मानता है और जहाँ परमे निजत्वकी कल्पना करता है वहीं आपत्तियोंकी उत्पत्ति होने लगती है। कर्तृ-कर्माधिकारमें स्वामीने यही तो लिखा है कि जब तक आत्मा आस्रव और आत्माके विशेष अन्तरको नहीं जानता तब तक यह अज्ञानी है और अवस्थामें क्रोधादिमें प्रवृत्ति करता है। यहाँ क्रोध उपलक्षण है अतः मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगका ग्रहण समझना चाहिये। क्रोधादि कषायोमे प्रवर्तमान जीवके कर्मोंका संचय होता है। इस तरह भगवान्ने जीवके बन्ध होता है यह बतलाया है। आत्माका ज्ञानके साथ तादात्म्य सिद्ध सम्बन्ध है अर्थात् आत्माका ज्ञानके साथ जो सम्बन्ध है वह कृत्रिम नहीं, किन्तु अनादिकालसे चला आया है। यही कारण है कि आत्मा निःशङ्क होकर ज्ञानमें प्रवृत्ति करता है। करता क्या है? स्वाभाविक यह प्रवाह चल रहा है और चलता रहेगा। इसी तरह यह जीव संयोगसिद्ध सम्बन्धसे युक्त जो क्रोधादिक भाव हैं उनके विशेष अन्तरको न जानता हुआ अज्ञानके वशीभूत हो उनमे प्रवृत्ति करता है। यह जीव जिस कालमें क्रोधादिको निज मानता है उस कालमें क्रोधादिक भावरूप क्रिया परभाव होनेसे यद्यपि त्याग योग्य है तो भी उस क्रियामें स्वभाव-रूपका निश्चय होनेसे यह उन्हे उपादेय मानता है जिससे कभी

क्रोध करता है, कभी राग करता है और कभी मोह करता है। यहाँ पर आत्मा अपनी उदासीन अवस्थाका त्याग कर देती है अतएव इन क्रोधादिक भावोंका कर्ता बन जाती है और ये क्रोधादिक इसके कर्म होते हैं। इस प्रकारसे यह अनादिजन्य कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति धारावाही रूपसे चली आ रही है। अतएव अन्योन्याश्रय दोषका यहाँ अवकाश नहीं।

यहाँ पर क्रोधादिकके साथ जो संयोग सम्बन्ध कहा है इसका क्या तात्पर्य यह है—क्रोध तो आत्माका विकृत भाव है और ऐसा नियम है कि द्रव्य जिस कालमें जिस रूप परिणमता है उस कालमें तन्मय हो जाता है। जैसे लोहका पिण्ड जिस समय अग्निसे तपाया जाता है उस समय अग्निमय हो जाता है। एवं आत्मा जिस समय क्रोधादिरूप परिणमता है उस कालमें तन्मय हो जाता है फिर क्रोधादिकोंके साथ संयोग सम्बन्ध कहना संगत कैसे हुआ? यह आपका प्रश्न ठीक है किन्तु यहाँ जो वर्णन है वह औपाधिक भावोंको निमित्तजन्य होनेसे निमित्तकी मुख्यताकर निमित्तके कह दिये हैं ऐसा समझना चाहिये। क्रोधादिक भाव चारित्रमोहके उदयसे उत्पन्न होते हैं, चारित्रमोह पुद्गल द्रव्य है। उसका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है अतः उसके उदयमें होनेवाले क्रोधादिका भी संयोग सम्बन्ध कह दिया। मेरी तो यह श्रद्धा है कि रागादिक तो दूर रहो मतिज्ञानादिक भी क्षयोपशमजन्य होनेसे निवृत्त हो जाते हैं।

अपनी परिणति अपने आधीन है, उसे पराधीन मानना ही अनर्थकी जड़ है और अनर्थ ही संसारका मूल स्वरूप है। अनर्थ कोई पदार्थ नहीं। अर्थको अन्यथा मानना ही अनर्थ है।

कटनीमें बनारससे पण्डित कैलाशचन्द्रजी भी आ गये। यहाँकी संस्थाओंका उत्सव हुआ। पं० जगन्मोहनलालजीने

संस्थाओंका सक्षिप्त विवरण सुनाया। लोगोंने यथाशक्ति संस्थाओं-की सहायता की। बहुत सहायताकी संभावना थी परन्तु आज कल लोग एक काम नहीं करते। एक उत्सवमे अनेक कार्योंका आयोजन-कर लेते हैं। फल एकका भी पूर्ण नहीं हो पाता। कुण्डलपुर क्षेत्रकी अपील हुई तो उसे भी सहायता मिल गई। पण्डित कैलाशचन्द्रजी-का भी व्याख्यान हुआ। यहाँ ५ दिन रहना पड़ा। यहाँ पर जबलपुरसे बहुत अधिक मनुष्य आये। सबका अत्यन्त आग्रह था कि जबलपुर चलिये परन्तु हम अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

बनारसकी ओर

श्री चम्पालालजी सेठी गयावाले मोटर लेकर पहले ही आ गये थे। मोटरमे साथके लोगोंका सामान जाता था तथा उसके द्वारा आगामी निवासकी व्यवस्था हो जाती थी। श्री चम्पालालजी व्यवस्थामें बहुत पटु हैं, अन्तरङ्गसे स्वच्छ हैं। फाल्गुन कृष्णा १४ को संध्याकाल कटनीसे ४ मील चलकर चाकामें ठहर गये। प्रातः ३ मील चलकर कैलवारके जंगलमें एक बंगला था उसमें ठहर गये। वहीं पर भोजन हुआ। मध्यान्हके बाद यहाँसे २ मील चलकर टिकरवारा ग्राममे ठहर गये। आनन्दसे रात्रि बीती। यहाँ पर रात्रिको समयसारका निर्जराधिकार पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। निर्जरा प्राणी मात्रके होती है परन्तु नवीन कर्म बन्धन होनेसे गजस्नानवत् उसका कोई मूल्य नहीं होता। यहाँसे ३ मील चलकर १ स्कूलमें ठहर गये। इस ग्रामका नाम झकोही था। यहाँ पर कटनीसे बहुत मनुष्य आये। हृदयमें प्रेम था। सब कुछ होना सरल है परन्तु प्रेम पर विजय पाना अति दुष्कर है। यहाँसे ३ मील

चलकर सवागाँवके स्कूलमे निवास किया। रात्रिको प्रवचन किया। मास्टर लोग आये। सभ्यताकी पराकाष्ठा थी। अभी भारतमे अतिथियोंका सम्मान है।

यहाँसे चलकर ३ मील पर श्री गोकुल साधुकी कुटियामे निवास किया। आपने बड़े आदरसे स्वागत किया, शाक आदि सामग्री दी तथा साथमे सांयकाल २ मील आये। पकरिया ग्राममे एक राजपूतके मकानमें ठहर गये। स्थान बहुत ही स्वच्छ था। रात्रि सानन्द बीती। प्रातः ४ मील चलकर अमदरा आ गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चलकर घुनवाराकी धर्मशालामें आ गये। यहीं पर श्री भगवानदासजी सेठ सागरसे आये। साथमें श्री रामचरणलाल तथा मुन्नालालजी कमरया थे। रात्रि सुखसे बीती। प्रातःकाल ४ मील चलकर मदनपुरके बगीचामें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चल कर सड़कके किनारे धर्मशालामें ठहर गये। प्रातःकाल ३ मील चल कर पौंड़ी आ गये। यहीं पर आहार किया। यहाँ १ ठाकुर जागीरदार आये। बहुत ही सज्जन हैं। यहाँसे चल कर १ बजे मैहर आ गये। रात्रिको श्री नाथूरामजी ब्रह्मचारीने प्रवचन किया। समुदाय अच्छा था। दूसरे दिन कटनीसे पं० जगन्मोहनलालजी आये। प्रात काल हमारा प्रवचन हुआ। २ बजेसे सभा हुई जिसमे पण्डितजीका भक्तिमार्गपर सुन्दर विवेचन हुआ। जनता मुग्ध हो गई। हमने भी कुछ उपदेश दिया। लोगोंको रुचिकर हुआ। यहाँ पर पूर्णचन्द्रजी बहुत सज्जन हैं। आपकी वृत्ति अत्यन्त उत्तम है। व्यापार करनेमें न्यायका त्याग नहीं। राजाज्ञाका उल्लंघन भी आप नहीं करते। यहाँ श्री राघवेन्द्रसिंह विरसीवाले ठाकुर साहबसे धार्मिक बात हुई। आप निरपेक्ष हैं। यद्यपि आप वैष्णव सम्प्रदायके हैं तथापि जैनधर्मसे प्रेम है। यहाँसे ४½ मील

चल कर नरौरा ग्रामकी सड़कके किनारे १ कुर्मीकी धर्मशालामें ठहर गये। समय सानन्द व्यतीत हुआ।

यहाँसे ४½ मील चलकर वरइया ग्रामके वगीचामें ठहर गये। सतनावाले श्री ऋषभकुमारकी माँने आहार दिया। यहाँसे ३ मील चलकर एक कृपकके यहाँ रह गये। रात्रिमें श्री नाथूरामजी शास्त्रीने व्याख्यान दिया। जनता ग्रामीण थी। सवको धर्म पिपासा है परन्तु योग्य उपदेष्टा नहीं मिलते अतः इनकी प्रवृत्तिका सुधार नहीं होता। प्रातःकाल ३ मील चल कर अमरपाटन आये। पं० जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आपने स्नानादिसे निवृत्त हो प्रवचन किया। पश्चात् हमने भी कुछ कहा। यहाँ पर २० घर जैनियोंके हैं। २ मन्दिर हैं। १ प्राचीन मूर्ति वहुत ही मनोज्ञ है। १ पाठशाला भी है जिसमें जैन अजैन सव मिलकर १०० छात्र हैं। यहाँ पर जनताने भोजनाच्छादन आदिमें जो व्यय हो उस पर एक पैसा रुपया दानमें निकलना स्वीकृत किया। श्री हजारीलाल चहोरेलालजी सिंघईने आहारके समय कटनीकी पाठशालाको ५०१) देना स्वीकृत किया तथा स्वागतमें वीसों रुपयेके पैसे गरीबों-को वितरण कर दिये। मध्यान्हके वाद यहाँसे चलकर ४½ मील वाद कतपारीके वागमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँसे ५ मील चलकर इटवा नदीके तीर धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर श्री हनुमानजीका मन्दिर है। स्थान रम्य है परन्तु कोई पुजारी नहीं रहता। रात्रिको सुख पूर्वक सोया किन्तु १ वजे श्री नीरजने खवर दी कि मोटर लौट जानेसे चम्पालालजी सेठी आदिको चोट लग गई। सुनकर चित्तमें वहुत खेद हुआ। प्रातःकाल ६½ वजेसे चलकर ९ वजे १ वगीचामें आये। यहाँ पर भोजन किया। तदनन्तर सामायिकादिसे निवृत्त हो २ वजे चल दिये और ५ वजे सतना आ गये। श्री चम्पालालजी आदिको देखा, वहुत चोट लगी थी।

उपयोगमें यह आया कि इस सर्व उपद्रवके निमित्त कारण तुम थे। न तुम होते न यह समुदाय एकत्रीभूत होता। आगममें लिखा है कि क्षुल्लक मुनिके समागममें रहता है पर तूँ उसकी अवहेलनाकर इस परिकरके साथ भ्रमण कर रहा है यह उसी अवहेलनाका फल है।

सतना अच्छा शहर है। जैनियोंकी संख्या अच्छी है। प्रायः सम्पन्न हैं। एक मन्दिर है। पास ही धर्मशाला भी है। श्री शान्ति-नाथ भगवान्‌की प्राचीन मूर्ति है। एक जैन स्कूल भी है। प्रातःकाल समयसार पर प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनके बाद पं० महेन्द्रकुमारजीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका विषय रोचक था। तृतीय दिन श्री पं० जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आज पं० महेन्द्रकुमारजीका प्रवचन और पं० जगन्मोहनलालजीका भाषण हुआ। खजराहा क्षेत्रकी व्यवस्थापक समितिका निर्माण हुआ। एक दिन प्रवचनके बाद यहाँकी पाठ-शालाके अर्थ चन्दा हुआ। लगभग १४००० चौदह हजार रुपया आ गये। लोग उदार हैं—आवश्यकतानुसार धन देते हैं परन्तु व्यवस्थाके अभावमें कार्य सिद्ध नहीं होता। रुपयाका मिलना कठिन नहीं किन्तु कार्यकर्ताका मिलना कठिन है। फाल्गुन कृष्ण १३ को सतना आये थे और चैत्र कृष्ण ६ को यहाँसे निकल पाये।

सतनासे ३ बजे चल कर ५ मीलके बाद माधवगढ़के स्कूलमें ठहर गये। स्थान अत्यन्त स्वच्छ था। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चल कर रामवन आये। यहाँ पर १ बाग है। उसीमें १ कूप है। १ छोटीसी टेकरी पर १ कुटिया बनी है। कुटियाके नीचे तलघर है। उसमें अच्छा प्रकाश है। उष्णकालके लिये बहुत उपयोगी है। कुटियामें ३ तरफ खिड़कियाँ और १ तरफ उत्तर मुख दरवाजा है। दरवाजाके आगे १ दहलान है। जिसमें १० आदमी धर्म साधन कर सकते हैं। ½ मील लम्बा चौड़ा बाग है। हनूमानका १ मन्दिर

है। उसमें ६७ करोड़ राम नाम लिखे गये हैं। यहाँसे सायंकाल चल कर वकनाके मन्दिरमें ठहर गये।

प्रातःकाल ५ मील चल कर कुरहीमें ठहर गये। एक गृहस्थने बहुमान पूर्वक स्थान दिया। यहाँ सतनासे २० आदमी आये। श्री ऋषभकुमारकी माँके यहाँ आहार हुआ। प्रायः सबके परिणाम निर्मल थे। सबको कल्याणकी चाह है परन्तु जिन कारणोंसे कल्याण होता है उनसे दूर भागते हैं। कषायाग्नि ही प्राणी को संतप्त कर रही है। जब कषायोका वेग आता है तब इस जीवको सुध बुध नहीं रहती। जिस निमित्तको पाकर क्रोध उत्पन्न हुआ उस निमित्तको मिटानेका प्रयत्न करता है पर यह उसका बीज हमारी ही आत्मामें विद्यमान है यह नहीं विचारता।

यहाँसे २ मील चल कर सायंकाल कृषिकार्यालयमें आ गये। रात्रिभर आनन्दसे रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चल कर बेलापुर आ गये और यहाँके स्कूलमें ठहर गये। यहीं पर भोजन किया। सतनासे श्री ऋषभकुमारकी मां आदि आये। साथमें पं० पन्नालालजी धर्मालंकार और चौधरी पन्नालालजी मैनेजर तेरापंथी कोठीके थे। मार्गमें इन महानुभावोंके समागमसे अत्यन्त शान्ति रहती है। अन्तिम शान्ति नहीं, औपाधिक शान्तिका ही लाभ होता है। अन्तिम शान्ति तो वह है जिससे फिर अशान्ति न हो। यह शान्ति इच्छाके अभावमें होती है। दूसरे दिन प्रातःकाल ८ बजे रीवा आ गये। धर्मशालामें ठहर गये। स्नान कर मन्दिरजीमें श्री शान्तिनाथ भगवान्‌के दर्शन किये। मूर्ति बहुत ही सुन्दर है। इसके दर्शनसे हृदयमें यह भावना हुई कि शान्तिका मार्ग तो बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग है। इसमें बाह्य परिग्रहका त्याग तो सरल है परन्तु आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग होना अति कठिन है। सबसे कठिन तो परको निज माननेका त्याग करना है।

शरीर की कथा छोड़ो, स्त्री पुत्र बान्धवको भी पृथक् करना कठिन है। हम सबसे भिन्न हैं…यह पाठ प्रत्येक व्यक्ति पढ़ता है परन्तु भीतरसे उन्हें छोड़ता नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाजारके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। वहीं पर आहार हुआ। तदनन्तर धर्मशालामें आ गये। सामायिकके बाद एक वृद्ध जिनकी आयु ८४ वर्षकी थी आये। और तत्त्वज्ञानकी उपयोगी चर्चा करते रहे। आपका पुत्र पुलिस विभागमे जनरल इन्सपेक्टर है। आप जैनधर्मकी चर्चासे प्रसन्न हुए। रीवाँ विन्ध्यप्रान्तकी राजधानी है। जैनियोंके घर भी अच्छे हैं। यहाँसे ३ बजे चलकर २½ मीलके बाद १ स्कूलमे ठहर गये। उक्त वृद्ध महाशय हमारे साथ मार्गमें १ मील तक आये। यहाँ टीकमगढ़से प० नन्हेलालजी प्रतिष्ठाचार्य आये। आप बहुत ही सरल स्वभावके हैं। आपने वादा किया कि हम ईसरी आवेंगे। अगले दिन प्रातःकाल ६ मील चल कर रामऊनके मिडिल स्कूलमे निवास किया। स्कूलके अन्त भागमे आम्र वन और कूप था। उसी स्थान पर रीवाँसे आये हुए ५ आदमी ठहरे हुए थे। यहीं पर बनारससे श्री पं० कैलाशचन्द्रजी तथा ब्र० हरिश्चन्द्रजी आये। आप लोगोंके आनेसे विशेष स्फूर्ति आ गई। आहार यहींपर हुआ। चैत्र कृष्णा १३ को ५ मील चल कर बिलवाके उद्यानमें ठहर गये। यहाँ रीवाँसे श्री कपूरचन्द्रजीका चौका आया था। वहीं पर आहार हुआ। मध्याह्नके उपरान्त यहाँसे ३ मील चलकर मनगुवाँकी पुलिस चौकी पर निवास किया। स्थान सुरम्य था, दिनकी थकावटसे जल्दी सो गये अतः रात्रिके १ बजे निद्रा भग्न हो गई। छहढालाकी छटवीं ढालका पाठ किया परन्तु पाठ करना अन्य बात है, हृदयमें शान्तिका आना अन्य बात है। शान्तिका लाभ कषायके अभावमे है। शान्तिका पाठ पढ़ना प्रत्येक व्यक्तिको आता है किन्तु भीतरसे शान्तिका होना कठिन है।

प्रातः ५ मील चल कर वावाजीकी कुटियामें ठहर गये। यहीं पर भोजन किया। विचारमे यह आया कि गिरिराज पहुँचकर धर्म-साधन करना। परसे न शान्ति मिलती है और न मिलनेकी संभावना है। हम अनादिसे परके साथ अपना अस्तित्व मान रहे हैं। फल उसका जो है सो प्रत्यक्ष है। यहाँसे ५.½ मील प्रयाण कर एक वावाजीकी कुटियाके सामने आम्रतरुके नीचे निवास किया। यहाँ पर ज्यों ही भोजन वनानेका आरम्भ हुआ त्यों ही ग्रामीण मनुष्य वहुत आ गये, मना करने पर भी नहीं हटे। अस्तु आज दयाचन्द्रने असत्य भाषण कर अभक्ष्य दुग्धका भक्षण करा दिया। यद्यपि मैंने दुग्ध त्याग दिया फिर भी आत्मामे ग्लानि वनी रही। हम लोग वहुत ही तुच्छ प्रकृतिके वन गये हैं, शरीरको ही अपना मान लेते हैं। आत्मद्रव्यको अमूर्तिक कह देना अन्य वात है। उस पर अमल करना अन्य वात है। यहाँसे २½ मील चल कर डवडवा आ गये। रात्रिमे निवास करनेके वाद प्रातःकाल डवडवासे ५ मील चल कर भऊगंजके एक वागमे आम्रवृक्षके नीचे निवास किया। स्थान सुरम्य था। यहीं पर भोजन किया। यहाँ पर परिणामोंमें शान्ति रही। परमार्थसे सङ्गमे शान्ति नहीं रहती। इसका मूल कारण हृदयगत मलिनता है। हम लोग हृदयमें कुछ रखते हैं, कहते कुछ हैं, कायसे कुछ करते हैं। ३६ के अनुरूप हमारा व्यवहार है। इसमे शान्तिकी आशा मृगतृष्णामे सलिलान्वेषणके तुल्य है।

भोजनके उपरान्त स्कूलमे निवास किया। मास्टर योग्य थे। ४ वजे यहाँसे चले। घड़ी भूल आये। ४ मील चलनेके वाद १ मिडिल स्कूलमें ठहर गये। यहाँ पर शान्तिसे रात्रि काटी। स्कूलमें २५ छात्र देहातके अध्ययन करते हैं। मास्टर लोग पढ़ाई अच्छी करते हैं। प्रार्थना होती है। सभ्यताकी ओर लक्ष्य है परन्तु सभ्यता पश्चिमी

है। यहाँसे प्रातः ४$\frac{3}{4}$ मील चलकर पुनः एक स्कूलमें ठहर गये। यहाँके मास्टर बहुत ही योग्य थे। आपने बहुत ही आदरके साथ स्थान दिया। स्थान शान्तिपूर्ण था। शरीरमें कुछ थकावट भी थी अतः इस दिन संध्याकलीन प्रयाण स्थगित कर रात्रिको यहीं विश्राम किया। स्थान निर्जन था, कोई प्रकारका कोलाहल न था फिर भी अन्तरङ्गकी शान्ति न होनेसे अन्तरङ्ग लाभ नहीं हुआ। जहाँ तक विचारसे काम लेते हैं यही समझमें आता है कि अनादि कलुपताके प्रचुर प्रभावमें कुछ सुध-बुध नहीं रहती, केवल ऊपरी वेष रह जाते हैं।

यहाँसे प्रातः ३ मील ३ फर्लांग चलकर हनुमना आ गये। यह नगर अच्छा है। यहाँ पर श्री कोमलचन्द्रजीकी दूकान है। रीवाँसे २ गृहस्थ आये। उन्होंने आहार दिया। पण्डित फूलचन्द्रजी भी आये। ३ बजे स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें जो बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है उस पर विचार हुआ। सर्व पर्यायोमें मनुष्य पर्याय अति दुर्लभ है। इसमें उत्तरोत्तर संयम पर्यन्तकी दुर्लभता दिखाई। संयमरत्नको पाकर जो विषयलोलुपी संयमका घात कर लेते हैं वे भूति (भस्म) के अर्थ रत्नको जला देते हैं। इस परिणतिको धिक् है। रात्रिको यहीं रहे। प्रातःकाल श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पूजन समारोहके साथ हुआ। भोजन रीवांवालोंके यहाँ हुआ। मिर्जापुरसे श्री पोष्ट-मास्टर कन्हैयालालजी आये। परिग्रहका पिशाच सबके ऊपर अपना प्रभाव जमाये है। अच्छे अच्छे धनी मानी इसके प्रभावमें अपनी प्रतिष्ठाको खो देते हैं। सम्यग्ज्ञान होनेके बाद भी इसका रक्षित रहना कठिन है। अज्ञानीकी कथा छोड़ो। अज्ञानी परिग्रहको न छोड़े, आश्चर्य नहीं परन्तु जानकार ज्ञानी न छोड़े यह आश्चर्य है।

यहाँसे सायंकाल ३ मील चलकर भैसोड़के डाँकबङ्गलामें ठहर गये। प्रातःकाल ३$\frac{1}{2}$ मील चल लुहस्थिहरके पहाड़ पर आ

गये। यहाँ पर सड़कके किनारे १ चौकी है। उसीमे भोजन वना। यहा ७७ हाथ गहरा कूप है परन्तु पानी इतना मिष्ट नहीं। नदी १ फर्लाङ्ग है। स्थान रम्य है। १० घर गोपाल लोगोंके हैं। सायंकाल ४॥ मील चलकर द्रासिलगंज आ गये। यहा पर एक संस्कृत पाठशाला है। उसमे ठहर गये। पाठशालाके प्रधानाध्यापक महान् साधु पुरुष है। आपके प्रयत्नसे इस पाठशालाका काम साधु रूपसे चलता है। व्याकरण-साहित्यके आचार्य पर्यन्त यहाँ अध्ययन होता है। ५१ छात्र अध्ययन करते हैं। पाठशालाके सर्वस्व प्रधानाध्यापक हैं। आज वनारससे पं० महेन्द्रकुमारजी और पं० पन्नालालजी आये। दूसरे दिन प्रातः ३ मील चलकर मार्गमें १ मुसलमानके घरमे ठहरे। घरका स्वामी साक्षर था। वहुत सत्कारसे उसने ठहराया। वह अपने धर्मका पूर्ण श्रद्धानी था। सायंकाल यहाँसे ५ मील चलकर वरौधा आ गये। यहाँ पर १ मिडिल स्कूलमे ठहरे। यहाँके अध्यापकवर्ग अत्यन्त सभ्य हैं। १ कमरा तत्काल रिक्त कर दिया। प्रातःकाल यहाँसे ६ मील चलकर एक महन्तके स्थानपर निवास किया। वहुत ही पुष्कल और पवित्र स्थान था। श्री ठाकुरजीके मन्दिरमें जो दालान थे उसमे गर्मीको विताया। यहाँ पर मिर्जापुरके तहसीलदार जो कि जैन थे आये। आप वहुत भद्र हैं। धर्मकी उत्तम रुचि भी रखते हैं। वैष्णव सम्प्रदायमे अतिथिसत्कारकी समीचीन प्रथा है। इसका अनुकरण हम लोगोंको करना चाहिये। परमार्थसे सव जीव समान हैं। विकृत परिमाणोंसे ही भेद है। जिस दिन विकार चला जायगा उसी दिन यह जीव परमात्मा हो जायगा। परन्तु विकारका जाना ही कठिन है। शरीरमें थकावटका अनुभव होनेसे रात्रि यहीं व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ३ मील चलकर तुलसीग्राम आ गये। यहां पर नागा वावाओंका अखाड़ा है। ९ वजे प्रवचन हुआ। प्रवचनमे यह वात

थी कि आत्मा और पुद्गल स्वतन्त्र द्रव्य हैं। इनमे जो परिणमन होता है उसके आत्मा और पुद्गल स्वतन्त्र कर्ता हैं। एक दूसरेके परिणमनमें निमित्त कारण हैं। जैसे जव रागकर्मका विपाक होता है तव जिस आत्माके साथ रागकर्मका सम्वन्ध है वह आत्मा रागरूप परिणमन करता है तथा उसी काल कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादिरूप हो जाता है। प्रवचनके वाद यहीं पर भोजन हुआ। सायंकाल चलकर एक वनमे ठहर गये। आगामी दिन प्रातःकाल ३ मील चलकर १ मन्दिरमे निवास किया। मन्दिर वहुत रम्य था। यहीं पर भोजन किया। यहाँसे मिर्जापुर ६ मील है। रात्रि भी यहीं व्यतीत की। यहाँ पर वनारससे पं० कैलाशचन्द्रजी, मंत्री सुमतिलालजी, अधिष्ठाता हरिश्चन्द्रजी तथा कोषाध्यक्षजी आये। आप लोग ४ घंटा यहाँ पर रहे। अनन्तर मन्त्रीजीको त्याग सव चले गये। प्रातःकाल ३ मील चलकर मिर्जापुरके वगीचामे ठहर गये। यहाँ एक सुन्दर कूप तथा अखाड़ा है। ठहरनेके लिये वंगला है। एक शिवालय भी है। चारों ओर रम्य उपवन है। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँ मिर्जापुरसे कई मनुष्य आ गये। मध्यान्हकी सामायिकके वाद मिर्जापुर गये। लोगोंने उत्साहसे स्वागत किया।

दूसरे दिन चैत्र शुक्ला १३ सं० २०१० होनेसे महावीर जयन्तीका उत्सव था। वनारससे पं० महेन्द्रकुमारजी तथा कैलाशचन्द्रजी आ गये। प्रात काल पं० महेन्द्रकुमारजीने शास्त्र प्रवचन किया। आपने यह भाव प्रकट किया कि सप्त तत्त्व जाने विना मोक्षमार्गका निरूपण नहीं हो सकता। रात्रिको आमसभा हुई। उसमे श्री महावीर स्वामीके जीवनचरित्रका वर्णन श्री पं० कैलाशचन्द्रजीने उत्तम रीतिसे किया। पं० महेन्द्रकुमारजीका भी उत्तम व्याख्यान हुआ। कुछ हमने भी कहा। एक दिन प्रातःकाल वड़े मन्दिरमे प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। जैनधर्मका

मूल उपदेश तो यह है कि स्वपरका भेदज्ञान प्राप्त कर विषय कषायसे निवृत्त होओ। शास्त्रप्रवचनोंमे यही बात प्रतिदिन कही जाती है परन्तु अमलमे नहीं लाई जाती इसलिये वक्ताके हाथ केवल कहना रह जाता है और श्रोताके हाथ सुनना। प्रथम वैशाख वदी को यहाँसे चलना था परन्तु मोटर द्वारा दुर्घटना हो गई जिससे रुकना पड़ा। मनमें विचार आया कि यदि यह परिकर साथ न होता तो व्यर्थका संक्लेश न उठाना पड़ता। इस दुर्घटनाके कारण मिर्जापुरमे २ दिन और रुकना पड़ा। वार वार विचार होता था कि अतिशय दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर भी मैंने इसका उपयोग नहीं किया। मानव जीवन सकल योनियोंमे श्रेष्ठ है। इस जीवनसे ही मनुष्य जगत्‌के विकृत भावोंसे रक्षित होकर स्वभाव परिणतिका पात्र होता है। अगले दिन श्री सुमतिलालजी मंत्रीके यहाँ आहार हुआ। आप वहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य हैं। स्याद्वाद विद्यालयका कार्य इनहीके द्वारा चल रहा है। यह एक सिद्धान्त है कि जिस संस्थाका संचालक निर्मल परिणामी होता है वही संस्था सुचारुरूपसे चलती है। आप उन महापुरुषोंमेंसे हैं जो कार्य कर नाम नहीं चाहते हैं।

प्र० वैशाख वदी ३ सं० २०१० को यहाँसे संध्याकाल चलकर चिलीके उपवनमें ठहर गये। रात्रि सानन्द व्यतीत हुई। प्रातःकाल ४½ मील चल कर एक धर्मशालामें ठहर गये। श्री हरिश्चन्द्रने सानन्द भोजन कराया। भोजन भक्तिसे दिया। अत्यन्त स्वादिष्ट था। हम लोग उद्दिष्ट त्यागकी कथामात्र कर लेते हैं परन्तु पालन नहीं करते। उसीका फल है कि परिणामोंमें शान्ति नहीं आती। शान्तिका मूल कारण अन्तरङ्ग अभिप्रायकी पवित्रता है। हम लोग वाह्य त्यागसे ही अपनी परिणतिको उत्तम मानते हैं यह सर्वथा अनुचित है। रात्रि यहीं विताई।

दूसरे दिन प्रातः ४ मील चल कर महाराजगंजकी संस्कृत पाठशालामे निवास किया। यहाँ पर जमनादास पन्नालालजीके नाती आये और उन्हींके यहाँ आहार हुआ। मध्यान्ह कालमें हुई चर्चाका सार यह निकला कि जो आत्माको पवित्र वनानेके लिये कलुपताका त्याग करना चाहते हैं उन्हे उचित है कि अपनी परिणति मायाचारसे रक्षित रक्खें। गर्मीकी बहुलतासे अव संध्याकालका भ्रमण कष्टकर होने लगा अतः यहीं पर रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर राजमार्गस्थ रूपापुरके शिशुपाठालयमे निवास किया। यहीं पर भोजन किया। यहाँ स्याद्वाद विद्यालयके २ छात्र आये। मंत्रीजीने उन्हे भेजा था। यहाँसे २ मील दूरीपर मिर्जासराय है वहींपर जानेका विचार हुआ।

प्रातःकाल ५ मील चल कर राजातालाव पर भोजन हुआ। यहाँ दिल्लीसे राजकृष्ण तथा उनकी धर्मपत्नी आईं। उन्हींके यहाँ भोजन हुआ। बनारससे कई छात्र महोदय आये। यहीं पर श्री १०८ विजयसागरजी मुनियुगल, २ क्षुल्लक तथा २ ब्रह्मचारी भी आये। शान्तपरिणामी हैं परन्तु विजयसागरजीके नेत्रों की ज्योति बहुत कम हो गई है तथा वृद्ध भी अधिक हैं अतः उन्हे चलनेका कष्ट होता है। फिर भी आजकलके युवाओंकी अपेक्षा शक्तिशाली हैं। संध्याकालमे ४ मील चल कर भास्करके उपवनमें १ कूपके ऊपर निवास किया। यहाँ १ शिवालय है। पुजारीकी आज्ञासे उसीमें ठहर गये। पुजारी भद्रस्वभावका है। जैसा आतिथ्य सत्कार ये लोग करते हैं वैसा हम लोगोंमे नहीं है। हम लोग तो अन्य लोगोंको मिथ्यादृष्टि वाक्यका उपयोग कर ही अपने आपको कृतकृत्य मान लेते हैं। संध्याकाल यहाँसे चल कर श्री बनारसीदासजीके उपवनमें ठहर गये। रात्रि सुखसे बीती। यहाँसे बनारस केवल ३ मील दूर है।

बनारस और उसके अंचलमें

प्रथम वैशाख कृष्ण ६ सं० २०१० को प्रातःकाल ३ मील चलकर भेलूपुर आ गये। यह स्थान हमारा चिर परिचित स्थान था। यहीं बाईजी रहती थीं और यहीं पर रहकर हमने वहुत दिन विद्याका अभ्यास किया था। उस समय यहाँ 1 शान्तिप्रिय नामक ब्रह्मचारी भी रहते थे जो प्रबल शक्तिशाली थे। यहाँ २ मन्दिर हैं—एक नीचे सड़कके समीप और १ ऊपर। सुन्दर उद्यान है। मूर्तियाँ अत्यन्त मनोज्ञ हैं। ऊपरका मन्दिर कोलाहलसे अतीत अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। श्री राजकृष्णजीके यहाँ आहार किया। एक दिन तथा एक रात्रि यही निवास किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल चलकर स्याद्वाद विद्यालय आगये। सूर्योदयका समय था। गंगाके उस पार दूर क्षितिजसे सूर्यकी सुनहली आभा प्रकट होकर गङ्गाके निर्मल वारिको रक्त-पीत वना रही थी। विस्तृत छतके ऊपर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्का सुन्दर मन्दिर है। उसकी शिखरपर सूर्यकी मनोहर किरणें पड़ रही थीं। छत परसे सूर्योदयका दृश्य वड़ा सुन्दर जान पड़ता था। स्याद्वाद विद्यालयमें पहुँचते ही पिछले जीवनकी स्मृति नवीन होगई। बाबा भगीरथजी तथा स्व० सेठ माणिकचन्द्रजी आदिका स्मरण हो आया जिनकी कि उपस्थितिमें बड़े समारोहके साथ जेठ सुदी ५ सं० १९६२ मे इस स्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन हुआ था। स्व० गुरु अम्बादासजी शास्त्रीका स्मरण आते ही हृदय गद्गद् होगया। जिस समय अन्य ब्राह्मण विद्वानोंने जैन छात्रोंको पढ़ानेसे इनकार

कर दिया था उस समय आप एक ही ऐसे सहृदय विद्वान् थे जिन्होने मुझ जैसे निराश व्यक्तिको प्रेमसे विद्याध्ययन कराया था। श्री शास्त्रीजीकी हमारे ऊपर पूर्ण कृपा थी। मुझे जो कुछ ज्ञान है वह उन्हींका दिया हुआ है। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्‌के दर्शन किये। तदनन्तर श्री हरिश्चन्द्रजीके यहाँ भोजन हुआ। सायंकाल छात्रोंके बीच भाषण हुआ। रात्रिको यहीं विश्राम किया। दूसरे दिन विद्यालयके बालकोंने बहुत भक्तिके साथ भोजन कराया। उनकी प्रवृत्तिसे उनका आस्तिक्यभाव टपक रहा था।

सायंकाल ५ बजे चलकर ६॥ बजे सन्मति निकेतनमें आगये। यहाँपर श्रीसेठ हुकुमचन्द्रजी इन्दौरवालोंने बहुत ही रम्य जिनालयका निर्माण कराया है। श्री महावीर स्वामीका बिम्ब अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। सन्मति निकेतनमें वे छात्र रहते हैं जो यूनिवर-सिटीमें अध्ययन करते हैं। रात्रिको यहीं विश्राम किया। प्रातःकाल गङ्गाके तट पर प्रातःकालीन क्रियाओंसे निवृत्त हो हिन्दू विश्व-विद्यालयके भवनोंको देखते हुए सन्मति निकेतनमें आगये। स्नानादिसे निवृत्त हो श्रीमहावीर स्वामीके दर्शन किये। हृदयमें बड़ा आह्लाद उत्पन्न हुआ। एक सीधी साधी वेदिका पर भगवान् महावीर स्वामीकी विशालकाय शुभ्र मूर्ति विराजमान की गई है। सायंकालके समय निकेतनमें उत्सव हुआ। कई प्रोफेसर आये। सानन्द छात्रावासका उद्घाटन हुआ।

प्रथम वैशाख कृष्णा १४ सं० २०१० को प्रातःकाल ७ बजे चलकर स्याद्वाद विद्यालय आ गये। यहीं पर भोजन हुआ। २ बजेसे विद्यालयका वार्षिक उत्सव हुआ। जनता अच्छी आई। कैलाशचन्द्रजीने विद्यालयका परिचय कराया। उत्सवमें ४ बजे श्रीआनन्दमयी माता भी पधारीं। आप शान्तिमूर्ति हैं। सचमुच ही आनन्दमयी हैं। सबके आनन्दमें निमित्त हो जाती हैं। उत्सव

मे छात्रोंको पुरस्कार दिया गया। अन्तमें शान्तिपूर्वक सब लोग स्वस्थानको गये। आनन्दमयी माताका आश्रम विद्यालयके समीप ही गङ्गाके तटपर है। मुझे वहां बुलाया गया अतः मैं भी अमावस्याके दिन वहां गया। बहुत ही सुन्दर भवन बनाया गया है। वहा अनेक साध्वियां तथा साधु निर्मल परिणामोंवाले थे। क्रम विकास पर हमारा भाषण हुआ। अन्तमें आनन्दमयीने यह कहा कि अपना पराया मतभेद छोड़ो। आप बंगाली हैं। बंगाली लोग आपको बड़ी श्रद्धासे देखते हैं। एक दिन मैदागिनके मन्दिर-में गये। श्री पं० कैलाशचन्द्रजी तथा पं० जगन्मोहनलालजी कटनीका व्याख्यान हुआ। आत्मदर्शनका अच्छा प्रतिपादन हुआ। तदनन्तर हमने भी कुछ कहा। जनता अच्छी थी।

प्रथम वैशाख शुक्ला २ को प्रातःकाल ५½ बजे चलकर एक उप-वनमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहीं पर पं० पन्नालालजी व पं० फूलचन्द्रजी साहब आये। उपवनमें जो कूप है उसका जल अत्यन्त मिष्ट है। यह उपवन श्री मोतीलालजी सिंघईके लघु बालक सूरजमल्लका है। स्थान रम्य है। यदि कोई धर्मसाधन करे तो कर सकता है परन्तु इस समय धर्मसाधनकी दृष्टि चली गई है। अब तो लोग विषय साधनमे मग्न हैं। यहाँसे १½ मील चलकर सारनाथ (सिंहपुरी) आ गये। सिंहपुरी श्री श्रेयान्स भगवान्का जन्मस्थान है। सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। एक धर्मशाला तथा उद्यान भी है। धर्मशाला मे स्वच्छता कम है। प्रातःकाल मन्दिर में प्रवचन हुआ। दिल्लीसे पं० दरबारीलालजी तथा राजकृष्णका बालक प्रेमचन्द्रजी आये। २ घंटा रहे। यहीं आरासे पं० महेन्द्र-कुमारजी तथा एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि आराकी जैन जनता आपको आरामें चौमासा करनेका निमन्त्रण देती है। मैं सुनकर चुप रहा। यहीं पर कलकत्तासे सरदारमल्ल हुलासरायजी

श्री गोम्मटस्वामीके दर्शन कर आये । १ घंटा रहे । आप लोग श्री स्व० सूरिसागरजीके परम भक्त हैं । तेरापन्थके माननेवाले हैं। वास्तवमें धर्मका स्वरूप तो निर्विकार है। उपाधिसे नाना विकार मनुष्योंने उसमे ला दिये हैं अतः जिन्हें आत्मकल्याण करना हो उन्हें यह विकार दूर करना चाहिये ।

गरमीकी प्रवलताके कारण कुछ समय विश्राम करनेकी इच्छा हुई। सारनाथ कोलाहलसे परे शान्तिपूर्ण स्थान है अत: १५ दिन यहीं रहनेका विचार किया। एकान्त होनेसे स्वाध्यायका लाभ भी यहाँ अच्छा मिला। और चिन्तन भी अच्छा हुआ। अष्टमीका दिन था। मध्यान्हके वाद विचार आया कि चित्तकी स्थिरताके लिये क्या करना चाहिये ? हृदयसे उत्तर मिला कि संयम धारण करना चाहिये। उसी क्षण विचार आया कि संयम तो वहुत समयसे धारण किये हूँ फिर चित्तकी स्थिरता क्यों नहीं है। तव संयम शब्दके अर्थकी ओर दृष्टि गई। 'संयमनं संयमः' सम् उपसर्ग पूर्वक 'यम उपरमे' धातुसे संयम शब्द वना है जिसका अर्थ होता है सम्यक् प्रकारसे रुक जाना। अर्थात् पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमे जो प्रवृत्ति हो रही है उसका भले प्रकारसे रुक जाना संयम है। जव तक इन्द्रियोंके विषयोंसे यथार्थ निवृत्ति नहीं होती तव तक नाम निक्षेपके संयमसे क्या लाभ होनेवाला है ? निवृत्तिका अर्थ तटस्थ रहना है तथा मनोनिग्रहका अर्थ कषाय कृशता है। इन्द्रियोंके दमनका अर्थ इन्द्रियों द्वारा विषय जाननेका अभाव नहीं। उनमे लोलुपता न होना चाहिये। शरीरदमन न कोई कर सकता है और न उसका दमन होता ही है। भोजन करनेसे शरीरकी तृप्ति नहीं होती किन्तु आत्मामे ही भोजन करनेकी जो इच्छा थी वह शान्त हो जाती है। वही तृप्तिका कारण है। जो केवल कायक्लेश करते हैं वे शान्तिके पात्र नहीं होते।

द्वितीय वैशाख कृष्णा २ को सिंहपुरीसे ५ मील चलकर सैदागिनमें आ गये। यहीं पर भोजन हुआ। रात्रि भी यहीं व्यतीत की। अगले दिन प्रातःकाल ५॥ बजे चलकर ७॥ मीलकी दूरी पर एक क्षत्रियके बागमें ठहर गये। स्थान सुरम्य था। बहुत आनन्द-से समय गया। श्री गणेशदासजीके सुपुत्र श्री सुन्दरबाबू तथा मौजीलालजीका चौका आया था। इन्हींके यहाँ भोजन हुआ। सायंकाल २ मील चलकर एक बागमें ठहर गये। वृद्धावस्थाके कारण अधिक चला नहीं जाता था इसलिये थोड़ा ही चलते थे और यह निश्चय कर लिया था कि जितनी शक्ति होगी तदनुकूल ही गमन करेंगे परन्तु गमन श्री पार्श्वप्रभुके सन्मुख ही करेंगे।

पार्श्वप्रभुकी ओर

प्रातःकाल बागसे ४ मील चल कर मोगलसरायकी धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशालामें सब प्रकारके मनुष्य आते हैं। यदि यहाँ कोई धर्मप्रचार करना चाहे तो अनायास कर सकता है। सायंकाल ३ मील चलकर १ बाबाजी की कुटीमें ठहर गये। अन्य साधु जिस प्रकार निरीह हो नगरके बाहर शान्तिसे जीवन बिताते हैं उस प्रकार हमारे साधु नहीं। अब इन्हें बिना परिकरके एक दिन भी चैन नहीं पड़ता। दूसरे दिन प्रातःकाल कुटीसे ४ मील चले तो क्षुल्लक मनोहरलाल जी वर्णी मिल गये। प्रसन्नता हुई। यहाँसे २ मील चलकर चंदौलीके शिवालयके पास धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर भोजन हुआ। दुपहरी शान्तभावोंसे बीती किन्तु जहाँ पर अधिक समागम होता है वहाँ सिवाय अप्रयोजनीभूत कथाओंके कुछ नहीं
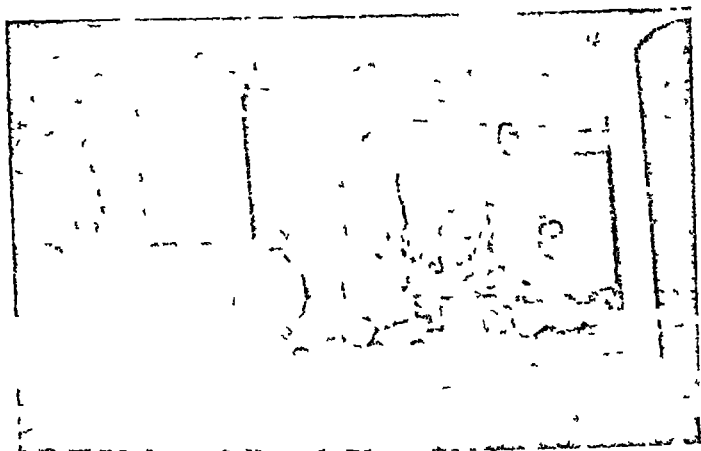
पूज्य श्री वर्णीजी
श्री ब्र० नाथूलालजी आदि खड़े हुए हैं
और श्री भवरीलाल जी सरिया व
श्री नदलाल जी सरावगी
कलकत्ता आदि बैठे हुए हैं।

[पृ० ४४३]

होता। अगले दिन ५ मील चलकर सैय्यदराजा ग्राममें आ गये। एक अग्रवालकी धर्मशालामे रह गये। धर्मशालाका मैनेजर धार्मिक था। उसने कहा कि भगवद्भजनमे उपयोग लगे ऐसी प्रकृति किस तरह प्राप्त हो सकती है? हमने यही उत्तर दिया कि उसका उपाय तो विषयोंसे चित्तको रोकना है। उसका दूसरा प्रश्न था कि प्रत्येक प्राणीको भगवद्भजनकी इच्छा क्यों रहती है? इसके उत्तरमे हमने कहा कि भगवान् पूर्ण है, वीतराग है और हितोपदेशी है तथा हम परमार्थसे अनेक प्रकारके अपराध करते हैं एवं निरन्तर पतित मार्गमें जाते हैं अतः एतन्निवारणाय किसी महापुरुषकी शरणमे ही जाना हमारे लिये श्रेयोमार्ग है। यहाँसे चलकर कर्मनाशा स्टेशनके समीप ठहर गये और दूसरे दिन प्रातः ६ मील चलकर दुर्गावती नदीके तट पर डॉक बॅगलामे निवास किया। यहीं पर आहार हुआ। यहाँसे ½ फर्लांग पर एक स्कूल था। उसमें सानन्द निवास किया। अध्यापकवर्ग शिष्ट था। एक बालकने प्रश्न किया—आप कौन हैं? मैंने उत्तर दिया—जैन हैं। उसने फिर जिज्ञासा भावसे पूछा—जैन किसे कहते हैं? मैंने कहा—जो जीवमात्र पर दया करे। उसने फिर प्रश्न किया—जीवमात्र पर दया करनेसे संसारकी व्यवस्था किस प्रकार चलेगी? मैंने कहा—अच्छी तरह चलेगी। उसने कहा अच्छी किस तरह? मैंने कहा—दयाका यथोचित विभाग करनेसे सब व्यवस्था चल सकती है। अपने अपने पद और अपनी अपनी शक्तिके अनुसार जीवदयाका पालन करनेसे कहीं कोई व्यवस्था भग्न नहीं होती। उत्तर सुनकर बालक प्रसन्न हुआ।

प्रातः ५ मील चलकर एक बाबाकी कुटियामे फिर विश्राम किया। बाबाने प्रेमसे स्थान दिया। यहा गयासे सोनू बाबू आ गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर १ बंगलामे ठहर गये।

यहाँपर दुर्गावती नदी वहती है । यहींपर जैनबद्रीकी यात्रासे श्री राजेन्द्रकुमारजी वनारसवाले और पं० श्रीलालजी आये । यहीं भोजन किया । २५ आदमियोंका समागम था, धर्म रुचिवाले थे परन्तु अन्तरङ्गसे जो वात होना चाहिये वह नहीं थी । अन्तरङ्ग-की कथा इस समय अत्यन्त दुर्लभ हो रही है । यहाँसे प्रातः ४॥ मील चलकर पुसौली रेलके क्वार्टरोंमें ठहर गये । जो मैनेजर था उसने वहुत आदरसे ठहराया । यहाँपर दुर्गावती नदी है । उसका जल पिया, अच्छा था । सायंकाल चलकर एक वावाकी कुटीमें विश्राम किया । वहांसे प्रातः ५॥ मील चलकर जहानावादके शिवा-लयके पास जो धर्मशाला है उसमें ठहर गये । धर्मशाला अच्छी थी । क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी यहां आ गये । आपका डालमिया-नगरमें मन नहीं लगा । हमारी वुद्धिमें तो यह आता है कि परसे सम्वन्ध रखना ही नाना प्रकारके विकल्पोंका उत्पादक है और परकी शल्य तव तक नहीं जा सकती जव तक कि अन्तरङ्गसे मोह नष्ट न हो जाय । जहानावादसे २॥ मील चलकर १ स्कूलमें ठहर गये । दूसरे दिन प्रातःकाल ५॥ मील चलकर शिवसागर ग्राममें एक शिवालयमें ठहर गये । शिवालयकी दहलानमें भोजन हुआ । शिवालयका जो पुजारी था वह अत्यन्त शिष्ट था । गर्मीकी अधिकता देख उसने हमें शिवालयके भीतर स्थान दिया । भीतर देवस्थान है । वहाँ ठहरनेसे अविनय होगी'''ऐसा हमारे कहनेपर उसने उत्तर दिया कि मनुष्यकी रक्षा करना सर्वोपरि है । भगवान्का उपदेश है कि दया करो । हम भीतर आपको स्थान देकर दयाका ही तो पालन कर रहे हैं इसमें अविनयकी कौनसी वात है ? अविनय तो तव होती जव हम उनके उपदेशके प्रतिकूल कार्य करते । उसका उत्तर सुनकर जव हमने अपने लोगोंकी प्रवृत्तिकी ओर दृष्टि दी तो ज्ञान पड़ा कि हम लोग मुखसे ही दयाका पाठ पढ़ते हैं । काम

पड़ जावे तो हम लोग अन्य धर्मावलम्बियोको मन्दिरमे ठहरना तो दूर रहा बैठने तक न देवेंगे। यह बात जैनधर्मके सर्वथा प्रतिकूल है। अरे! जैनधर्म तो उन जीवोंकी भी रक्षाका उपदेश देता हैं जो इन्द्रियोंके गोचर नहीं। फिर चलते फिरते मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?

प्रात काल यहाँसे ५॥ मील चलकर १ शिवालयमे फिर ठहर गये। यहांके पुजारीने भी बड़े सत्कारसे रक्खा। यह स्थान अति रमणीय है। अक्षय तृतीयाके दिन प्रातःकाल २ मील चलकर ससराम आ गये। यहाँ एक सुन्दर धर्मशाला है। उसीमे ठहर गये। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्यायमे मन नहीं लगा तथा तृषाके कारण भी अशान्ति रही परन्तु मैंने देखा कि पानी पीनेवाले हमसे भी अधिक अशान्त रहते हैं अतः पानी ही शान्तिका कारण नहीं है। सायंकाल यहांसे २ मील चलकर एक कूपपर ठहर गये। यह कूप एक तेलिनने बनवाया है। उसपर एक आदमी रहता है जो दिनभर पशुओं तथा मनुष्योंको पानी पिलाता रहता है। यहाँसे प्रातः ४ मील चलकर एक पानीका स्थान था वहीं ठहर गये। वहींपर भोजन हुआ। ३ बजे यहाँसे चलकर डालमियाँनगर आ गये। लोगोंने अच्छा स्वागत किया। स्थान रम्य है। यह वही स्थान है जहाँ पर श्री स्वर्गीय सूरिसागरजी महाराजने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग किया था। आप बड़े तपस्वी थे। तेरापन्थ दिगम्बर जैन धर्मके अनुयायी थे। आपका ज्ञान विशाल था। आपके द्वारा संयमप्रकाश आदि अनेक शास्त्रोंकी रचना हुई है। आपका स्वर्गवास गत वर्षके श्रावण वदी ८ को यहीं हुआ था। आप ६ घंटा समाधि मे रत रहे। १२ बजे रात्रिको आपने देहोत्सर्ग किया। आपकी दिगम्बर पद्मासन मुद्रा देह त्यागके बाद ज्यों की त्यों रही। यहाँ आते ही मुझे आपका नाम स्मृत हो उठा और मनमे अपने प्रति

एक ग्लानिका भाव उठने लगा—ग्लानिका भाव इसलिए कि मैंने नर तन पाकर भी कुछ नहीं किया—

असी वर्षकी आयुमें किया न आतम काम ।
ज्यों आये त्यों ही गये निशदिन पोसा चाम ॥

क्या कहे ! किससे कहे ? कुछ कहा नहीं जाता ? व्यर्थके जंजालमे पड़कर अपनी अभिलाषाओंको न रोक सके । यथार्थमे 'यों करेंगे, त्यों करेंगे' ऐसे शब्दों द्वारा जनताके समक्ष शेखी बघारना कुछ लाभदायक नहीं । पानीके विलोलनेसे हाथ चीकना नहीं होता । वह तो परिश्रमका कारण है ।

डालमियाँनगर श्री साहु शान्तिप्रसादजीके पुरुषार्थका फल है । पुरुषार्थ उसीका सफल होता है जिसके पास पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म है । अथवा पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म भी पूर्व पर्यायका पुरुषार्थ ही है । यहाँ आपके द्वारा निर्मित नाना कारखाने हैं । कार्यकर्ताओंके रहनेके लिए अच्छे स्थान हैं तथा धर्मसाधनके लिए सुन्दर मन्दिर है । शान्तिप्रसाद प्रकृत्या शान्त तथा भद्र परिणामी हैं । इस समय आपके द्वारा जैनधर्मके उत्कर्षको बढ़ानेवाले अनेक कार्य हो रहे हैं । आपकी पत्नी रमारानी भी सुयोग्य तथा सुशीला नारी है । पं० महेन्द्रकुमारजी तथा पं० फूलचन्द्रजी बनारससे यहाँ आये थे । साथमें नरेन्द्रकुमार बालक भी था । पं० युगलने साहु शान्ति प्रसादजीसे सन्मति निकेतनके अर्थ माँग की तो आपने १३ कमरे दुहरे करवा देनेका वचन दिया और १००) मासिक छात्रावास चलानेको कह दिया । आप बहुत ही उदार मानव हैं । विशेषता यह है कि आप निरपेक्ष त्याग करते हैं । नरेन्द्रकुमार छात्र बहुत ही शिष्ट तथा होनहार बालक है । प्रकृतिका स्वाभिमानी है अतः किसीसे याचना नहीं करता । यदि कोई इसे विशेष रूपसे सहायता देवे तो यह अद्भुत मानव हो सकता है ।

मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मैंने कहा—कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। संयोगवश यदि यह प्राप्त हो गया है तो इससे इसका कार्य करना चाहिये। भोग विलासमें मस्त रहना मनुष्य जन्मके कार्य नहीं है किन्तु भोगोंसे निवृत्त हो संयम धारण करना मनुष्य जन्मका सर्वोपरि कार्य है। जीवनमें इसे अवश्य ही धारण करना चाहिये। अनादिकालसे हमारी अन्य द्रव्य पर दृष्टि लग रही है, अन्य द्रव्यसे तात्पर्य पुद्गल द्रव्यसे है। आत्मा तथा पुद्गल दोनोंका अनादिकालसे ऐसा एक क्षेत्रावगाह हो रहा है कि जिससे आत्माकी ओर दृष्टि जाती ही नहीं है। केवल पुद्गलमें ही दृष्टि उलझ कर रह जाती है। गौके स्तनसे जो दूध दुहा जाता है उसमे पानीका बहुभाग रहता है परन्तु वह दुग्धके साथ इस प्रकार मिला हुआ है कि उसे कोई पानी कहता ही नहीं है। इसी प्रकार शरीर और आत्मा इस प्रकार मिले हुए हैं कि कोई आत्माको अलगसे जानता ही नहीं है। परन्तु जिस प्रकार मिठया दूधको कड़ाहीमे चढ़ाकर भट्टीकी आँचसे दूध और पानीको अलग अलग कर देता है उसी प्रकार ज्ञानी प्राणी आत्मा और पुद्गलको अपने भेदज्ञानके द्वारा अलग-अलग कर देता है। भले ही आत्माके साथ पुद्गलका जो सम्बन्ध है वह अनादिकालसे चला आ रहा हो पर इससे अनन्त काल तक चला जावेगा यह व्याप्ति नहीं। भव्य जीवके आत्मा और पुद्गलका सम्बन्ध अनादि-सान्त माना गया है। सुवर्णके साथ किट्टकालिमादिका संसर्ग कबसे है यह कौन जानता है। परन्तु अग्निके संयोगसे दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि दोनों पृथक् पृथक् हैं। इसी प्रकार संसार दशामे जीव और पुद्गल एकमेक अनुभवमें आता है परन्तु भेद-ज्ञानके द्वारा दोनों ही पृथक् पृथक् हो जाते हैं। अतः प्रयत्न ऐसा करो कि जिससे परसे भिन्न आत्माका अस्तित्व आपकी दृष्टिमे

आ जावे । डालमियांनगरमे हम आठ दिन रहे । बाबू जगत्-प्रसादजी, अयोध्याप्रसादजी गोयलीय तथा पं० चेतनलाल जी आदिने सब व्यवस्था ठीक रक्खी । यहाँ साहु शान्तिप्रसाद जी ने स्वयं अष्टपाहुड़का स्वाध्याय कर सबको श्रवण कराया । शान्तिसे समय बीता । द्वि० वैशाख शुक्ला ११ को साहु जी कलकत्ता चले गये । पंडित महाशय बनारस चले गये और हम १२ को प्रातःकाल ५ बजे पार्श्वप्रभुकी ओर बढ़ गये ।

गयामें चातुर्मासका निश्चय

डालमियाँनगरसे चलकर शोणभद्र नदी (सोनभद्रा नदी) को नाव द्वारा पारकर नहरके ऊपर एक बंगलामें ठहर गये । स्थान अच्छा था परन्तु संपर्क अच्छा न होनेसे हृदयमे शान्ति नहीं आई । संध्याकाल यहाँसे चलकर बारौन पहुँच गये । रात्रिको विश्राम किया । तदनन्तर प्रातःकाल ५$\frac{3}{4}$ मील चलकर पुनपुन गङ्गापर ठहर गये । ठहरनेके लिये १ कुटिया थी, उसीमे ठहर गये । गर्मीका प्रकोप रहा परन्तु श्रीसोनू बाबू गयाके रहनेसे तत्त्व चर्चा का अच्छा प्रभाव रहा । परमार्थसे गर्मीकी व्याकुलतासे विशेष आनन्द नहीं रहा । तृषा परीषहका अनुभव किया । धन्य है उन मुनिराजोंको जो वर्षा, शीत उष्णकालमें नाना प्रकारके कष्ट उठाकर आत्मध्यानसे विचलित नहीं होते । वास्तवमे आत्मज्ञानकी महिमा अपरम्पार है जो संसार बन्धनका नाश करनेवाला है । रात्रि भी यहीं बिताई ।

दूसरे दिन प्रातःकाल पुनपुन गङ्गासे ४ मील चलकर जोगिया-में १ महाजनके कोठामें निवास किया । यहीं पर भोजन हुआ ।

साथ मे २ अन्य त्यागियोंका भी भोजन हुआ। सायंकालका भ्रमण स्थगित रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर औरङ्गावाद आगये। यहाँपर ईसरीसे पं० शिखरचन्द्रजी आ गये। आप वहुत ही योग्य तथा शान्तस्वभावी विद्वान् हैं। आपने शिष्ट व्यवहार किया। आजीविकासे चिन्तित हैं फिर भी अन्तरङ्गसे तत्त्व विचारमे मग्न रहते हैं। समाजकी दशा क्या कहे ? वह व्यर्थ कार्योंमे धनका दुरुपयोग करनेमे नहीं चूकती पर ज्ञान भण्डार आजीविकाके विना चिन्तातुर रहते है। एक समय तो वह आ गया था कि जव संस्कृत विद्याके जानकार विद्वान् समाजमे वहुत ही विरल हो गये थे परन्तु आज सौभाग्य मानना चाहिये कि इस विद्याके जानकार विद्वान् समाजमें उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा जैनधर्म तथा जैनसमाजका उत्कर्ष वढ़ा है। यदि जैनसमाज उदारतासे इनकी रक्षा करे तो वे स्थिर रहकर समाज तथा धर्मका उत्कर्ष वढ़ानेमे समर्थ होंगे। आपके आनेसे आज तत्त्वचर्चाका अच्छा आनन्द रहा।

आगामी दिन प्रातःकाल औरंगावादसे ४ मील चलकर औरा आ गये। यहां १ कुनमीके मकानमें ठहर गये। मकान दोहरा था इसलिए गर्मीका प्रकोप न रहा। दिन सानन्द व्यतीत हुआ। ग्रामीण जनता दर्शनके लिये वहुत आई। मुझे लोगोंकी सरलता देख अनुभव हुआ कि यदि इन्हें कोई कल्याणका मार्ग वतानेवाला हो तो इनका उद्धार हो जाय। आज कल लोग व्याख्यान या उपदेश शहरके उन लोगोंको देने जाते हैं जिनके हृदय निरन्तर विषयकी लालसासे मलिन रहते हैं। उन सरल ग्रामीण मनुष्योंके पास कोई भी व्याख्याता या उपदेशक नहीं पहुँचते जिनके हृदय अत्यन्त उज्ज्वल तथा पापसे भीरु हैं।

दूसरे दिन प्रातः औरासे ४½ मील चलकर शिवगंजमें निवास

अन्तरङ्गसे मिलना कठिन है। यहाँ एक महानुभावने पूछा कि कल्याण किस प्रकार हो सकता है? मैंने कहा—इसके लिये अधिक प्रयासकी आवश्यकता नहीं, यह कार्य तो अत्यन्त सरल है। मेरा उत्तर सुनकर वह आश्चर्यमे पड़ गया तथा कहने लगा कि यह कैसे? मैंने कहा कि इसमे आश्चर्यकी बात क्या है? वर्तमानमें जो तुम्हारी अवस्था है वह कैसी है? इसका उत्तर दो। उसने कहा कि दुःखमय है। मैंने पूछा कि दुःखमय क्यों है? उसने उत्तर दिया कि आकुलताकी जननी है। तब मैंने कहा कि अब किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे आधीन है। जिन कारणोंसे दुःख होता है उन्हें त्याग दो, कल्याण निश्चित है। एक आदमी सूर्य आतापमे बैठकर गर्मीके दुःखसे दुखी हो रहा है। यदि वह आतापसे हटकर छायामे बैठ जाय तो अनायास ही उसका दुःख दूर हो सकता है। दुःख इस बातका है कि हम लोग सुख दुःख आदि प्रत्येक कार्यमे परमुखापेक्षी बनकर स्वकीय शक्तिको भूल गये हैं।

यहाँ वाचनालय खोलनेके लिये लोगोंने कहा। मैंने उत्तर दिया कि खोलिये, आपकी सामर्थ्यके बाहरका कार्य नहीं। आप जितना खर्च अपने भोजनाच्छादनादिमें करते हैं उस पर प्रति रुपया)। एक पैसा एक पेटीमें डालते जाइये। समझिये हमारा एक पैसा अधिक खर्च हो गया है। इस विधिसे आपके पास कुछ समयमें इतना द्रव्य एकत्रित हो जायगा कि उससे आप वाचनालय क्या बड़ा भारी सरस्वती भवन भी खोल सकेंगे। सबने यह कार्य ३ वर्षके लिये स्वीकृत किया। एक दिन राजपुरसे ज्योतिप्रसाद शीलचन्द्रजी आये। आप बहुत ही सज्जन तथा उदार हैं। आपके धार्मिक विचार हैं। यहाँ ५ दिन लग गये।

एकादशीको प्रातःकाल ४½ मील चलकर डबुहा ग्राममे ठहर

श्री ब्र० पतासीबाई जीके विषयमें क्या लिखूँ ? वह तो अत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे अनुराग रखनेवाली हैं। आपको देखकर बाईजीका स्मरण हो आता है।

[पृ० ४५३]

गये। यहाँ दिनभर रहकर शामको १ मील आगे चले तथा १ भूमिहारके स्थान पर ठहर गये। बहुत आदरसे उसने रक्खा। भोजनके लिए भी अत्यन्त आग्रह किया। प्रातःकाल यहाँसे ४ मील प्रस्थान कर गुण्डू आगये। यहाँ एक फूलचन्द्रजी जैनका घर है उन्हींके यहाँ ठहर गये। भोजन भी उन्हींके घर हुआ। प्रकृतिका सज्जन है। गर्मीका प्रकोप पूर्णरूपसे था परन्तु सहन करना पड़ा। सायंकाल यहाँसे चलकर सलेमपुर पहुँच गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ४ मील चलकर परैया आगये। यहाँ १ गुवालाके घर निवास किया। यहाँपर आहार देनेके लिये गयासे कई औरतें आईं उन्होंने भक्तिसे आहार कराया। दुपहरी १ झोपड़ीमे बिताई। सायंकाल यहाँसे २ मील चलकर १ पाठशालामे ठहर गये। यहाँपर एक ग्रामसे २० बालक तथा आदमी दर्शनार्थ आये। लोगोंमें ऐसी श्रद्धा हो गई है कि ये महात्मा हैं परन्तु महात्मा तो अत्यन्त निर्विकार जीव होता है यह कौन पूछनेवाला है।

ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्याको यहाँसे ५ बजे चलकर ७½ बजे गया आगये। बड़े ठाट बाटके साथ स्वागत हुआ। अन्तमें जैन भवनमें ठहर गये। बहुत रम्य स्थान है। समीप ही फल्गु नदी बहती है। भवनसे निकलते ही दो मन्दिर हैं—१ प्राचीन और १ नया। यहाँ जैनियोंके बहुत घर हैं। सम्पन्न हैं। श्री चम्पालाल सेठीने मुझे इस ओर लानेमें बहुत प्रयत्न किया है। उन्हींका प्रभाव था जो मैं इस वृद्धावस्थामें इतना लम्बा मार्ग चलनेके लिए उद्यत हुआ और यहाँतक आगया। आप घरसे निःस्पृह रहते हैं। बाबू सोनूलालजी भी धार्मिक व्यक्ति हैं। आपका अधिकांश समय धार्मिक कार्योंमें ही व्यतीत होता है। श्री ब्र० पतासीबाईजी के विषयमें क्या लिखूँ? वह तो अत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे अनुराग रखनेवाली हैं। आपको देखकर बाईजीका स्मरण हो आता है। आपके प्रभावसे

यहाँ स्त्री समाजमे स्वाध्यायकी अच्छी प्रवृत्ति चली है। कई स्त्रियाँ तो शास्त्रका अच्छा ज्ञान रखती हैं।

मन्दिरमे शास्त्रका प्रवचन हुआ। प्रकरण था स्व द्रव्य और पर द्रव्यका। ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा स्व द्रव्य है और कर्म नोकर्म पर द्रव्य हैं। अनादि कालसे यह जीव पर द्रव्यका ग्रहण कर उसका स्वामी बन रहा है। पर द्रव्यको अपना माननेमे अज्ञान ही मूल कारण है, अन्यथा ऐसा कौन विवेकी होगा जो परको जानता हुआ भी उसे ग्रहण करे। जिसका जो भाव है वही उसका स्व है और वही उसका स्वामी है। जब यह सिद्धान्त है तब ज्ञानी मनुष्य परका ग्रहण कैसे कर सकता है ? इस भवाटवीमे मार्ग प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मोह राजाकी यह अटवी है। इसके रक्षक रागद्वेष हैं। इनसे यह निरन्तर रक्षित रहती है। जीवोंका इससे निकलना अति कठिन है। जिन महापुरुषोंने अपनेको पहिचाना वे ही इससे निकल सकते हैं।

दूसरे दिन ईसरीसे ब्र० सुरेन्द्रनाथजी आ गये। आप बहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य हैं। आपका त्याग अतिनिर्मल है। स्वाध्यायके अति प्रेमी हैं। विनय गुणके भण्डार हैं। उदार भी हैं। कलकत्ता निवासी हैं। घरसे उदास रहते हैं। इतने निर्मोही हैं कि लड़का मोटरसे गिर पड़ा फिर भी कलकत्ता नहीं गये। एक दिन बाद श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तासे आये। आप अनुभवी दयालु भी हैं। आपका निवास अधिकतर कलकत्तामे रहता है। आप प्राचीन पद्धतिके रक्षक हैं। किसीके रौबमें नहीं आते। आपकी व्याख्यानशैली उत्तम है। आपने आकर बहुत ही प्रेमसे वार्तालाप किया। एक दिन डालमियानगरसे बाबू जगत्प्रसादजीका शुभागमन हुआ, साथमें पण्डित चेतनदासजी भी थे। आप अत्यन्त सरल स्वभावके हैं। कल्याण चाहते हैं। यद्यि उन्हें धार्मिक पुरुषों

का समागम मिले तो आपकी परिणति विशेषरूपसे निर्मल हो सकती है।

दिल्लीसे राजकृष्ण भी आये। आपने मूडविद्रीमे स्थित श्री धवलके फोटो लेनेका पूर्ण विचार कर लिया है। इस कार्यमें १५०००) व्यय होगा। आपका निश्चय है कि यदि यह रुपया कोई अन्य न देगा तो हम अपनी तरफसे लगा देंगे। काल पाकर आ जावेगा। आपका उत्साह और अदम्य साहस प्रशंसनीय है। संभव है आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जावे क्योंकि आपकी भावना अति निर्मल है। हमारा निजका विश्वास है कि यह कार्य अवश्य पूर्ण होगा। संसारमे जो दृढ़प्रतिज्ञ होता है उसके सर्व कार्य सफल होते हैं। पन्द्रह दिन रहनेके वाद आषाढ़ कृष्णा १ को विचार किया कि पार्श्व प्रभुकी निर्वाण भूमिपर पहुँचनेके संकल्पसे तूंने ग्रीष्मकालमे भी प्रयाण किया है। अव यहां निकटमें आकर उलझ जाना उत्तम नहीं। ईसरीसे पं० शिखरचन्द्रजी तथा ब्र० सोहनलालजी भी आ गये। गयावालोंको जब यह समाचार विदित हुआ तव वे यहीं चौमासाकी प्रेरणा करने लगे परन्तु हमने यही निश्चय प्रकट किया कि अव तो पार्श्वप्रभुकी शरणमें जाना चाहते हैं। मेरा उत्तर श्रवण कर लोग निराश हो गये। ईसरी जानेके लिये उद्यम किया कि आकाशमे सघन वादल छा गये, इससे विवश होकर इस दिन रुक जाना पड़ा।

आषाढ़ कृष्णा द्वितीया सं० २०१० के दिन दिनके २ वजेसे ४ मील चलकर १ क्षत्रियके वंगलापर ठहर गये। हमारे चले जानेसे गयावालोंको वहुत खेद हुआ। हमको भी कुछ विकल्प हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल वंगलासे १ मील चले परन्तु मार्गमें कहीं शुष्क प्रदेश नहीं मिला। सब ओर हरी-हरी घास तथा मार्गमे जन्तुओंकी प्रवलता दिखी। ऐसे मार्गपर चलना हृदयमे अरुचिकर हुआ

जिससे लौटकर उसी बंगलामें आ गये। गयासे स्वर्गीय दानूमल्ल-जीकी धर्मपत्नी आदि ४ स्त्रियोंने आकर आहार कराया। पश्चात् २ बजे यहाँसे प्रस्थान कर वापिस गया पहुँच गये और चार मास वहीं रहनेका निश्चय कर लिया। गयाके लोग प्रसन्न हो गये परन्तु ब्र० सोहनलाल तथा पं० शिखरचन्द्रजीको मनमे अत्यन्त खेद हुआ। श्यामलालजी तपस्वी भी खिन्न थे, अतः वे ईसरी चले गये।

स्मृतिकी रेखायें

यहाँ पं० राजकुमार जी शास्त्री पहलेसे ही विद्यमान थे तथा यथावसर अन्य विद्वान् भी पधारते रहते थे इसलिये लोगोंको प्रवचन-का अच्छा लाभ मिलता रहता था। श्रावण कृष्णा १० को प्रातः-काल ५ बजे विनोवा जी भावे आये, १५ मिनट ठहरे। आप वहुत ही शान्त स्वभावके हैं। आपका भाव अत्यन्त निर्मल है। सर्व-प्राणी सुखके पात्र हैं। तथा कोई दुःखका अनुभव न करे यह मैत्री भावना आपमें पाई जाती है। 'दुःखानुत्पत्त्यभिलापी मैत्री' यही तो मैत्रीका लक्षण है। देहातोंमें गरीव जनता खेती योग्य भूमिसे रहित न रहे इस भावनासे प्रेरित होकर आप परिकरके साथ भ्रमण करते हैं और सम्पन्न मनुष्योंसे भूमि माँगकर गरीवोंके लिये वितरण करते हैं। उत्तम कार्य है। यदि जनतामें ऐसी उदारता आ जावे कि हम आवश्यकतासे अधिक भूमिके स्वामी न वनें तथा वह अतिरिक्त भूमि भूमिहीन मनुष्योंके लिये दे दें तो देशका कल्याण अनायास हो जावे।

श्रावण शुक्ला ८ सं० २०१० को श्री साहु शान्तिप्रसाद जी आये। १ घण्टा मन्दिरमें रहे। गयावालोंने उन्हें और उन्होंने

श्रावण कृष्णा १० को प्रातःकाल ५ बजे विनोवा जी भावे आये, १५ मिनट ठहरे।

[पृ० ४५६]
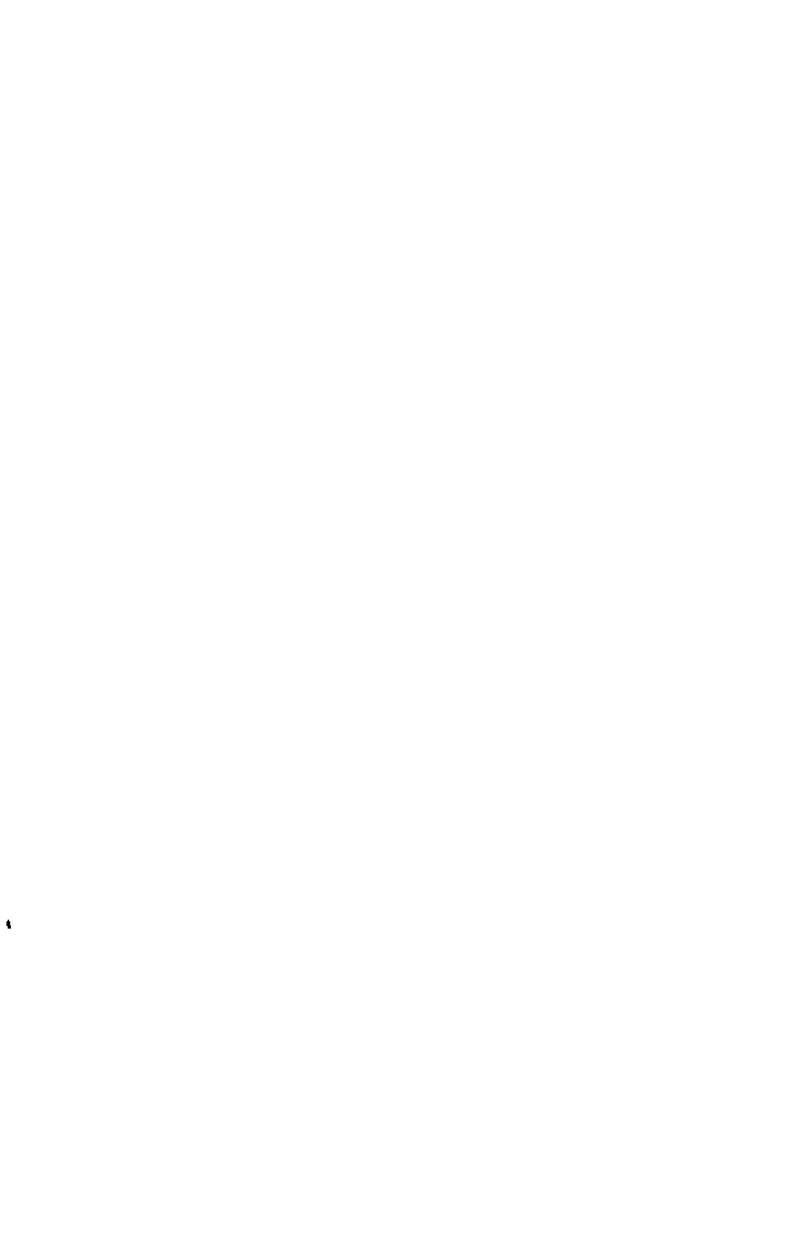
गयावालोंको धन्यवाद दिया। भाद्रपद शुक्ला ३ को टाउन हालमें विनोबाभावेकी जयन्ती थी। हम भी गये। उत्सवका आयोजन सफल हुआ। पर्यूषण पर्वमें तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन करनेके लिये बनारससे श्री पं० कैलाशचन्द्रजी साहब पधारे। आपकी प्रवचन-शैली उत्तम तथा वाणी मिष्ट है। त्याग धर्मके दिन स्याद्वाद विद्यालय बनारसको अच्छा दान मिल गया।

भाद्र शुक्ला १४ के दिन पुराने गयामें श्री पार्श्वनाथ स्वामीके दर्शन किये। यहाँपर पूजाका प्रबन्ध अच्छा है। गानतानके साथ पूजा होती है। आज १ बजे दिनसे ३ बजे दिनतक श्री पतासी-बाईके जन्म दिवसका उत्सव था। जनता अच्छी संख्यामें थी। आजके दिन अधिक स्त्री पुरुष उपस्थित थे। मन्दिरसे बाहर जुलूस भी गया।

पर्वके बाद आश्विन कृष्णा ४ को वर्णी जयन्तीका उत्सव था। बाहरसे अनेक महानुभाव आये थे। आरासे पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य भी आये थे। द्वितीय टाउनहालमें व्याख्यान सभाका आयोजन था। श्री नेमिचन्द्रजीने अहिंसा तत्त्वपर अच्छा प्रकाश डाला। आपने कहा कि हम जिस मुहल्लामें रहते हैं उसमे रहनेवाले सब लोगोंके साथ हमें कुटुम्ब जैसा व्यवहार करना चाहिये। यदि किसीके घर किसी वस्तुकी कमी है तो उसकी पूर्ति करना चाहिये। हम लोग अहिंसाके नाम पर छोटे छोटे जीव जन्तुओंकी तो रक्षा करते हैं परन्तु मनुष्योंकी उपेक्षा कर देते हैं।

आश्विन कृष्णा दशमी २ अक्टूबरको यहाँ मन्नू लाइब्रेरी मे गांधी जयन्तीका उत्सव था। कोई ५०० महिलायें वहाँ पर थीं। हम लोगोंका भी निमन्त्रण था, अतः गये थे। गांधीजी १ त्यागी पुरुष थे। जो काम वह करते थे। निष्कपटभावसे करते थे। इसीसे उनका प्रभाव पूर्ण जनताके हृदयंगम था। यही कारण था कि इतना

कोई भी अंश अन्यरूप नहीं हुआ। जीव द्रव्य न तो पुद्गल हुआ और न पुद्गल जीव हुआ। केवल सुवर्ण-रजतका गलनेसे एक पिण्ड होगया। उस पिण्डमें सुवर्ण रजत अपनी अपनी मात्रामें उतने ही रहे परन्तु अपनी शुद्ध परिणतिको दोनोंने त्याग दिया एवं जीव और पुद्गल भी बन्धावस्थामें दोनों ही अपने अपने स्वरूपसे च्युत हो गये।'

'ऊपरी चमक दमकसे आभ्यन्तरकी शुद्धि नहीं होती।'

'आत्म द्रव्य की सफलता इसीमें है कि अपनी परिणतिको परमें न फंसावे। पर अपना होता नहीं और न हो सकता है। संसारमें आजतक ऐसा कोई प्रयोग न बन सका जो परको अपना बना सके और आपको पर बना सके।'

'स्नेह ही बन्धनका जनक है। यदि संसारमें नहीं फँसना है तो परका संपर्क त्यागना ही भद्र है।'

'आत्मामें कल्याण शक्तिरूपसे विद्यमान है परन्तु हमने उसे औपाधिक भावों द्वारा ढक रक्खा है। यदि ये न हों तो उसके विकास होनेमें विलम्ब न हो।'

'आत्मा अनादिकालसे परके साथ सम्बन्ध कर रहा है और उनके उदयकालमें नाना विकार भावोंका कर्ता बनता है। यही कारण है कि अपने ऊपर इसका अधिकार नहीं।'

'जो आत्मा परसे ही अपना कल्याण और अकल्याण मानता है वह पराधीनताको स्वयं अंगीकार करता है।'

'समाजमें अब आदर विद्वत्ताका नहीं किन्तु वाचालताका रह गया है।'

'अन्तरङ्गकी परिणतिको निर्मल करना ही पुरुषार्थ है। जिसने मनुष्य जन्मको पाकर अपनी परिणतिकी मलिनतासे रक्षा न की उसका मनुष्य जन्म यों ही गया।'

'परिग्रहका अर्जन करना ही संसारका मूल कारण है। आत्मा अनादिसे परिग्रहके चक्रमें है, इससे पीछा छूटे तो आत्मदृष्टि आवे अथवा जब आत्मदृष्टि आवे तब परिग्रहसे पीछा छूटे।'

'जिसने रागादि भावोंपर विजय प्राप्त करली वही मनुष्यताका पात्र है।'

'चित्तको अधिक मत भ्रमाओ, चित्तकी कलुषता ही दुःखका मूल कारण है और कलुषताका मूल कारण परमे निजत्व बुद्धि है।'

'कड़ुवी तूंवड़ी किसी कामकी नहीं फिर भी उसके द्वारा नदी पार की जा सकती है इसी प्रकार मनुष्यका शरीर किसी कामका नहीं फिर भी उससे संसार सागर पार किया जा सकता है।'

'अबोध बालक एक पैसाका खिलौना टूटने पर रो उठता है पर घरमे आग लगनेपर नहीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि बालक खिलौनाको अपना मानता है और घरको बापका।'

'संसारमे नाना मनुष्योंके व्यवहार देख लक्ष्य स्थिर करने का प्रयास मत करो किन्तु अपनी शक्ति देख आत्मीय लक्ष्य स्थिर करो।'

'जनताकी प्रशंसाके लोभी मत बनो। प्रशंसा चाहना ही अज्ञानता द्योतक है।'

'अन्तरङ्ग सामर्थ्यके प्रभावसे ही आत्मा कल्याणका पात्र होता है। कल्याण कहीं अन्यत्र नहीं और न अन्य उसका उत्पादक है। जब तुम स्वयं विपरीत भावके कर्ता बनते हो तब स्वयं अपने स्वभावके घातक हो जाते हो।'

'शान्तिका मूल रागादिभावोंमे उदासीनता है। रागादिभावोंमें न तो मित्रता करो और न शत्रुता। यह भाव स्वाभाविक नहीं।'

'विश्वविद्यामे पाण्डित्य हो उत्तम है परन्तु जिनको आत्मपरिचय हो गया उनके समक्ष उस ज्ञानका कोई महत्त्व नहीं।'

'धर्मकी परिभाषा प्रत्येक पुरुष करता है परन्तु उसरूप प्रवृत्ति करना किसी महापुरुषके द्वारा ही होता है।'

'गुरु मार्गदर्शक हैं चलानेवाले नहीं। सूर्य मार्गप्रकाशक है चलानेवाला नहीं। यदि कोई निरन्तर सूर्यकी उपासना करे और मार्ग चले नहीं तो क्या इच्छित स्थानपर पहुँच जावेगा।'

'जिस आत्मामें अनन्त संसारके निर्माणकी शक्ति है। उसमें उसके नाश करनेकी भी शक्ति है।'

'आजकल मनुष्य मनुष्यताका आदर करना भूल गया, केवल प्रशंसाका लोभी होगया है।'

'संसारमें दुःखका मूल कारण आशाके अतिरिक्त परको निज मानना है।'

'जानना उतना कठिन नहीं जितना उपयोग द्वारा कर्तव्यमें लाना कठिन है। अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गको यथार्थ जानता है परन्तु तदनुरूप आचरण नहीं कर पाता।'

'संसारकी प्रशंसासे न कुछ लाभ है और न निन्दासे कुछ हानि। लाभ तो अपने परिणामोंको निर्मल करनेसे ही होगा।'

'चित्त भूमिकी मलिनता ही संसारकी जननी है। संसारको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना भी संसारका कारण है।'

'धर्म क्या है ? यह तो वही आत्मा जानता है जिसने संसारके प्रपञ्चोंको त्याग निजकी शरण ली है।'

'अनन्तकाल बीत गया पर परको अपनाना न त्यागा, इसीका फल अनन्त संसार है।'

'धीरतासे च्युत नहीं होना महान् आत्माका कार्य है।'

'किसीके प्रभावमें आना ही इसका द्योतक है कि आत्मीय स्वत्वसे च्युत है।'

—

'प्रतिदिन जो कथा करते हो यदि उसमेंसे एकका भी पालन करो तो दुःखसे मुक्त हो सकते हो।'

'आत्मा और अनात्माका भेद ज्ञान ही संसार छेदका उपाय है।'

लघु यात्रा

हृदयमें गिरिराजके दर्शन करनेकी उत्कट उत्सुकता थी इसलिये यहाँसे प्रस्थान करनेकी बात सोच ही रहा था कि कलकत्तासे श्री प्यारेलालजी भगत तथा ईसरीसे ब्र० सोहनलालजी व सेठ भंवरीलालजी आ गये। इन सबकी प्रेरणासे शीघ्र ही प्रस्थान करनेका निश्चय कर लिया। फलस्वरूप कार्तिक सुदी २ सं० २०१० रविवारको १ बजे गयासे प्रस्थान कर दिया। ५०० नर-नारी भेजने आये। संसारमें राग बुरी वस्तु है। जहाँ अधिक संपर्क हुआ वहीं राग अपने पैर फैला देता है। चार पाँच माहके संपर्कसे गयाके लोगोंका यह भाव हो गया कि ये हमारे हितकर्ता हैं अतः इनका समागम निरन्तर बना रहे तो अच्छा है। मेरे वहाँसे चलनेपर उन्हे बहुत दुःख हुआ। पर संसारके समस्त पदार्थ मनुष्यकी इच्छानुसार तो नहीं परिणमते। गयासे ४३ मील चलकर संध्याकाल हरिओ ग्राम पहुँच गये। यहाँ कोडरमासे भी कुछ सज्जन आये। रात्रि सानन्द व्यतीत हुई। प्रातः ६ बजे ३ मील चलकर मस्कुरा ग्राम आगये। यहाँ बँगलामें ठहर गये। गयासे चौका आये थे, उसमें भोजन किया। यहाँ जैनोंके घर नहीं हैं। मध्याह्नकी सामायिकके बाद १ बजे यहाँसे प्रस्थान कर जिन्दापुरके स्कूलमें विश्राम किया।

आगामी दिन प्रातःकाल ६ बजे चलकर ७।। बजे कर्मणीके डाँक बॅगलामें ठहर गये। गयावाले सूरजमलजी तथा रतन बाबूकी मा के चौकेमें आहार हुआ। स्थान स्वच्छ था। साथमें लगभग २५ मनुष्य होंगे। सबका भोजन हुआ। १ बजे चलकर २।। बजे एक स्थानपर ठहर गये। वहीं कुछ उपदेश दिया। नगरके कोलाहल पूर्ण स्थानसे निकलकर जब जंगलमें पहुँचते हैं तो मनमें अपने आप शान्ति आजाती है और उन दिगम्बर मुनियोंके ऊपर सुतरां ध्यान आकर्षित हो जाता है जो जंगलके स्वच्छ वातावरणमे ही अपना समय यापन करते थे। रात्रिको जहाँ विश्राम किया वहाँ ५० घर मुसलमानोंके थे। सबने सौमनस्य व शिष्टताका व्यवहार किया। यहाँसे अगले दिन प्रातः ६ बजे चलकर ८ बजे डोभीके डांक बंगलामे पहुंच गये। प्रवचनके बाद गयावाले सोनू बाबूके चौकामें आहार हुआ। मध्यान्हके बाद चलकर रात्रिमे भदैया ग्रामके सरकारी मकानकी दहलानमें विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः ६।। बजे ६ मील चलकर ८।। बजे कादुदाग ग्रामके डाक बंगलामें पहुँच गये। अबतक ४० मनुष्योका संघ होगया था। श्री विहारीलालजी गया-वालोंके यहाँ आहार हुआ। रात्रिको भी यहीं विश्राम किया।

अन्य दिन प्रायः ८ मील चलकर ६।। बजे नदी पार कर जंगलमें भोजन हुआ। कोडरमावालोंका चौका था, उसीमें भोजन हुआ। कोडरमासे श्री गोरीलालजी आदि ६ महानुभाव आये। सायंकाल चलकर भलुआके डाक बंगलामे विश्राम किया। आज अधिक चलना पड़ा इसलिए शरीरमे थकावटका अनुभव होने लगा। दूसरे दिन प्रातः ६ बजे चलकर ६। बजे चौपारन पहुँच गये। गयाके बाद यहीं पर जिन मन्दिर मिला। श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शन कर हृदयमे अपार आनन्द हुआ। आज अष्टमीका दिन था। ब्र० नाथूराम शास्त्रीने शास्त्र प्रवचन किया। दूसरे दिन मन्दिरमें प्रातः प्रवचन

हुआ। दिनमें एक बजे सभा हुई जिसमें भगतजीका भाषण हुआ। हमने भी कुछ कहा। रात्रिको ब्र० नाथूराम तथा भगत सुमेरुचन्द्रजी के भाषण हुए। लोगोंने स्वाध्यायका नियम लिया। तीसरे दिन श्री सोहनलालजीके यहाँ आहार कर २ बजे आगेके लिए प्रस्थान कर दिया। ग्रामके लोगोंने बहुत ही शिष्टतासे व्यवहार किया। यहाँसे कोडरमा १४ मील है। रात्रि एक डाक बंगलामें व्यतीत की।

आगामी दिन प्रातःकाल ४ मील चलकर ८॥ बजे रामपुर आ गये। यहाँ कोडरमासे चौका आया था, उसीमें आहार हुआ। यहाँ कोडरमासे २० स्त्री पुरुप आ गये। अपराह्न काल चलकर एक मढ़ियाके समीप विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः चलकर भोंडीके स्कूलमें ठहरे। वहींपर आहार हुआ। संध्याकाल चलकर विन्दामें विश्राम किया। आगामी दिन प्रातः ४ मील चलकर एक स्कूलमें ठहरे। कोडरमावालोंके चौकामे आहार हुआ। वहाँसे १ बजे ४ मील चलकर ३॥ बजे भूमरीतलैया आ गये। लोगोंने उत्साहसे स्वागत कर धर्मशालामें ठहरा दिया।

भूमरीतलैया ग्रामका नाम है और स्टेशनका नाम कोडरमा है। यहाँ जैनियोंके अच्छे घर हैं। मन्दिर अच्छा है। लोगोंमे धार्मिक भावना उत्तम है। यहाँ श्री जगन्नाथ जी पाण्डयाने आहार होनेके उपलक्ष्यमें पाठशाला, औषधालय तथा चैत्यालय बनानेके लिये अच्छा दान किया। श्री पं० गोविन्दरामजी यहाँ अच्छे विद्वान् हैं। बनारससे पं० कैलाशचन्द्रजी भी आ गये। आपका अहिंसा व मानवधर्मपर आमसभामें उत्तम भाषण हुआ। यहाँ १५ दिन लग गये।

अगहन वदी ११ सं० २०१० को १ बजे प्रस्थान कर चिगलावर, जयनगर तथा फरसाबादमें क्रमशः ठहरते हुए त्रयोदशीके दिन सरिया (हजारीबाग रोड) आ गये। यहाँ स्टेशनके पास एक सुन्दर

मन्दिर है। ग्राममें एक चैत्यालय है। सेठ भँवरीलालजीके यहाँ आहार हुआ। यहाँ आरासे ब्र० चन्दाबाईजी आ गईं। २बजे सभा हुई जिसमें भगतजी तथा नाथूरामजीके भाषण हुए। यहाँ ३दिन लग गये। यहाँसे मुन्सरिया तथा चौधरीबादमे विश्राम किया। यह लघुयात्रा सुखद रही।

भारहीनो बभूव

अगहन सुदी ३ संवत् २०१० को प्रातः चौधरीबांदसे चलकर ८½ बजते-बजते ईसरी पहुँच गये। चित्तमें बड़ा हर्ष हुआ। एक बार यहाँ आकर पुनः परिवर्तन करनेके लिये निकल पड़ा था और उस चक्रमें फँस १० वर्ष यत्र तत्र भटकता रहा। शरीरमे शक्ति नहीं थी फिर भी भटकना पड़ा। आज पुनः श्रीपार्श्व प्रभुकी निर्वाण भूमिके समीप आ जानेसे हृदयमे जो आनन्द हुआ वह शब्दोंके गोचर नहीं। यहाँके समस्त त्यागियों तथा परिकर के अन्य लोगोंको भी महान् हर्ष हुआ।

देखते देखते ईसरीमें बहुत परिवर्तन हो गया है। जहाँ पहले एक साधारणसी धर्मशाला थी वहाँ आज विशाल पक्की धर्मशाला है, सुन्दर मन्दिर है, व्रतीजनोंके आत्मकल्याणके अर्थ उदासीनाश्रम है और छात्रोंके हितार्थ एक पाठशाला है। ग्रामकी उन्नति भी पहलेकी अपेक्षा अधिक हो गई है। यहाँ आनेपर मुझे ऐसा लगने लगा जैसे 'भारहीनो बभूव'—शिरसे भारी भार उतर गया हो। उदासीनाश्रमके अहातेमें प्रवचनके लिये एक सुन्दर भवन अलगसे बन गया है। प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होनेपर शास्त्र प्रवचन

होता है। अनन्तर भोजनके बाद ११½ बजेसे सामायिक सब त्यागीवर्ग करते हैं। फिर २ बजेसे शास्त्रप्रवचन होता है। अनन्तर सायंकालकी सामायिक और रात्रिके प्रारम्भका शास्त्रप्रवचन होता है। सब त्यागी तथा धर्मलाभकी भावनासे यहाँ रहनेवाले अन्य महानुभाव इन सब कार्यक्रमोंमें शामिल रहते हैं। मैं भी सब कार्यक्रमोंमें पहुँच जाता था। प्रातःकालका प्रवचन मैं कर देता था परन्तु मध्याह्न और रात्रिके प्रवचन अन्य विद्वान् करते थे। मैं श्रवण करता था। प्रातःकालके प्रवचनमें कभी समयसार, कभी प्रवचनसार, कभी पञ्चास्तिकाय, कभी नियमसार आदि कुन्दकुन्द स्वामीके ग्रन्थ रहते थे। कुन्दकुन्द स्वामीने अपने ग्रन्थोंमे जो पदार्थका वर्णन किया है वह बहुत ही सरलताके साथ वस्तुके शुद्ध स्वरूपको बतलानेवाला है। मेरी श्रद्धा तो यह है कि इस युगमे कुन्दकुन्दके समान वस्तुतत्त्वका निरूपण करनेवाला दूसरा आचार्य नहीं हुआ। मध्याह्नमें सैद्धान्तिक ग्रन्थका विवेचन रहता था और रात्रिको सर्वसाधारणोपयोगी हिन्दी ग्रन्थ तथा प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंका स्वाध्याय चलता था।

यहाँ बाहरसे अनेक विद्वान् तथा विशिष्ट महानुभाव यदा कदा आते रहते हैं। उनके भोजनकी व्यवस्थाके लिये रायबहादुर श्रीचाँदमलजी रांचीवालोंकी ओरसे एक चौका खोल दिया गया जिसमे अतिथियोंके भोजनकी उत्तम व्यवस्था बन गई। यहाँका प्राकृतिक दृश्य भी नयनाभिराम है। पास ही हरे भरे गिरिराजके दर्शन होते हैं। श्रीपार्श्व प्रभुका निर्वाण स्थान अपनी निराली शोभासे दर्शकोंको अपनी ओर अकर्षित करता रहता है। आकाशको चीरती हुई गिरिराजकी हरी भरी चोटियाँ कभी तो धूमिल घनघटासे आच्छादित हो जाती हैं और कभी स्वच्छ-अनावृत दिखाई देती हैं। प्रातःकालके समय पर्वतकी हरियालीपर जब दिनकरकी लाल

लाल किरणें पड़ती हैं तब एक मनोहर दृश्य दिखाई देता है। लम्बी चौड़ी चट्टानें और वृक्षोंकी शीतल छायाएं ध्यानके लिये बलात् प्रेरणा देती हैं।

धर्म साधनकी भावनासे यहाँ चारों तरफकी जनता सर्वदा आती रहती है। स्टेशन छोटा है पर कलकत्ताके मार्गमे होनेसे गाड़ियोंका यातायात प्रायः अहर्निश जारी रहता है। मोटरोंका आवागमन भी यहाँसे पर्याप्त होने लगा है। अगहन सुदी ६ को श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तावालोंकी जयन्तीका उत्सव हुआ। आप विशिष्ट तथा ज्ञानवान् मनुष्य हैं। आश्रमके अधिष्ठाता हैं। २ बजे दिनसे जुलूस निकला और उसके बाद सभा हुई जिसमे श्रद्धाञ्जलियां समर्पित की गईं। स्कूलके छात्रोंको किसमिस वितरण की गई। श्रीगिरिराजकी वन्दनाका हृदयमे बहुत अनुराग था अतः अगहन सुदी १० को मधुवनके लिये प्रस्थान किया। बीचमे मटियो नामक ग्राममें रात्रि व्यतीत की। तदनन्तर प्रातः चलकर मधुवन पहुँच गये। द्वादशीको प्रातः वन्दनार्थ गिरिराज पर गये। साथमे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी, ब्र० नाथूरामजी तथा ब्र० मंगलसेनजी थे। यात्रियोंकी भीड़ बहुत थी। भक्तिसे भरे नर-नारी पुण्य पाठ पढ़ते हुए पर्वतपर चढ़ रहे थे। जिस स्थानसे अनन्तानन्त मुनिराज कर्मबन्धन काटकर निर्वाण धामको प्राप्त हुए उस स्थानपर पहुँचनेसे भावोंमे सातिशय विशुद्धता आ जाय इसमे आश्चर्य नहीं। शुक्लपक्ष था अत चारों ओर स्पष्ट चांदनी छिटक रही थी। मार्गके दोनों ओर निस्तब्ध वृक्षपंक्ति खड़ी थी। श्रीकुन्थुनाथ भगवान्की टोंकपर पहुँच गये। सूर्योदय कालकी लाल लाल आभा वृक्षोंकी हरी-भरी चोटियोंपर अनुपम दृश्य उपस्थित कर रही थी। क्रम क्रमसे समस्त टोंकोंकी वन्दनाकर १० बजे श्रीपार्श्वनाथ भगवानके निर्वाण स्थान-पर पहुँच गये। वन्दना पूर्ण होनेपर हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ।

श्री गिरिराजकी वन्दनाका हृदयमें बहुत अनुराग था, अतः
अगहन सुदी १० को मधुवनके लिए प्रस्थान किया।

[पृ० ४६८]

श्रीसमन्तभद्रस्वामीने पार्श्वनाथ भगवान्‌का जो स्तोत्र लिखा है उसे पढ़कर चित्तमे शान्ति आई। यहीं पर मध्याह्नकी सामायिककर दिनके ३½ बजे मधुवन वापिस आ गये और श्रीपन्नालालजी चौधरी के यहाँ आहार किया। भक्तिका प्राबल्य देखो कि स्त्रियां तथा आठ आठ वर्षके बच्चे भी १८ मीलका पहाड़ी मार्ग चलकर भी खेदका अनुभव नहीं करते। जो स्त्रियाँ अन्यत्र २ मील चलनेमे भी कष्टका अनुभव करती हैं वे यहाँ १८ मीलका लम्बा मार्ग एक साथ चलकर भी कष्टका अनुभव नहीं करतीं। यथार्थ बात यह है कि उस समय उनका उपयोग दूसरी ही ओर रहता है। तीन चार दिन मधुवनमे रहे। नीचे तेरहपन्थी कोठीमें श्रीभगवान् पार्श्वनाथकी विशाल प्रतिमा विराजमान है। तथा श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोंके मन्दिरमें श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्‌की भी मनोज्ञ प्रतिमा है। यहाँसे चलकर पुनः ईसरी वापिस आ गये। यहाँ कलकत्तानिवासी श्री सेठ शान्तिप्रसादजी तथा बाबू नन्दलालजी, सेठ बैजनाथजी सरावगी, पटनानिवासी बद्रीप्रसादजी सरावगी, खरखरी निवासी श्री बाबू विमलप्रसादजी, बाबू शिखरचन्द्रजी, बरनावावाले नत्थूमलजी, गिरीडीहनिवासी श्री बालचन्द्रजी मोदी, राधाकृष्ण कालूरामजी, रामचन्द्रजी सेठी, सागरमलजी पाण्डया, गिरनारीलालजी सरावगी, कोडरमा निवासी श्री जगन्नाथजी पाण्डया, गौरीलालजी, जीतमलजी, भँवरीलालजी पाण्डया, राँचीनिवासी श्री रायबहादुर हरपचन्द्रजी, लालचन्द्रजी सेठी, हजारीबागनिवासी श्री कन्हैयालाल मिश्रीलालजी तथा गयानिवासी श्री छोगालालजी, सोनूलालजी तथा चम्पालालजी सेठी आदि महानुभाव समय-समय पर पधार कर सब व्यवस्था बनाये रहते हैं।

राष्ट्रपतिसे साक्षात्कार

ईसरीमे सम्वत् २०१२ सन् १६५५ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें विहार राज्य ग्राम पञ्चायतका चतुर्थ अधिवेशन था। जिसके उद्-घाटनके लिए भारतवर्षके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी आये थे। जैन हाईस्कूलके मैदानमे आपका भाषण हुआ। आप प्रकृतिके सरल तथा श्रद्धालु व्यक्ति हैं। साक्षात्कार होनेपर आपने वहुत ही शिष्टता दिखलाई। मैंने आपसे कहा कि विहार आपका प्रान्त है और इसी प्रान्तमें मद्यके सेवनकी प्रचुरता देखी जाती है। इस मद्य-सेवनसे गरीवोंकी गृहस्थी उजड़ रही है। उनके वाल-वच्चोंको पर्याप्त अन्न और वस्त्र नहीं मिल पाता। निर्धन अवस्थाके कारण शिक्षाकी ओर भी उनकी प्रगति नहीं हो पाती इसलिए ऐसा प्रयत्न कीजिये कि जिससे यहाँके निवासी इस दुर्व्यसनसे बचकर अपना भला कर सकें। आप जैसे आस्थावान् राष्ट्रपतिको पाकर भारतवर्ष गौरवको प्राप्त हुआ है।

उत्तरमें उन्होंने कहा कि हम प्रयत्न ऐसा कर रहे हैं कि विहार ही क्यों भारतके किसी भी प्रदेशमें मद्यपान न हो। पूज्य गांधीजीने मद्य-निषेधको प्रारम्भ किया है और हम उनके पदानुगामी हैं परन्तु खेद इस वातका है कि हम द्रुतगतिसे उनके पीछे नहीं चल पाते हैं।

स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

वनारसका स्याद्वाद विद्यालय जैन समाजकी प्राचीन एवं महोपकारिणी संस्था है। गङ्गाके तटपर इसकी विशाल इमारत

बनी हुई है। उसीमें श्री भगवान् सुपार्श्वनाथका सुन्दर मन्दिर है। ५० वर्षसे जैन समाजमें संस्कृत विद्याका प्रचार इस विद्यालयसे हो रहा है। सकड़ों विद्वान् इस विद्यालयमें पढ़कर तैयार हुए हैं। बनारसका स्थान संस्कृत विद्याका प्रचार केन्द्र है। यहाँ हिन्दूधर्मावलम्बियोंके द्वारा चलनेवाले संस्कृतके सैकड़ों विद्यालय हैं, अनेकों छोटी मोटी पाठशालाएँ, सरकारी कालेज हैं तथा मालवीयजी द्वारा उद्घाटित हिन्दू यूनिवरसिटी है। ऐसे केन्द्र स्थानमें यह स्याद्वाद विद्यालय अपना बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पं० कैलाशचन्द्रजी इसके प्रधानाध्यापक हैं। यथार्थमें आप विद्यालयके प्राण हैं। आपके द्वारा ही यह व्यवस्थितरूपसे चला आ रहा है।

विद्यालयके अधिकारियोंका यह निश्चय हुआ कि ५० वर्ष हो जानेके कारण इस विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव सम्पन्न कराया जाय। मेरा बनारस पहुँचना संभव नहीं था इसलिये उत्सव का आयोजन मधुवनमें रक्खा गया। मेरा कहना था कि उत्सव विद्यालयके स्थान पर ही शोभा देगा परन्तु सुननेवाला कौन था। उत्सवके आयोजकोंका भाव यह था कि श्री सम्मेदशिखरजी जैसे परम पवित्र सिद्ध क्षेत्रपर मेरा सन्निधान रहते हुए जनता अनायास आ जायगी। उत्सवके अध्यक्ष श्री साहु शान्तिप्रसादजी कलकत्ता थे। आपने सपरिवार पधारकर उत्सवको अच्छी तरह सम्पन्न कराया। कलकत्तासे श्री सेठ गजराजजी, श्री बाबू छोटेलालजी तथा उनके भाई श्री नन्दलालजी आदि अनेक महानुभाव पधारे। हजारीबाग, कोडरमा, राँची, गिरिडीह आदिसे अनेक व्यक्ति [illegible] आये। अन्य जनता भी इतनी अधिक आई कि मधुवनकी तेरापन्थी, बीसपन्थी तथा श्वेताम्बर कोठियाँ सब धर्मशालाएँ ठसाठस भर गयीं। [illegible] लोगोंका प्रबन्ध करना पड़ा।

माघ वदी १२ संवत् २०१२ को श्री ऋषभ निर्वाण दिवसके

उत्सव मनाया गया जिसमें भगवान् ऋषभदेवसे सम्बन्ध रखनेवाले भाषण हुए। विद्वानोंमें श्री पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर, पं० फूलचन्द्रजी बनारस, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं० मुन्नालालजी समगौरया सागर आदि अनेक विद्वान् आये थे। काशीके सब विद्वान् थे ही। रात्रिमें वर्णी जयन्तीका आयोजन था जिसमे अनेक लोगोंने अपनी अपनी इच्छानुसार श्रद्धाञ्जलियाँ दीं जिन्हें मैंने नत मस्तक होकर संकोचके साथ श्रवण किया। दूसरे दिन स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव हुआ। विद्यालयका परिचय देते हुए उसके अवतकके कार्यकलापोंका निर्देश श्री पं० कैलाशचन्द्रजीने किया। साहुजीने अपना भाषण दिया तथा भाषणमें ही विद्यालयको चिरस्थायी करनेकी अपील समाजसे कर दी। समाजने हृदय खोलकर विद्यालयको सहायता दी। लगभग डेढ़ दो लाखकी आय विद्यालयको हो गई।

एक दिन श्री रमारानीकी अध्यक्षतामे महिलासभाका भी अधिवेशन हुआ था जिसमे श्री चन्दाबाईजीकी प्रेरणासे महिलासभा को भी अच्छी आमदनी हो गई। जैनसमाजमें दान देनेकी प्रवृत्ति नैसर्गिक है। वह देती है और प्रसन्नतासे देती है परन्तु समाजमें एक संघटनका अभाव होनेसे उस दानसे जो लाभ मिलना चाहिये नहीं मिल पाता। समाजमे जहाँ तहाँ मिलकर प्रतिवर्ष लाखों रुपयोंका दान होता है पर वह दान की हुई रकम स्व स्थानोमें रहनेसे छिन्न भिन्न हो जाती है और उससे समाजको ऊँचा उठाने-वाला कोई काम नहीं हो पाता। समाजके सर्व दानको एकत्र मिलाया जाय तो उससे विद्यालय तथा कालेज तो दूर रहो यूनिवर-सिटीका भी संचालन हो सकता है और उसके द्वारा जैन संकृति का प्रचार सर्वत्र किया जा सकता है। दानका रुपया एकत्र तब तक नहीं हो सकता जब तक कि दाता महानुभाव अपने स्थानका

मोह नहीं छोड़ देते हैं। आज कोई दान देता है तो उसका परिणाम अपने ही यहाँ देखना चाहता है। पर यह निश्चित है कि उसकी उतनी छोटी रकमसे कोई बड़ा काम नहीं चल सकता और न सर्वत्र उत्तम कोटिके कार्यकर्ता ही हो सकते हैं। देनेवाले महानुभाव जब तक अपने हृदयको विशाल कर उदार नहीं बनाते हैं तब तक उक्त कार्य स्वप्नवत् ही जान पड़ते हैं। अस्तु,

तीसरे दिन प्रातःकाल साहुजीको 'श्रावक शिरोमणि' की पदवी दी जानेका प्रस्ताव रक्खा गया। उसके उत्तरमें आपने जो भाषण दिया उससे जनताने समझा कि आप कितने उज्ज्वल तथा नम्र-निरहंकार व्यक्ति हैं।

उत्सव समाप्त होनेपर मैं प्रातःकाल श्री पार्श्व प्रभुकी वन्दना करनेके लिए गया था। उसी समय किन्हीं लोगोंने परिषद्के द्वारा प्रकाशित हरिजन मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी पुस्तिकायें जनतामें वितरण कर दीं। फिर क्या था? कुछ लोगोंने इसकी खबर उस समय मधुवनमें विद्यमान श्री मुनि महावीरकीर्तिजीको दे दी। खबर पाते ही आपका पारा गरम हो गया और इतना गरम होगया कि आपने जनतामे एकदम उत्तेजना फैला दी। जब मैं गिरिराजसे लौटकर २ बजे आया तब यहाँका रङ्ग दूसरा ही देखा। तेरापंथी कोठीके सामने महाराज जनताके समक्ष उत्तेजनापूर्ण शब्दोंमे अपना अभिप्राय प्रकट कर रहे थे। यह दृश्य देखकर मुझे लगा कि मनुष्य किसी वस्तुस्थितिको शान्त भावसे न सोचते हैं और न सोचनेका प्रयत्न ही करते हैं। मैं चुपकेसे जहाँ महाराज भाषण कर रहे थे पहुँचा और मैंने लोगोंसे कहा कि भाइयो! मैं तो रात्रिके ४ बजेसे श्री पार्श्व प्रभुकी वन्दनाके लिए गया था। यह पुस्तकें जो वितरण की गईं हैं इसकी जानकारी मुझे न पहले थी और न अब भी है कि पुस्तकें कहाँसे आईं और किसने वितरण कीं? हरिजनोंके विषयमें

महाराज जो कहें सो आप लोग मानों इसमें मुझे आपत्ति नहीं। आप आगमके ज्ञाता हैं सो आपको बतलावेंगे कि धर्म कौन धारण कर सकता है ? श्री समन्तभद्र स्वामीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धर्म कहा है। इनके धारक कौन हो सकते हैं और धर्म धारण करनेके बाद भी धारण करनेवाले जीवोंमें कुछ विशेषता होती है या नहीं ? मेरा तो विश्वास है कि जैनागममें सम्यग्दर्शनके धारण करनेकी प्रत्येक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकको छूट है। मनुष्यकी बात तो दूर रहो तिर्यञ्चके लिए भी इसका अधिकार है। जब अनन्त संसारसे पार करनेवाला धर्म उसके हात लग गया तब भी वह पापी बना रहा यह बात जैनागममें मेरे देखनेमें नहीं आई। उन्हें आप मन्दिर न आने दो क्योंकि मन्दिर आपके हैं परन्तु सम्यग्दर्शनरूप ज्योतिके प्रकट होनेपर भी उनमे पापरूप अन्धकार विद्यमान रहता है यह बात बुद्धिमें नहीं आती।

अनन्तर वातावरण शान्त होगया जिससे रथयात्रा आदि कार्य शान्तिसे सम्पन्न हुए। हम सायंकाल मधुवनसे ईसरी आगये। मेला भी यथाक्रमसे विघट गया।

आचार्य नमिसागरजी महाराजका समाधिमरण

श्री आचार्य नमिसागरजी महाराज महातपस्वी थे। न जाने क्यों आपका हमपर अधिक स्नेह था। जब देहली तथा बड़ौतमें आपके चातुर्मास हुए थे तब आप बराबर हमारे लिये शुभाशीर्वाद भेजते रहते थे। हम ईसरी में थे, आपकी आकांक्षा थी कि हमारा समाधिमरण वर्णी गणेसप्रसादके सान्निध्यमें हो। इस आकांक्षा-

से प्रेरित होकर आप देहलीसे मधुवन तकका लम्बा मार्ग तयकर श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमें पधारे थे। आप निर्द्वन्द्व-निरीह वृत्तिके साधु थे। संसारके विषम वातावरणसे दूर थे। आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था। ७० वर्षकी आपकी अवस्था थी फिर भी दैनिक चर्यामें रञ्चमात्र भी शिथिलता नहीं आने देते थे।

श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्रा कर आप ईसरी आ गए जिससे सबको प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्थाके कारण आपका शरीर दुर्बल हो गया तथा उदरमें व्याधि उत्पन्न हो गई जिससे आपका विचार हुआ कि यह मनुष्य शरीर संयमका साधक होनेसे रक्षणीय अवश्य है पर जब रक्षा करते-करते अरक्षित होनेके सम्मुख हो तब उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है।...... यह विचार कर आपने १९-१०-१९५६ शुक्रवारको समाधिका नियम ले लिया। आपने सब प्रकारके आहार और औषधिका त्याग कर केवल छाछ और जल ग्रहण करनेका नियम रक्खा। उदासीनाश्रमके सब त्यागी गण आपकी वैयावृत्यमें निरन्तर निमग्न रहते थे। श्री प्यारेलालजी भगत भी उस समय ईसरीमें ही थे। अतः आप वैयावृत्यकी पूर्ण देख-रेख रखते थे। हम भी समय समयपर आपको भगवती आराधना सुनाते थे। महाराज बड़ी एकाग्रतासे श्रवण करते थे। महाराजके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए दिल्लीसे अनेक लोग पधारे। आस-पासके भी अनेक महानुभाव आये। सेठ गजराजजी गंगवाल भी सकुटुम्ब आकर आपकी परिचर्यामें निमग्न थे। महाराज तेरापन्थी कोठीमें ठहरे थे। मै आपके दर्शनके लिए गया। चलते-चलते मेरी श्वास भर आई। यह देख महाराज बोले—आपने क्यों कष्ट किया? आप तो हमारे हृदयमें विद्यमान हैं।

अनन्तर सबकी सलाहसे उन्हे उदासीनाश्रममें ले आये और सरस्वतीभवनमें ठहरा दिया। इस समय आपने अपने ऊपरसे

झुंगी हटवा दी तथा खुले स्थानमें पलाल पर शयन किया। जब अन्तिम दो दिन रह गये तब आपने छाँछका भी परित्याग कर दिया, केवल जल लेना स्वीकृत रक्खा। कार्तिक वदी ३ सं० २०१३ को १० बजे आपने तीन चुल्लू जलका आहार लिया। आहारके बाद आपको अधिक दुर्बलताका अनुभव हुआ फिर भी मुखाकृति अत्यन्त शान्त थी। आपने सबसे कहा कि आप लोग भोजन करें। महाराजकी आज्ञा पाकर सब लोग भोजनके लिये चले गये तथा सेवामें जो त्यागी थे उन्हें छोड़ अन्य त्यागी सामायिक करने लगे। हम भी सामायिकमें बैठना ही चाहते थे कि इतनेमें समाचार मिला कि महाराजका स्वास्थ्य एकदम खराब हो रहा है। हम उसी समय उनके पास आये। हमने पूछा कि महाराज! सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होंने हूंकार भरा और उसी समय आपके प्राण निकल गये। सबके हृदय शोकसे भर गये। महाराजके शवको पद्मासनसे विमानमें बैठाकर ग्राममें जुलूस निकाला और आश्रमके पास ही बगलवाले मैदानमें आपका अन्तिम संस्कार किया गया। गोला तथा चन्दनका पुष्कल प्रबन्ध श्री गजराजजी कलकत्तावालोंने पहलेसे कर रक्खा था। रात्रिमें शोकसभा हुई जिसमें महाराजके गुणोंका स्मरण कर उन्हें श्रद्धाञ्जलियाँ दी गईं।

हमारे हृदयमें विचार आया कि जिनका संसार अत्यन्त निकट रह जाता है उन्हींका इस प्रकार समाधिमरण होता है। आगममें लिखा है कि जिसका सम्यक् प्रकारसे समाधिमरण होता है वह सात आठ भवसे अधिक संसारमें भ्रमण नहीं करता। भक्त भगवज्जिनेन्द्रसे प्रार्थना करता है कि—

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ जगदबान्धव! तव जिणवर चरणसरणेण॥

हे भगवन्! हे जगत्के बन्धु! आपके चरणोंकी शरण पाकर मेरे दुःखोंका क्षय हो इस प्रकार कोई भक्त भगवान्से प्रार्थना करता है। भगवान्की ओरसे उत्तर मिलता है कि दुःखोंका क्षय तबतक नहीं हो सकता जबतक कि कर्मोंका क्षय न हो जाय। यह सुन भक्त, भगवान्से कहता है कि भगवन्! कर्मोंका भी क्षय हो। भगवान्की ओरसे पुनः उत्तर मिलता है कि कर्मोंका क्षय तबतक नहीं हो सकता जबतक कि समाधिमरण न हो। कायरोंकी तरह रोते चीखते हुए जो मरण करते हैं वे कर्मोंका क्षय कदापि नहीं कर सकते। यह सुन भक्त भगवान्से पुनः प्रार्थना करता है कि भगवन्! समाधिमरणकी भी मुझे प्राप्ति हो। भगवान्की ओरसे पुनः आवाज आती है कि बोधि—रत्नत्रयकी प्राप्तिके बिना समाधिमरणका होना दुर्लभ है। तब फिर भक्त प्रार्थना करता है कि महाराज! बोधिका लाभ भी मुझे हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं कर लेता तब-तक इसके दुःखोंका क्षय नहीं हो सकता। जिस प्रकार हिमके कुण्डमें अवगाहन करनेसे तत्काल शीतलताका अनुभव होने लगता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके होनेपर तत्काल सुखका अनुभव होने लगता है। अन्यकी बात जाने दो, नारकी जीव भी सम्यग्दर्शन के होनेपर तत्काल सुखका अनुभव करने लगता है। विपरीताभि-निवेश दूर होना ही सम्यग्दर्शन है। जहाँ विपरीतभाव गया वहाँ सुखकी बात क्या पूछना?

मैंने श्रद्धाञ्जलि भाषणमें लोगोंसे यही कहा कि महाराज तो आत्मकल्याण कर स्वर्गमें कल्पवासी देव होगये। अब उनके प्रति शोक करनेसे क्या लाभ है? शोक तो वहाँ होना चाहिये जहाँ अपना स्नेहभाजन व्यक्ति दुःखको प्राप्त हो। अब तो हम सबका पुरुषार्थ इस प्रकारका होना चाहिये कि जिससे

जन्म-मरणकी यातनाओंसे वचकर हमारा आत्मा शाश्वत सुखका पात्र होसके।

सागर विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

सागरकी सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशाला पहले सत्तर्क विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध हुई, अब गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। इस संस्थाने बुन्देलखण्ड प्रान्तमें काफी कार्य किया है। ५० वर्ष पूर्व जहाँ मन्दिरोंमें पूजा और विधान बाँचनेवाले विद्वान् नहीं मिलते थे वहाँ अब धवल-महाधवल जैसे ग्रन्थराजोंका अनुवाद और प्रवचन करनेवाले विद्वान् विद्यमान हैं। जहाँ संस्कृतके ग्रन्थ बांचनेमें लोग दूसरेका मुख देखते थे वहाँ आज संस्कृतमें गद्य पद्य रचना करनेवाले विद्वान् तैयार हो गये हैं।

सागर बुन्देलखण्डका केन्द्र स्थान है अतः यहाँपर विद्याके एक विशाल आयतनकी आवश्यकता सदा अनुभवमें आती रहती थी। सागरके उत्साही लोगोंने अपने यहाँ एक छोटीसी पाठशाला खोली थी वह वृद्धि करते करते आज विशाल विद्यालयका रूप धारण कर समाजमें कार्य कर रही है। किसी समय इसमे ५ विद्यार्थी थे पर अब इसमें २०० छात्र भोजन पाते हुए विद्याध्ययन करते हैं। एक पहाड़ीकी उपत्यिकामें सुन्दर और स्वच्छ भवन विद्यालयका बना है उसीमें संस्कृत विभाग तथा हाईस्कूल इस प्रकार दोनों विभाग अपना कार्य संचालन करते हैं। संस्कृतमें प्रारम्भसे शास्त्री आचार्य तक तथा हाईस्कूलमें एन्ट्रेस तक पढ़ाई होती है।

समय जाते देर नहीं लगती। इस संस्थाको भी कार्य करते हुए बहुत वर्ष हो गये थे इसलिए इसके आयोजकोंने भी स्वर्णजयन्ती

इसी वर्ष कोडरमामें पञ्चकल्याण थे। लोग हमे भी ले गये।
[पृ ४९६]

मनानेका आयोजन किया। बनारस विद्यालयके उत्सवके समय श्री समगौरयाजीने कहा था कि इस वर्ष बड़े भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती हो रही है और आगामी वर्ष छोटे भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। छोटे भैयाके मायने सागरका विद्यालय है। सुनकर जनताकी उत्सुकता बढ़ी।

अगली वर्ष सागरसे पं० पन्नालालजी और समगौरयाजी हमारे पास आकर कहने लगे कि इस वर्ष सागर विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती मनाना है इसलिए आप सागर पधारनेकी कृपा करें। मैं सागर जाकर बड़ी कठिनाईसे वापिस आ पाया था तथा शरीरकी शक्ति भी पहलेकी अपेक्षा अधिक ह्रासको प्राप्त होगई थी इसलिए मैंने सागर जाना स्वीकृत नहीं किया। तब उन्होंने दूसरा पक्ष रक्खा तो यहींपर अर्थात् मधुवनमें उत्सव रखनेकी स्वीकृति दीजिये। मैं तटस्थ रह गया और उक्त दोनों विद्वान् कलकत्ता जाकर मधुवनमें स्वर्णजयन्ती महोत्सव करनेकी स्वीकृति ले आये।

इसी बीच श्री कानजी स्वामी भी श्री गिरिराजकी वन्दनार्थ ससंघ पधार रहे थे जिससे लोगोंमें उक्त अवसर पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बढ़ रही थी। इसी वर्ष कोडरमामें पञ्चकल्याणक थे। लोग हमें भी ले गये। वहाँ भी सागर विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती महोत्सवका काफी प्रचार हो गया। फाल्गुन सुदी १२-१३ सं० २०१३ उत्सवके दिन निश्चित किये गये। इस उत्सवमें बहुत जनता एकत्रित हुई। सब धर्मशालाएँ भर चुकीं और उसके बाद सैकड़ों डेरे तम्बुओंका प्रबन्ध कमेटीको करना पड़ा। चारों ओरकी जनता का आगमन हुआ। उसी समय यहाँ जैनसिद्धान्तसंरक्षिणी सभाका अधिवेशन भी था। तेरापन्थीकोठीमें इसका पंडाल लगा था और श्री कानजी स्वामीके प्रवचनों तथा सागर विद्यालयके उत्सवका संयुक्त पंडाल बीसपंथी कोठीमें लगा था। इन आयो-

जनोंमें बाहरसे श्री पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य, पं० बन्शीधरजी न्यायालंकार, पं०मक्खनलालजी, पं० लालारामजी, पं० फूलचन्द्रजी, पं० कैलाशचन्द्रजी, पं० इन्द्रलालजी आदि अनेक विद्वान् आये थे। सागरके सब विद्वान् तथा छात्रवर्ग थे ही।

सागर विद्यालयवालोंने उत्सवका अध्यक्ष मुझे बना दिया। उत्सवके प्रारम्भमे विद्यालयमें अबतक पढ़कर निकलनेवाले स्नातकों (छात्रों) की ओरसे ५२ स्वर्णमुद्राएँ विद्यालयकी सहायताके लिए हमारे सामने रखी गईं। विद्यालयके ५२ वर्पका कार्यपरिचय जनताके समक्ष उसके मन्त्री श्री नाथूराम गोदरेने रक्खा। पं० फूलचन्द्रजीने विद्यालयके लिए अपील की जिससे ५०-६० हजार रुपयेके वचन मिल गये। फुटकर सहायता भी लोगोंने बहुत दी। उत्सवका कार्यक्रम दो दिन चलता रहा और जनता बड़ी प्रसन्नतासे उसमे भाग लेती रही।

श्री कानजी स्वामी फागुन सुदी ५ को संघ सहित मधुवन आ गये थे। जितने दिन रहे प्रायः हमसे मिलते रहे। प्रसन्नमुख तथा विचारक व्यक्ति हैं। आप प्रारम्भमें स्थानकवासी श्वेताम्बर थे परन्तु श्री कुन्दकुन्दस्वामीके ग्रन्थोंका अवलोकन करनेसे आपकी दिगम्बर धर्मकी ओर दृढ़ श्रद्धा हो गई जिससे आपने स्थानकवासी श्वेताम्बर धर्म छोड़कर दिगम्बर धर्म धारण कर लिया। न केवल आपने ही किन्तु अपने उपदेशसे सौराष्ट्र तथा गुजरात प्रान्तके हजारों व्यक्तियोंको भी दिगम्बर जैन धर्ममें दीक्षित किया है। आपकी प्रेरणासे सोनगढ़ तथा उस प्रान्त में अनेक जगह दिगम्बर जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ है।

आपके प्रवचन प्रायः निश्चय धर्मकी प्रमुखता लेकर होते हैं तथा आपका जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, मैंने तो आनुपूर्वीसे देखा नहीं पर लोग कहते हैं कि निश्चयधर्मकी प्रधानताको लिये

दानवीर सेठ भागचन्दजी (डोंगरगढ़) मधुवन में अपनी
धर्मनिष्ठा पत्नी श्री नर्वदाबाईजी और श्री पं०
भैयालालजी शास्त्रीके साथ पूज्य वर्णीजी
को आहार दे रहे हैं। पासमें श्री
पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्त-
शास्त्री बैठे हैं।

[पृ० ४८०]

हुए हैं। इस स्थितिमें अभी नहीं तो आगे चलकर व्यवहार धर्मसे लोगोंकी उपेक्षा हो जाना इष्ट नहीं है अतः दोनों नयों पर दृष्टि डालते हुए श्री कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलंक आदि आचार्योंके समान पदार्थका निरूपण किया जाय तो जैनश्रुतकी परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे। विद्वान् लोग यही चर्चा आपसे करना चाहते थे पर कार्यक्रमोंकी बहुलताके कारण मधुवनमें वह अवसर नहीं मिल सका।

उत्सवमें आपके यात्रा संघकी ओरसे विद्यालयको १०००) समर्पित किया गया। उत्सवके बाद आपका संघ कलकत्ताकी ओर प्रस्थान कर गया। मेला विघट गया और हम भी ईसरी वापिस आ गये।

श्री क्षु० संभवसागरजीका समाधिमरण

श्री क्षुल्लक संभवसागरजी बारासिवनीके रहनेवाले थे। प्रकृतिके बहुत ही शान्त तथा सरल थे। जबसे क्षुल्लक दीक्षा आपने ग्रहण की तबसे बराबर हमारे साथ रहे। संसारके चक्रसे आप सदा दूर रहते थे तथा मुझसे भी निरन्तर यही प्रेरणा करते रहते थे, आप इन सब झंझटोंसे दूर रहकर आत्महित करें। एकबार शाहपुरमें मैं सामायिक कर रहा था और मेरे पीछे आप सामायिकमें बैठे थे। किसी कारण मेरे खेसमें आग लग गई, मुझे उसका पता नहीं था और होता भी तो सामायिकमेंसे कैसे उठता? परन्तु आपकी दृष्टि अचानक ही उस आग पर पड़ गई और आपने झटसे उठकर हमारा जलता हुआ खेस निकाल कर अलग कर दिया। उस दिन उन्होंने एक असंभाव्य घटनासे हमारी रक्षा की।

आपका स्वास्थ्य धीरे धीरे खराब होता गया। जब आपकी आयुके कुछ दिन ही शेष रह गये तब बोले महाराजजी! आपमें मेरी अगाध श्रद्धा है, मैं विशेष पढ़ा लिखा नहीं हूँ और न शास्त्रका विशेष ज्ञान ही मुझे है परन्तु गृहवाससे मेरे परिणाम विरक्त हो गये। पहलेसे ब्रह्मचारीके वेषमें रहा और अब क्षुल्लक दीक्षा धारण की है। मेरा अभिप्राय सदा यह रहा है कि आप विशिष्ट ज्ञानी तथा अन्तरात्माके पारखी हैं. इसलिये आपके निकट रहनेसे हमारा समाधिमरण होगा। मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा होनेकी आशा नहीं है इसलिये आप जिस तरह बने उस तरह हमारा सुधार करें। हमारा उपकार अपकार आप पर निर्भर है। यह कहकर आपने सल्लेखना धारण करली। आश्रमके सब ब्रह्मचारी आपकी सेवामें लीन हो गये। मैं भी यथा समय उन्हें संबोधता रहता था। मेरा तो उनसे यही कहना था कि इस समय अधिक चिन्तनकी आवश्यकता नहीं। इस समय तो आप इतना ही चिन्तन करो—

एगो मे सासदो अप्पा णाणदसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा॥

कुन्दकुन्द स्वामीके वचन हैं कि ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा शाश्वत द्रव्य है। अन्य, कर्म संयोगसे होनेवाले समस्त भाव बाह्य भाव हैं। उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। शरीरादि पर पदार्थोंसे भिन्न हमारी आत्मा है। उसे कोई भी नष्ट करनेवाला नहीं है।

यहाँ पर्यूषणके बाद आसोज बदी ४ को लोग वर्णी जयन्तीके समारोहका आयोजन कर रहे थे वहाँ श्री संभवसागरजीका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जाता था। मैंने सब जगह सूचना करवा दी कि इस वर्ष जयन्तीका समारोह नहीं होगा, क्योंकि हमारा एक सहयोगी सन्त समाधि पर आरूढ़ है। यद्यपि जयन्ती उत्सव

थगित कर दिया था फिर भी आस-पासके लोगोंकी अच्छी संख्या आकर यहाँ उपस्थित हो गई। कुँवार वदी ३ वीर निर्वाण २४८३ आपकी वर्तमान पर्यायका अन्तिम दिन था। दुर्वल होने पर भी आपकी चेतना यथापूर्व थी। आप बोल नहीं सकते थे फिर भी यथार्थ तत्त्व आपके ज्ञानमें समाया हुआ था। आज आपने अन्न-जलका सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने कहा कि सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होंने हूँकार भरा। तदनन्तर मैंने कहा कि आत्मा पर पदार्थोंसे भिन्न जुदा पदार्थ अनुभवमे आता है या नहीं? पुनः उन्होंने हूँकार भरा। तदनन्तर नमस्कार मन्त्रका श्रवण करते-करते आपके प्राण शरीरसे वहिर्गत हो गये। सवको दु.ख हुआ। पश्चात् आपका अन्तिम संस्कार किया गया। शोक सभा की गई जिसमे आपको और आपके परिवारको 'शान्तिलाभ हो' ऐसी भगवान्से प्रार्थना की गई। सव लोगोंके मुखसे आपकी प्रशंसामे यही शब्द निकलते थे कि वहुत ही शान्त थे।

हजारीवागका ग्रीष्मकाल

हजारीवागका जलवायु उत्तम है। ग्रीष्मकी वाधा भी वहाँ कम होती है इसलिये अन्तरङ्गकी प्रेरणा समझो या वहाँके लोगोंके आग्रहकी प्रवलता ·· कुछ भी कारण समझो, मै वहाँ चला गया। वसंतीलालजीने अपने उद्यानमे ठहराया। सुरम्य स्थान है। यहाँ आकर गरमीके प्रकोपसे तो वच गया परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्वलतासे जैसी शान्ति मिलनी चाहिये नहीं मिल सकी। सागरसे तार आये कि यहाँ सिंघई कुन्दनलालजीका स्वास्थ्य अत्यन्त खराव

है, इसलिये उनकी समाधिके लिये आप सागर पधारनेकी कृपा करें। सिं० कुन्दनलालजी अन्तरङ्गके निर्मल एवं परोपकारी जीव हैं। उनके संपर्कमें हमारा बहुत समय बीता है, इसलिये मनमें विकल्प उत्पन्न हुआ कि यदि हमारे द्वारा इनके परिणामोंका सुधार होता है तो पहुँचनेमें क्या हानि है। तारके बाद ही सागरसे कुछ व्यक्ति भी लेनेके लिए आ गये। जब इस बातका यहाँके समाजको पता चला तो सबमें व्यग्रता फैल गई। लोग यह कहने लगे कि आपकी अत्यन्त वृद्ध अवस्था है इसलिए श्री पार्श्व प्रभुकी शरण छोड़कर अन्यत्र जाना अच्छा नहीं है। साथ ही यह भी कहने लगे कि आपने इसी प्रान्तमें रहनेका नियम किया था इसलिए इस प्रान्तसे बाहर जाना उचित नहीं है। हजारीबाग ही नहीं कई स्थानोंके भाई एकत्रित हो गये। मैं दोनों ओरसे संकोचमें पड़ गया। इधर सागरके महाशय आगये इसलिये उनका संकोच और उधर इस प्रान्तके लोगोंका संकोच। हजारीबागसे चलकर ईसरी आये तो यहाँ भी बहुतसे लोगोंका जमाव देखा। बात यही थी, सबका यही कहना था कि आप इस प्रान्तको छोड़कर अन्यत्र न जावें। जानेमें नियमकी अवहेलना होती है परन्तु मेरा कहना था कि समाधिके लिए जानेका विचार है। यदि मेरे द्वारा एक आत्माका सुधार होता है तो क्या बुरा है? लोगोंकी युक्ति यह थी कि यदि सिंघईजी कोई व्रती क्षुल्लक या मुनि होते तो जाना संभव हो सकता था। अन्तरङ्गमें विचारोंका संघर्ष चल रहा था कि सागरसे दूसरा समाचार आ गया कि सिंघईजीका स्वास्थ्य सुधर रहा है। समाचार जानकर हृदयकी व्यग्रता कम हुई। मनमें यह लगा कि मेरा हृदय बहुत निर्बल है। जरा जरा सी बातोंको लेकर उलझनमें पड़ जाता हूँ इसे हृदयकी दुर्बलता न कहा जाय तो क्या कहा जाय। स्वस्थताके तारने हमारी उलझन समाप्त कर दी और मैंने सागरवालोंसे कह दिया कि
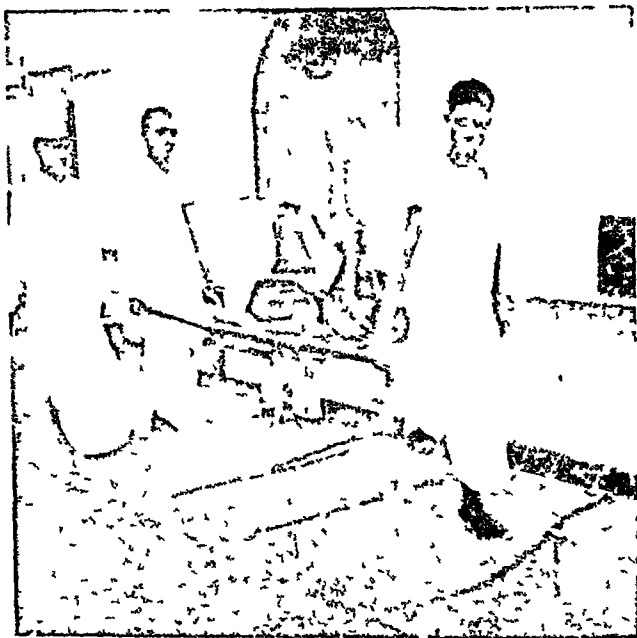
प्रातःकाल श्री पार्श्वप्रभुकी वन्दनाके लिए गया।
डोलीमे जाना पड़ा।

[पृ० ४८५]

हमारा सागर पहुँचना शक्य नहीं है। इधरके लोगोंको इससे संतोष हुआ पर सागरके लोग निराश होकर चले गये। संसार है, सबको प्रसन्न रखनेकी क्षमता सबमें नहीं है। सूर्योदयसे कमल विकसित होता है पर उसी तालाबमें कमलके पास लगा हुआ कुमुद बंद हो जाता है। इसे क्या कहा जाय? पदार्थका परिणमन विचित्र रूप है। हर्ष और विषादका अनुभव लोग अपनी अपनी कषायके अनुसार ही करते हैं।

साहुजीकी दान-घोषणा

वृद्धावस्थाके कारण शरीरकी जर्जरता तो बढ़ रही थी। उस पर भी यदा कदा वातका प्रकोप व्यग्रताको बढ़ा देता था इसलिए एक दिन निश्चय किया कि राजगृही रहा जाय। वहाँका वायुमण्डल शरीरके अनुकूल बैठ सकता है। श्रीराजकृष्णजीने इसके लिए एक विशिष्ट प्रकारकी कुर्सीका निर्माण कराया जिसमें पहिये लगाये गये थे और एक आदमी जिसे अच्छी तरह चला सकता था। ईसरीसे जाते समय मनमें विकल्प आया कि पार्श्व प्रभुके पादमूलसे हटकर जा रहा हूँ। फिर लौटकर आ सका या नहीं, इसलिए एक बार गिरिराजपर जाकर उनके दर्शन अवश्य करना चाहिये। निश्चयानुसार मधुवनके लिए प्रस्थान कर दिया।

प्रातःकाल श्रीपार्श्व प्रभुकी वन्दनाके लिये गया। डोलीमें जाना पड़ा। मन ही मन औदारिक शरीरकी दशापर खेद उत्पन्न हो रहा था। एक समय था जब इसी शरीरसे पैदल यात्रा कर पार्श्वप्रभुके दर्शन किये थे पर अब उसे वाहन करनेके लिये दो आदमियोंकी

आवश्यकता पड़ती है। सीधे पार्श्वनाथ भगवान्‌की टोंकपर ही गये थे इस लिये आठ बजते बजते वहाँ पहुँच गये। पार्श्वप्रभुके दर्शन कर हृदयमें अपार शान्ति उत्पन्न हुई। एकबार स्वर्गीय बाईजीके साथ गिरिराजकी यात्रा की थी तब पार्श्व प्रभुके पादमूलमें उन्होंने अपना जीवनचक्र सुनाते हुये प्रतिक्रमण कर नाना व्रत धारण किये थे। वह दृश्य सहसा आंखोंके सामने आगया और बाईजीका उज्ज्वल रूप सामने दृष्टिगत होने लगा। साथके लोगोंसे तत्त्वचर्चा करता हुआ बाहर आया। चारों ओर हरे भरे वृक्षों पर सूर्यकी सुनहली धूप पड़ रही थी। फिर भी शीतल वायुके झकोरे शरीरमें सिहरन पैदा कर रहे थे। मध्यान्हकी सामायिक बीचमें कर मधुवन आ गये। आहार आदिसे निवृत्त हो संतोषका अनुभव किया।

मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। शीतकी प्रकोपतासे पावोंमे सूजन आगई और वातका दर्द भी अधिक बढ़ गया। इसलिए राजगृही जाना कठिन हो गया। गिरीडीहके महानुभावोंने आग्रह किया कि अभी आप गिरीडीह चलें, वहाँ हम उपचार करेंगे। अच्छा होनेपर आप राजगृही जावें। हम गिरीडीह चले गये। लोगोंने बहुत सम्मानसे ठहराया और नाना उपचार किये। स्वास्थ्यकी खराबीके समाचार जहाँ तहाँ पहुँच गये जिससे अनेक लोग गिरीडीह पहुँचे। क्षुल्लक मनोहरलालजी भी आ पहुँचे। आपके प्रवचनोंसे जनताको लाभ मिलने लगा। श्री साहु शान्तिप्रसादजी भी आये। आप प्रकृतिसे भद्र एवं उदार चेता हैं। आपने एक दिन कहा कि महाराज जी! मैं सागर विद्यालयकी जयन्तीके समय सम्मेदशिखरजीमें नहीं आ पाया था सो अब आज्ञा कीजिये। मैंने कहा कि मैं क्या आज्ञा करूँ? उस प्रान्तमे वह विद्यालय जैन समाजके उत्थानमे बहुत भारी काम कर रहा है। बना रहे यही हमारी भावना है। समीपमें बैठे कुछ लोगोंने कह दिया कि वहाँ

ांच हजार रुपयेका वार्षिक घाटा रहता है। सुनकर उन्होंने कहा
के हम सदाके लिए इसकी पूर्ति कर देंगे। अनन्तर बनारस
द्यालयके भवन गिर जानेकी बात आई तो बोले कि हम सन्मति
नकेतनमें इसके लिये दूसरा भवन बनवा देंगे। यह सब कह चुकनेके
ाद उन्होंने आग्रह किया कि आपका शरीर अत्यन्त जर्जर है।
 जाने कब क्या हो जाय? इसलिये आप सम्मेदशिखर जीसे दूर
 जावें। गिरीडीह, ईसरी तथा इसीके आस पास रहे तो उत्तम हो।
ने कहा—अच्छा है।

राजगृही जाना स्थगित हो गया तथा कुछ स्वस्थ होने पर ईसरी
 गया। ईसरीमें दिनचर्या पूर्ववत् चलने लगी।